वसीली सुख़ोम्लीन्स्की

बाल-हृदय की गहराइयां

वसीली सुखोम्लीन्स्की

बाल-हृदय की गहराइयां

प्रगति प्रकाशन • मास्को

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
५ ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५

अनुवादक : योगेन्द्र नागपाल

В. А. Сухомлинский
СЕРДЦЕ ОТДАЮ ДЕТЯМ
на языке хинди

V. Sukhomlinsky
TO CHILDREN I GIVE MY HEART
in Hindi

पहला संस्करण : १६७६

दूसरा संशोधित संस्करण : १६८६

© Издательство «Радянська школа», 1973

© हिन्दी अनुवाद • प्रगति प्रकाशन • १६७६

सोवियत संघ में मुद्रित

अनुक्रम

प्रकाशकीय

वसीली अलेक्सान्द्रोविच सुखोम्लीन्स्की ने ५२ साल की अपनी छोटी-सी ज़िंदगी में से ३५ साल बच्चों की शिक्षा-दीक्षा में लगाए। अंतिम २६ वर्षों के दौरान वह बड़े शहरों से दूर स्थित उक्राइनी गांव पाव्लिश के स्कूल में प्रिंसिपल रहे।

स्कूल में अपने कार्य के लिए उन्हें 'समाजवादी श्रम-वीर', तथा 'उक्राइनी जनतंत्र के सम्मानित शिक्षक' की उपाधियों से विभूषित किया गया। सोवियत शिक्षाशास्त्र अकादमी ने उन्हें अपना सह-सदस्य चुना।

सुखोम्लीन्स्की की शिक्षण विधि का सार क्या है?

संसार के अनेक प्रगतिशील शिक्षाशास्त्री यह प्रयत्न करते आए हैं कि बच्चों की शिक्षा और उनका चरित्र-निर्माण – ये दोनों कार्य अंतर्गुंथित हों। सुखोम्लीन्स्की ने अपने व्यवहार और सिद्धांत में इस सपने को सच किया। उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया कि हर सामान्य बच्चे को माध्यमिक शिक्षा प्रदान की जा सकती है और वह भी ग्राम स्कूल में ही – बच्चों को "योग्य" और "अयोग्य" वर्गों में बांटे बिना ही। उन्होंने शिक्षाशास्त्र में, शिक्षण की विधियों में किसी नई दुनिया की खोज नहीं की, उन्होंने तो बस यह दिखाया कि किस प्रकार ज्ञात विधियों का ही दक्षता के साथ उपयोग करते हुए हर बच्चे को ज्ञान पथ पर बढ़ाया जा सकता है। वह बच्चों में आत्मशिक्षा की तीव्र अभिलाषा जगाने को ही सबसे बड़ी बात मानते थे। इस उद्देश्य से वह अपने हर छात्र का बारीकी से अध्ययन करते थे, उनके माता-पिता और स्कूल के दूसरे अध्यापकों से विचार-विमर्श करते थे, अपने विचारों को अतीत के महान शिक्षकों के दृष्टिकोण से जन-विवेक से मिलाते थे।

बच्चों को शिक्षा देने के लिए सबसे पहले तो उन्हें प्यार करना चाहिए। शिक्षक जब बच्चों को प्यार करता है, अपना हृदय उन्हें अर्पित करता है, तभी वह उनमें श्रम की ख़ुशी, मित्रता और मानवीयता की भावनाएं जगा सकता है। शिक्षक को बाल-हृदय की राह ढूंढ़नी चाहिए, केवल तभी वह बच्चों को अपने परिवार, स्कूल और देश से प्रेम करना सिखा सकेगा, उनमें श्रम करने और ज्ञान पाने की अभिलाषा जगा सकेगा। बाल-हृदय की गहराइयों में पैठना—यही है सुख़ोम्लीन्स्की की शिक्षण-विधि का सार।

बच्चों को प्रकृति से जो भी गुण मिले हैं, उन्हें मुखरित करना, उनके नैतिक गुणों को पहचानना और संवारना, उन्हें सच्चे, ईमानदार और उच्च कम्युनिस्ट आदर्शों के प्रति निष्ठावान व्यक्ति, सच्चा मानव और नागरिक बनाना—इसे ही सुख़ोम्लीन्स्की अपना ध्येय समझते थे।

जीवन के अंतिम बीस वर्षों में सुख़ोम्लीन्स्की अपने प्रेक्षणों और विचारों को डायरी में नोट करते रहे। इस तरह वह बाल-शिक्षा पर कुछ पुस्तकें और कई लेख लिख पाए। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं: 'बाल-हृदय की गहराइयां', 'नागरिक का जन्म', 'पाव्लिश, माध्यमिक विद्यालय', 'समुदाय की विवेकपूर्ण सत्ता'। इन सब पुस्तकों में विलक्षण शिक्षक का समृद्ध अनुभव प्रतिबिंबित हुआ है। स्वयं सुख़ोम्लीन्स्की अपने को मकारेन्को का शिष्य मानते थे।

अन्तोन सेम्योनोविच मकारेन्को (१८८८–१९३९) ने बाल-शिक्षा का अभूतपूर्व अनुभव पेश किया था। तीसरा दशक नवोदित सोवियत देश के लिए बहुत कठिन समय था। गृहयुद्ध की विभीषिकाओं और आर्थिक बरबादी के दौर से गुज़रे देश में अनेक बच्चे बेघरबार, अनाथ हो गए थे। सोवियत राज्य ने इन बच्चों को नवजीवन प्रदान करने का संकल्प किया। अन्तोन मकारेन्को ऐसे बच्चों के लिए ही खोले गए एक श्रम विद्यालय के प्रिंसिपल बने। इन क़िस्मत के मारे और साथ ही बिगाड़े बच्चों के जीवन को कैसे एक नई दिशा प्रदान की जाए? मकारेन्को के मन में मनुष्य के प्रति असीम विश्वास और सम्मान की भावना थी, और इसी के बल पर वह अपने असंभव-से लगनेवाले काम में सफल हुए। उन्होंने यह निश्चय किया कि क़िस्मत ने इन बच्चों से जो छीन लिया है वही, अर्थात परिवार का स्नेह और सौहार्द भरा वातावरण इन्हें लौटाया जाना चाहिए। बाल-समुदाय ही मकारेन्को के छात्रों के लिए ऐसा परिवार

बना। सुख़ोम्लीन्स्की मकारेन्को के कार्य में सबसे महत्वपूर्ण यह बात मानते थे कि उनमें "अथाह मानवीयता" थी तथा वह "उदात्त मानवीय आकांक्षाओं के आकर्षण से ओत-प्रोत थे"।

सुख़ोम्लीन्स्की ने अपने शिक्षण-कार्य में मकारेन्को द्वारा निरूपित नियम का अनुसरण किया। इसका सार यह है कि शिक्षा एवं चरित्र-निर्माण के साधनों में से प्रत्येक को यदि एक दूसरे से अलग प्रयुक्त किया जाता है तो इसका परिणाम सकारात्मक भी हो सकता है और नकारात्मक भी। इस कार्य में साधनों की सारी सुव्यवस्थित, समन्वित प्रणाली ही कारगर सिद्ध होती है।

मकारेन्को जिस बात को सबसे महत्वपूर्ण मानते थे, वही – छात्रों और शिक्षकों के हृदयों का मिलन, सद्भावना और विश्वास का वातावरण – सुख़ोम्लीन्स्की के विद्यालय में भी वास्तविकता बनी। दोनों शिक्षक यह मानते थे कि छात्रों का चरित्र-निर्माण करने का अर्थ है उन्हें सबसे पहले संसार को एक नागरिक की दृष्टि से देखना सिखाना तथा मातृभूमि की और लोगों की सेवा में ही मानव-सौंदर्य को समझना सिखाना। युवाजन को जीना सिखाने का मतलब उन्हें भलाई और बुराई में भेद करना भर सिखाना ही नहीं है, बल्कि उन्हें सामाजिक बुराई के प्रति, अन्याय के प्रति असहनशील होना, उससे सक्रिय संघर्ष करना भी सिखाना चाहिए।

* * *

५२ वर्ष की आयु में ही वसीली सुख़ोम्लीन्स्की का देहांत हो गया। यह युद्ध की ही प्रतिध्वनि थी।

फ़ासिस्ट जर्मनी के साथ सोवियत संघ के महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध (१६४१–१६४५) के पहले दिनों में ही प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापक २३ वर्षीय सुख़ोम्लीन्स्की मोर्चे पर लड़ने चले गए। दुश्मन के क़ब्ज़े में आ गए इलाक़े में पाव्लिश गांव में उनकी पत्नी वेरा रह गई। वह दुश्मन से लड़ने में छापामारों की मदद करती थीं। एक दिन गेस्टापो के दरिंदों ने उन्हें धर पकड़ा। फ़ासिस्ट क़ैद में ही उनके बेटा हुआ। फ़ासिस्ट दरिंदे बड़ी देर तक इस साहसी स्त्री को अमानवीय यातनाएं पहुंचाते रहे, ताकि वह छापामार दस्ते के मुखियों के नाम बता दे, लेकिन वेरा चुप रहीं। तब जल्लादों ने मां की आंखों के सामने उसके कुछ दिन के बच्चे को मार डाला और फिर वेरा की भी जान ले ली... वसीली सुख़ोम्लीन्स्की उन

दिनों मास्को के पास दुश्मन से लोहा ले रहे थे। लड़ाई में बुरी तरह घायल होने पर उन्हें सेना से लौटना पड़ा। उनकी छाती में मृत्युवाही धातु के टुकड़े धंस गए थे और हृदय में परिवार की त्रासदी का गहरा शोक बस गया था।

जर्मन फ़ासिस्टों की पराजय के दिन से लेकर अपने जीवन के अंतिम दिन – २ सितंबर, १९७० – तक वसीली अलेक्सान्द्रोविच सुखोम्लीन्स्की बच्चों के लिए ही जिए।

समय बीत रहा था, देश युद्ध के जख़्मों को भर रहा था। नई पीढ़ियों का जन्म हुआ, जिन्होंने बीते युद्ध के बारे में केवल इतिहास की पुस्तकों से ही जाना। तब पाव्लिश गांव के बच्चों को यह नहीं पता था कि उन्हें जो व्यक्ति पढ़ाता है, जो उन्हें जंगलों-मैदानों में घुमाने ले जाता है, उसकी छाती में युद्ध ने कभी न भरनेवाला घाव छोड़ा है।

चिकित्सक इस विलक्षण व्यक्ति की सहायता करने में असमर्थ रहे। अपने पद पर ही, शैक्षिक वर्ष के बिल्कुल आरंभ में ही, बच्चों की नई पीढ़ी के सम्मुख स्कूल के द्वार खोलकर उन्होंने प्राण त्यागे।

पाव्लिश माध्यमिक विद्यालय में सुखोम्लीन्स्की की सभी परंपराओं को बड़े यत्न से बनाए रखा गया है। स्कूल के नए प्रिंसिपल निकोलाई इवानोविच कोदाक अपने को सुखोम्लीन्स्की का ही अनुयायी मानते हैं।

समय बीतने के साथ-साथ न केवल सोवियत संघ में, बल्कि संसार के दूसरे देशों में भी अधिकाधिक माता-पिता तथा अध्यापकों का ध्यान सुखोम्लीन्स्की के अनुभव, उनकी शैक्षिक धरोहर की ओर आकर्षित हो रहा है।

ग्रामुख

माननीय पाठको ग्रौर मेरे सहयोगियो!

तैंतीस साल तक मैंने ग्रामीण स्कूल में काम किया। इसे मैं ग्रपना परम सौभाग्य मानता हूं। इन वर्षों में मैंने बहुत कुछ देखा, सोचा-विचारा, जाना-समझा, कई बातों को लेकर मेरा मन चिंतित, व्यथित, उद्वेलित हुग्रा। इन्हीं ग्रनुभवों, इसी चिंतन ग्रौर मनन का परिणाम है प्रस्तुत पुस्तक।

बहुत सोच-विचार के बाद मैंने पुस्तक का नाम रखा: 'बाल-हृदय की गहराइयां'। मेरा सारा जीवन बच्चों के शिक्षण में ही लगा है, इसलिए सोचता हूं कि मुझे पुस्तक का यह नाम रखने का ग्रधिकार है। मैं ग्रध्यापकों को, उनको भी जो ग्राजकल पढ़ा रहे हैं ग्रौर उनको भी जो हमारे बाद स्कूल में ग्राएंगे—जीवन के एक लंबे चरण के बारे में बताना चाहता हूं। यह चरण एक पूरे दशक के बराबर है। उस दिन से लेकर, जब नन्हे-नासमझ बच्चे स्कूल में ग्राते हैं, उस हर्षमय क्षण तक, जब युवक-युवतियों को माध्यमिक शिक्षा पूरी करने का प्रमाणपत्र मिलता है ग्रौर वे ग्रपने-ग्रपने जीवन-पथ पर पदार्पण करते हैं। यह वह काल है, जिसके दौरान नादान बच्चा इन्सान बनता है, उसके व्यक्तित्व का, व्यापकतम ग्रर्थों में उसके चरित्र का निर्माण होता है। शिक्षक के लिए यह उसके जीवन का एक बहुत बड़ा चरण होता है। ग्रगर मुझसे कोई पूछे कि मेरे जीवन में सबसे महत्वपूर्ण क्या रहा है? तो बिना सोचे ही उत्तर दूंगा: **बच्चों से प्रेम।**

माननीय पाठक पुस्तक की किन्हीं बातों से शायद ग्रसहमत हों, हो सकता है उन्हें कोई बात ग्रजीब लगे। मेरा ग्राप से एक ग्रनुरोध है: इस पुस्तक को बच्चों, किशोरों, युवक-युवतियों के शिक्षण का गुटका न समझें। शिक्षाशास्त्र के ग्रनुसार इस पुस्तक का विषय है: ग्रध्यापक का छात्रों के साथ पाठों के ग्रलावा कार्य। यहां बच्चों को विभिन्न विषयों की बुनियादी शिक्षा देने की प्रक्रिया के ग्रलग-ग्रलग पहलुग्रों ग्रौर ब्योरों पर ग़ौर करना मेरा उद्देश्य नहीं था। मैंने तो यह बताने का यत्न किया है कि नन्हे इन्सान को ग्रपने चारों ग्रोर की दुनिया को जानना-समझना कैसे सिखाया

जाए, कैसे शिक्षा पाने में उसकी सहायता की जाए, उसके दिमाग़ी काम को आसान बनाया जाए, कैसे उसके मन में श्रेष्ठ भावनाएं और अनुभूतियां जगाई और पोषित की जाएं, कैसे उसमें मानव-गरिमा की चेतना, इन्सान की नेकी में विश्वास और मातृभूमि से असीम प्रेम की भावनाएं विकसित की जाएं, कैसे बच्चे की सूक्ष्म बुद्धि और संवेदनशील हृदय में उदात्त कम्युनिस्ट आदर्शों के प्रति आस्था और निष्ठा के पहले बीज बोए जाएं। यही वह कार्य है, जो एक अध्यापक छात्रों को अपने विषय का ज्ञान देने के साथ-साथ उनके चरित्र-निर्माण के लिए करता है।

यह पुस्तक, जो इस वक़्त आपके हाथों में है, प्राथमिक कक्षाओं में मेरे काम के बारे में है। दूसरे शब्दों में यह बचपन की दुनिया को समर्पित है। बचपन, बाल-जगत एक विशिष्ट संसार है। भलाई और बुराई, मान-अपमान और मानव-गरिमा के बारे में बच्चों के अपने ही विचार होते हैं, सुंदरता की उनकी अपनी कसौटी होती है, यहां तक कि समय की माप भी उनकी अलग होती है: बचपन में दिन साल जितना लगता है और साल अनंत काल लगता है। **बचपन** नाम के जादुई महल के द्वार मेरे लिए खुले थे। लेकिन मैं भली-भांति समझता था कि इस महल में प्रवेश करने के लिए मुझे भी कुछ हद तक बच्चा बनना चाहिए। तभी बच्चे तुम्हें ऐसे नहीं देखेंगे, मानो तुम उनकी जादुई दुनिया में भूले-भटके घुस आये हो, या तुम इस महल के पहरेदार हो, जिसे इस बात से कोई वास्ता नहीं कि महल के अंदर क्या हो रहा है।

यहां एक बात और स्पष्ट कर देना चाहता हूं। प्राथमिक कक्षाओं में सबसे पहले एक अकेले शिक्षक का ही सृजनात्मक श्रम महत्व रखता है। इसीलिए मैंने पूरे शिक्षक-समुदाय के और माता-पिता के कार्यों का उल्लेख नहीं किया। अगर मैं पुस्तक में इस सब के बारे में बताने लगता, तो वह बेहद बड़ी हो जाती।

बच्चों के बारे में यह न बताना तो असंभव ही है कि वे किस परिवार से आए हैं, उनके माता-पिता कौन हैं। अगर मैं बच्चों के पारिवारिक वातावरण की पूरी-पूरी और सच्ची तस्वीर न खींचता, तो बच्चों के चरित्र-निर्माण के लिए मैंने जो कार्य-प्रणाली अपनाई, उसकी दिशा, उसका लक्ष्य पाठकों के लिए स्पष्ट न होते। मुझे चरित्र-निर्माण के इस कार्य की प्रबल शक्ति में दृढ़ विश्वास है। नदेज्दा क्रूप्स्काया, अन्तोन मकारेन्को और दूसरे महान शिक्षकों ने भी हमें इस शक्ति में विश्वास रखना सिखाया है।

"ख़ुशियों का स्कूल"

प्रिंसिपल

दस साल के अध्यापन कार्य के बाद मुझे पाव्लिश माध्यमिक स्कूल का प्रिंसिपल नियुक्त किया गया। अध्यापन के पहले दस वर्षों के दौरान शिक्षण के मामले में मेरे जो विचार, जो धारणाएं बनी थीं, उन्होंने यहां अंतिम रूप लिया। यहां मैं अपनी धारणाओं को साकार होते देखना चाहता था।

अपनी धारणाओं को व्यावहारिक रूप देने की मैंने जितनी अधिक कोशिश की, उतना ही मेरे लिए यह स्पष्ट होता गया कि शिक्षण कार्य का सही संचालन तभी हो सकता है, जबकि प्रिंसिपल सारे स्कूल के विचारधारात्मक और संगठनात्मक कार्यभारों को निभाने के साथ-साथ अपने कार्य का उचित उदाहरण भी पेश करे। जब शिक्षक प्रिंसिपल के कार्य में शिक्षण कला का श्रेष्ठ उदाहरण देखते हैं, प्रिंसिपल को बच्चों के शिक्षक के रूप में देखते हैं, तो उनकी नज़रों में शिक्षक-समुदाय के संगठनकर्त्ता के रूप में प्रिंसिपल की भूमिका बहुत ऊंची हो जाती है।

छात्रों के शिक्षण के लिए, उनके चरित्र-निर्माण के लिए, सबसे पहले यह आवश्यक है कि शिक्षक और छात्र के बीच निरंतर आत्मिक संपर्क हो। महान रूसी शिक्षक उशीन्स्की (१८२४–१८७०)* ने प्रिंसिपल को स्कूल का प्रधान चरित्र-निर्माता कहा था। परंतु किन परिस्थितियों में वह प्रधान चरित्र-निर्माता बनता है?

शिक्षकों के ज़रिए बच्चों का चरित्र-निर्माण करना, शिक्षकों का शिक्षक होना, उन्हें चरित्र-निर्माण की, शिक्षण की कला और विद्या सिखाना–यह स्कूल के संचालन की बहुमुखी प्रक्रिया का बहुत महत्वपूर्ण, परंतु केवल

---

*प्रगति प्रकाशन ने उशीन्स्की की निम्न पुस्तकें अंग्रेज़ी में प्रकाशित की हैं: Ushinski K. D. *Selected Works*. 1975 and *Man As the Object of Education*. 1978. –सं०

एक ही पहलू है। अगर प्रधान चरित्र-निर्माता केवल शिक्षकों को काम करने की शिक्षा देता है और खुद बच्चों के साथ संपर्क नहीं रखता, तो वह एक शिक्षक, एक चरित्र-निर्माता नहीं रहता।

प्रिंसिपल बनने के पहले दिनों से ही मैं यह देखने और समझने लगा था कि अगर मैं बच्चों की रुचियों, उनके शौक़ों और उनकी आकांक्षाओं को नहीं बांटूंगा, तो उनके दिलों का रास्ता मेरे लिए सदा बंद रहेगा। एक शिक्षक के नाते अगर बच्चों पर मेरा सीधा प्रभाव नहीं होगा, तो मैं एक शिक्षक और चरित्र-निर्माता का सबसे महत्वपूर्ण गुण – बच्चों के आत्मिक जगत को समझने की क्षमता – खो बैठूंगा। मुझे क्लास टीचरों से ईर्ष्या होती थी : वे सदा बच्चों के साथ होते हैं। वे बच्चों के साथ घुल-मिलकर बातें करते हैं, उन्हें जंगल में, नदी किनारे या खेत में काम करने ले जाते हैं। बच्चे बड़ी अधीरता से उन दिनों का इंतज़ार करते हैं, जब वे सैर करने कहीं जाएंगे, खेत में खाना बनाएंगे, मछली पकड़ेंगे, खुले आकाश तले रात बिताएंगे, तारों की झिलमिल देखेंगे। प्रिंसिपल इस सब से अलग रहता है। उसे बस संगठन कार्य करना पड़ता है। सलाह-मशविरा देना, कमियां देखना और उन्हें दूर करना, अच्छी बातों को प्रोत्साहन देना और अवांछित बातें न होने देना – बस यही उसका काम रह जाता है। बेशक, इसके बिना भी नहीं रहा जा सकता, लेकिन मुझे सिर्फ़ इतने से क़तई संतोष न होता था।

मैं कई बहुत अच्छे प्रिंसिपलों को जानता हूं, जो शिक्षण कार्य में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। उनका शिक्षण कौशल सचमुच अद्वितीय है। उनके पाठ शिक्षकों के लिए श्रेष्ठतम उदाहरण होते हैं। वे पायोनियर और कोम्सोमोल संगठनों की गतिविधियों में हिस्सा लेते हैं। शिक्षक, क्लास टीचर या पायोनियर लीडर सभी उनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं। लेकिन मुझे लगता था, और मेरा यह विश्वास अब और भी गहरा हो गया है कि शिक्षण कौशल के उच्चतम स्तर पर तभी पहुंचा जा सकता है, जबकि प्रिंसिपल किसी एक कक्षा के जीवन में स्वयं लंबे अरसे तक भाग ले। मैं बच्चों के साथ रहना चाहता था, उनके दुख-सुख बांटना चाहता था। मैं यह महसूस करना चाहता था कि बच्चे मेरे नज़दीकी हैं, क्योंकि यही शिक्षक को अपने सृजनात्मक श्रम से मिलनेवाली सबसे बड़ी ख़ुशी है। समय-समय पर मैं किसी कक्षा के जीवन में भाग लेने की चेष्टा करता था : बच्चों के साथ खेत में काम करने जाता या अपने इलाक़े की सैर पर जाता, उनके साथ

संग्रहालय आदि देखने जाता, उनके जीवन में ख़ुशियों के वे अद्वितीय क्षण लाने का यत्न करता, जिनके बिना सच्ची शिक्षा अधूरी ही रहती है।

परंतु मुझे भी और बच्चों को भी ये संबंध कुछ कृत्रिम-से लगते थे। मुझे यह बात परेशान करती रहती थी कि बच्चे यह नहीं भूलते कि मैं उनके साथ थोड़ी देर ही रहूंगा। सच्चा आत्मिक मिलन तो तभी होता है, जब शिक्षक लंबे अरसे के लिए बच्चों के काम में, उनके विचारों में उनका साथी, उनका मित्र बन जाता है। मैं यह महसूस करता था कि मुझे बच्चों के साथ यह आत्मिक मिलन केवल सृजनात्मक श्रम की ख़ुशी पाने के लिए ही नहीं, बल्कि इसलिए भी चाहिए, ताकि मैं अपने सहयोगियों को शिक्षण की, बच्चों के चरित्र-निर्माण की विद्या और कला सिखा सकूं। बच्चों के साथ आये दिन का सीधा, सजीव संपर्क अध्यापक के लिए विचारों, शिक्षण संबंधी खोजों, ख़ुशियों, दुखों, निराशाओं का स्रोत है, जिनके बिना उसके काम में कोई सृजन नहीं हो सकता। मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि प्रधान चरित्र-निर्माता को एक छोटे से बाल-समुदाय का शिक्षक होना चाहिए, उसे बच्चों का मित्र और साथी होना चाहिए। मेरा यह विश्वास उन धारणाओं पर आधारित था, जो पाव्लिश स्कूल में मेरी नियुक्ति होने से पहले ही बन चुकी थीं।

अध्यापन कार्य के पहले वर्षों में ही मेरे लिए यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया कि सच्चा स्कूल केवल ऐसा स्थान नहीं है, जहां बच्चे किन्हीं विषयों का ज्ञान पाते हैं, कुछ करना सीखते हैं। किन्हीं विषयों की ज्ञान प्राप्ति बच्चों के आत्मिक जीवन का एक बहुत महत्वपूर्ण क्षेत्र है, परंतु सारा आत्मिक जीवन इस तक ही सीमित नहीं है। जिसे हम लोग शिक्षण एवं चरित्र-निर्माण प्रक्रिया कहते हैं, उसको मैंने जितने ग़ौर से देखा, उतना ही अधिक मैं इस बात का क़ायल होता गया कि सच्चा स्कूल वही है, जहां बाल-समुदाय का बहुमुखी आत्मिक जीवन होता है, जिसमें शिक्षक और छात्र अनेकानेक रुचियों और शौकों द्वारा एक दूसरे से जुड़े होते हैं। वह व्यक्ति, जो छात्रों से केवल क्लास में मिलता है – मेज़ के एक तरफ़ शिक्षक और दूसरी ओर छात्र – वह बाल-हृदय की गहराइयों को नहीं जानता और जो बच्चों को नहीं जानता, वह उनका चरित्र-निर्माता नहीं हो सकता। ऐसे व्यक्ति के लिए बच्चों के विचार और भावनाएं, उनकी आकांक्षाएं सात तालों में बंद होती हैं। कई बार मास्टर की मेज़ वह परकोटा बन जाती है, जिसके पीछे से वह अपने "दुश्मन", यानी छात्रों पर "हमला"

करता है; लेकिन ज़्यादातर मामलों में यह मेज़ घिरे हुए क़िले के समान हो जाती है, जिसे "दुश्मन" थका-थकाकर जीत लेता है, और क़िले में घिरा "सेनापति" अपने को बिल्कुल असहाय महसूस करता है।

यह देखकर बड़ा दुख होता है कि कैसे अपने विषय का बहुत अच्छा ज्ञान रखनेवाले शिक्षकों के लिए भी शिक्षण कार्य घमासान युद्ध में बदल जाता है। और इसका कारण सिर्फ़ यह होता है कि ऐसे कोई तार नहीं होते जो शिक्षक के मन को छात्र के मन से जोड़ते हों और छात्र का मन बंद पिटारी सा होता है। कुछ स्कूलों में छात्रों और अध्यापकों के बीच जो भोंडे और सर्वथा अमान्य संबंध होते हैं उनका सबसे बड़ा कारण होता है एक दूसरे पर विश्वास न होना, एक दूसरे को शक़ की नज़रों से देखना। कभी-कभी शिक्षक बाल-हृदय की गहराइयों में होनेवाली हलचल को नहीं देखता है, वह बच्चों के दुख-सुख में शरीक़ नहीं होता, अपने आपको बच्चों के स्थान पर रखकर देखने की कोशिश नहीं करता।

महान पोलिश शिक्षाशास्त्री यानुश कोर्चाक (१८७८–१९४२) अपने एक पत्र में लिखते हैं कि बालक के अंतःकरण के स्तर तक ऊंचा उठना चाहिए, न कि उसे कृपा-दृष्टि से देखना चाहिए। यह बड़ा सूक्ष्म विचार है, जिसे हम शिक्षकों को बड़ी गहराई से समझना चाहिए। सच्चा शिक्षक बच्चे को किन्हीं अलौकिक गुणों की खान या कोई आदर्श नहीं समझता, परंतु साथ ही वह इस बात को भी नज़रंदाज़ नहीं कर सकता कि बच्चे जिन नज़रों से दुनिया को देखते हैं, अपने चारों ओर के प्रति उनकी जो भावनात्मक और नैतिक प्रतिक्रिया होती है, उसमें एक विशिष्टता, स्पष्टता, बालसुलभ सरलता, निष्कपटता और एक ख़ास ही बारीक़ी होती है। यानुश कोर्चाक के इस आह्वान का कि हमें बच्चों के अंतःकरण के स्तर तक ऊंचा उठना चाहिए, अर्थ यही है कि बच्चे जिस प्रकार इस संसार को अपने मनोमस्तिष्क से जानते-समझते हैं, उनका जो बालसुलभ विश्व-बोध है, उसे शिक्षक को बड़ी बारीक़ी से समझना और अनुभव करना चाहिए।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मानव आत्मा के कुछ ऐसे गुण हैं, जिनके बिना कोई भी व्यक्ति सच्चा शिक्षक नहीं हो सकता, सही माने में चरित्र-निर्माता नहीं हो सकता। और इन गुणों में सबसे पहला है – बच्चे के अंतःकरण में, उसके आंतरिक जगत में, उसके मन की दुनिया में पैठने की क्षमता। वही आदमी सच्चा शिक्षक बन पाएगा, जो कभी यह नहीं भूलता कि वह ख़ुद भी बच्चा था। बहुत से अध्यापकों के साथ (बच्चे

ग्रौर ख़ास तौर पर किशोर उन्हें खूसट कहते हैं) मुसीबत यह होती है कि वे भूल जाते हैं कि छात्र एक जीता-जागता इन्सान है, जो ज्ञान-बोध के, सृजन ग्रौर मानवीय संबंधों के जगत में पदार्पण कर रहा है।

शिक्षा के, चरित्र-निर्माण के मामले में कोई जुदा-जुदा बातें नहीं होतीं, जिनका कि इन्सान पर ग्रलग-ग्रलग प्रभाव पड़े। स्कूल में पाठ छात्रों द्वारा संसार को जानने-समझने, उसका बोध पाने का एक सबसे महत्वपूर्ण रूप हैं। बच्चे किस प्रकार संसार का बोध पाते हैं, उनकी क्या ग्रास्थाएं बनती हैं, इसी बात पर यह निर्भर होता है कि उनका मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, भावनात्मक, दूसरे शब्दों में, उनका ग्रांतरिक, ग्रात्मिक जीवन कैसा होगा। लेकिन संसार का बोध किन्हीं निश्चित विषयों का ज्ञान पाने तक ही सीमित नहीं है। बहुत से ग्रध्यापक इसीलिए मुश्किल में पड़ते हैं कि वे बच्चे के ग्रांतरिक जगत को ग्रंकों की कसौटी पर परखते हैं, कि वे बच्चों को इस लिहाज़ से दो हिस्सों में बांटते हैं कि वे पाठ सीखते हैं या नहीं।

परंतु ग्रगर बहुमुखी ग्रात्मिक जीवन को यों एकतरफ़ा समझनेवाले ग्रध्यापक की स्थिति इतनी ग्रशोभनीय है, तो उस प्रिंसिपल की क्या कही जाए, जो केवल ग्रध्यापकों के काम पर नियंत्रण रखने, ठीक समय पर "ग्राम निर्देश" देने ग्रौर किसी बात की ग्रनुमति देने या न देने को ही ग्रपना सारा काम समझता है। उसकी स्थिति तो ग्रौर भी ग्रधिक ग्रशोभनीय है। मुझे ऐसी भूमिका बड़ी ग्रटपटी लगती थी। कई बार मैं छात्रों के पास जाता, तो वे ग्रपने शिक्षक के साथ किसी काम में मग्न होते। मुझे एक ठेस-सी पहुंचती : मैं उन्हें बुलाता हूं, पर वे मानो मुझे देखते ही नहीं, वे ग्रपने शिक्षक के साथ ग्रपने समृद्ध ग्रात्मिक जीवन में खोए हुए हैं, उनके ग्रपने छोटे-छोटे राज़ हैं। क्या ऐसे स्कूल प्रिंसिपल की कोई ज़रूरत है? कोई नहीं। ग्रब वे दिन बीत गए, जब, जैसा कि १९१७ की समाजवादी क्रांति से पहले के स्कूलों में होता था, प्रिंसिपल दरग्रसल मास्टरों का इंस्पेक्टर मात्र होता था। वह सिर्फ़ एक प्रशासकीय कर्मचारी सा होता था, जिसका काम यह देखना था कि मास्टर ग्रपना विषय ठीक पढ़ाते हैं या नहीं, कि मास्टर ने कोई ग़लत या फ़ालतू बात तो नहीं कह दी। स्कूल के संचालन की ऐसी विधियां ग्रौर रूप ग्रब एकदम पुराने पड़ चुके हैं।

ग्राधुनिक स्कूल के संचालन का सार यह है कि शिक्षाशास्त्र के नए-

नए प्रगतिशील विचारों को मूर्तित करते हुए शिक्षण कार्य के श्रेष्ठ रूप और विधियां खोजी जाएं, फिर उन्हें परखा जाए, परिपक्व किया जाए और उनकी पुष्टि की जाए। जो शिक्षक अन्य सभी शिक्षकों के सामने यह श्रेष्ठ उदाहरण पेश करता है, जो अध्यापन और चरित्र-निर्माण के कठिनतम कार्य के लिए इस आदर्श नमूने की सृष्टि करता है, उसे ही स्कूल का प्रिंसिपल होना चाहिए। हमारे ज़माने में ऐसे प्रिंसिपल के बिना, सर्वश्रेष्ठ शिक्षक के बिना स्कूल की कल्पना भी नहीं की जा सकती। शिक्षा का अर्थ सर्वप्रथम मानव-विज्ञान ही है। बच्चे के बौद्धिक विकास, उसके सोचने के ढंग, उसकी रुचियों, शौक़ों और रुझानों को, उसकी क्षमताओं और प्रवृत्तियों को जाने-समझे बिना कोई शिक्षण कार्य, कोई चरित्र-निर्माण नहीं हो सकता। जिस प्रकार अपने मरीज़ों के बिना कोई डाक्टर अस्पताल का चीफ़ डाक्टर नहीं हो सकता, ठीक उसी तरह अगर प्रिंसिपल के अपने छात्र नहीं हैं, तो वह शिक्षकों का पथप्रदर्शन नहीं कर सकता। अपने छात्रों से मतलब यह है कि वह स्कूल में उनके पहले दिन से लेकर स्कूल की शिक्षा पूरी करने तक उनके साथ एक-एक करके ज्ञान की सीढ़ियों पर चढ़ता है, वह स्वयं उनके बौद्धिक, नैतिक, सौंदर्यबोधात्मक, भावनात्मक और शारीरिक विकास का ध्यान रखता है, उनकी रुचियां, उनके शौक़ उसके अपने होते हैं और वह अपने आत्मिक गुणों की संपदा बच्चों को सौंपता है।

स्कूल का केंद्रीय व्यक्ति कौन होता है? चरित्र-निर्माण की प्रक्रिया के किन क्षेत्रों में प्रिंसिपल को ऐसा आदर्श उदाहरण होना चाहिए, जिसका अनुसरण दूसरे शिक्षक भी करें? स्कूल का प्रमुख व्यक्ति है प्राथमिक बाल-समुदाय–अर्थात कक्षा–का शिक्षक। वह छात्रों को ज्ञान देनेवाला अध्यापक भी होता है और बच्चों का मित्र भी और वही उनके बहुमुखी आत्मिक जीवन को सजोता-संवारता भी है। शिक्षा या पढ़ाई तो उस फूल की बस एक पंखुड़ी ही है, जिसे हम व्यापक अर्थ में चरित्र-निर्माण कहते हैं। चरित्र-निर्माण के कार्य में कोई छोटी और कोई बड़ी, कोई प्रमुख और कोई गौण बात नहीं होती, ठीक वैसे ही जैसे फूल की ख़ूबसूरती सभी पंखुड़ियों से मिलकर बनती है, उनमें कोई भी पंखुड़ी प्रमुख नहीं होती। चरित्र-निर्माण के कार्य में सभी कुछ प्रमुख है–पाठ भी और बच्चों की विविध पाठ्येतर रुचियों का विकास भी, तथा बाल-समुदाय में बच्चों के परस्पर संबंध भी।

छह साल तक प्रिंसिपल के रूप में काम कर चुकने के पश्चात मैं एक कक्षा का शिक्षक बना। यहां एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूं: प्रिंसिपल और छात्रों के बीच आत्मिक स्तर पर संपर्क स्थापित करने का यही एकमात्र रास्ता नहीं है। हां, अपने स्कूल की परिस्थितियों को देखते हुए मुझे यही मार्ग सर्वाधिक उपयुक्त लगा था। बाल-समुदाय के चरित्र-निर्माता के रूप में कार्य को मैं नैसर्गिक परिस्थितियों में किया जानेवाला एक काफ़ी लंबा, दीर्घकालीन प्रयोग समझता हूं।

अगले कई बरसों में क्या और कैसे किया गया, यह बताने से पहले मैं एक बहुत महत्वपूर्ण बात स्पष्ट करना चाहता हूं, जिससे बहुत हद तक मेरे व्यावहारिक कार्य का अंतर्य और दिशा निर्धारित हुई थी। मानव व्यक्तित्व के गठन में, उसके चरित्र के निर्माण में बचपन के और स्कूल के पहले वर्ष असाधारण महत्व रखते हैं। महान लेखक और शिक्षक लेव तोलस्तोय का यह कहना सोलह आने सच है कि जन्म से लेकर पांच वर्ष की आयु तक बच्चा अपनी बुद्धि, अपनी भावनाओं, इच्छाबल और अपने चरित्र के लिए अपने चारों ओर की दुनिया से जितना कुछ ग्रहण करता है, उतना पांच वर्ष से लेकर अपने जीवन के अंत तक नहीं करता। सोवियत शिक्षाशास्त्री अन्तोन मकारेन्को ने भी यही विचार दोहराया है: इन्सान वैसा ही बनेगा, जैसा कि वह पांच साल की उम्र तक बन गया है।

अनुपम नैतिक सौंदर्य के स्वामी यानुश कोर्चाक ने अपनी पुस्तक 'जब मैं फिर छोटा हो जाऊंगा' में लिखा है: कोई नहीं जानता कि बच्चा कब अधिक ज्ञान पाता है, जब ब्लैक-बोर्ड की ओर देख रहा होता है, या तब, जब एक अदम्य शक्ति (यथा सूरजमुखी को घुमानेवाली सूर्य की शक्ति) उसे खिड़की के बाहर देखने को विवश करती है। ऐसे क्षण में उसके लिए क्या अधिक महत्वपूर्ण, अधिक लाभदायक है – ब्लैक-बोर्ड के चौखटे में जड़ा तार्किक जगत या खिड़की के बाहर फैली दुनिया? बच्चे की आत्मा के साथ ज़बरदस्ती मत कीजिए, प्रत्येक बालक के नैसर्गिक विकास के नियमों को ध्यान से देखिए, यह समझने की कोशिश कीजिए कि बच्चे की अपनी क्या ख़ासियत है, किन बातों में उसका मन है और इसे देखते हुए उसे क्या चाहिए।

पोलिश भाषा में छपी मटमैले आवरणवाली छोटी-सी पुस्तिका में पढ़े ये शब्द मुझे सदा के लिए याद हो गए। और जब विश्वयुद्ध की समाप्ति के कुछ ही समय पश्चात मैंने यानुश कोर्चाक के पराक्रम की कहानी सुनी,

तो उनके शब्द मेरे जीवन के नीति-वचन बन गए। यानुश कोर्चाक वारसा की यहूदी बस्ती के अनाथालय में बच्चों का पालन और शिक्षण करते थे। हिटलरी दरिंदों ने इन अभागे बच्चों को त्रेब्लीन्का मृत्यु-शिविर की भट्ठियों में झोंकने का फ़ैसला किया। जब यानुश कोर्चाक से यह पूछा गया कि वह क्या चुनेंगे: बच्चों के बिना ज़िंदगी या बच्चों के साथ मौत, तो उन्होंने बिना किसी दुविधा और असमंजस के तुरंत बच्चों के साथ मृत्यु को ही चुना। "हम जानते हैं कि आप एक अच्छे डाक्टर हैं, आपके लिए त्रेब्लीन्का जाना जरूरी नहीं है," गेस्टापो के एक अफ़सर ने उनसे कहा। "मैं अपने ईमान का सौदा नहीं करता," यानुश कोर्चाक का जवाब था। इस वीर ने बच्चों के साथ मृत्यु का आलिंगन किया, अंतिम क्षण तक वह यही कोशिश करते रहे कि बच्चे घबरा न जाएं, उनका धीरज बना रहे, कि उनके नन्हे बाल-हृदयों में मौत के इंतज़ार का काला डर न समा जाए। यानुश कोर्चाक का जीवन और उनका यह पराक्रम, जिसमें उनका असाधारण नैतिक बल और हृदय की विलक्षण शुद्धता प्रकट हुई, मेरे लिए अत्यंत प्रेरणादायक थे। मैं समझ गया: सच्चे अर्थों में बच्चों का शिक्षक, उनका चरित्र-निर्माता बनने के लिए अपना तन-मन उन्हें अर्पित कर देना चाहिए।

उशीन्स्की ने कहा था कि कई बार हमें इस बात का अहसास तक नहीं होता कि हमें अपने साथ रह रहे व्यक्ति से कितना गहरा अनुराग है, जब तक कि कोई दुर्घटना हमें इस अनुरक्ति की सारी शक्ति नहीं दिखा देती। इन्सान का सारा जीवन बीत जाने पर भी उसे इस बात का पता नहीं लग सकता कि वह अपनी मातृभूमि से कितना प्रेम करता था, बशर्ते कोई घटना, जैसे कि लंबे अरसे तक देश से दूर होना, उसके सामने इस प्रेम की गहराई को उघाड़ नहीं देती। हर बार; जब काफ़ी देर तक मैं बच्चों से नहीं मिल पाता, उनके सुख-दुख में नहीं जी पाता, तो मुझे ये शब्द याद हो आते हैं। वर्ष प्रति वर्ष मेरा यह विश्वास दृढ़ से दृढ़तर होता गया कि सच्चा शिक्षक बनने के लिए मनुष्य का जो मानसिक, बौद्धिक, नैतिक या एक ही शब्द में कहें तो आत्मिक स्तर होना चाहिए, उसकी जो शिक्षण संस्कृति होनी चाहिए, उसका सबसे निर्णायक लक्षण है—बच्चों से गहरा लगाव, उनसे आसक्ति। यों तो, जैसा कि नाटक कला के महान सिद्धांतकार को० स्तानिस्लाव्स्की (१८६३–१९३८) ने कहा था, इन्सान का अपनी भावनाओं पर "वश नहीं" होता, परंतु शिक्षक के लिए

अपनी भावनाओं को विकसित करना, उन्हें घड़ना ही उच्च आत्मिक स्तर, उच्च शिक्षण संस्कृति है।

अध्यापक और छात्रों के बीच अगर हृदय का रिश्ता नहीं जुड़ता, स्थायी आत्मिक संपर्क नहीं बनता, अगर वे एक दूसरे के विचारों और भावनाओं की दुनिया में नहीं पैठ सकते, एक दूसरे के मन में होनेवाली हलचल को नहीं अनुभव कर सकते, तो इसके बिना वह भावनात्मकता नहीं आ सकती, जो शिक्षक के उच्च आत्मिक स्तर का अभिन्न अंग है। शिक्षक के लिए अपनी भावनाओं को साधने का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है– ऐसे मैत्रीपूर्ण बाल-समुदाय में बहुमुखी भावनात्मक संबंध, जहां वह केवल छात्रों का अध्यापक ही नहीं, बल्कि उनका मित्र और साथी भी हो। अगर शिक्षक छात्रों से केवल पाठ के समय मिलता है और केवल कक्षा में ही बच्चे अपने पर शिक्षक का प्रभाव महसूस करते हैं, तो ऐसी परिस्थिति में भावनात्मक संबंध अकल्पनीय हैं।

कहना न होगा कि "ब्लैक-बोर्ड के चौखटे में जड़े जगत" और "खिड़की के बाहर फैली दुनिया" को एक दूसरे के विरुद्ध नहीं रखा जा सकता। यह सोचना भी ग़लत होगा कि अनिवार्य शिक्षा देने का मतलब इन्सान की आत्मा के साथ ज़बरदस्ती है, कि ब्लैक-बोर्ड बाल मन को बंधनों में बांधता है और खिड़की के बाहर फैली दुनिया ही सच्ची आज़ादी है।

पाव्लिश स्कूल में काम करने आने से पहले भी मुझे कई बार यह देखने, अनुभव करने का मौक़ा मिला था कि बच्चे के जीवन में प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापक की भूमिका कितनी विशाल होती है। उसे बच्चे के लिए उसकी मां की ही तरह नज़दीकी और उतना ही प्यारा होना चाहिए। नन्हा छात्र अध्यापक में कितनी आस्था रखता है, शिक्षक और शिक्षार्थी का एक दूसरे पर कितना विश्वास है, बच्चा अपने शिक्षक में इन्सानियत का कैसा आदर्श देखता है– ये ही हैं शिक्षण के, चरित्र-निर्माण के वे बुनियादी और साथ ही सबसे जटिल नियम, जिन्हें समझ लेने, आत्मसात कर लेने पर अध्यापक वास्तव में सच्चा शिक्षक बन जाता है, ऐसा शिक्षक, जो बाल आत्मा को ढालता है। शिक्षक का एक सबसे मूल्यवान गुण है– उसकी इन्सानियत, बच्चों से उसका अगाध प्रेम, ऐसा प्रेम, जिसमें हार्दिक स्नेह के साथ-साथ माता-पिता की सख़्ती और दृढ़ता भी होती है।

बचपन मानव जीवन का अत्यंत महत्वपूर्ण चरण है। यह भावी जीवन

की तैयारी का चरण नहीं है, यह तो ऐसा अनूठा, मौलिक जीवन है, जो सारी उम्र फिर कभी नहीं आता। यह बचपन कैसे बीता, बचपन में नन्हे बच्चे ने किसकी उंगली पकड़कर जीवन में प्रवेश किया, उसके मन और मस्तिष्क ने चारों ओर की दुनिया में क्या कुछ देखा-समझा और अपनाया – इन सब बातों पर ही यह निर्भर है कि आज का बच्चा कल कैसा इन्सान बनेगा। इन बरसों में इन्सान के स्वभाव, उसके चिंतन और वाक्-शक्ति का निर्माण होता है। संभवतः, पाठ्य पुस्तक में से, कक्षा में से या किताब में से जो बातें बच्चे के मनोमस्तिष्क में बैठती हैं, वे सिर्फ़ इसीलिए बैठती हैं कि किताब के साथ बच्चे के चारों ओर का वह जगत भी जुड़ा होता है, जिसमें अपने जन्म से लेकर उस दिन तक, जब वह स्वयं किताब खोल और पढ़ सकता है, बच्चे का विकास हुआ होता है, इसी दुनिया में बच्चा अपने जीवन के पहले क़दम रखता है।

बचपन में एक लंबी प्रक्रिया आरंभ होती है। बच्चा अपने दिलोदिमाग़ से उन नैतिक मूल्यों को समझने लगता है, जो उच्च कम्युनिस्ट नैतिकता के आधार हैं: मातृभूमि से गहरा प्रेम, उसके सुख, उसकी भव्यता और शक्ति के लिए प्राण न्योछावर कर देने की तत्परता तथा मातृभूमि के शत्रुओं के प्रति अनम्यता।

तैंतीस साल तक मैंने बच्चों, किशोरों और तरुणों के तथा वयस्कों के भी शब्द भंडार का अध्ययन किया। और एक आश्चर्यजनक तसवीर मेरे सामने आई। सामूहिक फ़ार्म के एक आम किसान परिवार (पिता और माता ने माध्यमिक शिक्षा पाई है, घर में तीन-चार सौ किताबें हैं) का बच्चा जब स्कूल में पढ़ने आता है, तो उस वक़्त वह अपनी मातृभाषा के तीन–साढ़े तीन हज़ार शब्दों के अर्थ और उनकी भावनात्मक अर्थ-च्छटाएं समझता है। इनमें से एक–डेढ़ हज़ार शब्द उसके सक्रिय भंडार में होते हैं। दूसरी ओर, माध्यमिक शिक्षा प्राप्त मज़दूर या किसान ४५–५० साल की उम्र में अपनी मातृभाषा के पांच–साढ़े पांच हज़ार शब्दों के अर्थ और अर्थच्छटाएं समझता है, और इनमें ज़्यादा से ज़्यादा दो–ढाई हज़ार शब्दों का वह सक्रिय प्रयोग करता है। इस तथ्य से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि बचपन के साल इन्सान की ज़िंदगी में कितना महत्व रखते हैं।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि स्कूल से पहले के कुछ साल तथा स्कूल में आरंभिक वर्ष ही बहुत हद तक इन्सान का भविष्य पूर्वनिर्धारित करते हैं। परंतु इसका यह मतलब क़तई नहीं है कि बचपन बीत जाने पर इन्सान

की प्रकृति, उसका चरित्र, उसका आत्मिक स्वरूप बदला नहीं जा सकता, उसे पुनर्शिक्षित नहीं किया जा सकता। सोवियत शिक्षक अन्तोन मकारेन्को ने अपने कार्य द्वारा पुनर्शिक्षण की शक्ति का ज्वलंत उदाहरण पेश किया था। परंतु वे भी बचपन के वर्षों को ही असाधारण महत्व का समय समझते थे। चरित्र-निर्माण का, शिक्षण का सही रास्ता यह नहीं है कि बचपन में रह गई भूल-चूक को, ग़लतियों को सुधारा जाए। सही रास्ता तो यही है कि इन ग़लतियों को होने ही न दिया जाए, कि पुनर्शिक्षण की, भूल-चूक सुधारने की नौबत ही न आने पाए।

प्रिंसिपल के तौर पर काम करते हुए बड़े दुख के साथ मैंने कई बार यह देखा कि जब अध्यापक शिक्षण का अर्थ केवल यह समझता है कि बच्चों के सिरों में ज़्यादा से ज़्यादा ज्ञान भर दिया जाए, तो ऐसी स्थिति में बच्चों का स्वाभाविक जीवन कितनी बुरी तरह से बिगड़ जाता है।

हमारे देश में पूरे दिन के स्कूल और ग्रुप बनाए गए हैं। यह शिक्षा का एक अत्यंत मूल्यवान रूप है। प्राथमिक कक्षाओं के बच्चे पाठों के बाद और ४–५ घंटे स्कूल में रहते हैं। यहीं वे आराम भी करते हैं और पाठों में दिया गया काम भी। इन स्कूलों और ग्रुपों में शिक्षक और बच्चों के बीच उस निरंतर आत्मिक संपर्क के लिए आदर्श परिस्थितियां बनती हैं, जिनके बिना उदात्त भावनाओं को विकसित कर पाने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। लेकिन यह देखकर दिल बहुत दुखी होता है कि कहीं-कहीं शिक्षा का यह अमूल्य रूप भी कितना विकृत कर दिया जाता है। लंबे दिन के ग्रुप में पांच-छह पाठों के बाद बजाय इसके कि बच्चे खेलें, आराम करें और उन्हें प्रकृति की गोद में ले जाया जाए, उन्हें फिर से किताबें थमा दी जाती हैं। पाठों के बाद फिर वही पाठ शुरू हो जाते हैं, वही एक घंटी से दूसरी घंटी तक बैठना, जो बच्चों को बुरी तरह से थका डालता है, उनके स्वाभाविक, नैसर्गिक जीवन को विकृत करता है।

ऐसा क्यों होता है?

इसलिए कि बच्चों को खेत-मैदान में ले जाना, उनके साथ पार्क में, जंगल में घूमना उन्हें कक्षा में पढ़ाने से कहीं अधिक कठिन काम है।

हम एक ऐसे युग में रह रहे हैं, जबकि वैज्ञानिक ज्ञान पाए बिना न हम कोई काम कर सकते हैं, न ही अपने नागरिक कर्त्तव्यों को निभा सकते हैं। यहां तक कि इसके बिना बुनियादी इन्सानी रिश्ते, साधारण सदाचार भी संभव नहीं है। पढ़ाई कोई हल्का-फुल्का, मनोरंजक खेल नहीं हो सकती,

जिससे छात्रों को बस ग्रानंद ही ग्रानंद मिले। भावी नागरिक का जीवन पथ सपाट सड़क पर टहलक़दमी नहीं होगा। हमें ग्राज के बच्चे को ऐसा व्यक्ति बनाना है, जो उच्चतः शिक्षित, मेहनती ग्रौर ग्रध्यवसायी होगा, जो ग्रपने माता-पिता, दादा-परदादा द्वारा पार की गई कठिनाइयों से भी बड़ी कठिनाइयों पर विजय पाने में सक्षम होगा। बीसवीं सदी के ग्रंतिम दशकों के युवाजन के ज्ञान का स्तर इससे पहले के दशकों के युवाजन के स्तर से कहीं ग्रधिक ऊंचा होगा। इन्सान के लिए ग्रपने ज्ञान का दायरा जितना ग्रधिक बढ़ाना ज़रूरी होगा, उतना ही ग्रधिक हमें मानव व्यक्तित्व के गठन काल में, उसके तीव्रतम विकास के काल में, यानी बचपन के वर्षों में मानव शरीर की जो प्रकृति होती है, उसे ध्यान में रखना होगा। मनुष्य प्रकृति की संतान था ग्रौर सदा रहेगा भी। प्रकृति के साथ जिन सूत्रों से वह बंधा हुग्रा है, उन्हीं की सहायता से उसे मानव सभ्यता की संपदा – मानवजाति द्वारा संचित ज्ञान – से परिचित कराया जाना चाहिए। बच्चे के चारों ग्रोर जो संसार है, वह सर्वप्रथम प्रकृति का ही संसार है, जिसमें परिघटनाग्रों की ग्रसीम विविधता है, जिसका सौंदर्य ग्रथाह है। यहां, प्रकृति में ही बाल-बुद्धि के विकास का शाश्वत स्रोत निहित होता है। परंतु साथ ही हमारे चारों ग्रोर जो संसार है, हमारा जो परिवेश है, उसके उन तत्वों की भी भूमिका वर्ष प्रति वर्ष बढ़ती जा रही है, जो लोगों के सामाजिक संबंधों, उनके श्रम से जुड़े हुए हैं।

ग्रपने चारों ग्रोर की दुनिया को जानने-समझने की प्रक्रिया में ही चिंतन की भावनात्मक प्रेरणा मिलती है। बचपन में, १०–११ साल की उम्र तक ऐसी ग्रौर कोई शक्ति नहीं होती, जो इतनी ग्रच्छी तरह से बच्चों के विचारों को जगा सके, उन्हें सोचने की ऐसी प्रेरणा दे। बाह्य जगत की वस्तुग्रों ग्रौर परिघटनाग्रों में जो सामान्य सत्य होता है, वह बच्चों का निजी विश्वास, उनकी धारणा बन जाता है, बशर्ते, वह ऐसे सजीव बिंब के रूप में मूर्तिमान हुग्रा हो, जो उनकी भावनाग्रों को प्रभावित करे, उन्हें जगाए। यह बात बहुत मानी रखती है कि बच्चा ग्रपने चारों ग्रोर की दुनिया में ही पहले वैज्ञानिक सत्यों को देखे-समझे, कि प्रकृति की परि-घटनाग्रों का सौंदर्य ग्रौर उनकी ग्रसीम विविधता ही उसके चिंतन का स्रोत बनें, कि बच्चे को शनैःशनैः सामाजिक संबंधों की, श्रम की दुनिया में प्रविष्ट कराया जाए।

पाव्लिश स्कूल में काम पर लगते ही मैं छोटी कक्षाग्रों के, ख़ास तौर

पर पहली कक्षा के छात्रों में रुचि लेने लगा। पहले-पहल जब बच्चे स्कूल में आते हैं, तो उनके हृदय में कितनी उमंगें, कितना रोमांच होता है, कैसी बाल-सुलभ आस्था के साथ उनकी नज़रें अध्यापक पर लगी रहती हैं! क्या कारण है कि प्रायः कुछेक महीनों या हफ़्तों के ही बीतते न बीतते बच्चों की आंखों में जिज्ञासा की चमक बुझ जाती है? आख़िर क्यों कुछ बच्चों के लिए पढ़ाई सजा बन जाती है? सभी अध्यापक यह चाहते हैं कि बच्चे जिस सहज हर्षमय भाव से दुनिया को देखते-समझते हैं, उनकी वह सहजता, वह बाल-सुलभता बनी रहे, कि पढ़ाई उनके लिए ऐसा काम हो, जिसे करते हुए उनके मन में उत्साह जागे, जिसमें उनका ख़ूब मन लगे।

अगर ऐसा नहीं हो पाता तो इसका सबसे पहला कारण यह है कि स्कूल में आने से पहले बच्चे का जो आत्मिक जीवन था, उसे अध्यापक अच्छी तरह नहीं जानता। और स्कूल की चहरदीवारी में, घंटियों की सीमाओं में बंधा जीवन एक तरह से बच्चों को एक जैसा बना देता है, यहां सब के लिए एक ही मापदंड होता है, जो उनके निजी व्यक्तित्व को उसकी पूरी विविधता के साथ निखरने नहीं देता। बेशक, मैं प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापकों को सलाह-मशविरा देता था कि वे कैसे बच्चों की रुचियां विकसित करें, उनके आत्मिक जीवन में विविधता लाएं। परंतु अकेले परामर्शों से ही काम नहीं चलता। ऐसा महत्वपूर्ण शैक्षिक विचार, जिसका सार अध्यापक और छात्रों के परस्पर संबंधों में खुलता हो, केवल तभी स्पष्ट हो पाता है, जबकि वह अध्यापकगण के सामने एक सुघड़ इमारत के रूप में खड़ा हो, ऐसी इमारत के रूप में, जो यहीं, स्कूल में बनाई जाए। यही कारण है कि मैंने एक कक्षा के साथ काम करना आरंभ किया। यह कार्य दस वर्ष चलना था।

मैं जिस कक्षा के बारे में बताने जा रहा हूं, उसका जीवन स्कूल की अन्य सभी कक्षाओं से अलग नहीं था। कई स्थानों पर मैंने पूरे स्कूल में शिक्षण-कार्य के रूपों और विधियों का ज़िक्र किया है। पर ऐसा मैंने केवल इसलिए किया है, ताकि एक कक्षा के जीवन को और भी अच्छी तरह से दिखा सकूं, क्योंकि एक कक्षा में ही चरित्र-निर्माण का, शिक्षण का जो कार्य किया जाता है, उसी पर सारे स्कूल के शिक्षण एवं चरित्र-निर्माण कार्य की सफलता निर्भर होती है।

पहला साल—
बच्चों का अध्ययन

१९५१ की पतझड़ में स्कूल खुलने से तीन हफ़्ते पहले जब पहली कक्षा में बच्चों का दाख़िला शुरू हुआ, तभी हमने छह साल की उम्र के उन सब लड़के-लड़कियों को भी बुलाया, जिन्हें अगले साल से स्कूल जाना था।* इन बच्चों के साथ मुझे दस साल तक काम करना था।

जब मैंने सभी बच्चों और उनके माता-पिता को बुलाकर यह सुझाव रखा कि बच्चे एक साल पहले ही स्कूल जाने लगें, तो अलग-अलग विचार सामने आए : कुछ माता-पिताओं ने मेरे इरादे का समर्थन किया। उनका ख़याल था कि चूंकि गांव में सारे साल के लिए किंडरगार्टन नहीं है (उन दिनों गांव का किंडरगार्टन केवल गर्मियों में काम करता था) इसलिए बच्चों के स्कूल जाने से माता-पिता को राहत मिलेगी। दूसरे माता-पिताओं को डर था कि समय से पहले ही पढ़ाई शुरू कर देने से बच्चों की सेहत पर बुरा असर पड़ेगा। "सारी उम्र पढ़ना ही तो है। यही तो उम्र है बच्चों के हंसने-खेलने की। स्कूल जाने लगे तो फिर बचपन की ख़ुशियां कहां मिलेंगी," ल्यूबा की मां ने कहा। यह सुनकर मेरे दिमाग़ में एक बार फिर यह विचार आया कि स्कूल में बच्चों की ज़िंदगी एकदम बदल देना कितना हानिकर है और बच्चों की नैसर्गिक शक्ति को विकसित होने का अवसर देना कितना महत्वपूर्ण है। मैंने उन्हें बताया कि इस साल में बच्चे क्लास में बंद नहीं रहा करेंगे।

मैं कक्षा में नियमित पढ़ाई शुरू करने से पहले बच्चों के साथ एक साल तक इसलिए काम करना चाहता था कि हर बच्चे को अच्छी तरह जान सकूं, उसके सोचने-समझने के ढंग का गहराई से अध्ययन कर सकूं। बच्चे को पढ़ाने, ज्ञान देने से पहले उसे अपने चारों ओर की दुनिया को ध्यान से देखना, मनोमस्तिष्क से उसे ग्रहण करना और उस पर सोचना-विचारना सिखाना चाहिए। साथ ही हर बच्चे के स्वास्थ्य की विशिष्ट-

---

*सोवियत संघ में स्कूल १ सितंबर को खुलते हैं। अभी तक सात साल की उम्र में बच्चे स्कूल जाने लगते थे, लेकिन अब (१९८५) से स्कूल में प्रवेश-आयु छह वर्ष कर दी गई है। इससे पहले वे किंडरगार्टन जाते हैं। —**अनु०**

ताओं को भी जानना चाहिए, इसके बिना बच्चों को ठीक तरह से नहीं पढ़ाया जा सकता।

बच्चे को अपने दिमाग़ से काम लेना सिखाना, उसकी बुद्धि विकसित करना एक बात है और उसकी ज्ञान-वृद्धि करना दूसरी। बेशक ज्ञान-प्राप्ति के बिना बौद्धिक विकास भी नहीं हो सकता, ठीक वैसे ही धूप के बिना पत्ती हरी नहीं हो सकती, तो भी बौद्धिक विकास और ज्ञान-प्राप्ति को एक ही बात नहीं कहा जा सकता, वैसे ही जैसे कि हरी पत्ती और धूप एक ही चीज़ नहीं हैं।

शिक्षक के सम्मुख चिंतनशील भूद्रव्य होता है, जिसकी अपने परिवेश को ग्रहण करने और उसका बोध पाने की क्षमता बहुत हद तक बच्चे के स्वास्थ्य पर निर्भर होती है। यह निर्भरता अत्यंत सूक्ष्म होती है और सहज ही दिखाई नहीं देती। बच्चे के आंतरिक, आत्मिक जगत का और विशेषतः उसके चिंतन, उसके सोचने-विचारने के ढंग का अध्ययन शिक्षक के लिए एक सबसे महत्वपूर्ण कार्यभार है।

मेरे छात्रों के माता-पिता

बच्चों को अच्छी तरह से जानने के लिए उनके परिवार – माता-पिता, भाइयों, बहनों, नाना-नानी, दादा-दादी को जानना चाहिए। हमारे स्कूल के इलाक़े में छह साल की उम्र के ३१ बच्चे थे – १६ लड़के और १५ लड़कियां। सबके माता-पिता बच्चों को "ख़ुशियों के स्कूल" में भेजने पर राज़ी हो गए थे। हमारे ग्रुप का यह नाम स्वयं माता-पिताओं ने ही कुछ समय पश्चात रखा था। ३१ में से ११ बच्चों के पिता नहीं थे, दो के माता-पिता कोई भी नहीं था। इन दोनों लड़कों – वीत्या और साश्को – का जीवन बड़ा दुखद रहा था। वीत्या के पिता महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के दिनों में छापामार सैनिक बन गए थे। फ़ासिस्टों ने उन्हें पत्नी की आंखों के सामने सता-सताकर मार डाला। वीत्या की मां यह दुख न झेल सकी, वह पागल हो गई। वीत्या का जन्म इस दुखद घटना के छह महीने बाद हुआ। मां प्रसव के बाद चल बसी। बड़ी मुश्किल से नन्हे-मुन्ने को बचाया जा सका। साश्को के पिता मोर्चे पर शहीद हुए थे और मां हमारे गांव को फ़ासिस्टों से आज़ाद कराने की लड़ाई में मारी गई थीं।

"ख़ुशियों का स्कूल" खुलने के कुछ हफ़्ते पहले मैं हर परिवार से

मिला। मुझे यह बात परेशान कर रही थी कि कुछ परिवारों में माता-पिता और बच्चों के बीच, मां और बाप के बीच मित्रता का वातावरण नहीं था, परस्पर आदर की भावना नहीं थी, जिसके बिना बच्चे का जीवन सुखी नहीं हो सकता।

मेरे सामने काली-काली आंखों और चपटी नाकवाला कोल्या खड़ा है। उसकी आंखों में सतर्कता है। मैं मुस्कराता हूं, पर उसकी भौंहें और भी ज्यादा तन जाती हैं। इन क्षणों में मुझे उसके परिवार में व्याप्त अस्वाभाविक वातावरण का ख़याल आता है। फ़ासिस्टों के विरुद्ध युद्ध से पहले कोल्या के पिता जेल में थे। उनका परिवार दोनबास में रहता था। फ़ासिस्टों के क़ब्ज़े के दिनों में वह जेल से छूट गए और परिवार हमारे गांव में आ बसा। माता और पिता ने लोगों के दुख-दर्द से मुनाफ़ा कमाया, वे चोर-बाज़ारी करते थे और फ़ासिस्टों के चाकरों की लूट का माल छिपाते थे। मुश्किल दिनों में मां सामूहिक फ़ार्म के पक्षीघर से मुर्गियां चुराती थी। उसने कोल्या और उसके बड़े भाई को कौए पकड़ना सिखाया। बच्चे चिड़ियों को मारते थे और मां उन्हें तल कर बाज़ार में मुर्गी का गोश्त बताकर बेचती थी।... मैं बच्चे की ओर देखता हूं, चाहता हूं कि वह मुस्कराए, लेकिन उसकी आंखों में मुझे भय दिखता है, जिसने उसके हृदय के कपाट बंद कर रखे हैं। कोल्या, कैसे मैं तुम्हारे हृदय में नेकी की, इन्सानियत की भावनाएं जगाऊंगा? लोगों से नफ़रत और तिरस्कार के जिस वातावरण में तुम पले हो, उसके मुकाबले मैं तुम्हें क्या दे सकूंगा? मैं मां की उदासीनता भरी आंखों को देखता हूं, जो कुछ नहीं देखती-सी मालूम देती हैं और मेरा मन इस उदासीनता से भारी हो उठता है।

बहुत देर तक मैं यह सोचता रहा था कि पुस्तक में ये सब ब्योरे देने चाहिए या नहीं। दसियों बार इन्हें काटकर फिर लिखा। बेशक मैं मोटी बात कह सकता था: माता-पिता बच्चे के लिए नैतिकता का आदर्श नहीं थे... लेकिन ऐसा करना जीवन के कटु सत्य में मीठा घोलने का यत्न होता, जिससे लाभ कोई नहीं, बस हानि ही होती है। नहीं, हम इस सचाई से आंखें नहीं मूंद सकते कि हमारे चारों ओर अभी भी कुटिलता और नीचता है। कोई भी "चीन की दीवार" इन्हें स्कूल से दूर नहीं रख सकती। इस कुटिलता पर विजय पाने के लिए, नन्ही आत्माओं में पुरानी दुनिया की जो गंदगी बची है, उसे साफ़ करने के लिए हमें निडर होकर सचाई की आंखों में आंखें डालकर देखना चाहिए।

सुनहरे बालोंवाले दुबले-पतले तोल्या की आंखें वसंती आसमान सी नीली हैं। वह मां के बग़ल में उसका हाथ पकड़े खड़ा है। न जाने क्यों उसने आंखें ज़मीन में गाड़ रखी हैं और बस कभी-कभी ही ऊपर देखता है। इस लड़के के पिता ने कारपेथिया के पर्वतों में वीरगति पाई, मां को उनके कई पदक भेजे गए। तोल्या को अपने पिता पर गर्व है, पर मां भोग-विलास के जीवन में पड़कर बेटे को भुला ही बैठी है।... क्या किया जाए, ताकि इस छहवर्षीय इन्सान का दिल इतने भारी दुख से टूटने न पाए? किस तरह उसकी मां के हृदय में बच्चे का ख़याल जगाया जाए?

फ़ासिज़्म के विरुद्ध सोवियत जनता का युद्ध गहरे घाव छोड़ गया है, जो न जाने कितने वर्षों बाद भर पाएंगे। मेरे सामने जो बच्चे खड़े हैं इनका जन्म १९४५ में, कुछ का १९४४ में हुआ है। कई तो मां के गर्भ में ही अनाथ हो गए। यूरा के पिता युद्ध ख़त्म होने से एक दिन पहले चेकोस्लोवाकिया में शहीद हुए। मां बेटे के प्यार में अंधी है, वह उसके सभी नाज़-नखरे पूरे करने को तत्पर रहती है। नाना भी सब कुछ करने को तैयार रहते हैं, बस यूरा को किसी क़िस्म की तकलीफ़ न हो। इस परिवार के बारे में मुझे जो पता चला, उससे यह स्पष्ट था कि छहवर्षीय बालक एक छोटा तानाशाह बन सकता है। अंधी ममता भी उदासीनता से कम ख़तरनाक नहीं है।

पेत्रिक अपनी मां और नाना के साथ आया था। इस बच्चे की मां के विषम जीवन के बारे में मैंने बहुत कुछ सुना था। उसका पहला पति युद्ध से पहले ही उसे छोड़कर चला गया था। दुबारा विवाह किया, पर इस बार भी सुख बदा नहीं था: पता चला कि साइबेरिया में कहीं पेत्रिक के पिता की पत्नी और बच्चे हैं; युद्ध के बाद वह वहां चला गया। गर्वीली स्त्री ने बेटे को यह वताया कि उसके पिता मोर्चे पर शहीद हुए। पेत्रिक अपने हमजोलियों को अपने पिता की वीरता की कहानियां गढ़ कर सुनाता। वे उसका विश्वास नहीं करते थे और कहते थे कि उसका बाप धोखेबाज़ है। पेत्रिक तब रोने लगता और आंखों में आंसू लिए मां के पास भाग जाता। जाहिर था कि निष्ठुर लोगों ने इस बच्चे के मन में अविश्वास और कटुता के बीज बो दिए हैं। बच्चे के मन में भलाई में विश्वास जमाने के लिए क्या करना होगा?

कोस्त्या सात साल का हो गया था, लेकिन उसने अभी पहली कक्षा में दाख़िला नहीं लिया था। लड़के के पिता, सौतेली मां और दादा उसे स्कूल

लाए थे। युद्ध की ज्वाला ने इस नन्हे बालक को भी झुलसा दिया था। गांव को फ़ासिस्टों से मुक्त कराए जाने के कुछेक सप्ताह पश्चात कोस्त्या की गर्भवती माता को कहीं पर लोहे के कुछ टुकड़े मिले (गर्भ के दिन पूरे हो चुके थे और किसी भी दिन बच्चे का जन्म हो सकता था)। मां ने सात साल के बड़े बेटे को ये टुकड़े खेलने को दे दिए। इनमें सुरंग का फ़्यूज़ भी था। फ़्यूज़ फट गया और बच्चा मारा गया। मां ने फांसी लगा ली। समय पर आ पहुंचे लोगों ने उसको फंदे में से निकाला और मृत्यु से पहले की प्राणपीड़ा में उसने कोस्त्या को जन्म दिया। भाग्य की बात ही समझो कि बच्चा बच गया: एक पड़ोसिन के दुधमुंहा बच्चा था, उसी ने कोस्त्या को अपना दूध पिलाकर बचाया। पिता मोर्चे से लौटकर आए। वह बेटे के सदक़े लेते नहीं थकते थे, बड़े लाड़-प्यार से उसकी देखभाल करते थे। बड़े ही नेक स्वभाव की सौतेली मां और दादा भी कोस्त्या को प्यार करते थे। अभी वह पांच साल का भी नहीं हुआ था कि परिवार पर मुसीबत का नया पहाड़ टूट पड़ा। कोस्त्या को बाग में लोहे की कोई चमकीली चीज़ दिखी, वह उसे पत्थर पर ठोंक रहा था कि विस्फोट हुआ: ख़ून से लथपथ बालक को अस्पताल पहुंचाया गया। कोस्त्या जीवन भर के लिए अपाहिज हो गया: उसका बायां हाथ और बाईं आंख जाती रही थी, चेहरे में बारूद के नीले कण सदा के लिए धंस गए थे।...

प्यारे कोस्त्या, तुम्हें कितना स्नेह, कितना प्यार देना होगा, ताकि तुम्हारा जीवन सुखी हो सके? तुम्हारे पिता, तुम्हारी नेकदिल सौतेली मां और दादा से मैं क्या कहूं, ताकि वे लाड़-प्यार में समझदारी बरतें? तुम कैसे पढ़ोगे? तुम्हारे घरवाले कहते हैं कि अकसर तुम्हारा सिर दुखता है। कैसे तुम्हारे लिए पढ़ाई आसान की जाए, तुम्हारी सेहत सुधारी जाए और तुम्हारे मन पर छाए विषाद के कुहासे को कैसे हटाया जाए? तुम्हारे पिता ने बताया है कि तुम कभी-कभी अकेले में रोते हो, हमजोलियों के खेलों में तुम्हारा मन नहीं लगता।...

मां का हाथ पकड़े भूरी आंखोंवाला विचारमग्न-सा स्लावा खड़ा है। उसकी मां को एकाकी जीवन जीना पड़ा है। जवानी में वह सुंदर नहीं थी। वह मन में आशा बांधे हुए थी कि एक दिन उसका भी राजकुमार आएगा, पर कोई उसका पति नहीं बनना चाहता था। यौवन बीत रहा था और जीवन पहले की ही भांति सूना था। तभी युद्ध से एक आदमी लौटा—शरीर का कोई हिस्सा न था, जहां ज़ख़्मों के निशान न हों। वह भी जीवन

में एकदम अकेला था। उसे इस स्त्री से प्रेम हो गया और वे प्रणय-सूत्र में बंध गए। परंतु सुख के दिन पलक झपकते ही बीत गए: शीघ्र ही पति का देहांत हो गया। मां अब अपना सारा प्रेम बेटे पर उंडेलने लगी। लेकिन वह बच्चे का लालन-पालन ठीक नहीं करती थी। मैंने सुना था कि स्लावा को लोगों का साथ अच्छा नहीं लगता, वह सारा-सारा दिन घर पर बैठा रहता है, उसकी नज़रों में रूखापन है। मैं लड़के की आंखों में देखता हूं और उनमें तुरंत कटुता का भाव आ जाता है।

मैंने अपने भावी छात्रों को जितना निकट से देखा उतना ही अधिक मैं यह समझता गया कि मेरे सामने जो कार्यभार हैं, उनमें एक अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है उन बच्चों को बचपन की ख़ुशियां लौटाना, जो परिवार में इनसे वंचित हैं।

स्कूल में तीन साल तक काम करते हुए मैंने कई ऐसे बच्चों को देखा था। जीवन के अनुभव से यह विश्वास दृढ़ हो गया कि अगर बच्चे के मन में भलाई और न्याय में विश्वास नहीं लौटाया जाता, तो वह कभी भी अपने आप को इन्सान महसूस नहीं कर सकेगा, उसमें आत्मसम्मान की भावना नहीं पनपेगी। किशोरावस्था में ऐसा छात्र सारी दुनिया से ख़ार खा बैठता है, उसके लिए कुछ भी पवित्र नहीं होता और वह नहीं जानता कि उच्च आदर्श, उदात्त भावनाएं क्या हैं।

ऐसे व्यक्ति के हृदय को निर्मल करना शिक्षक के लिए एक सबसे कठिन कार्य है। और यह सबसे सूक्ष्म तथा सबसे अधिक श्रमसाध्य कार्य ही शिक्षक के लिए मानवविद्या की परीक्षा है। मानवविद, मानवात्मा का ज्ञाता वही है, जो केवल यह देखता और अनुभव ही नहीं करता कि कैसे बच्चे को भलाई और बुराई का ज्ञान होता है, बल्कि जो कोमल बाल-हृदय की बुराई से रक्षा भी करता है।

बच्चों की काली, नीली, आसमानी आंखों में झांकते हुए मैं सोच रहा था: क्या मुझमें इतनी नेकी, इतना स्नेह है कि मैं इन बाल-हृदयों को स्पंदित कर सकूं? मुझे नदेज्दा क्रूप्स्काया के ये शब्द याद आए: "बच्चों के लिए विचार व्यक्तित्व के साथ जुड़े होते हैं। प्यारे शिक्षक के मुंह से निकली बात फ़ौरन उनके मन में बैठेगी और वही बात अगर कोई तुच्छ व्यक्ति, ऐसा व्यक्ति, जिससे उन्हें घृणा है, कहेगा, तो उसका उन पर दूसरा ही असर होगा।" मुझे बच्चों को शब्दों से और अपने निजी उदाहरण से शिक्षा देनी होगी। बच्चों को मेरे शब्दों और मेरे कर्मों में भलाई, सचाई

ग्रौर सुंदरता दिखनी चाहिए। मेरे हर शब्द के पीछे हार्दिकता, ग्रात्मीयता, स्नेह होना चाहिए।

गाल्या को उसके पिता लाए थे। गाल्या ग्रौर उसकी छोटी बहन को बड़ा भारी दुख झेलना पड़ा था: उनकी मां नहीं रही थीं। मां की मृत्यु के साल भर बाद परिवार में एक पराई ग्रौरत ग्राई थी—बड़ी ही नेकदिल ग्रौर ईमानदार। वह समझती थी कि बच्चों के मन पर क्या गुज़र रही है, इसलिए वह ज़्यादा लाड़-प्यार नहीं जताती थी। उसे उम्मीद थी कि वह धीरे-धीरे बच्चियों का मन जीत लेगी। पर हफ़्ते बीते, महीने बीते ग्रौर बहनें थीं कि सौतेली मां से बात तक नहीं करना चाहती थीं। वे उसे देखकर ग्रनदेखा कर देती थीं। सौतेली मां बेचारी रोती, पति से, रिश्तेदारों से सलाह मांगती कि वह करे तो क्या करे? उसने परिवार को छोड़कर भी चले जाने का इरादा कर लिया था, पर इस बीच उसके लड़का हुग्रा। उसने सोचा नन्हे-मुन्ने को देखकर बहनों का दिल पिघल जाएगा, पर यह ग्राशा भी पूरी न हुई। बहनों (ख़ास तौर पर गाल्या) के लिए मानो उनका छोटा भैया था ही नहीं। इस गर्वीले हृदय की कुंजी कहां है? पिता ग्रौर सौतेली मां से मैं क्या बातें करूं, उन्हें क्या सलाह दूं? गाल्या के पिता मुझसे स्कूल में पहले भी मिले थे ग्रौर ग्रपना दुखड़ा सुनाया था। मैंने कहा कि जब मैं गाल्या को ग्रच्छी तरह जान लूंगा, तभी कुछ सलाह दे सकूंगा।

भूरी ग्रांखोंवाली गोल-मटोल लरीसा मुस्कराती हुई ग्रपनी मां के पास बैठी है, हाथ में फूल लिए। मैं जानता हूं कि मां के कलेजे पर दुख का भारी पत्थर पड़ा है। उसका पति उसे छोड़कर चला गया था। बच्ची को ग्रपने पिता की याद नहीं थी। मां उसे कहती थी: "पापा ग्रा जाएंगे।" ग्रौर फिर उसके जीवन में एक भला ग्रादमी ग्राया। मां ने बेटी को यह विश्वास दिला दिया कि वही उसका पिता है। लरीसा ग्रपने पिता को प्यार करती है ग्रौर मां के दिल में हर वक़्त धुकधुक लगी रहती है: कहीं कोई ग्रनजाने में उसका यह भेद न खोल दे। बच्ची ख़ुश है, पर उसके कोमल हृदय की बड़ी सतर्कता से रक्षा करनी होगी, कहीं भोंडे शब्द उसे न छू जाएं। क्या हम भले माता-पिताग्रों के साथ मिलकर ऐसा कर पाएंगे? सौतेला बाप... काश, सभी बच्चों के सगे पिता ऐसे होते, जैसे लरीसा के सौतेले पिता हैं। इस व्यक्ति को मैं जितना ग्रधिक जानता गया, उतना ही मेरा यह विश्वास दृढ़ होता गया कि ग्रसली पिता वही है, जिसने बच्चे

का लालन-पालन किया है। मैं अक्सर इन लोगों के घर जाता था और हर बार एक दिलचस्प बात देखकर हैरान होता था: बच्ची की आंखों में वही स्नेह, वही भलाई, दूसरों के सुख-दुख की वही समझ छलकती थी, जो उसके सौतेले पिता की आंखों में थी। बच्ची की आंखों में भी सौंदर्य के प्रति वही आश्चर्य और विमुग्धता का भाव था, जो सौतेले पिता की आंखों में। यहां तक कि चेहरे के हाव-भाव, मुद्राएं और इशारे तक भी लरीसा ने अपने सौतेले पिता से लिए थे और हैरानी व सख़्ती के, चौकन्ना होने के भाव भी वह उन्हीं की तरह व्यक्त करती थी।

फ़ेद्या... उसके भी पिता नहीं है, और उसे कई बार ऐसा तीखा, अपमानजनक शब्द सुनना पड़ा है, जो यह इशारा करता है कि उसकी मां का चाल-चलन आदर्श नहीं रहा है। नन्ही जान कितना बौखलाई होगी: यह सब क्या है, मां तो कहती हैं कि पापा लड़ाई में मारे गए थे? मैं लड़ाई से पहले के दिनों से ही फ़ेद्या की मां को जानता हूं। लड़ाई के दिनों में उसका जीवन बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण रहा। इस बालक को कैसे इन्सानी रिश्तों की जटिल दुनिया में प्रवेश कराया जाए, ताकि बच्चे के मन को वे सवाल व्यथित न करें, जिनका अभी वह उत्तर नहीं पा सकता?

हम अध्यापक लोग अक्सर यह भूल जाते हैं कि बच्चे के लिए संसार का बोध सर्वप्रथम इन्सान को देखने-जानने से आरंभ होता है। पिता मां से किस लहजे में बात करता है, उसकी नज़र, उसकी भाव-भंगिमाएं क्या व्यक्त करती हैं, इसी में वह भलाई और बुराई, नेकी और बदी के पहले सबक़ पाता है। मैं एक बच्ची को जानता था। उसके पिता जब काम से बहुत ही रूखे-रूखे और मुंह फुलाए लौटते और मां हर तरह से उनकी ख़ुशामद करतीं, तो बच्ची बाग़ के एक कोने में जाकर चुपके से रोने लगती। पिता पर ग़ुस्से और मां के प्रति सहानुभूति से बच्ची का कलेजा फटा जाता था।...

परंतु ये तो मानव संबंधों के पहले, सतही लक्षण हैं, जो बच्चा देखता-समझता है। ज़रा सोचिए कि बाल-हृदय पर तब क्या गुज़रती होगी, जब मां-बाप के झगड़े से, अचानक कहे गए शब्द से नन्हे बच्चे को यह पता चलता है कि माता-पिता एक दूसरे को प्रेम नहीं करते और अगर बच्चे का बंधन न होता तो वे अलग हो जाते?

जुड़वां बहनों नीना और साशा को उनके पिता स्कूल लाए हैं। इनके अलावा परिवार में और चार बच्चे हैं। इस परिवार में अपना दुख है:

बरसों से मां सख़्त बीमार हैं, उठ-बैठ भी नहीं सकतीं। बड़ी बहनें घर का काम-काज संभालती हैं—अकेले पिता तो सब कुछ नहीं कर सकते। नीना और साशा भी जानती हैं कि मेहनत क्या है। घर में ख़ुशी के क्षण बहुत कम होते हैं। एक लड़के के पास हरी गेंद देखकर बच्चियों की आंखों में ख़ुशी की चमक दौड़ गई, और फिर उसी क्षण उनमें ऐसी गहरी उदासी छा गई कि मेरा गला रुंध आया। इन नन्ही बच्चियों को मैं कैसे बचपन की वे ख़ुशियां लौटाऊंगा, जिन पर दुखों की छाया न हो? क्या मैं ऐसा कर पाऊंगा? पिता मुझे याद दिलाते हैं: बच्चियां ज़्यादा से ज़्यादा एक घंटे के लिए स्कूल आया करेंगी। उन्हें घर के काम में मदद जो करानी है।

हम लोग मैदान में नाशपाती के ऊंचे पेड़ की छाया में जा बैठते हैं। मैं माता-पिताओं को बताता हूं कि मेरे विचार में बच्चों की शिक्षा-दीक्षा कैसे होनी चाहिए। जो बातें बच्चों के सामने कही जा सकती हैं, वही मैं कहता हूं, पर मेरे दिमाग़ में हर परिवार का दुख-दर्द और व्यथाएं घूमती हैं। हर किसी का अपना कष्ट, अपनी मुसीबतें हैं। सब के सामने उनका ज़िक्र करना, दूसरों के सामने सलाह देना उनके घावों को उघाड़ने के समान होगा। नहीं, यह सब मुझे बस मालूम होना चाहिए, सभी माता-पिताओं को यह सब नहीं बताया जा सकता। अगर माता-पिता के हृदयों की गहराइयों में बैठी इन बातों को उभारना भी पड़ा, तो मुझे उनसे केवल अकेले में बातचीत करनी चाहिए। मुझे एक-एक शब्द को हज़ार बार नापना-तौलना होगा, हज़ार बार सोच-विचार कर कोई बात कहनी होगी। माताओं और पिताओं के कलेजे के ये घाव, उनकी ये मुसीबतें, उनके दुख-दर्द, उनकी उलझनें, जिनके बारे में मैंने बताया है, इतने अलग-अलग हैं कि सब के साथ एक सामान्य बातचीत नहीं की जा सकती। हां, मेरे अधिकांश छात्रों के माता-पिता तो बहुत अच्छे लोग हैं। अपने पास बैठे इन लोगों में जब मैंने अच्छाई और बुराई को इतने जटिल रूप में गुंथे हुए पाया, तो मैं यह समझ गया कि कोई भी ऐसे माता-पिता नहीं हैं, जो जान-बूझकर बच्चों के सामने बुरा उदाहरण पेश करते हों।

शायद पाठक यह सोचेंगे कि इतनी सारी विपदाएं, इतनी पीड़ाएं क्यों—आख़िर चर्चा तो केवल एक ही कक्षा, एक बाल-समुदाय की है। पर यह नहीं भूलना चाहिए कि ये सब युद्ध के घाव हैं। लड़ाई के बाद के पहले वर्ष अतीत के गर्भ में समा गए हैं, लोगों के हृदयों में उन वर्षों के

गहरे घाव भर चुके हैं, १९४४–१९४५ में विजय की सलामियों की चमक में जिन बच्चों ने पहले अक्षर सीखे थे वे कब के बड़े हो चुके हैं, उनके अपने बच्चे स्कूल जाने लगे हैं। ख़्याल आता है कि आजकल के युवा परिवारों में तो पूरा सुख-चैन होना चाहिए, परंतु वास्तविक जीवन में ऐसा नहीं है। अभी भी कितने दुख, कितनी त्रासदियां हैं... तो फिर उन वर्षों की तो कही ही क्या जाए। मैं यह देखकर ख़ुश था कि अधिकांश माता-पिता का पारिवारिक जीवन सुखी था, घर में अमन-चैन था और बच्चों का लालन-पालन ठीक तरह से होता था।

सातवर्षीय हृष्ट-पुष्ट बालक वान्या के पिता कृषिविशेषज्ञ हैं। वह बहुत ही मेहनती आदमी हैं। धरती से उन्हें गहरा अनुराग है, लोगों के हित के लिए काम करके उन्हें ख़ुशी होती है। वह हर साल अपने घर के पास ज़मीन के छोटे से टुकड़े पर सेब और अंगूर की पौध उगाते हैं और उसे लोगों में बांट देते हैं। उनकी पत्नी रेशम के कीड़े पालनेवाली टोली में काम करती हैं। अपने काम में माहिर यह स्त्री बहुत ही भली है और सदा लोगों का सुख-दुख बांटने को तत्पर रहती है, अपने बच्चों का बड़ा ध्यान रखती है। १९३३–१९३४ के कठिन वर्षों में वह चार अनाथ बच्चों को अपने परिवार में ले आईं, उन्हें अपने बच्चों की तरह पाला और अब बच्चे उन्हें अपनी मां ही मानते हैं।

ख़ूब मोटी-मोटी, काली चुटियोंवाली लड़की ल्यूस्या के पिता अत्यंत ईमानदार और सच्चे व्यक्ति हैं। कई ऐसे लोग होते हैं, जिनके बारे में कहा जाता है कि उनका मन सुंदर है। प्रायः ऐसे लोग कोई विशेष पराक्रम नहीं करते। उनका आत्मिक सौंदर्य लोगों के साथ परस्पर संबंधों में प्रकट होता है। ल्यूस्या के पिता ने शायद ही उसे कभी कहा होगा कि उसे दूसरों का दुख-सुख समझना चाहिए, लोगों से सहानुभूति रखनी चाहिए। वह तो उसे अपने कामों से, पत्नी के प्रति अपने व्यवहार से इन्सानियत की, संवेदनशीलता की शिक्षा देते हैं। ल्यूस्या की मां को दिल का रोग है। वह सामूहिक फ़ार्म में चुकंदर की खेती पर काम करती हैं, सो पिता ने घर के सारे काम की ज़िम्मेवारी अपने पर ले ली है।

कात्या के माता-पिता ने अपने फलों के बाग़ को बच्चों के मनबहलाव का स्थान बना दिया है: यहां वसंत के आरंभ से लेकर पतझड़ के अंत तक उनके अपने चार बच्चों के साथ आस-पड़ोस के सभी बच्चे खेलते-कूदते हैं, आराम करते हैं। कात्या के पिता ने अहाते में बच्चों के लिए

खेल-कूद का छोटा-सा मैदान बना दिया है और नल के साथ एक फौहारा भी लगा दिया है, जिसके तले बच्चे नहा सकते हैं। बाग़ के सभी फल बच्चों के लिए हैं।

नीली-नीली, सदा विचारमग्न-सी आंखोंवाली बच्ची सान्या के माता-पिता बड़े भले और कोमलचित्त लोग हैं। सान्या की तीन चचेरी बहनें, जो शहर में रहती हैं, सारी गर्मियां यहां गांव में काटती हैं। सान्या के पिता ने बच्चों के लिए तालाब के एक हिस्से को साफ़ कर दिया है, तट पर बेंचें बना दी हैं, ताकि बच्चे वहां नहा और तैर सकें और अब उनके लिए मोटर-बोट बना रहे हैं, ताकि बच्चों को एक और ख़ुशी मिले।

लीदा बड़े अच्छे परिवार से आई है। उसके पिता रेल के डिब्बे बनाने के कारख़ाने में मज़दूर हैं। गाने-बजाने का उन्हें शौक़ है। वह बच्चों को वायलिन बजाना और गाना सिखाते हैं। उनके बग़ीचे में आस-पड़ोस के बीसेक बच्चे इकट्ठे हो जाते हैं। वे संगीत सुनते हैं, लोक गीत सीखते हैं।

पावेल के परिवार में मित्रता का वातावरण है। उसकी मां चार साल तक बीमारी की वजह से खाट पर पड़ी रहीं। पिता ने पूरी तरह मां का भी कर्त्तव्य निभाया: वह काम पर तो जाते ही थे और घर-गृहस्थी भी चलाते थे।

काली-काली आंखोंवाले, सांवले सेर्योझा के परिवार में माता, पिता और दो बच्चे हैं, सब ख़ूब मिल-जुलकर रहते हैं। जब भी कोई छुट्टी होती है, सब मिलकर जंगल जाते हैं। वहां एक मैदान में उन्होंने लिंडन के छोटे-छोटे चार पेड़ लगाए हैं। घर पर बच्चों ने माता, पिता, दादा, दादी – सब के नाम पर एक-एक सेब का पेड़ लगाया है। मैं अक्सर सोचता था: इस परिवार में माता-पिता, दादा-दादी के प्रति बच्चों के इस प्रगाढ़ प्रेम का रहस्य क्या है? शायद बाल-हृदय में भलाई के जो बीज बोए जाते हैं, उन्हीं के फल माता-पिता को सौ गुने अधिक सशक्त और पवित्र प्रेम के रूप में मिलते हैं।

ल्यूबा को उसकी मां, पिता, नानी, बड़ी बहन और छोटा भाई स्कूल ले आए हैं। ल्यूबा के पांच भाई-बहन हैं। नानी, दादी और दादा भी उनके साथ रहते हैं। इस परिवार में कभी ऐसा नहीं होता कि छोटे बड़ों का कहना न मानें, और इसका कारण यह है कि सब एक दूसरे का आदर, एक दूसरे पर विश्वास करते हैं। मैंने कई बार सुना था कि इस परिवार में बड़े छोटों का आदर करते हैं, उनकी भावनाओं की क़द्र करते हैं।

सबसे छोटे लड़के दान्को के परिवार में लोक-जीवन की आदर्श परंपराएं बनी हुई हैं। माता-पिता जब काम पर होते हैं, तो ६, ८ और ९ साल के उनके तीन बच्चे सारा घर संभालते हैं। वे ख़ुद खाना पकाते हैं, गाय दोहते हैं, क्यारियों में पौधों की देखभाल करते हैं। गर्मियों की शाम को जब अम्मा, पापा काम से लौटते हैं, तो उनके लिए नहाने का पानी, साफ़ कपड़े, खाना और... मेज़ पर फूलों का गुलदस्ता रखा होता है।

कहा जा सकता है कि श्रम इस परिवार का आराध्य देवता है। घर में हर कोई किसी न किसी काम में लगा रहता है और साथ ही कोई भी काम की हाय-तोबा नहीं मचाता।

वाल्या के पिता क्रेमेन्चुग नगर में मशीन निर्माण कारख़ाने में काम करते हैं, मां सामूहिक फ़ार्म में। इस मैत्रीपूर्ण परिवार में सभी पढ़ते हैं–माता-पिता भी और तीनों बच्चे भी। परिवार में ज्ञान के प्रति, स्कूल और अध्यापकों के प्रति आदर का जो वातावरण है, उसे देखकर हम शिक्षकों को बहुत ख़ुशी होती है। जब वाल्या "ख़ुशियों के स्कूल" जाने लगी, तो इस परिवार का एक अनुपम गुण प्रकट हुआ। पता चला कि जिस बूढ़ी स्त्री को सब वाल्या की नानी समझते थे, वह "पराई" स्त्री है। उसका अपना कोई सगा संबंधी नहीं है, उसके दोनों बेटे लड़ाई में शहीद हो गए। वाल्या के परिवार ने उसे अपना लिया और वह बच्चों के लिए सगी हो गई। वाल्या को पता तक नहीं कि नानी "पराई" स्त्री है।

भूरी आंखोंवाली, छोटी-सी लड़की ल्यूदा के माता-पिता सामूहिक फ़ार्म में काम करते हैं। माता-पिता ने बच्चों के मन में किसान के सीधे-सादे श्रम के प्रति गहरे आदर की भावना जगाई है। बच्चों को परिवार की साख रखने की सीख दी जाती है। "हम लोगों के लिए जो कुछ भी करें, वह सुंदर होना चाहिए," पिता बच्चों से कहते हैं। गर्मियों में बड़े बच्चे पिता के साथ दूर के खेतों पर रहते और काम करते हैं। ल्यूदा महीने में एक-दो बार मां के साथ उनसे मिलने जाती है। ये दिन उसके लिए अपार हर्ष के दिन होते हैं।

तान्या के माता-पिता सामूहिक फ़ार्म की डेरी में काम करते हैं। गर्मियों में उनकी दोनों बेटियां अक्सर काम पर उनके साथ रहती हैं। माता और पिता ने छोटी उम्र से ही बच्चों को मेहनत करना सिखा दिया है। अध्यापकों को कई बार यह सुखद दृश्य देखने को मिला है: पिता डेरी के एक

कोने में लकड़ी का पार्टीशन बना देते हैं और वहां नन्ही-सी बछिया या मेमने को रख देते हैं। तान्या अपनी बड़ी बहन के साथ उसकी देखभाल करती है। यह बच्चों का प्यारा खेल है; उन्हें यह इसलिए और भी अच्छा लगता है कि मां और पापा भी यही खेल खेलते हैं।

शूरा की काली-काली आंखों से जिज्ञासा और कोमलता छलकती हैं। उसके पिता रेलवे में काम करते हैं। वह हफ़्ते में बस एक दिन ही घर आते हैं। पिता का घर लौटना शूरा, उसके भाई और बहन के लिए ऐसी घटना होती है, जिसकी उनके बाल-हृदयों पर गहरी छाप पड़ती है। बच्चे बड़ी बेसब्री से पिता का इंतज़ार करते हैं: वह हमेशा उनके लिए कोई न कोई उपहार लाते हैं। उनके उपहार भी अनोखे होते हैं। शूरा के पिता लोगों, जानवरों और काल्पनिक जीवों की लकड़ी की आकृतियां बनाने में माहिर हैं। हर बार वह प्रत्येक बच्चे के लिए लकड़ी का एक खिलौना बनाकर लाते हैं। पापा की कहानियां सुनकर भी बच्चे बहुत ख़ुश होते हैं। शूरा के पिता में एक अद्भुत गुण है: वह हर जगह अच्छे लोगों को ढूंढ़ लेते हैं। इन अच्छे लोगों के बारे में पिता की कहानियों से बच्चे संसार की झलक पाते हैं।

वोलोद्या के पिता पुल बनाते हैं। मां सामूहिक फ़ार्म में काम करती हैं। युवा माता-पिता अपनी पहली संतान पर लट्टू हैं। उसका हर नख़रा वे तुरंत पूरा करने को तैयार रहते हैं, उसे तरह-तरह की चीज़ें खरीदकर देते रहते हैं। इस वक़्त भी वोलोद्या मां के बग़ल में बैठा है, उसके हाथ में दो गुब्बारे हैं। वह मां को कुछ कहना चाहता है, पर उसका ध्यान कहीं और है, सो बेटे ने मुंह फुला लिया है, उसकी आंखों में आंसू हैं।

सांवली वार्या कोमल टहनी-सी दुबली-पतली है—काली-काली आंखें, घुंघराले बाल। उसकी मां तेल मिल में सफ़ाई करती हैं, पिता मोर्चे से लौटने के बाद से सख़्त बीमार हैं। सभी रिश्तेदार उनकी टहल करते हैं, पर उनका स्वास्थ्य अभी सुधरा नहीं है। तीनों बच्चे महसूस करते हैं कि क़िस्मत ने मां के कंधों पर बड़ा भारी बोझ डाल दिया है और हर तरह से उसका बोझ हलका करने का यत्न करते हैं। मां की तनख़्वाह तो ज़्यादा नहीं है, सो वह शाम को कमीज़ों, तौलियों पर कढ़ाई करके पति के इलाज के लिए कुछ और पैसे कमाती है। वार्या की बड़ी बहन ने भी कढ़ाई सीख ली है और वह मां की मदद करती है। वार्या भी कढ़ाई सीख रही है।

बच्चा माता-पिता के नैतिक जीवन का दर्पण है। हर परिवार में, जो अच्छाइयां या बुराइयां हैं, मैं उनके बारे में बहुत कुछ सोचता-विचारता रहा। अच्छे माता-पिता का एक सबसे मूल्यवान नैतिक गुण होता है, जो बिना किसी विशेष यत्न के बच्चों में भी आ जाता है, यह गुण है माता और पिता की नेकदिली, दूसरों की भलाई करने की उनकी योग्यता। ऐसे परिवारों में, जहां माता-पिता के दिलों में दूसरों के लिए भी स्थान होता है, वे दूसरों की ख़ुशियों में और उनके ग़मों में भी शरीक होते हैं, वहां बच्चे भी नेक, संवेदनशील और स्नेही होते हैं। कुछ माता-पिताओं की स्वार्थपरकता ही सबसे बड़ी बुराई है। कभी-कभी यह बुराई अपने बच्चे के प्रति अंधे प्रेम का रूप ले लेती है। वोलोद्या के माता-पिता इसी का एक उदाहरण हैं। अगर माता और पिता अपने मन का सारा प्रेम, सारा जोश अपने बच्चों पर उंडेलते हैं, उनके अलावा उन्हें दुनिया में और कोई दिखता ही नहीं, तो प्रेम की यह अति एक न एक दिन दुर्भाग्य में बदल कर ही रहती है।

"ख़ुशियों के स्कूल" की मैंने जो कल्पना की थी, उसके बारे में माता-पिताओं को बताते हुए मैं यह सब सोच रहा था। यह बातचीत बड़ी मुश्किल थी। माता-पिता को संबोधित हर शब्द परिवार की अच्छाई और बुराई सब कुछ को ध्यान में रखकर कहा जाना चाहिए। मैं जब यह बता रहा था कि "ख़ुशियों के स्कूल" में ईमानदारी और सचाई का, परस्पर विश्वास का वातावरण छाया रहेगा, तो मेरे दिमाग़ में कोल्या के परिवार की ही बात घूम रही थी। परंतु इस परिवार के जीवन में व्याप्त कुटिलता के बारे में सभी माता-पिताओं को नहीं कहा जा सकता था: इससे कोल्या की मां को स्कूल से चिढ़ हो जाती और फिर वह शायद ही कभी आती। यहां तो कुछ और ही करने की ज़रूरत थी। परंतु क्या? देर तक सोचते रहने पर भी मैं इस जटिल प्रश्न का उत्तर नहीं पा सका था।

मैंने माता-पिताओं के सम्मुख बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का चित्र उतारा। आज ६ साल के नन्हे-मुन्ने बच्चे स्कूल आए हैं, १२ साल बाद वे वयस्क लोग होंगे, स्वयं माता-पिता बनेंगे। स्कूल में इस बात की पूरी कोशिश की जाएगी कि बच्चे अपनी मातृभूमि के सच्चे देशभक्त हों, कि उनके मन में अपनी जन्मभूमि से, मेहनतकश जनता से गहरा प्रेम हो, वे ईमानदार, सच्चे, मेहनती, भले और सुहृदय बनें, दूसरों का दुख-सुख समझें, बुराई और झूठ को वे कभी सहन न करें, साहसी बनें और कठिनाइयों के सामने

कभी घुटने न टेकें, वे विनम्र हों और तन से ही नहीं मन से भी सुंदर हों, स्वस्थ हों। हमें बच्चों को सुस्पष्ट बुद्धि, उदार हृदय, सुनहरी हाथों और उदात्त भावनाओंवाला व्यक्ति बनाना है। बच्चा परिवार का दर्पण है; जैसे पानी की बूंद में सूरज प्रतिबिंबित होता है, वैसे ही बच्चे में माता-पिता की नैतिक शुद्धता दर्पित होती है। स्कूल और माता-पिता का कार्यभार है—हर बच्चे को सुखी बनाना। सुख के अनेक रूप हैं। इन्सान के लिए अपनी क्षमता को निखार सकने, अपने काम से प्रेम करने और उसमें सृजनकर्त्ता बनने में भी सुख है, अपने चारों ओर के संसार के सौंदर्य का रसपान करने और दूसरों के लिए सौंदर्य का सृजन करने में भी सुख है, दूसरे इन्सान से प्यार करना, उसका प्रिय होना, बच्चों को सच्चा इन्सान बनाना—यह भी परम सुख है। माता-पिता के साथ मिलकर, उनके संयुक्त प्रयासों से ही हम अध्यापक बच्चों को मानव जीवन का सुख प्रदान कर सकते हैं। बच्चे और माता-पिता घर लौटते हैं, मैं उन्हें याद दिलाता हूं: "कल, ३१ अगस्त से हमारा 'ख़ुशियों का स्कूल' शुरू हो जाएगा।"

यह दिन मेरे लिए क्या लाएगा? आज बच्चे मां की उंगली पकड़े हैं, कल वे अकेले आएंगे। हर किसी की अपनी ख़ुशियां होंगी। हर किसी के लिए सुबह धूप खिलेगी और हर किसी के आगे होगी एक पूरी ज़िंदगी। उस दिन की पूर्ववेला में मुझे एक ही बात की सबसे ज्यादा चिंता थी कि स्कूल आने पर बच्चों की बचपन की ख़ुशियां न छिन जाएं। उलटे, बच्चों को स्कूल की दुनिया में इस तरह प्रवेश कराना चाहिए कि उनके जीवन में नई-नई ख़ुशियां आएं, कि संसार का बोध उबा देनेवाली पढ़ाई बन कर न रह जाए। पर साथ ही ऐसा भी न होने पाए कि स्कूल कभी न ख़त्म होनेवाला, देखने में आकर्षक मगर खोखला खेल ही बन जाए। हर दिन ऐसा हो कि वह बच्चों की बुद्धि, उनकी भावनाओं और दृढ़ संकल्प को समृद्ध करे।

नीले आकाश तले स्कूल

बच्चों की प्रतीक्षा में मेरा मन व्याकुल हो रहा था। सुबह ८ बजे २६ बच्चे आए। साशा नहीं आई थी (शायद मां की तबीयत ख़राब हो गई थी)। वोलोद्या नहीं था, हो न हो सो रहा होगा, मां ने उठाना नहीं चाहा होगा।

लगभग सभी बच्चे नए कपड़े और नए जूते पहने हुए थे। जूते देखकर मेरा माथा ठनका: गांवों के बच्चे सदा से गर्मियों के दिनों में नंगे पैर घूमने के आदी रहे हैं। यह शरीर को मज़बूत बनाने और रोगों से बचने का सबसे अच्छा उपाय है। माता-पिता क्यों बच्चों के पैरों को धरती के स्पर्श से, सुबह की ओस से और धूप में तपी ज़मीन से बचाना चाहते हैं? यह सब वे बच्चों की भलाई के लिए करते हैं और होता बुरा है: हर साल गांवों में फ़्लू, काली खांसी, आदि का शिकार होनेवाले बच्चों की संख्या बढ़ रही है। बच्चों का लालन-पालन तो ऐसा होना चाहिए कि वे न ठंड से डरें और न गरमी से ही।

"चलो, बच्चो, स्कूल चलें," यह कहकर मैं बाग़ की ओर चल दिया। बच्चे हैरान-परेशान मेरी ओर देख रहे थे।

"हां, हां, बच्चो, हम स्कूल ही जा रहे हैं। हमारा स्कूल नीले आसमान तले, हरी-हरी घास पर, नाशपाती के छायादार पेड़ के नीचे, अंगूर के बग़ीचे में, हरे-भरे मैदान में होगा। आओ, अब अपने जूते यहां उतार दें और नंगे पैर चलें," बच्चे ख़ुशी से चहचहा उठे–गर्मियों में जूते पहनकर चलने की उनको आदत नहीं, सो उनके लिए यह आरामदेह भी नहीं था। "कल से नंगे पैर ही आना, हमारे स्कूल के लिए यही सबसे अच्छा होगा।"

हम अंगूर वाटिका की ओर चल दिए। पेड़ों के पीछे एक शांत कोने में अंगूर की बेलें उग रही थीं। लोहे की सीखों के ढांचे पर चढ़ी हुई बेलों से हरी झोंपड़ी बनी हुई थी। झोंपड़ी के अंदर ज़मीन पर कोमल घास उग रही थी। यहां पूर्ण शांति थी, इस हरे झुटपुटे में से सारी दुनिया हरी लगती थी। हम घास पर बैठ गए।

"यही हमारा स्कूल है। यहां से हम नीले आकाश को, अपने बाग़ और गांव को, सूरज को देखेंगे, निहारेंगे।"

प्रकृति की सुंदरता पर मंत्र-मुग्ध बच्चे शांत हो गए। पत्तियों के बीच अंगूर के पीले-पीले गुच्छे लटक रहे थे। बच्चे स्वादिष्ट फल चखना चाहते थे। अंगूर भी मिलेगा, बच्चो, पर पहले सौंदर्य का रसपान करो। बच्चे अपने चारों ओर देखते हैं। लगता है पूरे बाग़ पर हरा-सा कोहरा छाया हुआ है, मानो यह किसी परी-कथा का जलगत संसार हो। धरती की सतह–खेत, चरागाहें और राहें–इस हरित धुंध में थरथराती-सी लगती है और पेड़ों पर मानो सूरज की चिनगारियां बरस रही हैं।

"सूरज चिनगारियां बिखेर रहा है," कात्या धीरे से कहती है।

बच्चे प्राकृतिक सौंदर्य को निहारने में मग्न हैं। मैं उन्हें सूरज की कहानी सुनाने लगता हूं।

"हां, बच्चो, कात्या ने कितना अच्छा कहा है: सूरज चिनगारियां बिखेर रहा है। सूरज बहुत ऊपर आसमान में रहता है। उसके दो भीमकाय सुनार हैं, जिनकी लंबी-लंबी दाढ़ियां आग की लपटों जैसी हैं। पौ फटने से पहले सुनार सूरज के पास जाते हैं, वह उन्हें चांदी के तारों के दो गुच्छे देता है। सुनार सोने की निहाई पर तार रखकर कूटने लगते हैं। वे सूरज के लिए चांदी का मुकुट बनाते हैं, उनके हथौड़ों की चोटों से चारों ओर चिनगारियां बिखरती हैं। ये चिनगारियां पृथ्वी पर भी गिरती हैं, तुम इन्हें ही देख रहे हो। शाम को थके-मांदे सुनार सूरज के पास मुकुट ले जाते हैं। सूरज अपनी सुनहरी लटों पर चांदी का मुकुट पहनता है और अपने जादुई बाग़ में आराम करने चला जाता है।"

कहानी सुनाने के साथ-साथ मैं काग़ज़ पर चित्र भी बनाता जाता हूं: सोने की निहाई के पास दो भीमकाय सुनार खड़े हैं, उनके हथौड़ों की चोटों से चारों ओर चिनगारियां बिखर रही हैं।

बच्चे इस जादुई दुनिया पर मंत्र-मुग्ध कहानी सुनते हैं, लगता है वे ज़रा-सी आवाज़ करते हुए भी डर रहे हैं कि कहीं यह विमुग्धता भंग न हो जाए। और फिर सवालों की झड़ी लग जाती है: भीमकाय सुनार रात को क्या करते हैं? सूरज को हर बार नया मुकुट क्यों चाहिए? रजत चिनगारियां हर रोज़ पृथ्वी पर गिरती हैं न? तो फिर वे कहां ग़ायब हो जाती हैं?

मेरे प्यारे बच्चो, ये सब बातें मैं तुम्हें बताऊंगा, आगे और बहुत समय होगा, अभी तो मैं तुम्हें अंगूर देना चाहता हूं। बच्चे बड़ी अधीरता से टोकरी भरने तक इंतज़ार करते हैं। मैं उन्हें दो-दो गुच्छे देता हूं: कहता हूं एक खा लो, दूसरा मां को देना, ताकि वह भी स्वाद चखें। बच्चों का धीरज देखकर आश्चर्य होता है: वे गुच्छों को काग़ज़ में लपेटते हैं। और मुझे यह विचार चिंतित करता है कि क्या घर पहुंचने तक यह धीरज बना रहेगा? क्या तोल्या और कोल्या अपनी-अपनी मां को अंगूर देंगे? नीना को मैं कुछेक गुच्छे देता हूं: बीमार मां के लिए, बहन और दादी के लिए। वार्या पिता के लिए ३ गुच्छे लेती है। मेरे दिमाग़ में ख़याल आता है: बच्चे थोड़े बड़े हो जाएंगे, तो हर कोई अपनी अंगूर वाटिका लगा-

एगा... वार्या के घर पर इस पतझड़ में दसेक बेलें लगानी होंगी, जो अगले साल ही फल देने लगें। यह उसके पिता के लिए दवाई होगी।

हम परी-लोक के हरे झुटपुटे में से बाहर निकलते हैं। मैं बच्चों को कहता हूं :

"कल शाम ढलने से पहले, छह बजे आना। भूलना नहीं।"

मैं देखता हूं कि बच्चे घर नहीं जाना चाहते। पर वे चले जाते हैं—सफ़ेद काग़ज़ में लिपटे अंगूर के गुच्छे छाती से चिपकाए। काश, मैं जान पाऊं कि कौन बच्चा अंगूर घर तक नहीं ले गया! लेकिन बच्चों से यह पूछा नहीं जा सकता। हां, अगर कोई ख़ुद बता देगा, तो अच्छा होगा।

इस तरह नीले आसमान तले स्कूल का पहला दिन बीता। उस रात को मुझे सूरज की रजत चिनगारियों का सपना आया। सुबह तड़के ही मेरी आंख खुल गई और मैं देर तक सोचता रहा कि आगे क्या करूंगा। मैंने कोई विस्तृत योजना नहीं बनाई थी कि किस दिन बच्चों को क्या बताऊंगा, उन्हें कहां ले जाऊंगा। हमारे स्कूल का जीवन उस विचार द्वारा निर्धारित होता था, जो मेरी प्रेरणा का स्रोत था : बच्चा अपनी प्रकृति से ही जिज्ञासु अन्वेषक होता है। सो मेरा प्रयत्न यही था कि बच्चे अपने चारों ओर के संसार को उसके सजीव रंगों में देखें, मन के तारों को झनझनानेवाली उसकी ध्वनियों को सुनें, कि कहानियों और खेलों में, बच्चों के अपने सृजनात्मक कार्यों में, उनके हृदयों को प्रेरित करनेवाले सौंदर्य में और लोगों की भलाई करने की उनकी कामना में ही यह संसार उनके सामने प्रकट हो। अगर आप बच्चे के हृदय तक पहुंचना चाहते हैं, तो इसका सबसे विश्वसनीय रास्ता है—कहानियों, कल्पना, खेलों और बच्चों के मौलिक सृजनात्मक कार्यों के ज़रिए। मैं बच्चों को इस तरह उनके चारों ओर की दुनिया से परिचित कराऊंगा कि वे हर दिन उसमें कोई नई बात खोजें, कि हमारा हर क़दम **विचारों और शब्दों के स्रोत**—प्रकृति के अनुपम सौंदर्य—**की यात्रा हो।** मैं यह कोशिश करूंगा कि मेरा हर छात्र बुद्धिमान चिंतक और अन्वेषक बने, कि विश्व बोध की दिशा में उसका हर क़दम उसके हृदय को अधिक उदार बनाए तथा उसके संकल्प को सुदृढ़ करे।

दूसरे दिन बच्चे सूरज डूबने से पहले स्कूल आए। सितंबर के शांत दिन का अंतिम पहर था। हम गांव से बाहर जाकर ऊंचे टीले पर बैठ गए। हमारे सामने खुला मैदान था, जो सूरज की सुनहरी किरणों में चमचमा रहा था, दूर क्षितिज पर टीले दिख रहे थे। मैदान में पाप्लर के सुघड़

वृक्ष उग रहे थे। हम विचारों और शब्दों के स्रोत पर पहुंच गए थे। कहानी और कल्पना ही वह कुंजी है, जिसकी मदद से इस स्रोत को खोला जा सकता है और तब उसमें से जीवनदायी धाराएं फूट निकलती हैं। मुझे याद आया कैसे कल कात्या ने कहा था: "...सूरज चिनगारियां बिखेर रहा है..." यहां मैं पाठकों को बताना चाहता हूं कि दस साल बाद स्कूल की अंतिम परीक्षा में कात्या ने अपनी मातृभूमि पर निबंध लिखा और प्रकृति के प्रति अपना प्रेम प्रकट करते हुए उसने यही शब्द दोहराए। इतने सशक्त होते हैं वे चित्र, वे बिंब जो बच्चे के मस्तिष्क में उसकी कल्पना बनाती है। मैंने हज़ारों बार यह देखा है कि बच्चे जब अपनी कल्पना से ये चित्र, ये बिंब बनाते हैं, अपने चारों ओर की दुनिया में इन्हें बसाते हैं, तो इस तरह वे संसार के सौंदर्य का बोध तो पाते ही हैं, साथ ही उन्हें सत्य का भी ज्ञान होता है। बच्चा कथा-कहानियों के बिना, कल्पना के खेल के बिना जी नहीं सकता, इसके बिना यह संसार उसके लिए चित्रपट पर बनी एक सुंदर तस्वीर मात्र होता है; कथा-कहानियां इस तस्वीर में प्राण फूंकती है।

कथा-कहानियां उस ताज़ी हवा के झोंके के समान हैं, जो बच्चों के चिंतन और वाणी की सुलगती आग को भड़काता है। बच्चों को केवल कहानियां सुनना ही अच्छा नहीं लगता। वे ख़ुद भी कहानियां रचते हैं। अंगूर की हरी पत्तियों के पीछे से बच्चों को यह संसार दिखाते समय मैं यह जानता था कि मैं उन्हें कोई कहानी सुनाऊंगा, लेकिन कौन-सी कहानी, इसका मुझे कोई अंदाज़ नहीं था। मेरी कल्पना को उड़ान के पंख दिए कात्या के शब्दों ने "सूरज चिनगारियां बिखेर रहा है..."। बच्चों की कल्पना शक्ति जो चित्र बनाती है, वे कितने सच्चे, सटीक और कलात्मक दृष्टि से कितने सजीव होते हैं, उनकी भाषा कितनी सुलझी हुई और कितनी रंग-बिरंगी होती है!

इससे पहले कि बच्चे किताब खोलकर एक-एक अक्षर करके शब्दों को पढ़ने लगते, मेरी चेष्टा यही थी कि वे संसार की सबसे अनुपम पुस्तक—प्रकृति की पुस्तक—के पृष्ठ पढ़ें।

यहां, प्रकृति की गोद में मेरे लिए यह विचार ख़ास तौर पर बिल्कुल साफ़, स्पष्ट हो गया था कि हम अध्यापकों का सरोकार उस वस्तु से होता है, जो प्रकृति में सबसे कोमल, सबसे सूक्ष्म और सबसे अधिक संवेदनशील है, और यह है—बाल-मस्तिष्क। बाल-मस्तिष्क के बारे में सोचते हुए

मुझे गुलाब के फूल का ख़याल आता है, जिसकी पंखुड़ी पर ओस की बूंद थरथरा रही है। कितनी सावधानी, कितनी सतर्कता और प्यार से यह फूल तोड़ना होगा, ताकि ओस की यह बूंद न गिरने पाए। हम अध्यापकों को भी हर पल, हर क्षण इतनी ही सावधानी से काम करना चाहिए: आख़िर हम उस वस्तु को छूते हैं, जो प्रकृति में सबसे सूक्ष्म और सबसे कोमल है। हम विकासमान शरीर के चिंतनशील भूद्रव्य का स्पर्श करते हैं।

बच्चे का चिंतन चित्रों के रूप में होता है। इसका अर्थ यह है कि उदाहरणतः, जब वह पानी की बूंद की कहानी सुन रहा होता है, तो वह अपनी कल्पना में प्रभात की रुपहली धुंध की लहरों की, काली घटा की भी और बादलों के गरजने और बरसने की भी तस्वीर बनाता है। उसकी कल्पना के ये चित्र जितने सुस्पष्ट और सजीव होंगे, उतनी ही अधिक अच्छी तरह वह प्रकृति के नियमों को समझेगा। उसके मस्तिष्क की कोमल, संवेदनशील तंत्रिकोशिकाएं (न्यूरान) अभी कमजोर हैं, उन्हें विकसित किया जाना चाहिए, मज़बूत, सुदृढ़ बनाया जाना चाहिए।

बच्चा सोच रहा है... इसका अर्थ यह है कि उसके प्रमस्तिष्क गोलार्ध के कार्टेक्स की तंत्रिकोशिकाओं का एक निश्चित वर्ग चारों ओर के संसार के बिंबों (चित्रों, वस्तुओं, परिघटनाओं, शब्दों) को ग्रहण कर रहा है और सूक्ष्मतम तंत्रिकाओं के ज़रिए संकेत आ रहे हैं। तंत्रिकोशिकाएं इस सूचना को "संसाधित" करती हैं, उसे वर्गों में बांटती, व्यवस्थित करती और उसकी तुलना करती हैं, और उधर नई सूचना आती जाती है, उसे भी निरंतर ग्रहण और "संसाधित" करना चाहिए। नए-नए बिंबों को ग्रहण कर सकने और साथ ही सूचना को "संसाधित" भी कर सकने के लिए तंत्रिकोशिकाओं की तंत्रिकीय ऊर्जा अत्यंत अल्प समय में बिंबों को ग्रहण करने के काम से उनके "संसाधन" के काम में लग जाती है।

तंत्रिकोशिकाओं की तंत्रिकीय ऊर्जा का इस आश्चर्यजनक तेज़ी से एक काम से दूसरे काम में लग जाना ही वह परिघटना है, जिसे **चिंतन करना या सोचना** कहते हैं। बाल-मस्तिष्क की कोशिकाएं इतनी कोमल होती हैं तथा प्रत्यक्ष ज्ञान के विषयों पर उनकी प्रतिक्रिया इतनी संवेदनशील होती है कि वे केवल उसी हालत में ठीक तरह से काम कर सकती हैं, जबकि प्रत्यक्ष ज्ञान के विषय, वे विषय जिन्हें बच्चे को समझना है, ऐसे बिंब हों, जिन्हें देखा, सुना या छुआ जा सके। विचारों के जागने का यह खेल ही चिंतन का सार है। और यह केवल तभी संभव है, जबकि बच्चे के

सामने एक ठोस, वास्तविक बिंब हो या फिर बच्चे को जब किसी चीज़ के बारे में बताया जा रहा हो, तो शब्दों की सहायता से उस चीज़ का जो चित्र, जो बिंब उतारा जाए वह इतना स्पष्ट, इतना सशक्त होना चाहिए कि बच्चे को यह लगे मानो वह उसे देख, सुन रहा है, उसका स्पर्श कर रहा है। यही कारण है कि बच्चों को कथा-कहानियां सुनना इतना अच्छा लगता है।

बाल-मस्तिष्क की प्रकृति की यह मांग है कि बच्चे का बौद्धिक विकास विचारों के स्रोत के पास हो, दूसरे शब्दों में, यह ठोस, वास्तविक बिंबों के बीच और सर्वप्रथम प्रकृति की गोद में हो, जहां बच्चा ठोस बिंब को देखे, सुने और फिर उसका विचार इस बिंब के बारे में प्राप्त सूचना के "संसाधन" के काम में लगे। जब बच्चे को प्रकृति से दूर रखा जाता है, जब बच्चा पढ़ाई के पहले दिन से ही केवल शब्दों के रूप में सारा ज्ञान और बोध पाता है, तो उसके मस्तिष्क की कोशिकाएं जल्दी ही थक जाती हैं और अध्यापक द्वारा प्रस्तुत काम को निभा नहीं पातीं। और इन कोशिकाओं को तो अभी विकसित, सशक्त, सुदृढ़ होना है। यहीं पर उस बात का कारण छिपा है, जो प्राथमिक कक्षाओं में अक्सर देखने में आती है: बच्चा चुपचाप बैठा अध्यापक की आंखों में आंखें डाले देखता है, मानो बड़े ध्यान से सुन रहा हो, लेकिन वास्तव में वह एक शब्द भी नहीं समझ पाता, क्योंकि अध्यापक बस बोलता जाता है, बोलता जाता है, क्योंकि बच्चे को नियमों पर सोच-विचार करना पड़ता है, सवाल हल करने और उदाहरण सोचने पड़ते हैं—और ये सब अमूर्त, सामान्यीकृत बातें होती हैं। यहां कोई सजीव बिंब तो होता नहीं, सो बच्चे का दिमाग़ थक जाता है। बस यहीं से बच्चे पिछड़ने लगते हैं। यही कारण है कि बच्चों के चिंतन को, सोचने-समझने की शक्ति को प्रकृति के बीच विकसित और सुदृढ़ करना चाहिए। यह बाल-शरीर के विकास के नैसर्गिक नियमों की मांग है। यही कारण है कि प्रकृति की हर यात्रा चिंतन का, बौद्धिक विकास का पाठ होती है।

हम टीले पर बैठे थे। हमारे चारों ओर टिड्डों का समूह गान गूंज रहा था, हवा में जंगली फूलों, घास-पत्तियों की सुगंध फैल रही थी। हम सब चुप थे।

बच्चों को बहुत ज़्यादा कहानियां भी नहीं सुनानी चाहिए। शब्द कोई खेल नहीं और शब्दों की अति, शब्दों से हुई परितृप्ति, किसी भी अन्य

परितृप्ति से अधिक ख़तरनाक है। बच्चे के लिए केवल अध्यापक की बातें सुनना ही ज़रूरी नहीं है, चुप रहना भी उतना ही आवश्यक है। इन क्षणों में वह सोचता है, वह उन सब बातों को समझने की कोशिश करता है, जो उसने देखी और सुनी हैं। अध्यापक के लिए यह जानना बहुत ज़रूरी है कि उसे कब चुप हो जाना चाहिए। बच्चों को किसी हालत में भी निष्क्रिय श्रोता नहीं बनने देना चाहिए। हर उज्ज्वल बिंब को समझ पाने के लिए, चाहे वह कोई ठोस बिंब हो या शब्दों की सहायता से बनाया गया चित्र, काफ़ी समय और तंत्रिकीय ऊर्जा की आवश्यकता होती है। बच्चों को सोचने-समझने का अवसर दे सकना – अध्यापक का एक सबसे महत्वपूर्ण और अत्यंत सूक्ष्म गुण है। और जब आप प्रकृति की गोद में बैठे हों, तो बच्चों को सुनने देखने, और अनुभव करने का भी अवसर देना चाहिए।...

हम सब बड़े ध्यान से टिड्डों का समवेत गान सुनते हैं। मुझे यह देखकर ख़ुशी होती है कि बच्चे इतनी तन्मयता से यह आश्चर्यजनक संगीत सुन रहे हैं। मैं चाहता हूं कि उन्हें यह शांत सुहावनी संध्या, खेतों-मैदानों की यह सुरभि और यह अनूठी स्वरलहरी सदा याद रहे। एक न एक दिन वे टिड्डों के बारे में बाल-कथा रचेंगे।

अब बच्चों की विचारमग्न नज़रें डूबते सूरज पर टिक जाती हैं। सूरज क्षितिज के पीछे छिप जाता है और आसमान पर सायंकाल के हल्के-हल्के, कोमल रंग फैल जाते हैं।

"लो, सूरज आराम करने चला गया," लरीसा कहती है और उसके चेहरे पर उदासी की छाया दिखाई देती है।

"सुनार सूरज के लिए नया मुकुट ले आए हैं... पर वह कलवाले मुकुट का क्या करता है?" लीदा पूछती है।

बच्चे मेरी ओर देखते हैं, इस आशा से कि मैं आगे कहानी सुनाऊं, लेकिन मैं यह तय नहीं कर पाया हूं कि आगे की कहानी के लिए कौनसा बिंब चुना जाए। फ़ेद्या मेरी मदद करता है।

"कलवाला मुकुट पिघलकर आसमान में फैल गया है," वह हौले से कहता है।

तनावपूर्ण ख़ामोशी छा जाती है। सब इस इंतज़ार में हैं कि फ़ेद्या आगे क्या कहेगा। ज़ाहिर है कि उसने कोई कहानी सोच ली है और उसके चुप रहने का कारण शायद यही है कि वह झिझक रहा है। मैं फ़ेद्या की मदद करता हूं:

"हां, मुकुट पिघल कर आसमान में फैल गया है। दिन भर सूरज की अग्निल जटाओं पर पड़ा-पड़ा वह तप जाता है और मोम जैसा नरम हो जाता है। सूरज ने उसे हाथ लगाया और वह पिघल कर सुनहरी सरिता-सा सायंकालीन गगन में बह निकला। अपने जादुई बाग़ में आराम करने जा रहे सूरज की अंतिम किरणों में यह सरिता जगमगा रही है। देखो, कैसे लाली लहरा रही है। ज्यों-ज्यों सूरज दूर जा रहा है, लाली गहराती जा रही है। जल्दी ही सूरज अपने जादुई बाग़ में चला जाएगा और आसमान पर तारे निकल आएंगे।"

"ये तारे क्या होते हैं? कहां से निकल आते हैं ये? दिन में क्यों नहीं दिखाई देते?" बच्चे पूछते हैं। पर बच्चों के मस्तिष्क में एकसाथ बहुत ज्यादा चित्र नहीं भरने चाहिए। आज के लिए बहुत हो गया है। मैं बच्चों का ध्यान दूसरी ओर ले जाता हूं।

"उधर मैदान में देखो। देख रहे हो कैसे वहां नीचे चरागाहों में अंधेरा छाता जा रहा है? उन टीलों को देखो—वे रूई के गाले-से लग रहे हैं, सांझ के झुटपुटे में वे मानो तैर रहे हैं। ज़रा ग़ौर से देखो—इन टीलों में तुम्हें क्या दिखाई देता है?"

"जंगल... झाड़ियों का झुरमुट... गायों का झुंड... गड़रिया और भेड़ें। लोगों ने मैदान में रात बिताने के लिए पड़ाव डाला है। उन्होंने अलाव जलाया है, पर अलाव नहीं दिख रहा, हवा में बस धुआं तैर रहा है..." अंधेरे में डूबते टीलों को देखकर बच्चों की कल्पना ऐसे-ऐसे चित्र बनाती है। मैं बच्चों से कहता हूं कि वे घर जाएं, लेकिन वे जाना नहीं चाहते। कहते हैं और दो मिनट बैठ लें। संध्या की इस वेला में जब सारी दुनिया रहस्य की चादर ओढ़ लेती है, बच्चों की कल्पना को पंख लग जाते हैं। मैं कहता हूं: देखो, झुटपुटा और अंधेरा दूर-दराज़ के जंगलों और घाटियों में से नदियों की तरह बहते आ रहे हैं। मेरे यह कहने भर की देर है कि बच्चों की कल्पना में अंधेरा और झुटपुटा रोमांच-कारी जीवों का रूप ले लेते हैं। सान्या इन जीवों की कहानी सुनाने लगता है: "वे सात जंगल पार, बहुत बड़ी गुफा में रहते हैं। दिन को वे गहरे, अंधेरे खड्ड में चले जाते हैं, वहां सोते हैं और नींद में उसांसें भरते हैं (उसांसें क्यों?—यह तो कहानी कहनेवाला ही जाने...)। जैसे ही सूरज अपने जादुई बाग़ में जाता है, वे बाहर निकल आते हैं। उनके बड़े-बड़े पंजों पर नरम-नरम रोयों की गद्दियां हैं, इसलिए किसी को उनके क़दमों

की ग्राहट सुनाई नहीं देती। झुटपुटा ग्रौर ग्रंधेरा–दोनों बड़े भले जीव हैं, वे किसी को दुख नहीं पहुंचाते।"

बच्चे ग्रब यह कहानी सुनाना चाहते हैं कि कैसे ग्रंधेरा ग्रौर झुटपुटा नन्हे-मुन्नों को सुलाते हैं, पर नहीं, ग्राज के लिए बहुत हो गया। हम घर जाते हैं, बच्चे कल भी शाम को ग्राना चाहते हैं, क्योंकि जैसे वार्या कहती है: "शाम को बड़ी ग्रच्छी-ग्रच्छी कहानियां सूझती हैं।"

बच्चे क्यों इतने शौक़ से कथा-कहानियां सुनते हैं, उन्हें सांझ का झुटपुटा इतना ग्रच्छा क्यों लगता है, जब सारा वातावरण ही उनकी कल्पना को उड़ान की प्रेरणा देता है? बच्चों की वाक्शक्ति ग्रौर चिंतन को विकसित करने में कथा-कहानियां ग्रौर किसी भी दूसरे साधन की ग्रपेक्षा ग्रधिक सशक्त क्यों रहती हैं? इसलिए कि कथा-कहानियों के बिंब, उनमें बने चित्र भावनाग्रों के रंगों में रंगे होते हैं। कहानियों के शब्द बच्चे की चेतना में साकार हो उठते हैं। रोमांचकारी चित्रों का सृजन करनेवाले शब्दों को सुनते हुए या स्वयं उनको बोलते हुए बच्चे विस्मय-विमुग्ध हो जाते हैं। स्कूल में बच्चों को कथा-कहानियां सुनाई ही नहीं, बल्कि स्वयं उनसे रचवाई भी न जाएं, इसकी तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। मेरे सामने कुछ कहानियां हैं, जो बच्चों ने "ख़ुशियों के स्कूल" के पहले दो महीनों में रची थीं। इनमें बच्चे के विचारों, उनकी भावनाग्रों, इच्छाग्रों ग्रौर दृष्टिकोणों की दुनिया निहित है।

ख़रगोश (शूरा)

मां ने नए साल पर मुझे छोटा-सा मख़मली ख़रगोश लाकर दिया। मैंने उसे नए साल के पेड़ की सजी-धजी टहनियों के बीच रख दिया। रात हुई, तो सब लोग बिस्तर में लेट गए। पेड़ पर एक छोटी-सी बत्ती जल रही थी। देखता क्या हूं कि ख़रगोश टहनी से नीचे कूदा ग्रौर पेड़ के चक्कर काटने लगा। थोड़ी देर तक वह उछलता-कूदता रहा ग्रौर फिर वापस पेड़ पर जा बैठा।

सूरजमुखी (कात्या)

सूरज उगा। चिड़ियां जागीं। भरत पंछी ग्रासमान में उड़ने लगा। सूरजमुखी भी जागा। उसने ग्रंगड़ाई ली ग्रौर ग्रपनी पंखुड़ियों से ग्रोस छिटक दी। फिर वह सूरज की ग्रोर मुड़ा: "नमस्ते, सूरज।

सूस करने लगता है और सौंदर्य की अनुभूति ही उसके हृदय में ये भाव पैदा करती है। बच्चों के युवा शिक्षकों को मैं यह सलाह देना चाहता हूं: बड़े ध्यान से और बहुत सोच-समझकर बच्चों को उस क्षण के लिए तैयार कीजिए, जब आप मातृभूमि की महानता के बारे में पहले शब्द कहेंगे। ये शब्द श्रेष्ठ भावनाओं से प्रेरित होने चाहिए। अलंकारपूर्ण शब्दों का प्रयोग कीजिए—अगर आपके भाव शुद्ध और उदात्त हैं, तो इसमें डरने की कोई बात नहीं। अगर आप चाहते हैं कि ये शब्द सुनकर बच्चों के हृदय की धड़कन तेज़ हो जाए, तो इसके लिए अच्छी तरह से ज़मीन तैयार करनी चाहिए, बाल-चेतना के खेत को अच्छी तरह से जोत कर उसमें सौंदर्य के बीज बोने चाहिए।

यह कोशिश करनी चाहिए कि बच्चा सुंदरता को देखे, अनुभव करे और उसका मन ख़ुशी से भर उठे, कि उसके मनोमस्तिष्क में सदा के लिए वे बिंब, वे चित्र अंकित हो जाएं, जो उसके लिए मातृभूमि का साकार रूप हैं। सुंदरता ही इन्सानियत का, नेक भावनाओं और हार्दिक संबंधों का हाड़-मांस है। मुझे यह देख कर ख़ुशी होती थी कि तोल्या, स्लावा, कोल्या, वीत्या और साशा के बाल-हृदयों पर निष्ठुरता की जो छाप थी वह कैसे धीरे-धीरे कम होती जा रही थी। मुझे लगता था कि सौंदर्य के सम्मुख बच्चों का विस्मय और विमुग्धता, उनकी मुस्कान ही बाल-हृदयों की गहराइयों तक पहुंचने का रास्ता है।

"ख़ुशियों के स्कूल" का जीवन किन्हीं सख़्त सीमाओं में नहीं बंधा हुआ था। हमने ऐसा कोई नियम नहीं बनाया था कि बच्चों को कितनी देर तक नीले आकाश तले रहना चाहिए। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि बच्चे उकता न जाएं, कि बच्चे मन ही मन उस क्षण का इंतज़ार न करने लगें, जब अध्यापक कहेगा: "अच्छा, अब घर जाओ।" मैं स्कूल का काम ऐसे वक़्त पर ख़त्म करने की कोशिश करता था, जबकि प्रेक्षण के विषय में या जो काम हम कर रहे होते थे, उसमें बच्चों की रुचि तीव्र होती थी। बच्चों को बेसब्री से कल का इंतज़ार करने दो, उन्हें आनेवाले दिन से नई ख़ुशियों की आशा करने दो, उन्हें सपने में वे रुपहली चिनगारियां देखने दो, जो सूरज धरती पर बिखेरता है। एक दिन बच्चे घंटा-डेढ़ घंटा नीले गगन तले रहते और दूसरे दिन चार घंटे। यह सब इस बात पर निर्भर होता कि अध्यापक बच्चों को उस दिन कितनी ख़ुशियां दे पाता है। एक और बात बहुत महत्वपूर्ण है, वह यह कि हर बच्चा स्वयं ख़ुशी

अनुभव ही न करे, बल्कि वह भी दूसरों को ख़ुशियां दे, कि बाल-समुदाय के जीवन में उसके सृजन का अंश भी हो।

उस साल शरद ऋतु बड़ी सुहावनी रही, बहुत दिनों तक बारिशें नहीं हुईं और ठंड नहीं पड़ी। अक्तूबर के मध्य तक पेड़ों पर पत्तियां पीली नहीं पड़ीं। कई बार बादल गरजे, मानो गर्मियां लौट रही हों, सुबह को घास पर ओस की बूंदें झिलमिलाती थीं। इस तरह हमें अपने काम के लिए अच्छे दिन मिले। कुछेक बार हम अपने टीले पर गए और वहां हमने बादलों पर "सैर" की। बाल-हृदयों पर इन क्षणों की अमिट छाप पड़ी। रूई के गालों जैसे सफ़ेद-सफ़ेद बादल बच्चों के लिए एक आश्चर्यजनक संसार ही थे। बादलों की तेज़ी से बदलती अनूठी, अनोखी रूप-रेखाओं में बच्चों को पशु-पक्षी और कथा-कहानियों के भीमकाय जीव दिखते: बच्चे कल्पना के पंखों पर बादलों से भी दूर, नीले सागर और जंगलों के पार, अनजाने देशों की उड़ानें भरते। और इन उड़ानों में हर बच्चे के मन की अपनी विशिष्ट दुनिया की झलक मिलती थी।

आकाश में अनूठा बादल तैर रहा है। मैं बच्चों से पूछता हूं:

"बच्चो, तुम्हें इस बादल में क्या दिखाई देता है?"

"बूढ़ा गड़रिया टोपी पहने लाठी पर झुका खड़ा है," वार्या कहती है। "वह देखो, उसके पास भेड़ों का झुंड है। आगे-आगे टेढ़े सींगोंवाला मेढ़ा है और उसके पीछे मेमने हैं... बूढ़े के कंधे पर झोला लटक रहा है और उसमें से कोई झांक रहा है।"

"नहीं, यह बूढ़ा नहीं है," पाव्लो कहता है। "यह तो हिम पुतला है, जैसा हमने जाड़ों में बनाया था। वह देखो, उसके हाथ में डंडेवाला झाड़ू भी है। और सिर पर टोपी थोड़े ही है, वह तो बाल्टी रखी हुई है।"

"नहीं, यह हिम पुतला नहीं है, यह तो घास का ढेर है," यूरा बोल उठता है। "ढेर के ऊपर दो गड़रिये खड़े हैं। वह देखो, वे घास नीचे फेंक रहे हैं, नीचे गाड़ी खड़ी है। कहां है मेढ़ा? मेढ़ा नहीं, गाड़ी है। और वह सींग नहीं, जूआ है..."

"यह तो बहुत ही बड़ा ख़रगोश है। मैंने सपने में इतना बड़ा ख़रगोश देखा था। नीचे कोई गाड़ी-वाड़ी नहीं है, वह तो ख़रगोश की दुम है।"

मैं चाहता हूं कि सब बच्चे कल्पना करें, लेकिन कोल्या, स्लावा, तोल्या और मीशा जाने क्यों चुप रहते हैं। कोल्या को देखकर मेरे मन में टीस उठती है। उसके चेहरे पर वही बड़प्पन का भाव है, जैसा उन

बड़ों के चेहरों पर होता है, जो बच्चों के खेलों को अपने लिए बहुत तुच्छ बात समझते हैं। बात क्या है? आखिर मैंने इस बालक की आंखों को सुंदरता की ख़ुशी से चमकते देखा है।... उन दिनों मैंने इस बात पर ज्यादा सोच-विचार तो नहीं किया था, पर हां, मन ही मन मैं यह महसूस करता था कि जब तक बच्चा बचपन की ख़ुशियों में ख़ुश नहीं होता, जब तक उसकी आंखें सच्चे हर्ष से चमक नहीं उठतीं, जब तक बालसुलभ शरारतों में उसका मन नहीं लगता, तब तक मुझे यह कहने का कोई हक़ नहीं कि शिक्षक के नाते उस पर मेरा कोई प्रभाव है। बच्चा तो बच्चा ही होना चाहिए। अगर कहानी सुनते हुए बुराई और भलाई का संघर्ष उसके मन को नहीं झकझोरता, अगर हर्ष और उत्साह की जगह उसकी आंखों में उदासीनता का, तिरस्कार का, बड़प्पन का भाव दिखता है, तो इसका मतलब यह है कि इस बाल-हृदय का कोई तार कहीं टूट गया है और इस बाल-आत्मा की कालिख धोने के लिए बहुत श्रम करना पड़ेगा।

क्षितिज पर अनोखा बादल दिखाई देता है, वह जादुई महल-सा लगता है, जिसके चारों ओर ऊंची-ऊंची दीवारें और पहरेदारों की बुर्जियां हैं। बच्चे अपनी कल्पना-शक्ति से महल की अस्पष्ट रूपरेखा पूरी कर लेते हैं और यूरा जादुई नगरी की कहानी सुनाने लगता है, जो सात समुद्र पार है, जहां दुष्ट चुड़ैल है और वीर राजकुमार सुंदरी को बचाता है। वीत्या की कल्पना में एक दूसरी ही कहानी जन्म लेती है। हमारे देश की सीमाओं से बहुत दूर एक भयानक जीव रहता है, जो लड़ाई छेड़ने की सोच रहा है। कल्पना के पंख बालक को ऐसे विमान पर बिठा देते हैं, जो एक क्षण में ही उस गुफा के ऊपर जा पहुंचता है, जहां वह भयानक जीव रहता है। बालक उसे मार डालता है और संसार में सदा के लिए शांति का राज हो जाता है।

कुछ समय पश्चात मैंने बच्चों को गरम देशों के बारे में बताया, जहां कभी बर्फ़ नहीं पड़ती। मैंने उन्हें अजीबोगरीब नक्षत्रों, नीले महासागर और ऊंचे-ऊंचे नारियल के पेड़ों के बारे में बताया। मेरी इन कहानियों में वास्तविकता कपोल-कल्पना के साथ घुली-मिली होती थी, इस तरह मैं बच्चों को दूर-दराज़ देशों की झलक दिखाने की कोशिश करता था। मैं उन्हें नए-नए देशों और वहां के लोगों के बारे में, वनस्पति और जीव जगत के बारे में, सागरों-महासागरों और प्राकृतिक परिघटनाओं के बारे में बताता था।

मैं बच्चों को उस दुनिया के बारे में बताने लगा जहां इन्सान इन्सान को दास बनाता है। मेहनतकशों और विशेषतः बच्चों को क्या-क्या तकलीफ़ें सहनी पड़ती हैं, यह सब सुनकर बच्चों के मन में यह विचार जागता कि संसार में बुराई और भलाई का संघर्ष चल रहा है, कि हमारे देश के लोग इन्सान के सुख, मान और स्वाधीनता के लिए संघर्ष करते हैं। मेरी चेष्टा यह थी कि छोटी उम्र से ही मेरा हर शिष्य यह समझने लगे कि इन्सान द्वारा इन्सान का शोषण सामाजिक बुराई है और वह कभी भी इस बुराई को सहन करने को तैयार न हो। मैं चाहता था कि सभी बच्चे यह जानें और समझें भी कि हमारा सोवियत देश संसार का पहला ऐसा देश है, जहां कोई किसी का शोषण नहीं करता और वे अपने देश से अथाह प्रेम करें। मेरे विचार में चरित्र-निर्माण का एक सबसे महत्वपूर्ण कार्यभार यह है कि बच्चे बुराई को कोई अमूर्त वस्तु न समझें, बल्कि वे अनुभव करें कि यह एक ऐसी वास्तविक शक्ति है, जो संसार के सभी ईमानदार लोगों की शत्रु है। मैं बच्चों को उन देशों के बारे में बताता था, जहां सारी दौलत मुट्ठी भर पूंजीपतियों के हाथों में है, और मेहनतकशों को ज़िंदगी की ज़रूरी चीज़ें भी नहीं नसीब होतीं। मैंने कभी यह कोशिश नहीं की कि बच्चे "साम्राज्यवाद" की अमूर्त अवधारणा को जल्दी से जल्दी समझ लें। जिस उम्र के बच्चों की यहां चर्चा है, उनके लिए तो सजीव चित्रों और उनके भावनात्मक रंग का ही निर्णायक महत्व है।

बच्चों की सभी ख़ुशियों, सभी निराशाओं को बांटनेवाले शिक्षक द्वारा सुनाई जानेवाली कहानियां बच्चों के चहुंमुखी बौद्धिक विकास की, उनके समृद्ध आत्मिक जीवन का अनिवार्य पूर्वाधार हैं। इन कहानियों का शैक्षिक महत्व यह है कि बच्चे इन्हें ऐसे वातावरण में सुनते हैं, जहां आप से आप कथा-कहानियां जन्म लेती हैं: शान्त संध्या को, जब आसमान पर पहले तारे निकलते हैं; जंगल में, अलाव के पास या लकड़ी के आरामदेह घर में, जहां अंगीठी में कोयले सुलग रहे होते हैं और खिड़कियों पर शरद ऋतु की ठंडी हवा थपेड़े देती है, पानी बरस रहा होता है। कहानियां छोटी होनी चाहिए और उनमें जो बिंब हों, वे सजीव हों, बोलते हुए से हों। बच्चों को एकसाथ बहुत सारे तथ्य नहीं बताने चाहिए, उनके मनोमस्तिष्क पर बहुत अधिक छापें नहीं पड़नी चाहिए – इससे कहानियों के प्रति उनकी संवेदनशीलता कम हो जाती है और फिर किसी भी बात में बच्चे की रुचि नहीं जगाई जा सकती।

अध्यापकों को मेरा परामर्श है: बच्चों की भावनाओं और उनकी कल्पना शक्ति पर प्रभाव डालिए, उनके सामने **धीरे-धीरे** इस असीम जगत की खिड़की खोलिए, इसे एकदम पूरा मत खोलिए, इसे खुला दरवाज़ा मत बना दीजिए, वरना आपके न चाहते हुए भी बच्चे आपकी कहानी के विषय पर अपने विचारों में इतने खो जाएंगे कि गेंदों की तरह इस दरवाज़े से बाहर लुढ़क जाएंगे। शुरू में तो वे संसार की विविधता को, नाना वस्तुओं को देखकर सकपका जाएंगे और फिर वे इन वस्तुओं को देखने के इतने आदी हो जाएंगे कि उनको अच्छी तरह जाने बिना ही उनमें रुचि खो बैठेंगे और वे सब अर्थशून्य ध्वनि मात्र बनकर रह जाएंगी।

नीले आकाश तले स्कूल में मैंने यह शिक्षा पाई कि बच्चों के सामने यह खिड़की कैसे खोलनी चाहिए। मैंने जीवन और ज्ञान-बोध की इस विद्या से सभी अध्यापकों को अवगत कराने का प्रयत्न किया। मैं उन्हें यह सलाह देता था: बच्चों पर ज्ञान की बौछार मत कीजिए, अपने पाठ के विषय के बारे में आप जो कुछ जानते हैं, वह सारा ज्ञान तुरंत बच्चों को देने की कोशिश मत कीजिए – ज्ञान की बौछार तले बच्चों की जिज्ञासुता और कौतूहल दब कर रह जाएंगे। आपको बच्चों को उनके चारों ओर की दुनिया में से कोई एक चीज़ दिखानी चाहिए, लेकिन उसे इस तरह दिखाइए कि जीवन का यह अंश बच्चों की नज़रों में इंद्रधनुष के सभी रंगों से जगमगा उठे। हमेशा कुछ न कुछ अनकहा रहने दीजिए, ताकि बच्चों ने जो जाना है, उसके बारे में वे बार-बार सोचें।

मानव विचार की उपलब्धियां असीम हैं। उदाहरणतः, मनुष्य ने अनेक पुस्तकों की रचना की है। बच्चों को किसी एक पुस्तक का सौंदर्य, उसके विचारों की गहराई दिखा दीजिए, लेकिन इस तरह दिखाइए कि हर बच्चे के मन में किताबें पढ़ने का शौक़ पैदा हो जाए और वह पुस्तकों के महासागर में स्वयं तैरने को तैयार हो जाए। बच्चे अपने चारों ओर की वस्तुओं और परिघटनाओं को देखकर जो कहानियां सुनाते थे, मैंने उनका नाम **सजीव शब्दों के स्रोतों की "यात्राएं"** रखा। अध्यापकों को मैंने इन "यात्राओं" के बारे में अपने विचार बताए। प्राथमिक कक्षाओं के दूसरे अध्यापक भी बच्चों के साथ ऐसी **"यात्राएं"** करने लगे। कक्षाओं के द्वार खुल गए, बच्चे हरे-भरे मैदान में, ताज़ी हवा में जाने लगे। पठन-पाठन और अंकगणित के पाठ, ख़ास तौर पर पहली और दूसरी कक्षाओं में, अब ज़्यादातर नीले गगन तले ही होने लगे। इसका अर्थ यह नहीं था कि

हमने पाठों को तिलांजलि दे दी थी या हम पुस्तकों को, विज्ञान को छोड़कर प्रकृति की गोद में जा रहे थे। नहीं, उलटे, इससे पाठ अधिक रोचक होने लगे थे, ये "यात्राएं" पुस्तकों में, विज्ञान में जान डालती थीं।

पाठों के बाद प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापक प्रायः एक कमरे में एकत्रित होते थे और इस बात पर सोच-विचार करते थे कि संसार का बोध पाने, तथा प्रकृति और समाज के बारे में ज्ञान पाने का काम बच्चों के लिए उकताऊ और ऊब भरा कभी न होने पाए, इसके लिए हमें क्या करना चाहिए। इस संयुक्त सृजन में एक नए विचार का जन्म हुआ कि बच्चों को धीरे-धीरे खेती के काम और मशीनों से तथा सर्वश्रेष्ठ लोगों के काम से परिचित कराया जाए। मेरे परामर्श पर प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापकों ने अपने छात्रों के लिए सजीव शब्दों के स्रोतों की "यात्राओं" के मार्ग तय करते हुए यह निर्धारित किया कि बच्चों की वाक्-शक्ति और चिंतन के विकास के लिए वसंत, गर्मियों, शरद और जाड़ों में प्रकृति की किन परिघटनाओं और उनसे जुड़े कृषि के किन कार्यों का उपयोग करना सबसे अच्छा रहेगा।

"स्वप्न-लोक"

स्कूल से थोड़ी दूर, गांव के बाहर एक खड्ड था, जो काफ़ी दूर तक चला गया था। इसमें पेड़ों और झाड़ियों के घने झुरमुट थे। बच्चों के लिए तो यह पूरा जंगल ही था, जिसमें अनेक रहस्यमय और अनजानी बातें थीं। एक बार मुझे खड्ड की दीवार में गुफा का मुंह नज़र आया। अंदर से गुफा काफ़ी खुली थी, उसकी मिट्टी की दीवारें सूखी और मज़बूत थीं। यह तो पूरा ख़ज़ाना ही था! यहां हमारा "स्वप्न-लोक" होगा – मैंने फ़ैसला किया। बच्चों को जब मैं पहली बार गुफा में ले गया, तो उनकी ख़ुशी का कोई वार-पार न रहा। बच्चे चीख-चिल्ला रहे थे, गा रहे थे, एक दूसरे को आवाज़ें दे रहे थे, आंख मिचौनी खेल रहे थे। उसी दिन हमने गुफा में सूखी घास बिछा दी।

पहले कुछ दिन तो हम इस रहस्यमयी कोने को खोजने पर ख़ुश होते रहे, उसे आरामदेह बनाते रहे। हमने दीवारों पर कुछ तस्वीरें टांग दीं, गुफा का मुंह खुला कर दिया, एक मेज़ बनाई। मेरा यह सुझाव सुनकर बच्चों की ख़ुशी का ठिकाना न रहा कि हम गुफा में एक छोटी सी अंगीठी बना लें और उसमें कभी-कभी आग जलाया करें।

हमने दीवार में अंगीठी के लिए गड्ढा बनाया और चिमनी के लिए छेद खोदा। बच्चे फ़ालतू मिट्टी बाहर ले जाते थे और बाहर से ईंटें और चिकनी मिट्टी लाते थे। काम आसान नहीं था, लेकिन हम सब का सपना था कि हमें अंगीठी बनानी है। कोई दो हफ़्ते लगे हमें अंगीठी बनाने में। बच्चों पर तो जैसे काम की धुन सवार हो गई। कोल्या, स्लावा और तोल्या पहले हमारे सभी कामों के प्रति उदासीन रहते थे और मैं इस बात पर बहुत परेशान था। लेकिन अब वे भी औरों से पीछे नहीं रहे। उनकी आंखें अक्सर काम की धुन में चमकने लगीं और यह चमक उनमें देर तक बनी रहती। साश्को, ल्यूदा, वाल्या जैसे लजीले और ढुलमुल बच्चों को भी इस रोचक कार्य से प्रेरणा मिली। मैं इस बात का अधिकाधिक क़ायल होता गया कि बाल-समूह की भावनात्मक स्थिति – हर्ष और प्रेरणा की स्थिति – एक बहुत बड़ी आत्मिक शक्ति है, जो बच्चों को संगठित करती है, उदासीन बच्चों के मनों में बाल-समूह के कार्यों के प्रति रुचि जगाती है।

आख़िर वह दिन आया, जब हमने अंगीठी जलाई। सूखी टहनियां तड़-तड़ करती जलने लगीं। धरती पर संध्या उतर रही थी। हमारी गुफा में रोशनी थी और आरामदेह गरमाहट। हम खड्ड के ढलान पर उग रहे पेड़ों और झाड़ियों को देख रहे थे और वह रहस्यमय झुरमुट हमारे मस्तिष्क में रोमांचक बिंबों को जन्म दे रहा था। वे यह कहते लगते थे: हमारी कहानी सुनाओ। पेड़ों और झाड़ियों ने सांझ के झुटपुटे की अर्धपारदर्शी चादर ओढ़ ली। झुटपुटा पहले जंगली कबूतर के रंग सा था, फिर धीरे-धीरे हल्के बैंगनी रंग का हो गया। इस झुटपुटे में पेड़ों की आकृतियां अजीबोग़रीब सी लग रही थीं।

ऐसे क्षणों में बच्चे बड़ी तत्परता से कल्पना की उड़ानें भरते हैं, कहानियां गढ़ते हैं।

"खड्ड की ढलान पर उग रहे ये पेड़ किसके जैसे लगते हैं?" मैं पूछता हूं। मेरा यह प्रश्न बच्चों की ओर इतना नहीं, जितना कि स्वयं मेरे अपने ही विचारों की ओर संबोधित है। मुझे वे एक हरे झरने जैसे लगते हैं, जो बड़े ज़ोरों से ऊपर से गिर रहा था और अब असिताश्म या मैलाकाइट की विशाल मूर्तियों के रूप में जम गया है। क्या किसी बच्चे का भी विचार इसी दिशा में बढ़ेगा? इस संध्या के समय मैं यह अच्छी तरह देख सकता हूं कि बच्चे कैसे सोचते हैं।

मैं देखता हूं कि एक बच्चे के विचारों की धारा बड़ी तेज़ी से, उफनती

हुई बहती है, वह नए-नए बिंबों को जन्म देती जाती है, दूसरे बच्चे के विचारों की धारा विशाल, गहरी और मंद-मंद बहती नदी के समान है। पता ही नहीं चलता कि इस नदी में बहाव है भी या नहीं, लेकिन इसका बहाव सशक्त है, उसे रोका नहीं जा सकता, नई दिशा में नहीं मोड़ा जा सकता, जबकि दूसरे बच्चों के विचारों की तेज, हल्की धारा के मार्ग में आप कोई बाधा खड़ी कर सकते हैं और वह तुरंत दूसरी ओर से आगे बह चलेगी। शूरा को पेड़ों के शिखर गायों के झुंड से लगते हैं। लेकिन सेर्योझा के यह पूछने भर की देर है: "गाय चर कहां रही हैं? वहां घास तो है नहीं," बस इतने में ही शूरा के विचार नई दिशा पकड़ लेते हैं: अब ये गायें नहीं रहीं, ये तो बादल हैं, जो रात में आराम करने के लिए धरती पर उतर आए हैं। यूरा के विचारों की उड़ान भी इतनी ही तेज़ है। परंतु मीशा और नीना चुपचाप, विचारमग्न से देखते रहते हैं—उन्हें क्या दिख रहा है? बाल-कल्पना दसियों बिंबों की रचना कर चुकी है, परंतु मीशा और नीना अभी तक चुप हैं। स्लावा भी चुप है। क्या उनके मस्तिष्क में एक भी विचार नहीं आया? घर जाने का समय हो गया है। तभी मीशा, जो सभी लड़कों में सबसे कम बोलता है, सहसा कहता है:

"यह तो गुस्से से आग बबूला हुआ सांड़ है, वह चट्टान पर टूट पड़ा है, मगर उसे हिला नहीं सका, सो अब चट्टान में सींग अड़ाए खड़ा है। वह देखो, वह कैसे ज़ोर लगा रहा है, बस अभी चट्टान को हिला देगा..."

बस, अब तक बिंबों की जो भीड़ लग गई थी, उसका अब कहीं नामोनिशान नहीं रहता। हम देखते हैं कि पेड़ों का झुंड असहाय क्रोधोन्माद में जड़वत खड़े सांड़ की याद दिलाता है। बच्चे चहचहाने लगे: वह देखो कैसे उसने खड्ड की ज़मीन में पैर जमा रखे हैं; देखो, उसकी गर्दन कैसे तनी हुई है, शायद नसें थरथरा रही हैं, और सींग उसने ज़मीन में धंसा रखे हैं।...

वाह, क्या कल्पना की है मीशा ने! उधर जब बच्चों के मस्तिष्क में नए-नए ज्वलंत, सजीव बिंब जन्म ले रहे थे, तब मीशा के विचारों की सरिता अपने ही मार्ग पर बहती चली जा रही थी। वह ध्यान से अपने साथियों की बातें सुन रहा था, लेकिन एक भी बिंब ऐसा नहीं था, जो उसकी कल्पना को आकर्षित करता, उसे अपने साथ बहा ले जाता। इस बच्चे की कल्पना सबसे अधिक ज्वलंत और पार्थिव थी। उसकी कल्पना

ने वही चित्र बनाया, जो शायद वह जीवन में देख चुका था, जो उसके चेतना पटल पर अंकित हो गया था। कौन नहीं जानता कि ऐसे गुमसुम रहनेवाले मंदबुद्धि बच्चों को क्लास में कितना तंग होना पड़ता है। मास्टर जी चाहते हैं कि लड़का जल्दी से सवाल का जवाब दे, उन्हें इस बात की कोई ख़ास परवाह नहीं होती कि बच्चा कैसे सोचता है। उनको तो बस यह चाहिए कि जल्दी से सवाल का जवाब दो और नंबर पा लो। उन्हें इस बात का गुमान तक नहीं कि मंथर, किंतु सशक्त नदी के प्रवाह को तेज़ नहीं किया जा सकता। उसे उसकी प्रकृति के अनुसार बहने दीजिए, उसकी जलराशि अवश्य ही निश्चित सीमा तक पहुंच जाएगी, लेकिन जल्दबाज़ी मत कीजिए, खीजिए, झुंझलाइए नहीं, शक्तिशाली नदी को अंकों की संटी मत मारिए—इससे कुछ नहीं होने का।

कितने ऐसे अध्यापक हैं, जिन्होंने इस बात पर ग़ौर किया है, सोचा-विचारा है, कि जन्म से प्रौढ़ता तक पहुंचने का शरीर के विकास का जो काल है, वह मनुष्य में जीवजगत के अन्य सभी जीवों की अपेक्षा सबसे लंबा है? मानव शरीर बीस और उससे भी अधिक वर्षों तक बढ़ता, विकसित होता, और मज़बूत बनता है। मानव शरीर के विकास की इस लंबी अवधि में प्रकृति का बहुत बड़ा रहस्य छिपा हुआ है। यह काल मानो स्वयं प्रकृति ने ही तंत्रिका-तंत्र—प्रमस्तिष्क गोलार्ध के कॉर्टेक्स के विकास के लिए, उसको सुदृढ़ करने और साधने के लिए निर्धारित किया है। मनुष्य इसीलिए मनुष्य बन पाता है, कि बहुत लंबी अवधि तक वह **तंत्रिका-तंत्र की, मस्तिष्क की बालावस्था** से गुज़रता है।

बच्चा कई अरब तंत्रिकोशिकाओं को लेकर जन्म लेता है, जो अपने परिवेश के प्रति अत्यंत संवेदनशील होती हैं तथा निश्चित परिस्थितियों में चिंतन का कार्य कर सकती हैं। ये तंत्रिकोशिकाएं उसके चिंतन का भौतिक आधार होती हैं। जन्म से प्रौढ़ता तक और प्रौढ़ावस्था से वृद्धावस्था तक प्रकृति मनुष्य को एक भी नई तंत्रिकोशिका नहीं प्रदान करती। तंत्रिका-तंत्र की बालावस्था में चिंतनशील भूद्रव्य की कोशिकाओं को सक्रिय कार्य का प्रतिदिन अभ्यास करना चाहिए और इसके लिए आधार है—अपने चारों ओर की दुनिया का प्रेक्षण करना, उसके बिंबों को ग्रहण करना और उन पर मनन करना।

संसार के कार्य-कारण संबंधों के सार को गहराई में समझना सीखने से पहले इन्सान को बचपन में बौद्धिक अभ्यासों के काल से गुज़रना चाहिए।

वस्तुओं और परिघटनाओं को देखना ही यह अभ्यास है; बच्चा एक सजीव बिंब को देखता है, फिर वह कल्पना करता है, अपने मस्तिष्क में इस बिंब की रचना करता है। यथार्थ जीवन की एक वस्तु को देखना और कल्पना में उसका चित्र बनाना—बौद्धिक कार्यकलाप के इन दो चरणों में कोई अंतर्विरोध नहीं है। बच्चा कहानी के काल्पनिक बिंब को एक ज्वलंत यथार्थ के रूप में ही ग्रहण करता है, उस पर विचार करता है और स्वयं उसकी रचना करता है। काल्पनिक बिंबों की रचना ही वह सुफला भूमि है, जिस पर विचार की पौध तेज़ी से उगती है।

चिंतन की बालावस्था में चिंतन प्रक्रियाएं बच्चे के चारों ओर के संसार की ऐसी ठोस, सजीव वस्तुओं से जुड़ी होनी चाहिए, जिन्हें बच्चा देख, सुन और अनुभव कर सके। यह आवश्यक नहीं कि बच्चा शुरू से ही कार्य-कारण संबंधों के बारे में सोचे, उसे बस वस्तु को अच्छी तरह देखने, उसमें कुछ नया ढूंढ़ने दीजिए। लड़के ने सांझ के झुटपुटे में छिपे पेड़ों के झुंड में क्रोधोन्मत्त सांड़ को देखा। यह केवल बच्चे की कल्पना-शक्ति का खेल ही नहीं है, बल्कि इसमें बच्चे के कलात्मक, काव्यमय चिंतन का भी अंश है। दूसरा बच्चा इन्हीं वृक्षों में कुछ और देखता है, उसकी कल्पना में बने बिंब में उसके चिंतन, उसकी कल्पना और उसके ग्रहण-बोध के व्यक्तिगत लक्षण होते हैं। हर बच्चा संसार के बिंबों का केवल प्रत्यक्षबोध ही नहीं पाता, बल्कि वह स्वयं भी तस्वीरें बनाता है, उनकी रचना, उनका सृजन करता है। बच्चे जब संसार को देखते हैं, तो यह सिर्फ़ देखना नहीं होता, बल्कि एक मौलिक कलात्मक सृजन कार्य होता है। बच्चा जिस बिंब को देखता, ग्रहण करता है और साथ ही अपने मस्तिष्क में उसका सृजन करता है, वह बिंब भावनाओं के रंगों में रंगा होता है। बच्चे अपने परिवेश के बिंबों को ग्रहण करते हुए और साथ ही अपनी कल्पना से उसमें कुछ जोड़ते हुए अपार हर्ष का अनुभव करते हैं। बच्चों की ग्रहण-शक्ति का भावनाओं से ओत-प्रोत होना बाल-सृजन की आत्मिक चिनगारी है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि भावनाओं के आवेग के बिना बाल-मस्तिष्क की कोशिकाओं का सामान्य विकास नहीं हो सकता। बाल-मस्तिष्क में होनेवाली शरीरक्रियात्मक (फ़िज़ियोलोजिकल) प्रक्रियाएं भी भावनाओं के साथ जुड़ी होती हैं: तनाव के, उत्साह के क्षणों में, ऐसे क्षणों में जब बच्चे किसी काम में पूरी तरह खो जाते हैं, कॉर्टेक्स की कोशिकाओं का तीव्र पोषण होता है। इन क्षणों में कोशिकाएं बहुत अधिक ऊर्जा ख़र्च

करती हैं, परंतु साथ ही शरीर से बहुत अधिक ऊर्जा पाती भी हैं। कई साल तक प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों के बौद्धिक श्रम का प्रेक्षण करते रहने पर मैं इस बात का क़ायल हो गया कि भावनात्मक उमंग के क्षणों में बच्चों के विचार विशेषतः स्पष्ट होते हैं और उनकी स्मरण-शक्ति अत्यंत तीव्रता से काम करती है।

इन प्रेक्षणों ने बच्चों को पढ़ाने की प्रक्रिया पर नए ढंग से प्रकाश डाला। प्राथमिक कक्षाओं के छात्र के विचारों को, उसके चिंतन को उसकी भावनाओं से अलग नहीं किया जा सकता। बाल-चिंतन के विकास के नियमों की ही यह मांग है कि शिक्षण प्रक्रिया, विशेषतः अपने चारों ओर की दुनिया का प्रत्यक्ष बोध पाने की प्रक्रिया भावनाओं में पगी हो।

...मौसम अत्यंत सुहावना हो गया। अब हम एक जगह पर नहीं बैठते थे, हम खेतों-मैदानों में, उपवनों में घूमते रहते थे और कभी-कभी अपने "स्वप्न-लोक" में जाते थे। बच्चों ने गांव से दो किलोमीटर दूर एक टीला ढूंढ़ लिया, जहां से बग़ीचों में घिरे हमारे गांव, दूर-दूर के खेतों, नीले टीलों और जंगल पट्टियों के रमणीय दृश्य दिखते थे। हवा बहुत ही साफ़ हो गई थी, एकदम पारदर्शी। धरती के ऊपर मकड़ी के जाले के रुपहले तार उड़ते नज़र आते, नीले आसमान में दक्षिण की ओर जाड़ा बिताने जा रहे पक्षियों की डारें अक्सर दिखाई देने लगीं। हमारे टीले से थोड़ी दूर एक उपवन था, जिसके बाहरी सिरे पर जंगली गुलाब की बहुत-सी झाड़ियां थीं। बच्चे झाड़ियों पर लगी लाल सुर्ख़ बेरियों को और टह-नियों पर लटकते मकड़ी के रुपहले तारों को निहारते, हर झाड़ी की रूपरेखा याद करते, बाग़ों और गांव के किनारे लगे सुघड़ पाप्लर वृक्षों की क़तारों को देखते। हर दिन बच्चे कोई न कोई नई बात खोजते थे, हमारे देखते-देखते हरा उपवन लाल-पीला परिधान ओढ़ रहा था, लाल, पीले, कत्थई रंगों की सभी छटाएं पत्तियों पर छा गई लगती थीं, रंगों की कितनी आश्चर्यजनक विविधता थी यहां पर! इन खोजों से, नई-नई बातों को देखने से बच्चों को अपार ख़ुशी होती थी।

सजीव शब्दों और सृजनात्मक विचारों के स्रोत इतने विविध और अनंत थे कि अगर हम हर घंटे एक न एक नई चीज़ पाते, नई खोज करते, तो भी ये खोजें बरसों के लिए काफ़ी होतीं।

हमारे सामने लाल बेरियों से लदी जंगली गुलाब की झाड़ी है, एक बेरी से दूसरी बेरी तक मकड़ी के जाले के रुपहले तार लटक रहे हैं और

उनपर प्रभात की ग्रोस थरथरा रही है। ग्रोस की बूंदें चमकीली पीली-सी लगती हैं। लगता है मानो ग्रोस की बूंदों के हार पिरोये गये हों। हो सकता है कि यह संयोग की बात ही हो, लेकिन एक न एक दिन ऐसा होना ही था: लरीसा का ध्यान तार ग्रौर हार शब्दों की समस्वरता की ग्रोर गया। बच्चों के लिए यह एक ग्राश्चर्यजनक खोज थी। ग्रभी तक तो वे बड़े भाई-बहनों से सुनी कविताएं ही जानते थे, जो वे किताबों में से पढ़कर सुनाते थे ग्रौर ग्रब यहां सजीव शब्दों से, चारों ग्रोर के संसार से कविता बन रही थी:

मकड़ी के रुपहले तार –
पिरोते हैं बूंदों के हार।

लरीसा ने कहा ग्रौर उसकी ग्रांखें ख़ुशी से चमकने लगीं। सब चुप थे, लेकिन मैं देख रहा था कि शब्दों की शक्ति के सम्मुख विस्मय-विमुग्धता की भावना से हर बच्चे के विचार मानो उड़ान भर रहे हैं।

ऐसा तभी होता है, जबकि मनुष्य वस्तुग्रों के ग्रादिस्रोत के पास पहुंचता है, जब शब्द उसके लिए वस्तुग्रों के नाम मात्र ही नहीं होते, बल्कि उनमें फूलों की सुरभि, धरती की गंध, जन्मभूमि के खेतों-मैदानों का संगीत ग्रौर उसकी ग्रपनी भावनाएं ग्रौर ग्रनुभूतियां भी होती हैं।

शिक्षाशास्त्र के नियमों के ग्रनुसार शायद मुझे बच्चों से यह कहना चाहिए था कि वे ग्रागे भी कविता बनाएं, लेकिन मेरे दिमाग़ से ये सारे नियम निकल गए, मैं बच्चों के सृजन ग्रावेग में बह चला ग्रौर मेरे मुंह से निकला:

देखो, कैसा है शरद का निखार,
उड़ती जाती है हंसों की डार।

हम चिल्ला रहे थे, झाड़ी के चारों ग्रोर दौड़ रहे थे ग्रौर ग्रपनी कविता दोहराते जा रहे थे। मैं जल्दी से जल्दी दूसरे ग्रध्यापकों को बच्चों के मन में उठे इस प्रेरणा के ग्रावेग के बारे में बताना चाहता था, जिसका स्रोत था उनके ग्रास-पास का जगत। मैं यह सलाह देना चाहता था: चिंतन के पहले पाठ क्लास में, ब्लैक-बोर्ड के पास नहीं, बल्कि प्रकृति के ग्रंचल में होने चाहिए। ग्रौर मैं यह भी कहना चाहता था: सच्चा विचार सदा ऐसी भावनाग्रों से ग्रोत-प्रोत होता है, जिनमें हृदय का स्पंदन है; बच्चा जिस

क्षण शब्द की सुरभि पा लेता है, उसी क्षण उसके हृदय में प्रेरणा का आवेग उठता है। बच्चों के साथ खेतों में, पार्क में जाइए, विचारों के स्रोत का जल पीजिए और यह जीवनदायी जल आपके छात्रों को बुद्धिमान अन्वेषक, जिज्ञासु, कुतूहली व्यक्ति और कवि बना देगा। हज़ारों बार मेरे इस विश्वास की पुष्टि हुई है कि काव्यमय, भावनात्मक व सौंदर्यबोधात्मक पुट के बिना बच्चे का पूर्ण, चहुंमुखी बौद्धिक विकास असंभव है। बाल-चिंतन की प्रकृति ही काव्यमय सृजन की अपेक्षा करती है। सौंदर्य और जीवंत विचार में वैसा ही घनिष्ठ परस्पर संबंध है, जैसा कि सूरज और फूलों में। काव्यमय सृजन सौंदर्य दर्शन से ही आरंभ होता है। प्रकृति का सौंदर्य ग्रहण-शक्ति को तीव्र करता है, सृजनात्मक विचार को जगाता है और शब्दों को व्यक्तिगत भावनाओं के रंग में रंगता है। क्या कारण है कि इन्सान बचपन में अपनी मातृभाषा के इतने अधिक शब्द सीख लेता है? कारण यह है कि इस काल में वह अपने चारों ओर की दुनिया के सौंदर्य के पहली बार दर्शन करता है, उसके सम्मुख यह सौंदर्य प्रकट होता है। हर शब्द में वह केवल उसका अर्थ ही नहीं देखता, बल्कि उसमें सौंदर्य की सूक्ष्मतम छटाओं का भी बच्चे को आभास होता है।

स्वास्थ्य का स्रोत –
प्रकृति

हमने अपने अनुभव से यह देखा कि पढ़ाई में पीछे रहनेवाले छात्रों में ८५% के पिछड़ने का कारण होता है–कमज़ोर सेहत, किसी तरह की अस्वस्थता या कोई रोग। अक्सर ऐसी अस्वस्थता या बीमारी बिल्कुल दिखाई नहीं देती और केवल माता, पिता, डाक्टर और अध्यापक के मिलकर प्रयास करने से ही ठीक हो पाती है। हृदय और रक्तवाहिका तंत्र, श्वास नलिका और पेट की कई तकलीफ़ें बच्चों की चंचलता, उनके हमेशा भागते-दौड़ते रहने की वजह से दिखाई नहीं देतीं। दरअसल बच्चे किसी रोग के शिकार नहीं होते, बल्कि उनके शरीर का कोई अंग सामान्य तौर पर काम नहीं कर रहा होता। बरसों के प्रेक्षणों से यह पता चला है कि बच्चों का तथाकथित मंथर चिंतन अधिकांश मामलों में किन्हीं शरीर-क्रियात्मक परिवर्तनों या कार्टेक्स की कोशिकाओं के कार्य में अवरोध का परिणाम नहीं होता, बल्कि इसका कारण बच्चे की सामान्य अस्वस्थता ही

होती है, जिसे स्वयं बच्चा भी अनुभव नहीं करता। कुछ बच्चों के चेहरे पीले होते हैं और उन्हें भूख नहीं लगती। उनकी खुराक सुधारने की ज़रा-सी भी कोशिश करने पर तुरंत प्रतिक्रिया होती है: शरीर पर लाल-लाल चकत्ते निकल आते हैं। अच्छी से अच्छी डाक्टरी जांच-पड़ताल से कुछ पता नहीं चलता, डाक्टरी टेस्टों में सब कुछ ठीक ही निकलता है। अधिकांश मामलों में पता चलता है कि शरीर के चयापचय में कुछ ऐसी गड़बड़ी आ गई है, जो बच्चे के देर तक कमरे में रहने का परिणाम है। चयापचय के इस विकार के कारण बच्चा एकाग्रचित्त होकर बौद्धिक श्रम करने की क्षमता खो बैठता है। शरीर के तीव्र विकास और यौन-प्रौढ़ता के काल में ऐसे विकार बहुत बढ़ जाते हैं।

ऐसे मामलों में एकमात्र रास्ता यह है कि बच्चों के काम और विश्राम की दिनचर्या बदली जाए: बच्चे देर तक ताज़ी हवा में रहें, खिड़की खुली रखकर सोएं, जल्दी सोने जाएं और जल्दी उठें तथा उन्हें अच्छी खुराक मिले।

कुछ बच्चे यों देखने में तो बिल्कुल स्वस्थ लगते हैं, लेकिन अगर उनको काम करते हुए ध्यान से देखा जाए तो कोई न कोई छिपी तकलीफ़ निकल आती है। ऐसी छिपी तकलीफ़ों और अस्वस्थता का पता ख़ास तौर पर तब चलता है, जब अध्यापक यह कोशिश करता है कि पाठ में हर पल, हर क्षण बच्चों का दिमाग़ काम करता रहे। अध्यापक का यह प्रयास कि "पाठ का एक मिनट भी बेकार न जाए" कुछ बच्चों के लिए बहुत ही मुश्किल पड़ता है, यह उनकी क्षमता के बाहर होता है। मैंने अपने अनुभव से यह देखा है कि पाठ की यह "तीव्र गति" बिल्कुल स्वस्थ बच्चों की भी क्षमता के बाहर होती है, यही नहीं वह हानिकर भी होती है। अत्यधिक बौद्धिक तनाव का नतीजा यह होता है कि थोड़ी देर बाद बच्चों की आंखें कांतिहीन हो जाती हैं, उनकी नज़र धुंधली पड़ जाती है, गतियां शिथिल हो जाती हैं। और तब बच्चा कुछ भी करने लायक़ नहीं रह जाता, उसकी बस एक ही इच्छा होती है कि जल्दी से क्लास के बाहर ताज़ी हवा में पहुंचा जाए और उधर मास्टर जी "लगाम" कसे रहते हैं: जल्दी करो, जल्दी करो।...

"खुशियों के स्कूल" के पहले हफ़्तों में मैंने बड़े ध्यान से बच्चों के स्वास्थ्य का अध्ययन किया। सभी बच्चे गांव में, प्रकृति के अंचल में जन्मे और बड़े हुए थे, फिर भी कुछ के चेहरे पीले थे और छातियां कमज़ोर।

ग्रौर वोलोद्या, कात्या, सान्या तो निरे हड्डियों के पुतले थे। घर पर खाना सबको ग्रच्छा मिलता था। बच्चों की कमज़ोरी ग्रौर ग्रस्वस्थता का प्रमुख कारण यह था कि उनकी माताएं उनका ज़रूरत से ज़्यादा ध्यान रखती थीं, उन्हें ठंडी हवा के ज़रा से झोंके तक से बचाने की फ़िक्र में रहती थीं। ये बच्चे बहुत जल्दी ही थक जाते थे, स्कूल के पहले दिनों में वे मुश्किल से एकाध किलोमीटर चल पाते थे। माताग्रों को शिकायत थी कि बच्चे कुछ खाते नहीं।

मैंने माता-पिताग्रों को समझाया कि वे ग्रपने बच्चों को सर्दी से जितना ग्रधिक बचाएंगे, उतना ही ग्रधिक वे कमज़ोर होंगे। सभी माता-पिताग्रों ने मेरा यह ग्रनुरोध मान लिया कि गरम दिनों में वे बच्चों को नंगे पैर स्कूल भेजेंगे – बच्चों के लिए यह बड़ी ख़ुशी की बात थी। एक दिन हम खेत में घूम रहे थे कि ग्रचानक बारिश ग्रा गई। घर लौटते-लौटते बच्चे भीग गए थे, वे डबरों में पैर भिगोते ग्राए थे, तो भी माता-पिता के डर के बावजूद कोई भी बच्चा बीमार नहीं पड़ा। बड़ी मुश्किल से मैंने माता-पिताग्रों को इस बात के लिए राज़ी कराया कि वे बच्चों को फ़ालतू कपड़े न पहनाया करें, यह सोचकर कि ग्रचानक ठंड हो गई तो क्या होगा, एक ग्रौर स्वैटर या जाकेट न पहनाया करें। हमने यह नियम बना लिया कि शरद, वसंत ग्रौर गर्मियों के दिनों में बच्चे एक मिनट भी कमरे में नहीं रहेंगे। "ख़ुशियों के स्कूल" में पहले ३-४ हफ़्तों के दौरान बच्चे रोज़ाना २-३ किलोमीटर चलते थे, दूसरे महीने में ४-५ ग्रौर तीसरे महीने में ६ किलोमीटर। ग्रौर यह सारा फ़ासला वे खेतों-मैदानों में, उपवनों ग्रौर जंगल में तय करते थे। बच्चे कोई थकावट महसूस नहीं करते थे, क्योंकि उन्हें यह नहीं कहा जाता था कि तुम्हें इतना फ़ासला तय करना है। वे तो दूसरे लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए चलते थे। बच्चे चलना चाहते थे, क्योंकि वे ग्रपने ग्राप को संसार का ग्रन्वेषक महसूस करते थे। बच्चे थके-मांदे, किंतु बहुत ही ख़ुश ग्रौर हर्षोल्लास से भरे घर लौटते थे। ग्रौर थकावट के बिना तो इन्सान स्वस्थ हो ही नहीं सकता। काम की थकावट के बाद जब बच्चा ग्राराम करता है, तभी उसके शरीर में स्वास्थ्य-धारा का संचार होता है।

ताज़ी हवा में कुछ किलोमीटर चल चुकने के बाद, माता-पिता के शब्दों में, बच्चे "भेड़ियों की तरह भूखे" होते थे। जिस दिन हमारा जंगल में जाने का प्रोग्राम होता था, तब मैं बच्चों से कहता था कि वे घर से

रोटी, प्याज़, नमक, पानी और थोड़े-से कच्चे आलू ले लें। शुरू में माता-पिताओं को संदेह था कि क्या बच्चे ये चीज़ें खाएंगे भी? घर पर तो वे इससे भी अच्छा, अधिक पौष्टिक खाना नहीं खाते। लेकिन पता चला कि रोटी और प्याज़ और अलाव में भूने आलू जंगल में सबसे स्वादिष्ट खाना है। और फिर बच्चों को भूख भी अच्छी लगती थी और वे घर लौटकर मां का बनाया खाना भी खा लेते थे। महीना बीतते न बीतते ही सबसे कमज़ोर बच्चों के चेहरों पर भी रौनक आ गई और उनकी माताएं तारीफ़ करते न थकती थीं: बच्चों के नख़रों का कोई नामो-निशान नहीं रहा था, उन्हें जो दो, वही खा लेते थे।

शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाने के लिए सबसे ज़रूरी है गतिशील होना। बच्चों को दौड़ना-भागना, खेलना-कूदना पसंद है। हमने बच्चों के लिए खेल-कूद का मैदान बनाया। यहां ताज़ी हवा में तरह-तरह के खेलों और मनोरंजन का पूरा प्रबंध था। लेकिन मैं इससे भी अधिक का सपना देख रहा था। मैं बच्चों के लिए तरह-तरह के झूले बनाना चाहता था; मैं चाहता था कि बच्चों के खेल कथा-कहानियों और कल्पना के साथ जुड़े हों। मैं अपनी कल्पना में बच्चों की चकफेरी पर बने घोड़े, हाथी, भेड़िए और चालाक लोमड़ी की आकृतियों को देख रहा था; यहां बच्चे सिर्फ़ झूला ही नहीं झूलेंगे, बल्कि वे इस बात से भी उत्तेजित होंगे कि वे चालाक लोमड़ी या भूरे भेड़िए पर सवार हो रहे हैं, जिसकी कहानी उन्होंने सुनी है। यह सब फ़िलहाल मेरी योजना ही थी, लेकिन मुझे पक्का विश्वास था कि छह महीने या साल भर में मैं इसे पूरा कर पाऊंगा। मैंने झूलों के लिए सामान मंगवा लिया। उन दिनों मैं इस सोच में भी था कि बच्चों को जाड़ों के लिए कैसे तैयार किया जाए, ताकि वे जाड़ों में भी जहां तक हो सके ताज़ी हवा में रहें।

प्राथमिक कक्षाओं के छात्रों के शारीरिक विकास का कई साल तक प्रेक्षण करने पर मैं इस बात का क़ायल हो गया था कि बच्चों के लिए ऐसी ख़ुराक पाना कितना महत्वपूर्ण है, जिसमें सभी पौष्टिक तत्व हों। कई बच्चों के भोजन में ऐसे पौष्टिक तत्वों का अभाव था, जो शरीर को मज़बूत बनाने और सर्दी लगने से बचाने तथा चयापचय के विकारों को रोकने के लिए ज़रूरी हैं। केवल ८ परिवारों में शहद था, और शहद तो तश्तरी पर रखा सूरज का टुकड़ा है। मैंने माता-पिताओं से बातचीत की, उन्हें यह समझाया कि बच्चों के स्वास्थ्य के लिए शहद कितना ज़रूरी है।

सितंबर के अंत तक १३ परिवारों ने एक-दो छत्ते खरीद लिए। वसंत में २३ घरों में मधुमक्खियां पाली जाने लगीं।

शरद ऋतु में मैंने माताओं को सलाह दी कि वे जाड़ों के लिए जंगली गुलाब की और दूसरी ऐसी बेरियों और फलों का मुरब्बा बनाकर रख लें, जिनमें विटामिन काफ़ी होते हैं। माता-पिताओं से इस बारे में भी बातचीत करनी पड़ी कि हर घर में फलों के काफ़ी पेड़ हों, ख़ास तौर पर सेब के। बच्चों के लिए जाड़े भर ताज़े फल होने चाहिए–गांवों में ऐसा कर पाना मुश्किल नहीं है, बस थोड़ी मेहनत करने की ज़रूरत है। हर परिवार अगर काफ़ी पेड़ लगा लेगा, तो शरद में इतने फल हो जाएंगे कि सारा जाड़ा काम देंगे।

गेहूं, जौ, कूटू आदि अनाज तथा चरागाहों में उगनेवाले कई घास-पात अपने आस-पास की हवा में रोगाणुओं को नष्ट कर देते हैं। अतः यहां की वायु स्वास्थ्य के लिए अमृत होती है। मैं बच्चों को अक्सर खेतों और चरागाहों में ले जाता था, ताकि वे अन्न की गंध से सुरभित वायु में सांस लें। माता-पिताओं को मैंने सलाह दी: अपने बच्चों के सोने के कमरे के बाहर खिड़की के पास हेज़लनट के पौधे लगाइए। यह पेड़ भी रोगाणुओं को नष्ट करता है और कई हानिकर कीड़े-पतंगे इसकी गंध नहीं सह सकते। जहां हेज़लनट उगता है, वहां मच्छर-मक्खियां नहीं फटकते। मैंने हर परिवार से आंगन में फ़ौहारा भी लगवाया, ताकि गर्मियों में बच्चे वहां नहा सकें।

कई बरसों से मुझे यह प्रश्न व्यथित कर रहा था: कई बच्चों की नज़र कमज़ोर क्यों होती है? तीसरी कक्षा में ही बच्चे को ऐनक क्यों लगानी पड़ती है? छोटी उम्र के बहुत-से बच्चों के जीवन को देखते हुए मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि इसका कारण पढ़ाई से आंखों का थकना इतना नहीं होता है, जितना यह कि बच्चे को दिनचर्या ठीक नहीं होती, उसके भोजन में विटामिनों की कमी होती है, बच्चे को हृष्ट-पुष्ट बनाने की ओर ध्यान नहीं दिया जाता, उसे सहज ही सर्दी लग जाती है। बचपन में हुए कुछ रोगों का भी नज़र पर असर पड़ता है। अगर बच्चे की दिन-चर्या सही होगी, उसके आहार में सभी पौष्टिक तत्व होंगे और शरीर हृष्ट-पुष्ट बनाया गया होगा, तो ऐसी हालत में बच्चा रोगों से बचा रहेगा और वह अपने चारों ओर की दुनिया के सौंदर्य का रसपान कर सकेगा।

बरसों तक बच्चों के प्रेक्षण में मैंने एक चिंताजनक बात देखी: वसंत

आते ही बच्चों का स्वास्थ्य गिरने लगता है। उनके शरीर में ठंड से होने-वाले रोगों का प्रतिरोध करने की शक्ति और काम करने की क्षमता भी कम पड़ जाती है। वसंत के महीनों में नज़र ख़ास तौर पर ख़राब होती है।

चिकित्सकों और मनोवैज्ञानिकों की कृतियों में मैंने इन बातों का कारण पाया : वसंत में शरीर के विभिन्न अवयवों की परस्परक्रिया की गति काफ़ी बदल जाती है। बात यह है कि शरीर में विटामिनों का जो भंडार होता है, वह लंबे जाड़े के दौरान ख़त्म हो जाता है, और सूर्य-विकिरण में जो तेज़ कमी आ गई होती है, उसका कुप्रभाव भी वसंत में प्रकट होने लगता है। सो, जब बच्चे का दिमाग़ काफ़ी देर तक तेज़ी से काम करता है, तो उसका तंत्रिका-तंत्र थक जाता है।

मैंने काफ़ी सोचा कि इन कारकों का कुप्रभाव कैसे कम किया जाए। माता-पिता शरद ऋतु में ही वसंत के लिए विटामिन युक्त खाद्य पदार्थों का भंडार बना लेने की ओर अधिक ध्यान देने लगे। जाड़े और वसंत में जिस दिन भी सूरज निकलता उस दिन हम कोशिश करते कि ज़्यादा से ज़्यादा समय ताज़ी हवा में बिताएं। मैं इस बात पर चिंतित था कि कैसे वसंत में बच्चों के बौद्धिक श्रम का तनाव कम किया जाए; मुझे लगा कि इसका सबसे अच्छा रास्ता है बौद्धिक श्रम में विविधता लाना। जहां तक संभव हो बच्चों को बौद्धिक कार्य क्लास में नहीं, बल्कि ताज़ी हवा में, प्रकृति की गोद में करना चाहिए और यह शारीरिक श्रम से जुड़ा होना चाहिए। धीरे-धीरे यह हमारे स्कूल में वसंत के महीनों में पढ़ाई का नियम बन गया।

युद्ध के पश्चात पहले वर्षों में बहुत-से बच्चों की अवस्था ऐसी थी कि वे सहज ही विक्षिप्ति (न्यूरोसिस) के शिकार हो सकते थे। मेरे कुछ छात्र (विशेषत: तोल्या, कोल्या, स्लावा और फ़ेद्या) अक्सर घुटे-घुटे और जीवन से उदासीन, विरक्त नज़र आते थे। मैं यह कोशिश करता था कि बच्चों के मन की यह घुटन, उनकी भीरुता और किंकर्तव्यविमूढ़ता और उनका अत्यधिक शर्मीलापन बढ़कर विक्षिप्ति का रूप न धारण करने पाएं। हम प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापक प्राय: मिलकर इस बात पर विचार करते थे कि बच्चों के सामूहिक जीवन को ख़ुशियों से भरपूर बनाने के लिए हमें क्या करना चाहिए। हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि परिवार में बच्चे का जिन मुसीबतों, निराशाओं, टकरावों से सामना होता है, स्कूल में बच्चे के मनोमस्तिष्क पर उनका बोझ, उनका तनाव कम से कम करने

की कोशिश की जानी चाहिए। हम अध्यापक यह **जानने** की कोशिश करते थे कि बच्चे के मन पर क्या गुज़र रही है, मन की किस उथल-पुथल में खोया वह स्कूल आया है, ताकि संवेदनशील बाल-हृदय को किसी भी पीड़ादायी स्पर्श से बचा सकें। किसी बच्चे के आत्मिक जीवन में हमें जो बात भी ख़ास तौर पर ध्यान देने योग्य लगती, उस पर हम सब बैठकर विचार-विमर्श करते थे। बच्चों के मन पर छाए दुख-दर्द और विषाद के कोहरे को स्कूल में छितराया जाना चाहिए।

ऐसे बच्चों की ओर हमें ख़ास तौर पर ध्यान देना होता था, जिनके कोमल बाल-हृदय दुखों के बोझ से टूट चुके थे। कोल्या, साश्को, तोल्या, पेत्रिक और स्लावा की मनोदशा कभी-कभी ऐसी तनावपूर्ण होती थी कि लेशमात्र स्पर्श से ही उनका भावों का बांध टूट सकता था, बच्चे बिफर सकते थे। किसी-किसी दिन मैं देखता था कि इन बच्चों से कुछ नहीं पूछना चाहिए। दूसरे बच्चों पर प्रभाव डालने के लिए जो साधन कारगर थे, वहीं इन बच्चों के लिए बिल्कुल नाकाम थे। चिकित्सकों की वैज्ञानिक रचनाओं में मैंने **"चिकित्सीय शिक्षाशास्त्र"** की अवधारणा पाई। यह अवधारणा उन बच्चों की शिक्षा और चरित्र-निर्माण के कार्य के सार को बिल्कुल सही-सही व्यक्त करती है, जिन के आचार-व्यवहार पर उनकी अस्वस्थ मनोदशा की छाप होती है। चिकित्सीय शिक्षाशास्त्र के प्रमुख सिद्धांत ये हैं: १) बच्चे की नाज़ुक मनोदशा किसी भी तरह के आघात से बचाया जाए; २) स्कूल की सारी जीवन पद्धति ही ऐसी हो, जो दुखद विचारों और भावनाओं की ओर से बच्चों का ध्यान बंटाए और उनके मन में प्रफुल्लता का, हर्ष का संचार करे; ३) किसी भी हालत में बच्चे को यह आभास न होने दिया जाए कि उसके साथ एक रोगी जैसा बर्ताव किया जाता है।

स्कूल के एक बच्चे में मुझे ऐसे लक्षण नज़र आते थे, जिनसे स्पष्ट था कि वह हिस्टीरिया का शिकार हो सकता है। मैं इस बात पर बहुत परेशान था कि इस बालक – वोलोद्या – के माता-पिता उसकी बहुत प्रशंसा करते थे। उन्होंने अपने मन में यह बात बिठा ली थी कि उनका बेटा असाधारण बालक है। मुझे डर था कि असाधारणता का यह भ्रम जब अनिवार्यतः दूर होगा, तब बच्चे के मन में माता-पिता के प्रति और सभी बड़ों के प्रति घृणा पैदा हो सकती है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि ऐसे बच्चों में विनम्रता, शालीनता और दूसरों के प्रति आदर की भावनाएं जगाकर ही

उन्हें इन मानसिक विकारों से छुटकारा दिलाया जा सकता है। मैं यह कोशिश करता था कि वोलोद्या यह महसूस करने लगे कि उसके ग्रास-पास जितने भी लोग हैं, सभी उसके जैसे ही इन्सान हैं।

चिकित्सीय शिक्षाशास्त्र में मंथर और घुटे-घुटे चिंतनवाले बच्चों की ग्रोर विशेष ध्यान दिया जाता है। कार्टेक्स की कोशिकाग्रों की जड़ता, शिथिलता की चिकित्सा भी उसी तरह बहुत सोच-समझकर ग्रौर बड़े धीरज के साथ करनी चाहिए, जैसे कि हृदय की मांसपेशी या ग्रंतड़ियों के रोगों का इलाज किया जाता है। कोशिकाग्रों की शिथिलता दूर करने के लिए तो हृदय रोग से भी हज़ार गुनी ग्रधिक सावधानी ग्रौर शिक्षण कौशल की तथा प्रत्येक बच्चे की व्यक्तिगत विशिष्टताग्रों के गूढ़ ज्ञान की ग्रावश्यकता होती है।

हर बच्चा चित्रकार है

"ख़ुशियों का स्कूल" खुलने के हफ़्ते भर बाद ही मैंने बच्चों से कहा: "कल ग्रपनी-ग्रपनी कापियां ग्रौर पेंसिलें लाना। हम तस्वीरें बनाएंगे।" ग्रगले दिन हम स्कूल के मैदान में जा बैठे। मैंने बच्चों को सुझाया: "ग्रपने चारों ग्रोर देखो। तुम्हें जो चीज़ सुंदर लगती है, ग्रच्छी लगती है, उसी का चित्र बनाग्रो।"

हमारे सामने स्कूल का बाग़ था ग्रौर एक छोटा-सा खेत, जहां स्कूल के बच्चे काम करते थे। वे पतझड़ के सूरज से ग्रालोकित थे। बच्चे चह-चहाने लगे: किसी को लाल-पीले कद्दू ग्रच्छे लग रहे थे, किसी को सिर झुकाए खड़े सूरजमुखी के फूल, किसी को कबूतरों का दरबा ग्रौर किसी को ग्रंगूरों के गुच्छे। शूरा को ग्रासमान में तैरते हल्के-फुल्के बादलों ने ग्राक-र्षित किया। सेर्योझा तालाब में तैरते हंसों को टकटकी लगाए देख रहा था। दान्को मछलियां बनाना चाहता था – वह बड़े जोश से बताने लगा कि कैसे वह एक बार ग्रपने चाचा के साथ मछली पकड़ने गया था। मछली तो वे एक भी नहीं पकड़ पाए, पर हां उन्होंने यह देखा लिया कि मछ-लियां कैसे "खेलती" हैं।

"मैं सूरज बनाऊंगी," तीना ने कहा।

ख़ामोशी छा गई। बच्चे चित्र बनाने में लग गए। मैंने चित्रकला के पाठों की विधियों के बारे में बहुत कुछ पढ़ रखा था, ग्रौर ग्रब यहां मेरे सामने जीते-जागते बच्चे थे। मैंने देखा कि बच्चों के चित्र ग्रौर चित्र

बनाने की प्रक्रिया उनके आत्मिक जीवन का ही एक अंश है। बच्चे अपने चारों ओर के संसार से किसी एक चीज़ को केवल काग़ज़ पर उतारते नहीं हैं, बल्कि इस संसार में जीते हैं, वे इस संसार में प्रवेश करके सौंदर्य का सृजन करते हैं और इस सौंदर्य का रसपान करते हैं। मैं वान्या को चित्र बनाते देखता हूं: वह अपने काम में खोया हुआ है, छत्ता बना रहा है, पास ही पेड़ है, जिस पर बड़े-बड़े फूल हैं और फूल के ऊपर मधु-मक्खी मंडरा रही है, मधुमक्खी भी छत्ते जितनी ही बड़ी है। वान्या के गाल लाल हो गए हैं, उसकी आंखों में प्रेरणा की वह चमक है, जिसे देखकर शिक्षक को अपार हर्ष होता है।

बच्चों का सृजनात्मक कार्य उनके आत्मिक जीवन का नितांत मौलिक क्षेत्र है। उनका सृजन उनकी आत्माभिव्यक्ति और आत्मपुष्टि का साधन है, जिसमें प्रत्येक बच्चे की अपनी व्यक्तिगत विशिष्टता प्रकट होती है। यह विशिष्टता किन्हीं भी ऐसे आम नियमों के अंतर्गत नहीं आ सकती, जो सभी के लिए एकमात्र और अनिवार्य हों।

कोल्या ने यह नहीं बताया था कि उसे क्या अच्छा लगा, सो मैं यह जानने को बहुत उत्सुक था कि वह क्या बनाएगा। उसकी कापी में मुझे एक छतनारा पेड़ दिखा, जिस पर बड़े-बड़े, गोल-गोल फल लगे हुए थे—अच्छा, तो सेब का पेड़ बनाया है कोल्या ने। पेड़ तारों से घिरा हुआ था, जिनसे किरणें फूट रही थीं और पेड़ के बहुत ऊपर चंद्रमा बना हुआ था। काश, मैं इस रोचक चित्र में बच्चे के छिपे विचारों और भावों को जान सकूं। उसकी आंखों में मुझे वैसी ही प्रेरणा की चमक दिख रही थी, जैसी उस वक़्त मैंने देखी थी, जब हम संसार का प्रेक्षण कर रहे थे।

"सेब के पेड़ के ऊपर ये कैसे तारे बनाए हैं तुमने?" मैंने कोल्या से पूछा।

"ये तारे नहीं हैं," लड़के ने जवाब दिया। "यह तो रुपहली चिन-गारियां हैं, जो चंद्रमा से बग़ीचे पर गिर रही हैं। चंद्रमा के भी तो अपने भीमकाय सुनार हैं, न?"

"ज़रूर हैं," मैंने उत्तर दिया। मुझे यह सोचकर विस्मय हो रहा था कि संध्या के शांत क्षणों में इस बालक के मन में कैसे विचार उठते रहे हैं। स्पष्ट था कि तारों से टिमटिमाते आसमान और चांदनी के खेल को देखते हुए उसने सेब के पेड़ों पर चंद्रप्रभा के इस मुकुट की ओर ध्यान दिया था।

"पर चंद्रमा के ये भीमकाय सुनार रात को कौनसे तार कूटते हैं?" कोल्या विचारमग्न-सा बोला। मुझे लगा कि प्रश्न शिक्षक को संबोधित नहीं है, बल्कि बालक तारों भरी रात की और चंद्रमा की धीमी-धीमी रोशनी की अपनी यादों से ही यह पूछ रहा है। मुझे डर था कि कहीं अपने शब्दों से मैं बालक के इस प्रेरणा-आवेग में बाधा न डालूं। साथ ही मेरे मन में यह हर्षमय विचार आया: इस तरह का सृजन बाल-आत्मा की गहराइयों में सोए पड़े नेक विचारों, नेक भावनाओं को जगाता है। बच्चे को अपने चारों ओर की दुनिया के सौंदर्य की अनुभूति कराते हुए शिक्षक इन गहराइयों की झलक पा लेता है।

लरीसा की देखा-देखी मैं भी भीमकाय सुनार बनाने लगा। मुझे लग रहा था कि मैं अच्छा चित्र बना रहा हूं—सब कुछ सचमुच जैसा ही था। मैं यह भूल गया कि मैं बड़ा हूं और मन ही मन ख़ुश हो रहा था: मेरे सुनार तो लरीसा के सुनारों से अच्छे ही होंगे। लेकिन मेरे चित्र पर बच्चों की नज़रें नहीं टिक रही थीं, और उधर लरीसा के चित्र के आस-पास सब बच्चे जमा हो गए थे। "ऐसा क्या बनाया है इसने?" मैं सोच रहा था। मैंने बच्चों के सिरों के ऊपर से झांककर देखा: बच्ची के चित्र में कोई ख़ास बात नहीं लगती थी, लेकिन सब उसकी तारीफ़ क्यों कर रहे थे, जबकि मेरे चित्र की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जा रहा था? बच्ची के बनाए चित्र को मैं काफ़ी देर तक बड़े ध्यान से देखता रहा, और धीरे-धीरे एक बात मेरी समझ में आने लगी: बच्चे संसार को अपनी ही नज़रों से देखते हैं, कलात्मक अभिव्यक्ति के उनके अपने साधन, अपनी भाषा होती है और लाख कोशिश करने पर भी आप उसकी नक़ल नहीं कर सकते। मेरे बनाए सुनार आम सुनारों जैसे ही थे, लेकिन लरीसा के चित्र में घने, घुंघराले बालों के ऊपर चिनगारियों का प्रभामंडल-सा बना हुआ था और उनकी दाढ़ियां दाढ़ियां नहीं—आग की लपटें ही थीं। उनके हथौड़े उनके सिरों से दुगने बड़े थे... बच्चों के लिए इस असंगति का अर्थ यह नहीं है कि वे जीवन के सत्य से आंखें मूंद रहे हैं, नहीं, उलटे उनके लिए तो यही ज्वलंत सत्य है। मनुष्य की यह अनूठी शक्ति, उसका कौशल और अग्नि के साथ उसकी सामान्यता—यह सब बच्चों के लिए सत्य ही है। बाल-कल्पना की इस विलक्षण भाषा को हमें अपनी, बड़ों की भाषा के समान बनाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। बच्चों को अपनी भाषा में ही एक दूसरे से बातें करने दीजिए। प्राथमिक कक्षाओं

के अध्यापकों को मैं यह सलाह देता था: बच्चों को अनुपात के, सादृश्य और परिप्रेक्ष्य के नियम सिखाइए–यह सब जरूरी है, लेकिन साथ ही बच्चे की कल्पना को भी उड़ान भरने दीजिए, उन्हें इस संसार को अपनी नज़रों से, परी-कथा के रूप में देखने दीजिए।

सभी बच्चे अपने बनाए चित्र के बारे में कुछ न कुछ बताना चाहते थे। उनकी इन कहानियों में ज्वलंत बिंबों के, रूपकों के रत्न झिलमिला रहे थे। इस तरह चित्रकारी से बच्चों की वाणी मुखरित हो रही थी।

अब हम जंगल और खेतों-मैदानों में प्रायः सदा ही ड्राइंग की कापियां और पेंसिलें लेकर जाने लगे। बड़ी कक्षाओं के छात्रों ने बच्चों के लिए छोटी-छोटी कापियां बना दीं, जिन्हें वे जेब में रख सकते थे। वसंत आने पर मैंने एक बड़ी कापी बनाई। इसमें हर बच्चा अपनी इच्छा से अपनी पसंद का चित्र बनाता था। मैं इस कापी में बच्चों की छोटी-छोटी कहानियां लिखता था। यह हमारे बाल-समूह के जीवन और आत्मिक विकास का एक पूरा पृष्ठ है।

जीवन और सौंदर्य की चिंता

मुझे यह देखकर बड़ी परेशानी होती थी कि कुछ बच्चे अपने चारों ओर के सौंदर्य के प्रति, जीव-जंतुओं के प्रति काफ़ी उदासीन हैं। उनकी कुछ हरकतें बड़ी निष्ठुरता भरी होती थीं–उनका कोई कारण भी नहीं दिखाई देता था–इस पर भी मैं काफ़ी चिंतित था। एक दिन हम चरागाह में घूम रहे थे। घास-पात पर तितलियां, भौंरे, गुबरैले उड़ रहे थे। यूरा ने एक गुबरैले को पकड़ लिया, अपनी जेब में से शीशे का टुकड़ा निकाला, कीड़े को चीर डाला और देखने लगा कि उसके अंदर क्या है। हमारे स्कूल के पास, जिधर बहुत कम ही कोई आता-जाता था, बरसों से अबाबीलों के कुछ परिवार रह रहे थे। एक बार हम उधर घूमने गए। इससे पहले कि मैं बच्चों को अबाबीलों के घोंसलों के बारे में कुछ बताता, शूरा ने घोंसले पर पत्थर दे मारा। स्कूल के सभी छात्र आंगन में उग रहे सुंदर फूलों की देखभाल करते थे। और ल्यूस्या ने बड़े आराम से जाकर फूल तोड़ लिया। ये सब बातें हमारे "खुशियों के स्कूल" के पहले दिनों में ही हुईं। मैं यह देखकर चक्कर में था कि बच्चे, एक ओर, जहां सुंदरता

से ख़ुश होते थे, वहीं, दूसरी ग्रोर, उन्हें मानो इस बात में कोई रुचि ही नहीं थी कि सुंदर वस्तु का क्या होगा। इन बच्चों के साथ अपनी भेंट से बहुत पहले ही मेरा यह विश्वास बन गया था कि सुंदरता के प्रति आकर्षण, उस पर विस्मय-विमुग्ध होना नेक भावनाओं का पहला अंकुर मात्र है, जिसे बढ़ाना, विकसित करना चाहिए, ताकि वह कुछ करने की सक्रिय चेष्टा का रूप ले ले। कोल्या और तोल्या की हरकतें मुझे ख़ास तौर पर व्यथित करती थीं। कोल्या के सिर पर तो मानो गौरैयों के घोंसले उजाड़ने की हविश सवार थी। मैंने सुना था कि उजड़े घोंसले में से जो छोटे-छोटे चिड़े गिर जाते थे, उन्हें वह तेल मिल के गटर में फेंक देता था। चिड़े देर तक चिचियाते रहते थे और कोल्या कान लगाए सुनता रहता था। ऐसी निष्ठुरता केवल कोल्या में ही नहीं थी, जिसके अपने परिवार में दुष्टता व्याप्त थी, बल्कि कई ऐसे बच्चों में भी थी, जो सामान्य वातावरण में रह रहे थे। सबसे चिंताजनक बात तो यह थी कि बच्चे सुंदरता और जीवन के प्रति दुष्टता और उदासीनता भरी जो "छोटी-छोटी" हरकतें करते थे, उन्हें वे बुरी और निंदनीय नहीं समझते थे। ये "छोटी-छोटी" हरकतें ही बच्चों को धीरे-धीरे बिल्कुल निर्दय, निष्ठुर बना देती हैं।

कैसे बच्चों के मन में नेक भावनाएं जगाई जाएं, उन्हें सौंदर्य के प्रति, जीव-जंतुओं के प्रति दया भाव रखना सिखाया जाए? एक दिन हम खेतों में घूम रहे थे। घास में एक भरत पंछी एक जगह से दूसरी जगह पर फुदक रहा था, लेकिन उड़ नहीं पाता था। उसका पंख टूटा हुआ था। बच्चों ने भरत पंछी को पकड़ लिया। नन्हा-सा प्राणी उनके हाथों में फड़-फड़ाने लगा, उसकी मनकों जैसी, सहसी-सहमी आंखें नीले आकाश की ओर देख रही थीं। कोल्या ने उसे अपनी मुट्ठी में दबाया, बेचारी चिड़िया चिचिया उठी। बच्चे हंस पड़े। "क्या इनमें से किसी को भी इस बेचारे पंछी पर दया नहीं आ रही?" मेरे मन में यह सवाल उठा और मैंने बच्चों पर नज़र दौड़ाई। लीदा, तान्या, दान्को, सेर्योझा और नीना की आंखों में आंसू थे।

"क्यों तू बेचारी चिड़िया को सता रहा है?" करुणा भरे स्वर में लीदा ने कोल्या से कहा।

"तुझे क्या तरस आ रहा है?" लड़के ने पूछा। "तो ले, फिर कर इसकी सेवा-टहल," और चिड़िया को लीदा की ओर फेंक दिया।

"हां ,हां, तरस आ रहा है, और सेवा-टहल भी करूंगी," लीदा ने चिड़िया को सहलाते हुए कहा।

हम जंगल के पास जाकर बैठ गए। मैंने बच्चों को बताया कि शरद ऋतु में पक्षी दूर देशों की ओर चल देते हैं। वे जाड़ा बिताने के लिए गरम देशों में जाते हैं। फ़सल की कटाई के बाद खाली हुए खेतों में कहीं-कहीं कोई अकेला पंछी पड़ा होता है—किसी का पंख टूट गया है और कोई चील या बाज़ जैसे ख़ूंख़्वार पक्षियों के पंजों से नुचा हुआ बच निकला है। आगे जाड़ा आनेवाला है, बर्फ़ पड़ेगी, बर्फ़ीली आंधियां और तूफ़ान आएंगे। ऐसे में इस भरत पंछी का क्या होगा? बेचारा ठंड से अकड़ जाएगा। जरा सोचो तो, कितना अच्छा गाता है यह, वसंत और गर्मियों में यह अपने मधुर संगीत से खेतों-मैदानों को गुंजाता है। भरत पक्षी सूरज की संतान है। एक कहानी में कहा गया है: "सूरज की आग में से भरत पंछी का जन्म हुआ"... तुम सब तो जानते ही हो कि जब जाड़ों में सख़्त पाले से उंगलियां अकड़ने लगती हैं, तो कितना दर्द होता है, ठंडी हवा सुइयों की तरह चुभती है। तुम सब जल्दी-जल्दी घर जाते हो, वहां आग के पास गरमी में बैठते हो... पर पंछी कहां जा सकता है? कौन इसे शरण देगा? बेचारा ठंड से अकड़ा एक ढेला बनकर रह जाएगा।

"नहीं, हम इसे मरने नहीं देंगे," वार्या ने कहा। "हम इसके लिए गरम घोंसला बना देंगे। बस यह वहीं बैठा वसंत का इंतज़ार करेगा।"

सब बच्चे एक दूसरे की बात काटते हुए यह बताने लगे कि घोंसला कैसे बनाया जाए। सब बच्चे चिड़िया को अपने घर ले जाना चाहते थे। सिर्फ़ कोल्या, तोल्या और कुछ दूसरे लड़के चुप थे।

"पर बच्चो, इसे घर क्यों ले जाया जाए? हम इसके लिए स्कूल में ही अच्छा-सा घोंसला बना देंगे, इसे दाना-पानी देंगे और इसका इलाज करेंगे। फिर जब वसंत आएगा, तो इसे नीले आसमान में उड़ने के लिए छोड़ देंगे।"

हम भरत पंछी को स्कूल में ले आए और उसे एक पिंजड़े में बिठा दिया। स्कूल में हमें एक कमरा मिला हुआ था, उसी में हमने पिंजड़ा रख दिया। रोज़ाना सुबह कोई न कोई बच्चा भरत पंछी को देखने आता था। बच्चे उसके लिए दाना-पानी लाते थे।

कुछ दिन बाद कात्या एक कठफोड़वा लाई: उसके पिता को वह जंगल में मिला था। लगता था कि कठफोड़वा किसी ख़ूंख़्वार पक्षी के पंजे से बच

निकला है। उसके पंख लटक रहे थे और पीठ पर ख़ून जमा हुआ था। कठफोड़वे को भी हमने भरत पंछी के साथ बिठा दिया। कोई नहीं जानता था कि कठफोड़वा क्या खाता है—शायद कीड़े-मकोड़े? पर उन्हें कहां ढूंढ़ा जाए—पेड़ की छाल तले? तभी कोल्या शेखी के साथ बोला:

"मुझे पता है। कठफोड़वा सिर्फ़ कीड़े-मकोड़े ही नहीं खाता। उसे बेद-मजनूं की कोपलें और घास के बीज भी अच्छे लगते हैं। मैंने देखा था..." कोल्या कुछ और भी कहना चाहता था, पर सकपका गया। शायद, वह कठफोड़वों का शिकार करता रहा होगा।

"अच्छी बात है, अगर तुम्हें पता है कि कठफोड़वा क्या खाता है, तो तुम्हीं उसके लिए खाना जुटाओ। देखो, बेचारा कैसी कातरता से देख रहा है।"

कोल्या रोज़ाना कठफोड़वे के लिए दाना लाने लगा। उसके मन में अभी इस नन्हे जीव के प्रति कोई दया भाव नहीं था। उसे तो बस अपने साथियों की तारीफ़ अच्छी लगती थी: देखा, कैसा है कोल्या, इसे पता है चिड़ियां क्या खाती हैं। अपने पर गर्व की भावना से ही बच्चे के मन में अगर नेक भावनाएं जन्म लेने लगें, तो इसमें कोई बुराई नहीं है। बच्चे को भले काम करने की आदत पड़ जाने दीजिए, फिर इनसे ही उसके मन में नेकी जाग उठेगी।

मैंने कई बार लड़कों से पूछा था: तुम कैसा इन्सान बनना चाहते हो?—शक्तिशाली, वीर, निडर, बुद्धिमान, साहसी, हाज़िरजवाब... सैंकड़ों जवाब मुझे याद आ रहे थे। किसी ने यह नहीं कहा था कि वह नेक बनना चाहता है, सहृदय बनना चाहता है। क्या कारण है कि नेकी को, दयालुता को वीरता और साहस जैसे गुणों के समान नहीं माना जाता? क्या कारण है कि बच्चों को अपनी सहृदयता से झिझक होती है? आख़िर नेकी के बिना, उस सच्चे हार्दिक स्नेह के बिना, जो एक व्यक्ति दूसरे को देता है, मनुष्य में आत्मिक सौंदर्य नहीं हो सकता। मैं कई बार इस बात पर भी सोच-विचार करता रहा हूं कि लड़कियों में लड़कों से अधिक सहृदयता, दयालुता क्यों होती हैं। शायद यह मुझे यों ही लगता हो? पर नहीं, यह सही है। बालिकाएं अधिक सहृदय, अधिक संवेदनशील और स्नेही होती हैं। शायद इसका कारण यह है कि उनमें बचपन से ही मातृत्व की अवचेतन भावना होती है। नए जीवन का सृजन कर पाने की अवस्था में पहुंचने से बहुत पहले ही बालिका के हृदय में अवचेतन भावना स्थान

बना लेती है कि उसे जीवन की चिंता करनी है, उसकी रक्षा करनी है। नेकी की, सहृदयता की जड़, उसका स्रोत सृजन में तथा जीवन और सौंदर्य की पुष्टि में ही निहित है। सहृदयता और सौंदर्य के बीच अटूट संबंध है।

एक दिन फ़ेद्या एक पीलक को स्कूल लाया। यह पंछी भी किसी कारण से उड़ नहीं पा रहा था। फ़ेद्या को वह पशुपालन केंद्र के पास झाड़ियों में मिला था। बच्चे उसके सुंदर रंग-बिरंगे पंखों को एकटक देखते जा रहे थे।

बच्चों के शब्दों में अब हमारे कमरे में "चिड़ियों का अस्पताल" था। यहां हम नए दिन का स्वागत करते थे और अगले दिन तक के लिए विदा होते थे। कोस्त्या एक मरियल-सी गौरैया को लाया, जो उसे सड़क के किनारे पड़ी मिली थी। गौरैया न दाना चुगना चाहती थी, न रोटी के टुकड़े ही लेती थी। कोस्त्या चिड़िया की बीमारी पर बड़ा दुखी था। गौरैया के मरने पर हम सबको दुख हुआ। कोस्त्या रोने लगा, लड़कियां भी रो रही थीं। कोल्या गुमसुम हो गया।

मुझे यानुश कोर्चाक के ये शब्द याद आए: "बच्चों का अकलुषित मन ऊंच-नीच की भावना से मुक्त होता है। नादान उम्र में ही बच्चा मजदूर का पसीना और भूखे हमउम्र को देखकर दुखी हो उठता है। कुत्ता और चिड़िया उसके लिए निकट संबंधियों जैसे होते हैं तथा तितली और फूल उसके साथी; पत्थर और कौड़ी को वह अपने भाई-बहन समझता है। अहम्मन्यता की भावना से मुक्त बच्चा यह नहीं जानता कि केवल मनुष्य में ही आत्मा है।"

हां, यह सब सच है। लेकिन **सहृदय बच्चा** कहीं आसमान से नहीं टपक पड़ता। उसके मन में नेकी जगानी पड़ती है, उसे सहृदय बनाना पड़ता है।

एक दिन जंगल में घूमते हुए बच्चों को एक छोटा-सा ख़रगोश मिला, जिसकी टांग पर चोट लगी हुई थी। बच्चों ने उसे अपने कमरे में लाकर एक पिंजड़े में रखा। हफ़्ते भर बाद लरीसा ठंड से ठिठुरते, दुबले-पतले बिलौटे को लाई। उसे भी ख़रगोश के ही पिंजड़े में रख दिया। बच्चों के लिए अब काफ़ी काम हो गया: वे ख़रगोश के लिए गाजरें और बिलौटे के लिए दूध लाते थे। एक दिन सुबह जब हम स्कूल के अपने कमरे में पहुंचे, तो ख़रगोश और बिलौटा एक दूसरे से सटे मीठी नींद सो रहे थे। यह दृश्य

देखकर बच्चों को जो ख़ुशी हुई, उसका शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। वे बहुत ही धीमी-धीमी आवाज़ में बातें कर रहे थे इस डर से कि कहीं ख़रगोश और बिलौटा न जाग जाएं।

कई पक्षी जाड़ों में गरम देशों को नहीं जाते, बल्कि हमारे इलाकों में ही जाड़ा काटते हैं। गांव में उनके लिए जगह-जगह पर दाना डाला जाता है। इन्हीं जगहों पर बच्चों को जाड़ों में कुछ दुर्बल टोमटिट पंछी मिले। बच्चे उन्हें अपने "चिड़ियों के अस्पताल" में ले आए। एक और बात देखकर मुझे बड़ी ख़ुशी हुई थी: कुछ बच्चे कमज़ोर पशु-पक्षियों को अपने-अपने घर ले जाकर भी उनकी देखभाल करने लगे थे। जब हमने अपने कमरे में एक मछलीघर में छोटी-छोटी मछलियां रखीं, तो बच्चे अपने माता-पिता से अनुरोध करने लगे: हमें घर पर मछलीघर बना दो। कई माता-पिता स्कूल आकर पूछते थे, कैसे मछलीघर बनाएं। मछलीघरों के लिए वनस्पतियां और रंग-बिरंगी मछलियां पाना काफ़ी मुश्किल था। चारा भी आसानी से नहीं मिलता था। लेकिन बच्चों के आग्रह के सामने ये सारी कठिनाइयां कुछ नहीं थीं: बच्चे माता-पिताओं को और मुझे भी चैन नहीं लेने देते थे। स्लावा और तीना की माताएं मेरे पास आईं: बच्चे पीछा नहीं छोड़ते, कहते हैं, सबके पास सुनहरी मछलियां हैं, हमारे पास नहीं हैं। मुझे बड़ी कक्षाओं के छात्रों से कहना पड़ा कि वे छोटे बच्चों की सहायता करें। उन दिनों स्कूलों में छात्रों के लिए अभी वर्कशॉपें नहीं बनी थीं, मछलीघरों का इंतज़ाम करने के लिए हमें जल्दी से वर्कशॉप भी खोलनी पड़ी।

हम वे संध्याएं कभी नहीं भूलेंगे, जब मछलीघर के पास बैठते थे। एक छोटा-सा बल्ब मछलीघर में रोशनी करता था और हम मंद-मंद प्रकाश में तैरती सुनहरी मछलियों का सुंदर नज़ारा देखते रहते थे। मैं बच्चों को समुद्र की गहराइयों के बारे में, समुद्री जीवों के अत्यंत रोचक जीवन के बारे में बताता था। मेरे वे छात्र कब के स्कूल की पढ़ाई पूरी कर चुके हैं, अब वे ख़ुद बाल-बच्चोंवाले हैं, फिर भी अभी तक वे उन संध्याओं को याद करते हैं। कुछ साल पहले कोल्या ने मुझे कहा था:

"मुझे अक्सर सपने में वह छोटा-सा बल्ब दिखता था। उसकी रोशनी मेरे लिए ज्ञान का पहला स्रोत थी। मेरा मन होता था कि मैं सागर की गहराइयों, अजीबोग़रीब मछलियों के बारे में और अधिक जानूं।..."

अगर २४ वर्षीय नौजवान इतने स्नेह से मछलियों को याद करता है, तो इसका मतलब है कि यह कोई छोटी-मोटी बात नहीं। यह तो नेक

भावनाओं की एक धारा है। मैं बड़ी उत्सुकता से उस क्षण की प्रतीक्षा कर रहा था, जब हमारे चारों ओर के संसार का सौंदर्य हर वस्तु की ओर से उदासीन हृदयों में भी स्नेह और सहानुभूति जैसी नेक भावनाएं जगा देगा। उस साल का पहला पाला (अर्थात् जब तापमान शून्य से नीचे चला गया — अनु०) मैं कभी नहीं भूलूंगा। एक दिन सुबह हम स्कूल के बाग़ में गए। गुलाब के पौधे पर फूल खिला हुआ था और उसकी कोमल पंखुड़ियों पर ओस की बूंदें थीं। यह एक चमत्कार ही था कि रात को पाला पड़ने पर भी फूल बचा रहा था। हम सब फूल को देख रहे थे और सबका मन उदास हो रहा था: कुछ ही दिनों में पाला इस सौंदर्य को हर लेगा। मेरी नज़र कोल्या की नज़र से टकराई, उसकी आंखों में मैंने पहली बार उदासी और बेचैनी देखी थी। बाल-हृदय के ये सहज, निर्मल भाव उसके मन में भी जाग उठे थे। हम फिर कांच के तापघर में चले गए। यहां गरम देशों में उगनेवाले कुछ फूल-पौधे गमलों में लगे हुए थे। यहां कैक्टस भी थे। एक कैक्टस पर नन्हा-सा लाल फूल खिला था। इसके पास बैठकर हम इसे काफ़ी देर तक निहारते रहे, इसके सौंदर्य का रसपान करते रहे।

सौंदर्य और जीवन की चिंता धीरे-धीरे बच्चों के जीवन का एक अंग बनती जा रही थी। १९५१ के शरद के अंतिम दिनों में, जब पेड़ों से पत्तियां झड़ चुकी थीं हम जंगल में गए। वहां हमने एक छोटा-सा लिंडन वृक्ष जड़ समेत खोदा और उसे लाकर स्कूल के अहाते में लगा दिया। यह पेड़ हमारा मित्र बन गया। हम इस पेड़ के बारे में कल्पना करते थे, कहानियां बनाते थे, मानो वह जीता-जागता जीव हो और हमारे विचारों को समझ सकता हो, हमारे मनोभावों की उसको अनुभूति हो सकती हो। जब ज़्यादा ठंड नहीं होती थी और पानी बरसता था, तो बच्चे ख़ुश होते थे: हमारे दोस्त को बहुत नमी चाहिए थी। जब ज़मीन पाले से जकड़ गई और तेज़, तीखी हवाएं चलने लगीं, तो हम सब चिंतित हुए: हमारे दोस्त को ठंड लग रही होगी। बच्चों ने हिम इकट्ठा करके पेड़ के तने के चारों ओर उसका ढेर लगा दिया। लड़कियां कुछ सरकंडे लाईं, जिन्हें हमने तने पर बांध दिया। वसंत आने पर हम अक्सर अपने मित्र को देखने जाने लगे, हर बार मन में यही उत्सुकता होती कि कोंपलें फूटी हैं या नहीं। और जब पहली हरी पत्तियां निकलीं, तो बच्चे ख़ुशी से नाचने लगे: पेड़ ज़िंदा था। गर्मियों में हम पेड़ को पानी देते थे।

स्नेह और दयालुता की सामूहिक भावना में, सामूहिक सहृदयता में कितनी अपार शक्ति निहित है। यह भावना तेज़ नदी की भांति उदासीन से उदासीन हृदयों को भी अपने प्रवाह में बहा ले जाती है। मुझे यह देखकर ख़ुशी होती थी कि कोल्या, तोल्या, स्लावा और पेत्रिक किस तरह भावनाओं से ओत-प्रोत हो अपने मित्र – हरे लिंडन वृक्ष – के पास जाते थे, जब वे मछलीघर में मछलियों को खाना देते थे, तो उनकी आंखें कैसे आंतरिक उमंग से चमक उठती थीं।

वे बच्चे, जिनका मन यह सोचकर सिहर उठता था कि नन्हे-से लिंडन वृक्ष को बाहर पाला सता रहा है, अब बड़े हो गए हैं। हमारा मित्र बड़ा, छतनारा पेड़ बन गया है और युवक-युवतियां, युवा माता-पिता अब भी उसके पास आते हैं। वे अपने बचपन के सुनहरी शरद को याद करते हैं और उनके मन में नेक भावनाओं की लहर उठती है।

हमारा अनुभव यह बताता है कि नेक भावनाओं की जड़ें बचपन में उगनी चाहिए। अपने चारों ओर के संसार के सौंदर्य की चिंता और उसके बारे में उद्विग्नता तथा उसकी रक्षा के लिए श्रम ही बाल-हृदयों में मानवीयता, दयालुता, स्नेह और सहृदयता जैसे गुणों को जन्म देते हैं। नेक भावनाएं, भावनात्मक संस्कृति ही मानवीयता का, इन्सानियत का घनीभूत रूप हैं। अगर बचपन में नेक भावनाएं नहीं जगाई गईं, तो फिर वे कभी नहीं जगाई जा सकतीं, क्योंकि पहले और सर्वाधिक महत्वपूर्ण सत्यों का बोध पाने के साथ ही, अपनी मातृभाषा के शब्दों की सूक्ष्मतम अर्थच्छटाओं को अनुभव करने और उन्हें जीने के साथ ही सच्ची इन्सानियत हृदय में अपना स्थान बनाती है। बचपन में ही मनुष्य को नेक भावनाओं के संसार में दीक्षा दी जानी चाहिए।

श्रम जगत की यात्राएं

"श्रम को बच्चों के आत्मिक जीवन की एक सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता बनाने के लिए हमें क्या करना चाहिए?" हम सब अध्यापक इस प्रश्न पर बहुत सोच-विचार रहे थे। प्राथमिक कक्षाओं के शिक्षक पढ़ाई के पहले दिनों से ही बच्चों को उनकी क्षमता के अनुसार स्कूल के बाग़ और प्रयोगात्मक खेत में काम में लगाते थे। हमने एक छोटा-सा तापघर बनाया,

जहां बच्चे जाड़ों में बाग़बानी करते थे। बच्चों के श्रम को उच्च ग्रादर्शों से कैसे प्रेरित किया जाए? – इस प्रश्न पर आपस में सलाह-मशविरा करते हुए शिक्षकों ने फ़ैसला किया: हर साल नौ मई को, फ़ासिस्ट जर्मनी पर विजय के दिन, हम एक बलूत वृक्ष लगाएंगे। यह हमारी ख़ुशियों का जीता-जागता इतिहास होगा। उस समय से हर साल हमारे विजय उपवन में एक नया बलूत वृक्ष लगाया जाता है। बच्चों के चरित्र-निर्माण के लिए यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि अपने चारों ओर वे केवल प्राकृतिक सौंदर्य को ही नहीं, बल्कि श्रम, सृजन और निर्माण के संसार को भी देखें। हम सब शिक्षक इसे अपना एक सबसे बड़ा कार्यभार समझते थे। श्रम में ही मानव सौंदर्य सबसे अच्छी तरह निखरता है।

हमारे "ख़ुशियों के स्कूल" में अब श्रम जगत की यात्राएं होने लगीं। बच्चों को अपनी पहली "यात्रा" कभी नहीं भूलेगी। उस दिन वे सामूहिक फ़ार्म का अन्नभंडार देखने गए। बच्चों ने अनाज के ढेर देखे – वहां टनों अनाज थे। वान्या के पिता ने उन लोगों के बारे में बताया, जो अनाज की अच्छी फ़सल उगाते हैं। कम्बाइनचालक ग्रिगोरी आन्द्रेयेविच बच्चों को खेत में ले गए – वह गांव के पास ही है, अन्नभंडार के पीछे। "इस सौ हैक्टर ज़मीन से मैंने इस साल चार सौ टन अनाज लिया है। और दस साल में मैंने अपने कम्बाइन से इतना अनाज काटा है, जितना एक नगर के लिए चाहिए," उन्होंने बताया।

इस तरह बच्चे केवल अपनी बुद्धि से, मस्तिष्क से ही नहीं, बल्कि हृदय से भी संसार का बोध पाते हैं। श्रमिक मानव का सौंदर्य बच्चों को विस्मय-विमुग्ध करता है। उनके मन में मनुष्य के प्रति गर्व की भावना जागती है। और जब श्रम जगत की "यात्राओं" के दौरान बच्चे अपनी माताओं और पिताओं से मिलते हैं, तो यह भावना हृदय में और भी गहरा स्थान बना लेती है। डेरी में बच्चों को पता चला कि तान्या की मां जिन गायों की देखभाल करती और उन्हें दोहती हैं, वे डेढ़ हज़ार लोगों के लिए दूध देती हैं।

शरद के एक सुहावने दिन हम मशीननिर्माण कारख़ाना देखने गए। वहां वाल्या के पिता ने हमारा स्वागत किया। वह बच्चों को ढलाईख़ाने में ले गए, जहां लोहा गलाया जा रहा था। बच्चों ने जितनी भी कथा-कहानियां सुनी या ख़ुद गढ़ी थीं, उनमें यह शायद सबसे दिलचस्प थी: मनुष्य ठोस पदार्थ को लाल अग्निल नदी में बदल रहा था और यह नदी

मनुष्य के संकल्प और उसके श्रम से धातु की सिलों में बदलती जा रही थी। मुझे यह देखकर बड़ी ख़ुशी हुई कि कैसे बच्चों के सृजनात्मक कार्यों में एक नया अंतर्य आ गया है: बच्चे ऐसे वीर पुरुषों की कहानियां बनाने लगे, जो लोहित, अग्निल नदियां बनाते हैं; ड्राइंग की कापियों में वे धातुकर्मियों के चित्र बनाने लगे। ढलाईख़ाने की पहली यात्रा ने बच्चों के मानस-पटल पर अमिट छाप छोड़ी थी। बच्चे पहले से ही जो देखते आए थे, उसे अब मानो उन्होंने नई नज़रों से देखा था: धातु के बिना मनुष्य एक दिन भी काम नहीं कर सकता, जी नहीं सकता। मज़दूर, धातुकर्मी और मशीन निर्माता सच्चे अर्थों में जीवन के सृजनकर्ता हैं। मेरे छात्रों के मन में उनके प्रति गहरे आदर की भावना पैठ गई।

मशीन-ट्रैक्टर स्टेशन की हमारी यात्राएं भी रोचक थीं। यहां बच्चों ने ख़रादियों, फ़िटरों का कौशल देखा। बच्चों ने देखा कि कैसे लोहे के टुकड़े से ट्रैक्टर या कम्बाइन के लिए कल-पुर्ज़ा बनता है। लरीसा के पिता ने बच्चों को पेच बनाकर दिखाया, जिसके बिना कोई मशीन नहीं चल सकती। बच्चे सांस रोके उनके फुर्तीले हाथों का हुनर देखते रहे।

लोक हित के लिए किए जानेवाले श्रम में ही सर्वप्रथम इन्सान का इन्सान के प्रति रुख़, उसका सामाजिक जीवन प्रकट होता है। मनुष्य की मानवीयता इसी बात में व्यक्त होती है कि वह दूसरों की भलाई के लिए कैसे श्रम करता है। बच्चों के शिक्षण और चरित्र-निर्माण में मैं सबसे पहले इसी ओर ध्यान दे रहा था कि बच्चे अपने परिवेश में हमारे समाजवादी यथार्थ के इस पहलू को भली-भांति देख और समझ पाएं। मैं यह कोशिश करता था कि बच्चों के हर्ष और प्रेरणा का स्रोत केवल प्रकृति का सौंदर्य ही नहीं हो, बल्कि वह गुण भी, जो हमारे देश के नव मानव को चरित्रित करता है। यह गुण है—मातृभूमि और समाज के प्रति, लोगों के प्रति सेवा-भाव। श्रमिक जन के प्रति बच्चों के मन में जो प्यार जागता है वही मानवीय नैतिकता का स्रोत है।

आओ,
प्रकृति का संगीत सुनें

संगीत, धुन और संगीत स्वरों का सौंदर्य मनुष्य के नैतिक और बौद्धिक विकास का महत्वपूर्ण साधन है, सहृदयता का और आत्मा की निर्मलता का स्रोत है। संगीत लोगों के मन में प्रकृति के, नैतिक संबंधों

श्रौर श्रम के सौंदर्य की चेतना पैदा करता है। संगीत की बदौलत मनुष्य को केवल अपने चारों ओर के संसार में ही नहीं, बल्कि स्वयं अपने अंतः-करण में भी भव्यता, महानता और सौंदर्य की अनुभूति होती है। संगीत आत्म-शिक्षा का सशक्त साधन है।

बचपन से लेकर वयस्कता तक अपने छात्रों के आत्मिक विकास को देखते रहने पर मेरे इस विश्वास की पुष्टि हो गई है कि रेडियो, सिनेमा और टेलीविजन का बच्चों पर स्वतःस्फूर्त, अव्यवस्थित प्रभाव उनकी सौंदर्यबोध शिक्षा में सहायक तो कम, उलटे हानिकर ही होता है। संगीत की अव्यवस्थित छापों का प्रभाव विशेषतः हानिकर होता है। संगीत रचना का सृजन करते हुए मनुष्य स्वयं प्रकृति से, प्रकृति के संगीत से प्रेरणा पाता है। खेतों-मैदानों में व्याप्त शांति और नीरवता, उपवन में पत्तियों की सरसराहट, नीले आकाश में उड़ते भरत पक्षी का गीत, गेहूं की पकती बालियों की मर्मर ध्वनि, मधुमक्खियों और भौरों का गुंजन—प्रकृति का यह संगीत ही मनुष्य के लिए प्रेरणा-स्रोत है। अगर इन्सान ने प्रकृति के इस संगीत को सुनना नहीं सीखा है, तो वह संगीत रचना को, उसके सौंदर्य को समझ नहीं सकता, उसे अनुभव नहीं कर सकता, उसका रसपान नहीं कर सकता। इसी बात को ध्यान में रखते हुए मैंने यह निश्चय किया कि बच्चों को बारी-बारी से संगीत-रचना और प्रकृति का संगीत सुनाना चाहिए।

सौंदर्यबोध शिक्षा में और खास तौर पर संगीत शिक्षा में वे मनोवैज्ञा-निक लक्ष्य बहुत मानी रखते हैं, जिनकी प्राप्ति को ध्यान में रखते हुए शिक्षक बच्चों को ललित कलाओं के सौंदर्य जगत में प्रवेश कराता है। मैंने अपने सम्मुख दो लक्ष्य रखे थे। मैं बच्चों में ऐसी आत्मिक क्षमता विकसित करना चाहता था कि सौंदर्य को देखकर उनकी भावनाएं सोती न रह सकें। दूसरे, मैं उनके हृदयों में सौंदर्य पिपासा जगाना चाहता था, मैं चाहता था कि उनकी आत्मा सौंदर्यानुभव की मांग करे। मेरे विचार में सारे शिक्षा और चरित्र-निर्माण कार्य का एक सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य यह है कि मनुष्य को सौंदर्य जगत में रहना सिखाया जाए, कि वह सौंदर्य के बिना जी न सके, कि संसार का सौंदर्य स्वयं उसमें सौंदर्य का सृजन करे।

"ख़ुशियों के स्कूल" में संगीत सुनने की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। हम संगीत रचनाएं भी सुनते थे और प्रकृति का संगीत भी।

ऐसा करते हुए सबसे पहला कार्यभार यह होता था कि बाल-हृदयों में संगीत सुनकर भावनात्मक प्रतिक्रिया हो और फिर धीरे-धीरे बच्चों को यह दिखाया जाए कि संगीत के सौंदर्य का स्रोत संसार का सौंदर्य ही है। संगीत की धुन मानो आह्वान करती थी – ज़रा ठहरो, प्रकृति के संगीत को सुनो, संसार के सौंदर्य का रसपान करो, इस सौंदर्य की रक्षा करो और उसकी वृद्धि करो। बरसों का अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि जिस प्रकार इन्सान बचपन में अपनी मातृभाषा सीखता है, उसी प्रकार संगीत-संस्कृति अर्थात संगीत के सौंदर्य को ग्रहण करने, उसे समझने, और अनुभव करने की क्षमता भी उसमें बचपन में ही विकसित होती है। बचपन में जो कमी रह गई है, उसे बड़ी उम्र में पूरी करना अत्यंत कठिन है, प्रायः असंभव ही है। बाल-आत्मा में अपनी मातृभाषा को, प्रकृति के सौंदर्य को और संगीत की धुन को ग्रहण करने की प्रायः एक सी क्षमता होती है। अगर छोटी उम्र में ही बाल-हृदय को संगीत रचना के सौंदर्य से अवगत करा दिया जाएगा, अगर ध्वनियों में बच्चा मानवीय भावनाओं की विविधतम छटाओं को अनुभव कर पाएगा, तो वह संस्कृति के ऐसे स्तर पर पहुंच जाएगा, जहां किन्हीं भी दूसरे साधनों से नहीं पहुंचा जा सकता। संगीत का सौंदर्य बच्चे के सम्मुख उसके अपने सौंदर्य को प्रकट करता है – नन्हे मनुष्य को अपनी गरिमा की चेतना प्राप्त होती है। संगीत शिक्षा इन्सान को संगीतकार बनाने के लिए नहीं है, नहीं, यह तो सर्वप्रथम इन्सान को इन्सान बनाने के लिए आवश्यक है।

... शरद ऋतु के आरंभ में, जब हवा बिल्कुल पारदर्शी होती है और प्रत्येक ध्वनि बिल्कुल स्पष्टतः सुनाई देती है, ऐसे एक दिन गोधूलि की वेला में हम हरे मैदान में बैठे थे। मैंने बच्चों से कहा, आओ, एक धुन सुनें। यह संगीतकार रीम्स्की-कोर्साकोव के "क़िस्सा ज़ार सल्तान" का ओपेरा की "भौंरे की उड़ान" धुन थी। धुन पर बच्चों की भावनात्मक प्रतिक्रिया हुई। बच्चे कह रहे थे: "भौंरा कभी पास आता है, कभी दूर उड़ जाता है। नन्ही-नन्ही चिड़ियां चहचहा रही हैं..." हमने एक बार फिर यह धुन सुनी। फिर हम उस मैदान में गए, जहां मधुमक्खियों के मनपसंद फूल खिल रहे थे। बच्चों ने मधुमक्खियों का संगीत, भौंरे का गुंजन सुना। बड़ा-सा, रोयेंदार भौंरा कभी फूलों के ऊपर उठ रहा था, कभी नीचे आ जाता था। बच्चे हर्षातिरेक-से उत्तेजित हो रहे थे: कितनी मिलती-जुलती थी यह धुन उस धुन से, जो उन्होंने थोड़ी देर पहले टेप-

रिकार्डर पर सुनी थी। पर हां, संगीत रचना में अपनी विशेष सुंदरता थी, जिसे संगीतकार ने प्रकृति में सुना और फिर हमारे लिए स्वरबद्ध किया। बच्चों ने एक बार फिर वह धुन सुननी चाही।

एक दिन छोड़कर हम फिर उस मैदान में गए, जहां मधुप्रद पुष्प खिल रहे थे। अबकी बार हम सुबह-सुबह वहां गए। बच्चे एकाग्रचित्त होकर मधुमक्खियों का संगीत सुन रहे थे, वे भौंरे का गुंजन पकड़ने की कोशिश कर रहे थे। अब तक उन्हें जो एक आम बात लगती थी, उसी में अब वे सौंदर्य देख रहे थे—ऐसी है संगीत की शक्ति।

मैं बच्चों के लिए ऐसी धुनें चुनता था, जिनमें बच्चों के लिए सुबोध और साथ ही सुस्पष्ट बिंबों में वह सब सुनाई देता हो, जो बच्चे अपने चारों ओर सुनते हैं: पक्षियों का कलरव, पत्तियों का मर्मर, बादलों का गर्जन, सरिता की कलकल और तेज़ हवा की सायं-सायं... मैं इस बात का ख़ास ख़्याल रखता था कि छापों का बाहुल्य न हो। एक बार फिर मैं यह कहना चाहता हूं: संगीत-बिंबों का बाहुल्य बच्चों के लिए हानिकर है, बिंबों की बाढ़ को ग्रहण करने में असमर्थ बच्चा घबरा जाएगा, हक्का-बक्का रह जाएगा। इसका परिणाम अंततः यह तक हो सकता है कि बाल-हृदय भावनात्मक संवेदनशीलता खो बैठेगा। मैं बच्चों को महीने में दो से ज्यादा धुनें नहीं सुनाता था। और हर धुन के लिए बच्चों को तैयार करता था, ताकि बच्चे बार-बार उस संगीत रचना को सुनना चाहें, ताकि हर बार वे उसमें नया सौंदर्य पाएं। संगीत शिक्षा धुनों के सुनने से ही आरंभ होती है। यहां इस बात का ख़याल रखना बहुत जरूरी है कि धुनों के सुनने के बीच में कोई स्वतःस्फूर्त, आकस्मिक छापें न हों। धुनों को सुनने के बाद बच्चों को बड़े ध्यान से खेतों-मैदानों की नीरवता को सुनना चाहिए और प्रकृति के सौंदर्य का बोध पाना चाहिए।

...शरद का ऐसा सुहावना दिन है, जब लगता है ग्रीष्म ऋतु फिर लौट आई है। हम बलूत वृक्षों के उपवन में जाते हैं। वृक्षों का पीला-सुनहरा-कत्थई रंग-बिरंगा परिधान सूरज की किरणों में चमचमा रहा है, शरद पंछियों का गान सुनाई दे रहा है, दूर कहीं कोई ट्रैक्टर चल रहा है, आकाश की नीलिमा में दूर देशों को जा रहे हंसों की सफ़ेद डार दिखती है। हम चाइकोव्स्की की संगीत रचना 'शरद गीत' सुनते हैं। संगीत के सुर बच्चों को उस सौंदर्य की अनुभूति कराते हैं, जिसे उन्होंने अपने चारों ओर के संसार में अभी तक नहीं देखा था: बलूत की पीली

पड़ती पत्तियों का मंद-मंद कंपन, पारदर्शी वायु की सुरभि, सड़क के किनारे पर फूलों का मुरझाना।

बच्चे प्रसन्न-प्रफुल्ल हैं, लेकिन यह धुन हल्की-सी उदासी का पुट भी दे रही है। बच्चे महसूस करते हैं कि ठंडे दिन आनेवाले हैं, जब दिन भर बादल छाए रहेंगे, बारिश होगी, फिर बर्फ़ पड़ने लगेगी, बर्फ़ीली आंधियां चलेंगी, अंधेरा बहुत जल्दी होने लगेगा। संगीत के प्रभाव में वे ग्रीष्म के सौंदर्य और सुनहरे शरद के पहले दिनों की बातें करते हैं। हर बच्चे के स्मृति-पटल पर कोई न कोई जीता-जागता चित्र अंकित है और अब बाल-चेतना में ग्रीष्म और शरद के ये बिंब अपने संपूर्ण वैभव के साथ उभर रहे हैं। लरीसा कहती है: "मैं पापा के साथ खड्डवाले जंगल में घूमने गई थी। खड्ड की ढलानें हरी दीवारों जैसी लग रही थीं—पेड़ ही पेड़ उग रहे थे और धूप खिली हुई थी। अचानक कहीं घुग्घी कूजने लगी। कितना सुंदर था जंगल... मन करता था बस चलते ही जाएं, चलते ही जाएं और सूरज ऐसे ही चमकता रहे। जब घुग्घी कूजती है, तो लगता है कि पेड़ों की पत्तियां सांस थाम लेती हैं, मधुर कूज सुनती हैं।"

शूरा याद करता है: "मां मुझे खेत में ले गई। वह कम्बाइन के पास काम कर रही थीं। कम्बाइन मामा जी चला रहे थे। मैंने कम्बाइन पर सवारी की। फिर मुझे नींद आ गई। मां ने मुझे ताजे पुआल के ढेर पर लिटा दिया। मैं नीले आसमान को देखने लगा और फिर अचानक पुआल का ढेर बहने लगा, वह ज़मीन से बहुत ऊपर उठ गया। आसमान में छोटी-सी चिड़िया फड़फड़ा रही थी। मैं कभी उसके पास पहुंच जाता और कभी उससे दूर हो जाता। मेरे साथ ही टिड्डे भी बह रहे थे, उनका पूरा झुंड का झुंड गा रहा था और चिड़िया की ओर उड़ रहा था। बस ऐसे ही मैं सो गया। जागा तब भी आसमान में चिड़िया फड़फड़ा रही थी, टिड्डे और भी जोर से गा रहे थे।"

हम एक बार फिर चाइकोव्स्की की धुन सुनते हैं। मैं महसूस करता हूं कि बच्चे इस धुन में ग्रीष्म और शरद के अविस्मरणीय दिनों के सौंदर्य की प्यारी यादें सुन रहे हैं। कुछ बच्चे अपनी और यादें सुनते हैं।

"हमने चरागाह में ऊंची-ऊंची, हरी-हरी घास काटी थी। पापा ने घोड़ागाड़ी में घास लादी और हम घर चल दिए। मैं घास के ऊंचे ढेर पर लेटी हुई थी। आकाश में तारे टिमटिमा रहे थे। खेत में बटेर गा रही थी। तारे इतने पास आ गए लगते थे कि बस हाथ उठाकर तोड़ लो।"

यह जीना की यादें हैं। इन्हें सुनकर मैं विस्मित हो जाता हूं। हमेशा चुप ही तो रहती थी यह बच्ची, लगता था इसकी ज़बान कभी नहीं खुल पाएगी। पर अब संगीत ने मानो उसकी वाणी को संकोच के सारे बंधन तोड़ डालने की प्रेरणा दी थी।

कितनी ख़ुशी की बात है कि संगीत भावनात्मक संवेदनशीलता को तेज़ करता है, बाल-कल्पना में ऐसे बिंबों को जन्म देता है, जो संगीत के सौंदर्य से रंगे होते हैं। मेरा मन होता है कि संगीत के प्रभाव में सभी बच्चे कल्पना की उड़ान भरें। संगीत बाल-हृदयों को काव्यमयता प्रदान करता है, बच्चों को स्वप्नद्रष्टा बनाता है—कितनी अच्छी बात है यह! मुझे यह देखकर ख़ुशी होती है कि कोल्या और तोल्या भी तान्या और लरीसा की बातें सुनते हुए विचारमग्न-से बैठे रहते हैं—उनके हृदयों में भी कोई यादें उभर रही होंगी।

संगीत विचारों का सशक्त स्रोत है। संगीत शिक्षा के बिना बच्चे का पूर्ण, चहुंमुखी बौद्धिक विकास नहीं हो सकता। केवल प्राकृतिक जगत ही नहीं, बल्कि स्वयं मनुष्य, उसका आत्मिक जगत, उसके विचार और उसकी वाणी भी संगीत का आदिस्रोत हैं। संगीत के सुरों से जो बिंब बनता है, वह लोगों के सम्मुख यथार्थ जगत की वस्तुओं और परिघटनाओं को नए रूप में प्रस्तुत करता है। बच्चे का सारा ध्यान मानो उन वस्तुओं और परिघटनाओं पर केंद्रित हो जाता है, जिन्हें संगीत ने उसके सामने नए प्रकाश में रखा है और उसका विचार एक भव्य चित्र का सृजन करता है; और यह चित्र मानो शब्दों के रूप में सजीव हो उठना चाहता है। और तब बच्चे की वाणी मुखरित हो उठती है, अपने चारों ओर के संसार में नए-नए विचारों और कल्पना बिंबों के लिए सामग्री लेता हुआ वह शब्दों से सृजन करता है।

संगीत—कल्पना—कहानी—सृजन—यह है वह पथ, जिस पर चलते हुए बच्चा अपनी आत्मिक शक्ति को विकसित करता है। संगीत की धुन बच्चों के मस्तिष्क में जीवंत बिंबों को जन्म देती है। यह बुद्धि की सृजन शक्ति के साधने का अप्रतिम साधन है।

संगीतकार ग्रीग की धुनें सुनते हुए मेरे बच्चों की कल्पना में अजीबो-ग़रीब गुफाओं, घने जंगलों, भले और दुष्ट जीवों के चित्र उभरते थे। ये धुनें सुनकर सदा चुप रहनेवाले बच्चे भी बोलना चाहते थे; बच्चों के हाथ काग़ज़-पेंसिल की ओर बढ़ते थे, वे कल्पनाजनित रोमांचक बिंबों को

कागज़ पर उतारना चाहते थे। संगीत सबसे ढुलमुल बच्चों में भी चिंतन शक्ति को जगाता था। लगता था, मानो वह चिंतनशील भूद्रव्य की कोशिकाओं में किसी चमत्कारी शक्ति का संचार करता है। संगीत के प्रभाव से बच्चों की बौद्धिक सक्रियता में जो ग्रावेग ग्राता है, वह इसी बात की पुष्टि करता है कि चिंतन का स्रोत भावनात्मक होता है।

जाड़ों में, जब हमारी सारी पगडंडियां हिम का दुशाला ओढ़कर दुबक गई थीं, हम स्कूल में अपने कमरे में बैठकर चाइकोव्स्की, ग्रीग, शूबर्ट और शूमन का संगीत सुना करते थे। सांझ के झुटपुटे में परी-कथाओं पर आधारित धुनों को सुनना बच्चों को खास तौर पर बहुत अच्छा लगता था। मैंने बच्चों को चुड़ैल के बारे में उक्राइनी लोक-कथा सुनाई और फिर हमने चाइकोव्स्की की धुन "चुड़ैल" सुनी। इस संगीत के प्रभाव से तो मानो बच्चों की कल्पना सरिता बांध तोड़कर बह निकली–इतने अधिक बिंब, इतने जीवंत चित्र रच रही थी उनकी कल्पना कि उन सबका वर्णन भी नहीं किया जा सकता। बच्चे अपनी कल्पना में ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों और बियाबान जंगलों के पार, नीले समुद्र के पार, रहस्यमयी गुफाओं, कंदराओं और दर्रों की ओर बढ़ चले। मैं बच्चों की असंभव-सी लगनेवाली कहानियां सुन-सुनकर चकित हो रहा था। उनमें से कुछ तो मैं कभी भी नहीं भूलूंगा। यूरा की कल्पना में दुष्ट चुड़ैल को सभी लोगों से गहरी घृणा थी, वह उनकी एक सबसे बड़ी ख़ुशी–गीत-संगीत उनसे छीन लेना चाहती थी। "उसने एक बड़ा-सा मटका उठाया और लंबे डंडेवाले झाड़ू पर बैठकर दुनिया का चक्कर लगाने लगी। जैसे ही कहीं से गाने की आवाज़ सुनाई देती, दुष्ट चुड़ैल वहां पहुंच जाती। लोगों का गाना, ख़ुशियां मनाना उसे फूटी आंखों न सुहाता। वह मटके पर डंडा मारती और सब लोग चुप हो जाते, भूल ही जाते कि गाना कैसे गाया जाता है, क्योंकि गाना चुड़ैल के मटके में छिपा होता था। बस ऐसे ही चुड़ैल ने सारे गाने छिपा दिए।

"सिर्फ़ एक अकेला गड़रिया लड़का रह गया, जो गाता था। वह बांसुरी बजाता और गाता था। चुड़ैल ने कई बार मटके पर डंडा मारा, पर कुछ होता ही नहीं था: लड़के की बांसुरी जो जादुई थी। चुड़ैल अपनी गुफा में गीतों के मटके पर बैठी गुस्से से लाल-पीली हो रही थी। सारी दुनिया में सन्नाटा छाया हुआ था, कोई न गा रहा था, न ख़ुशियां मना रहा था, बस अकेला गड़रिया लड़का गा रहा था। रात हुई और लड़का सो गया। चुड़ैल ने उसकी बांसुरी चुरा ली। लड़का जागा, और बांसुरी

ग़ायब देखकर फ़ौरन समझ गया कि यह किसकी करतूत है। उसने बहादुर लड़कों को इकट्ठा किया और चुड़ैल को ढूंढ़ने निकल पड़ा..." आगे यूरा यह कहानी बनाता गया कि कैसे लड़के ने चुड़ैल की गुफा का पता लगाया, कैसे उसका मटका फोड़कर सब गाने छुड़ाए और लोगों को ख़ुशियां लौटाईं। कितनी आश्चर्यजनक बात है: संगीत के प्रभाव में बच्चा अपनी कल्पना में कहानी के भले और बुरे जीवों के इतने सजीव बिंब बनाता है कि वह मानो स्वयं भी न्याय के लिए संघर्ष में भाग लेने लगता है। संगीत मानो कहानी के बिंबों में हृदय के स्पंदन और विचारों की शक्ति का संचार करता है। संगीत बच्चे को भलाई की दुनिया में ले जाता है।

हर बार जब मैं यह देखता कि बच्चों के चिंतन में शिथिलता आ रही है तो मैं उन्हें बाग़ में या बलूत वृक्षों के उपवन में ले जाता था और हम ऐसा संगीत सुनते थे, जो बच्चों की कल्पना में भलाई और बुराई के सजीव चित्रों का सृजन करता था। संगीत की स्वर लहरी मानो उनके विचारों के स्रोत को जड़ता से मुक्त कर देती थी।

जाड़ों में हमें नए-नए स्वप्नद्रष्टाओं का पता चल रहा था। नन्हा दान्को इतना शर्मीला था कि लगता था उसके मुंह में ज़बान ही नहीं है। और अब संगीत सुनकर उसने भी दुष्ट चुड़ैल के बारे में अपनी कहानी सुनाई। हां, वैसे तो यह कहानी यूरा की कहानी जैसी ही थी। दान्को की कहानी में चुड़ैल अपने झाड़ू पर बैठकर सारी दुनिया पर उड़ी और उसने सारे फूल तोड़ लिए; अपनी गुफा में लौटकर उसने मटका आग पर चढ़ा दिया और सारे फूल नष्ट हो गए। "पर मैंने सारे फूलों के बीज इकट्ठे किए और ज़मीन पर बो दिए। फूल फिर खिलने लगे। चुड़ैल को जब पता चला, तो उसने ग़ुस्से में अपने झाड़ू का डंडा अपनी हड़ीली टांग पर दे मारा। डंडा भी टूट गया और टांग भी। सो अब वह दुष्ट चुड़ैल लोगों का कुछ नहीं बिगाड़ सकती।" कहानियां गढ़ते हुए बच्चे प्राय: सहृदय वीर नायक का स्थान स्वयं ग्रहण कर लेते हैं।

इन कहानियों के पश्चात मैंने दूसरे अध्यापकों से प्रशिक्षण की कठि-नाइयों और कमियों के बारे में बातचीत की। हम एकमत से इस निष्कर्ष पर पहुंचे: हम अध्यापक लोग यह भूल जाते हैं कि स्कूल में पढ़ाई के सभी बरसों में से कोई आधे वर्ष ऐसे होते हैं, जब छात्र सर्वप्रथम बच्चा ही रहता है। बच्चों के दिमाग़ में सामान्य सत्यों और निष्कर्षों को ठूंसते हुए अध्यापक प्राय: बच्चों को विचारों और शब्दों के स्रोत के पास जाने तक

का अवसर नहीं देता, वह उनकी कल्पना के, सृजन के पंखों को बांधे रखता है। बच्चा प्रायः सजीव, सक्रिय प्राणी के स्थान पर याद करनेवाली मशीन बनकर रह जाता है... नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए। बच्चों और उनके चारों ओर के संसार के बीच चीन की दीवार नहीं खड़ी करनी चाहिए। बच्चे को आत्मिक ख़ुशियों से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। बच्चे का आत्मिक जीवन केवल तभी भरा-पूरा हो सकता है, जबकि वह खेलों, कहानियों, संगीत, कल्पना और सृजन के संसार में रहता हो। इसके बिना वह सुखाए हुए फूल के समान ही है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि पढ़ाई खेल मात्र नहीं हो सकती। पढ़ाई, शिक्षा सर्वप्रथम श्रम है। पर हां, इस श्रम को संगठित करते हुए बच्चे के बौद्धिक, नैतिक, भावनात्मक और सौंदर्यबोधात्मक विकास के हर चरण में उसके आत्मिक जगत की विशिष्टताओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए। बच्चों के बौद्धिक श्रम और बड़ों के बौद्धिक श्रम में काफ़ी अंतर है। बच्चों के लिए ज्ञान-प्राप्ति का अंतिम लक्ष्य ही उनके बौद्धिक प्रयासों के लिए प्रेरणा का स्रोत नहीं हो सकता, जैसा कि बड़ों के लिए वह होता है। पढ़ने की इच्छा का स्रोत बच्चों के बौद्धिक श्रम के स्वरूप, विचारों की भावनात्मक रंगत और दिमाग़ी हलचल में ही निहित है। इस स्रोत के सूख जाने पर लाख कोशिशें करने पर भी आप बच्चे को पढ़ने पर विवश नहीं कर सकते।

हमारे "ख़ुशियों के स्कूल" का पहला जाड़ा मैं कभी नहीं भूलूंगा। अगर हम संगीत, कल्पना और सृजन में रत न होते, तो स्कूल के हमारे गरम, आरामदेह कमरे में भी हमें कुछ दिन बाद ही ऊब होने लगती। संगीत हमारे चारों ओर आश्चर्यजनक आकर्षण पैदा करता था। जनवरी की संध्याओं के अंधकार में, चांदनी में धरती पर बिछी हिम धवल चादर में, पाले से जम गए तालाब की तड़-तड़ में—हर जगह हम अपने कल्पनाजनित जीवों को देखते थे।

"ख़ुशियों के स्कूल" का पहला वसंत आया, कलकल करती जल धाराएं बहने लगीं, पहले फूल खिल उठे, सफ़ेद पुष्पों से ढंके सेब और नाशपाती के पेड़ों पर मधुमक्खियों का गुंजन आरंभ हो गया।

एक शांत, सुहावनी संध्या को हम चरागाह में गए। तालाब में अथाह गगनमंडल प्रतिबिंबित हो रहा था, आकाश की निर्मल नीलिमा में राजहंसों की डारें उड़ी आ रही थीं और तालाब के किनारे बेदमजनूं के पेड़ कोमल-

कोमल पत्तियों से भरी डालें लटकाए विचारमग्न-से खड़े थे। सहसा तालाब पर कहीं आश्चर्यजनक ध्वनि हुई, मानो किसी ने हौले से पियानो की स्वर-कुंजिका का स्पर्श किया हो, लगता था तालाब, उसके किनारे और नीला गगनमंडल गुंजायमान हो उठे है। "यह क्या है?" वान्या ने दबी-दबी आवाज़ में पूछा।

"यह वसंती चरागाहों का संगीत है। तालाब में तुम नीले गगन की परछाईं देख रहे हो। वहां बड़ी गहराई पर एक विशाल बिल्लौरी घंटा रखा हुआ है। वहां, जादुई महल में वसंत रानी रहती है। उसने सुनहरी हथौड़ी से बिल्लौरी घंटे को छुआ और उसकी मधुर ध्वनि चरागाह में फैल गई।"

एक बार फिर वही ध्वनि गूंजी। कोल्या मुस्कराया: "अरे, यह तो मेंढक टर्रा रहा है।" मुझे डर था कि बच्चे हंस पड़ेंगे और सब पर जो विमुग्धता छा गई थी, वह जाती रहेगी। लेकिन कोई भी हिला-डुला तक नहीं। साश्को ने बस इतना कहा: "हो सकता है मेंढक हो और हो सकता है न भी हो। मेंढक है तो होने दो, गा तो चरागाह ही रही है।"

मानो उसके शब्दों के उत्तर में पास ही की तलैया गूंज उठी और कुछेक क्षणों बाद दूर की चरागाह में प्रतिध्वनि हुई। हम वसंती चरागाहों के इस आश्चर्यजनक संगीत पर मंत्र-मुग्ध से खड़े थे। यह संगीत संसार के आशावादी प्रत्यक्षबोध का स्रोत है। इस संगीत की सहायता से बच्चे सौंदर्य में जीवन का आनंद देख पाते थे, उसे समझ और अनुभव कर पाते थे। मेरे विचार में सौंदर्य की सुस्वरता, सौंदर्य का समनाद वह आलोक है, जिससे हमारी यादों में बचपन के अविस्मरणीय दिन प्रदीप्त होते हैं।

अप्रैल का आरंभ था। आज पहली बार खिलकर धूप निकली थी। धरती की वसंती नमी सूर्य किरणों का स्पर्श पाकर वाष्पित हो रही थी और इस वाष्प से दूर-दराज़ के टीले थरथराते-से लगते थे। हम भरत पक्षी का गीत सुनने खेतों में गए। नीले आकाश में नन्हा-सा जीव फड़फड़ा रहा था, हमें चांदी की घंटी की मृदु ध्वनि सुनाई दे रही थी; सहसा घंटी के स्वर रुक गए, नन्हा प्राणी तेज़ी से धरती की ओर गिरता आ रहा था; खेतों की कोमल हरियाली के ऊपर पंछी ने पंख फैलाए और फिर धीरे-धीरे, मानो किसी अदृश्य तार को खींचता हुआ, ऊपर उड़ चला। अब हम घंटी का मधुर स्वर नहीं, बल्कि रजत तारों की झंकार सुन रहे थे... मैं चाहता था कि यह दिव्य संगीत बाल-हृदयों में बस जाए, उन्हें

संसार के सौंदर्य से अवगत कराए। और मैं उन्हें भरत पक्षी की कहानी सुनाने लगा :

"भरत पंछी सूरज की संतान है। जाड़ों में सूरज हमसे बहुत दूर चला जाता है, पाला धरती को जकड़ लेता है और वह हिम की चादर ओढ़ लेती है। सूरज बहुत धीरे-धीरे लौटता है, हिम पिघलाने में उसे बड़ी मेहनत करनी पड़ती है। वह हिम के ढेरों पर गरम-गरम चिनगारियां बरसाता है। जहां चिनगारियां गिरती हैं, वहीं हिम पिघल जाता है, हिम के नीचे से निकला मिट्टी का ढेला सजीव हो उठता है और तब अनूठे पक्षी का जन्म होता है। यह भरत पक्षी ही है। वह नीले आकाश में ऊंचे उठता है और सूरज की ओर उड़ता है। उड़ते-उड़ते वह गाता जाता है। उधर सूरज रजत चिनगारियां बिखेरता है। नीले गगन में उड़ता हुआ पंछी देखता रहता है कि सबसे चमकीली चिनगारी कहां गिरी है। उसे देखकर वह बड़ी तेज़ी से, पत्थर की तरह नीचे गिरा आता है, चिनगारी को चोंच में उठा लेता है और वह तुरंत चांदी का तार बन जाती है। भरत पंछी तार का एक सिरा धरती पर छोड़ देता है, वह गेहूं के डंठल पर लटकने लगता है, और दूसरे सिरे को भरत पंछी ऊपर ही ऊपर, सूरज की ओर, नीले अंबर की ओर उठाए लिए जाता है। देखो, उसे ऊपर उठने में कितनी कठिनाई हो रही है, उसके पंख कैसे फड़फड़ा रहे हैं। चांदी के तार में झंकार होती है और भरत पंछी जितना ऊपर उड़ता जाता है, तार का स्वर भी उतना ही ऊंचा होता जाता है। भरत पंछी सूरज तक यह तार खींच ले जाता है और फिर धरती की ओर लौटता है, फिर से चमकीली चिनगारी ढूंढ़ता है।"

कहीं ऐसी कहानियां सुन-सुनकर बच्चों के लिए प्रकृति के नियमों को समझना कठिन तो नहीं हो जाएगा? नहीं, उलटे, कहानियों की मदद से प्रकृति के नियमों को समझने में आसानी होगी। बच्चे भली-भांति समझते हैं कि मिट्टी का ढेला सजीव नहीं हो सकता, और ठीक ऐसे ही वे यह भी समझते हैं कि भीमकाय सुनार और चुड़ैल नहीं हैं। लेकिन बच्चों के जीवन में अगर यह सब नहीं है, अगर उनके हृदयों में भलाई और बुराई के संघर्ष से भावनाओं का मंथन नहीं हुआ है, अगर उन्होंने यह अनुभव नहीं किया है कि ये कथा-कहानियां सच्चाई, गौरव और सौंदर्य के बारे में मनुष्य के विचारों, उसकी कल्पनाओं को प्रतिबिंबित करती हैं, तो उनका आत्मिक जगत अत्यंत संकुचित और फीका, नीरस और बेरंगा होगा।

भरत पंछी की कहानी सुनकर बच्चे प्रकृति के संगीत को समझ पाए। अब वे संगीत रचना सुनने को तैयार थे। स्कूल लौटकर हमने चाइकोव्स्की द्वारा रचित "भरत पंछी का गीत" सुना। संगीत की स्वर-लहरी में चांदी की घंटी के सुर और हरे-हरे खेतों को सूरज से जोड़नेवाले बारीक-से रजत तार की झंकार के उतार-चढ़ाव सुनकर बच्चे हर्षोल्लास से झूम उठे। हमने कई बार यह धुन सुनी: प्रभात वेला में भी, जब आसमान नीला और निर्मल था और ऐसे दिनों में भी जब बादलों ने सूरज को, नीले गगन को छिपा रखा था। हर बार बच्चों की कल्पना में रमणीय सूर्यस्नात संसार का दृश्य सजीव हो उठता। वे नीले गगन में फड़फड़ाते नन्हे-से पंछी को और खेतों के असीम विस्तार को याद करते। बच्चे इस अद्भुत पंछी के बारे में अपने कल्पना-बिंब को काग़ज़ पर उतारना चाहते थे: उन्होंने भरत पंछी, रजत चिनगारी और धरती से सूरज तक तने रजत तार के अनोखे चित्र बनाए।

बच्चों को जो संगीत रचनाएं सबसे ज़्यादा अच्छी लगती थीं, उन्हें मैं इकट्ठा करता जाता था। हम समय-समय पर अपने कमरे में जमा होते थे और ये रचनाएं सुनते थे। इस संग्रह का नाम मैंने "संगीत मंजूषिका" रखा। बच्चों को यह नाम बहुत अच्छा लगा, वे बड़े गर्व से कहने लगे: "हमारे पास संगीत मंजूषिका है।" हमें एक बात सूझी: हम वर्ष प्रति वर्ष संसार भर की सर्वोत्कृष्ट संगीत रचनाओं में से वे रचनाएं इकट्ठी करते जाएंगे, जो हमें सबसे अच्छी लगेंगी और इस तरह अपना "संगीत कक्ष" बनाएंगे, जिसमें प्रकृति और मानव रचित सौंदर्य का रसपान करेंगे। हम गाया करेंगे, वायोलिन और पियानो बजाना सीखेंगे। हां, यह सब भविष्य में होगा, फ़िलहाल हमने यह सोचा कि सीधी-सादी बांसुरी बजाकर ही देखी जाए।

एक दिन जब बादल छाए हुए थे, हमने उपवन में जाकर झाड़ी की टहनी काटी। उसे रगड़-रगड़ कर सपाट-चिकना किया, उसमें छेद किए – बस बांसुरी तैयार हो गई। मैंने एक हंसमुख गड़रिये के बारे में उक्राइनी लोक-धुन बजाई। बच्चों का हर्षोल्लास वर्णनातीत था। सभी बच्चे अपना हाथ आज़माने को उतावले हो रहे थे। हर किसी ने अपनी बांसुरी बनाई। बच्चे जब बांसुरी बजाने लगे तो मैंने देखा कि लीदा, लरीसा, यूरा, तीना, सेर्योझा और कोस्त्या को धुनों की अच्छी पहचान है, समझ है। कुछ दिनों में ही बच्चों ने लोक-गीतों और नृत्यों की धुनें बजानी सीख लीं। मैं उस

शांत संध्या को कभी नहीं भूलूंगा, जब तीना ने एक उक्राइनी लोक-गीत 'टीले पर हो रही कटाई' की धुन बजाई थी। बच्ची की आंखें चमक रही थीं, गाल लाल हो गए थे। तीना की मां ने मुझे बताया कि तीना घर पर बाग़ में अपनी बांसुरी लिए बैठी रहती है और नई-नई धुनें बनाती रहती है, या फिर कभी सपनों में खोई-खोई-सी आसमान को, पेड़ों को निहारती रहती है।

एक दिन सुबह तड़के मैं स्कूल आया। चारों ओर शांति का वातावरण था। सहसा कहीं बाग़ में से बांसुरी का मंद-मंद स्वर आता सुनाई दिया। मैं इस स्वर की ओर चल दिया। बजानेवाला किसी अपनी ही धुन को बजा रहा था। सारी धुन में एक उज्ज्वल, निर्मल उदासी पिरोई हुई लगती थी। मैं दबे पांव गुलाब की झाड़ी के पास गया, ताकि वादक की तन्मयता भंग न हो। घास पर तीना बैठी हुई थी। लगता था मानो बांसुरी उसके अस्तित्व का ही एक अंश बन गई है। बच्ची गुलाब के खिलते फूलों को निहार रही थी, उसकी आंखों से मृदुता और स्नेह छलक रहे थे। अब मैं धुन को समझ गया: बच्ची ने सुंदर फूल और नीले वसंती आकाश के बारे में संगीत रचा था। मुझे जो उदासी लगी थी, वह वास्तव में चिंता थी: बालिका भविष्य के बारे में अपने विचारों को स्वरों में व्यक्त कर रही थी।

कोस्त्या को भी बांसुरी भा गई। उसके लिए एक हाथ से बांसुरी बजाना काफ़ी कठिन था, तो भी वह काफ़ी जल्दी ही कुछेक लोक-गीतों की धुनें बजाना सीख गया। और फिर वह अपने मन से संगीत रचने लगा, संगीत में अपने विचार, अपनी भावनाएं और अनुभूतियां व्यक्त करने लगा। वसंत में एक दिन हम अपने "स्वप्न-लोक" में बैठे थे। बाहर बादल गरज रहे थे, बारिश ख़त्म हुई, तो धरती पर इंद्रधनुष छा गया—हम सब इस दृश्य के सौंदर्य का रसपान करने में मग्न थे। सहसा संगीत के मंद-मंद स्वर सुनाई दिए—कोस्त्या बांसुरी बजा रहा था। संगीत में जल-धारा का कलकल स्वर सुनाई दे रहा था, फिर उसका स्थान गड़गड़ाहट ने ले लिया—काली घटा पास आ रही थी, दूर कहीं बादल गरज रहे थे। बालक यह भूल ही गया था कि हम उसका संगीत सुन रहे हैं, वह पूरी तरह से अपने सृजन में डूबा हुआ था। सहसा उसे हमारा ख़याल आया, उसने साथियों के विचारमग्न चेहरे देखे और लजा गया... मैं जानता हूं कि सभी बच्चे संगीतकार नहीं बनेंगे। साथ ही मेरा यह दृढ़

विश्वास भी है कि हर इन्सान में संगीत के रसबोध की भावना विकसित की जा सकती है।

इस सरल लोक-संगीत का शौक़ हमारा बिल्कुल व्यक्तिगत मामला था। कभी-कभी बच्चे "संगीत के मूड" में ग्रा जाते थे, वे कहीं बैठकर बांसुरी बजाना चाहते थे। ऐसा प्रायः शांत सुहावनी संध्या को, सूर्यास्त के पश्चात होता था, जब क्षितिज के पीछे छिप चुके सूरज का प्रकाश कुछ देर तक धरती को जगमगाता रहता है। संगीत से हमें ख़ुशी ग्रौर संतोष मिलता था—यही हमारे लिए परम सुख था।

कोल्या को सुर की ग्रच्छी पहचान थी ग्रौर वह जल्दी ही लोक-गीतों की धुनें बजाना सीख गया। एक दिन जंगल से लौटते हुए मैंने कोल्या से कहा, "याद है, तुमने सुनारों का चित्र बनाया था, जो चांदी का मुकुट बनाते हैं? तुम इन सुनारों के बारे में बांसुरी पर बताने की कोशिश करो: कैसे वे तार कूटते हैं, कैसे धरती पर ठंडी चिनगारियां गिरती हैं..."

"चिनगारियां ठंडी नहीं हैं, वे तो गरम हैं, बहुत ही गरम," बालक ने ज़ोर से ग्रापत्ति की।

"हां, बेशक, चिनगारियां तो गरम ही होंगी... भला हथौड़ों की चोट से ठंडी चिनगारी थोड़े ही निकलेगी। मैं भी बांसुरी पर सुनारों की कहानी कहने की कोशिश करूंगा। मैं सूरज के सुनारों की कहानी कहूंगा।"

ग्रगले दिन सुबह हम स्कूल के बाग़ में पहुंच गए। ग्रपनी बांसुरियों की सीधी-सरल धुनों में हमने चमत्कारी सुनारों की कहानी कही। हम न केवल एक दूसरे को समझ रहे थे, बल्कि यह भी ग्रनुभव कर रहे थे कि मन की किस तरंग के प्रभाव में हमारी धुनें निकल रही हैं। मैं बड़े ध्यान से कोल्या के "सुनारों" का संगीत सुनता जा रहा था। उसकी धुन में हथौड़ियों की बारीक टन-टना-टन सुनाई देती थी ग्रौर साथ ही यह भी ग्रनुभव होता था कि बालक "सुनारों" की शक्ति पर विमुग्ध है। वह खेतों ग्रौर बाग़ों पर हो रही रजत बौछार पर मोहित है ग्रौर साथ ही उसे इस बात का मलाल भी है कि वह सारी धरती को ग्रपनी नज़रों में नहीं समेट सकता। वह उस सौंदर्य को देखना चाहता है, जिसका ग्रस्पष्ट-सा ग्राभास उसे हर वस्तु में होता है।

मैंने इस बालक के हृदय की राह ढूंढ़ ली थी। संगीत मानवात्मा को साधता है, भावनाग्रों को मानवीय बनाता है। शब्दों की ही भांति संगीत में भी सच्ची मानवीयता व्यक्त होती है। बच्चों की संगीत के प्रति संवेदन-

शीलता विकसित करते हुए हम उसके विचारों, उसकी आकांक्षाओं को उदात्त बनाते हैं। हमारा कार्यभार यह है कि संगीत के प्रभाव से प्रत्येक हृदय में मानवीय भावनाओं का जीवनदायी स्रोत फूट निकले। मातृभाषा के सजीव शब्दों की ही भांति, संगीत में भी बच्चे के सम्मुख अपने चारों ओर के संसार का सौंदर्य प्रकट होता है। परंतु संगीत की धुन, जो मानवीय भावनाओं की भाषा है, वह बाल-आत्मा को केवल संसार के सौंदर्य से ही अवगत नहीं कराती। वह लोगों के सम्मुख मानव गरिमा और मनुष्य की महिमा प्रकट करती है। संगीत का रसास्वादन करते हुए बालक यह अनुभव करता है कि वह सच्चे अर्थों में मानव है। बाल-आत्मा संवेदनशील आत्मा होती है। उसमें तार कसे हुए होते हैं, बस आप उन्हें स्पर्श तो कर पाइए, फिर देखिए कैसा मनोहारी संगीत गूंजता है। केवल लाक्षणिक अर्थ में ही नहीं, बल्कि सीधे अर्थ में भी संगीत का जन्म होगा। जिस तरह खेलों और कहानियों के बिना बचपन बचपन नहीं, वैसे ही संगीत के बिना भी बचपन की कल्पना नहीं की जा सकती।

हमारा अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि शिक्षक और शिष्यों के हृदयों में तारतम्य स्थापित करने में संगीत ही सबसे अधिक सक्षम है। संगीत मानो हृदय के द्वार खोल देता है। संगीत सुनते हुए, उसके सौंदर्य का अनुभव करते हुए, उस पर मुग्ध होते समय शिक्षक और शिष्य एक तरह से एक दूसरे के निकट आते हैं, उनके मन का रिश्ता जुड़ता है।

सह-अनुभूति के उन क्षणों में, जो केवल संगीत के रसास्वादन के समय ही प्राप्त होते हैं, शिक्षक बच्चे में वह सब देख पाता है, जो संगीत के बिना उसे शायद कभी भी न दिखता। संगीत के स्वरों के प्रभाव में, जबकि बाल-हृदय उदात्त भावनाओं से ओत-प्रोत होता है, बच्चा शिक्षक को अपने मन को उद्विग्न करनेवाली बातें बताता है। ऐसे ही क्षणों में कोल्या ने मुझे बताया कि उसके पास एक ड्राइंग की कापी है, जिसमें वह उन सब चीज़ों के चित्र बनाता है, जिनमें उसे ख़ुशी होती है, जो उसे उत्तेजित और व्यथित करती हैं। बाद में उसने मुझे अपनी यह कापी दिखाई। मेरे सामने सपनों की दुनिया थी। कोल्या ट्रैक्टर चलाना चाहता था, सीमा-चौकी का प्रहरी होना चाहता था।

जाड़ों की
ख़ुशियां और चिंताएं

जाड़ों के हिम धवल दिनों में बच्चों के शिक्षण और विकास की अनंत संभावनाएं निहित हैं। जो लोग यह सोचते हैं कि केवल गर्मियों में ही बच्चों की सेहत बनाई जा सकती है, वे भ्रम में हैं। अगर स्वस्थ्य सुदृढ़ करने के लिए जाड़ों के उन दिनों का उपयोग नहीं किया गया, जब पाला हल्का होता है और धरती पर हिम का नरम-नरम गद्दा बिछा होता है, तो गर्मियों का भी कोई लाभ न होगा। मैं यह कोशिश करता था कि बच्चे ऐसे दिनों में घरों से बाहर रहें, स्वच्छ वायु में सांस लें।

सुबह-सुबह हम स्कूल के तापघर में जाकर सूरज का स्वागत करते थे। तापघर के गलियारे की खिड़कियों के कांच पर पाले से बर्फ़ के जमने पर बने अनोखे चित्र उगते सूरज की किरणों में लाल हो उठते थे। हर कांच पर हमारी कल्पना अनूठी दुनिया का सृजन करती थी: कांच पर जमे तुषार में हम काल्पनिक जीवों को, रहस्यमयी दर्रों, फलों, बादलों को देखते थे। इन तुषारजड़ित कांचों के पास खड़े होकर बच्चों ने कई कहानियां गढीं। यहां पर उन्होंने पढ़ना भी सीखा, जिसके बारे में मैं बाद में बताऊंगा।

सूर्योदय का दृश्य देखने के पश्चात बच्चे गलियारे में से तापघर के अंदर जाने का दरवाज़ा खोलते और फूलों की दुनिया में प्रवेश करते। जाड़ों में एक तापघर में गुलदाउदी के फूल उगते थे। यहां हर बच्चे का अपना पौधा, अपना मित्र था। बच्चे पौधों को पानी देते थे। यह क्षण हर्षमय होते थे: कांच की छत से आ रही सूरज की किरणें पानी की बूंदों में इंद्रधनुष बनाती थीं, बच्चे मंत्रमुग्ध हो उसे निहारते और गर्मियों के सपने देखते थे। यहां पर बच्चों ने सूरज के पुल – स्वर्णिम इंद्रधनुष – की कहानी बनाई।

हर बार बर्फ़ीली आंधी के बाद जब धरती नया धवल परिधान ओढ़ लेती थी, हम स्कूल के बाग़ में जाकर आंधी से बने हिम के टीलों को देखते थे। यह हिमानी टीलों की दुनिया भी आश्चर्यजनक है, बादलों की ही भांति रहस्यपूर्ण। टीलों की अजीबोग़रीब रूप-रेखाओं में बच्चे ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों पर बने जादुई क़िले और जड़वत हो गई समुद्री लहरें, सफ़ेद राजहंस और चालाक लोमड़ी को देखते थे। एक बार तो प्रकृति ने मानो हमारे

लिए ख़ास तौर पर जादुई जहाज़ बना दिया – यहां पाल भी थे और कप्तान की केबिन भी, लंगर भी और दूर कहीं देखते हुए जल-दस्यु भी। जब तक हवा और सूरज ने इस जादुई जहाज़ को नष्ट नहीं कर दिया, हम रोज़ जाकर इसे देखते थे। शाम को बच्चे स्कूल में इकट्ठे होते थे और मैं उन्हें जल-दस्युओं और भले लोगों की, असहायों और दीन-हीनों के रक्षकों की कहानियां, भलाई और बुराई के संघर्ष की, अन्याय पर न्याय की विजय की कहानियां सुनाता था।

पाला तेज़ होने पर हम घूमने नहीं जाते थे। जब बर्फ़ थोड़ी-थोड़ी पिघलने लगी, तब तो बच्चों के लिए मानो त्यौहार के दिन आ गए। बड़ी कक्षाओं के छात्रों की मदद से हमने हिम नगरी बनाई। हिम की सिल्लियों से बच्चे घर बनाने लगे। एक गुफा सी बन गई। यहां भी बच्चों का काम और विश्राम कहानियों और खेल के साथ जुड़ा हुआ था। हम यहां ध्रुवयात्रियों का खेल खेलते थे। मैं बच्चों को ध्रुवीय क्षेत्रों के बारे में कहानियां सुनाता था। इन कहानियों में काल्पनिक बातों के साथ-साथ लोगों की वीरता की सच्ची बातें भी होती थीं। सूरज की किरणों से अपनी गुफा को पिघलते देखकर बच्चों का उदास होना स्वाभाविक ही था।

जाड़ों में हम लोग दो बार जंगल गए। एक बार मोटरगाड़ी में और दूसरी बार घोड़ागाड़ी पर सवार होकर। पाले से गालों पर जलन हो रही थी, लेकिन किसी ने भी ठंड लगने की शिकायत नहीं की। जाड़ों में जंगल में बिताए दिन सदा के लिए बच्चों के स्मृति-पटल पर अंकित हो गए। हमने शीतकालीन वन का संगीत सुना, पक्षियों के जीवन का प्रेक्षण किया। जंगल में एक जगह हमें ऐसा चश्मा मिला, जिसका पानी जमा नहीं था। हमने अलाव जलाकर आग सेंकी, खिचड़ी बनाई। सूर्यास्त का दृश्य बड़ा प्यारा था, हमारे देखते-देखते हिमाच्छादित टहनियों का रंग बदल रहा था, पहले वे हल्के गुलाबी रंग की थीं, फिर रक्तिम हो गईं और फिर बैंगनी-आसमानी। बच्चे इस रोमांचक दृश्य पर मंत्र-मुग्ध हो उठे और उनकी कल्पना ने सूरज की कहानी में नए बिंब जोड़े। बच्चों ने यहां एक कविता भी रची, जिसमें उन्होंने शीत वन की अपनी छापें व्यक्त कीं। हिम परि-धान ओढ़े खड़े चीड़ वृक्ष की सुंदरता से प्रभावित होकर कात्या ने कहा:

"चीड़ सो रहा है।"

ज़ीना ने और अधिक जीवंत बिंब बनाया:

"चीड़ गर्मियों तक के लिए सो गया है..."

"चीड़ सो गया, वसंत आने तक," सेर्योझा ने कहा और सबने देखा कि इन शब्दों में लय है। बच्चे अपने साथी के विचार को आगे बढ़ाना चाहते थे।

"सपनों में खो गया, बहार छाने तक," कोई बच्चा बोला।

चीड़ सो गया, वसंत आने तक,
सपनों में खो गया, बहार छाने तक –

लड़के-लड़कियां गा रहे थे और गर्व से फूले नहीं समा रहे थे: उन्होंने ख़ुद एक गीत बनाया था। जाड़ों की इस संध्या को मैंने बाल-आत्मा के समृद्ध जगत के दर्शन किए। मेरा यह विश्वास बिल्कुल पक्का हो गया कि विचारों और शब्दों के स्रोत के पास ही बच्चों को सोचना सिखाना चाहिए, उनकी बौद्धिक शक्ति और क्षमताओं को विकसित करना चाहिए।

जाड़ों में हिम के पुतले बनाना और स्लेज पर चढ़कर ढलान से फिसलना भला किस बच्चे को अच्छा नहीं लगता! शांत मौसम में जब पाला तेज़ नहीं होता था और ख़ास तौर पर जब धूप खिली होती थी, तब हम सारा-सारा दिन घर से बाहर रहते थे। गांव के बाहर हमने बर्फ़ीला टीला बनाया। लकड़ी और लोहे की स्लेजों से हमें संतोष नहीं होता था – वे टीले पर से काफ़ी तेज़ी से नहीं फिसलती थीं। सो हमने बर्फ़ की ही कोई बीस स्लेजें बनाईं। इसके लिए हमने पुआल लेकर उसे गोबर में मिलाया और फिर पुआल को घोंसले का रूप देते हुए उस पर पानी डाला, पानी पाले से जम गया और स्लेज बन गई। इन स्लेजों में गिरने पर भी चोट लगने का कोई ख़तरा नहीं था।

मुझे अपने बचपन के दिन याद हो आए।... हम कहीं से घोड़ागाड़ी का बेकार पड़ा पहिया ढूंढ़ लाए। गांव के जमे हुए तालाब में एक छेद करके उसमें धुरी डाल दी, बर्फ़ ने धुरी को जकड़ लिया और पहिया हिम-झूला बन गया। बच्चे पहिए से बंधी डंडियां पकड़कर तालाब की कांच जैसी बर्फ़ीली सतह पर फिसलते हुए चक्कर काटते थे। इन खेलों, मनोरंजनों में सारे दिन बीतते थे। सान्या, वोलोद्या, कोस्त्या और कात्या जैसे कमज़ोर बच्चों के गाल भी अब लाल हो गए थे।

जाड़ों की ऐसी शांत संध्याओं को, जब आकाश पर बादल नहीं छाए होते थे, शीतकालीन प्रकृति का सौंदर्य अपने समस्त वैभव के साथ बच्चों

के सम्मुख उजागर होता था। हम बाग़ में कहीं खड़े होकर लोहित होते गगन को देखते और पहले तारों के निकलने की प्रतीक्षा करते। संध्या के मद्धिम प्रकाश से आलोकित पृथ्वी का हिम आवरण गुलाबी-सा लगता था और फिर हल्का बैंगनी हो जाता था। ऐसे क्षणों में बच्चों के मन जिन भावों से ओत-प्रोत हो उठते थे, वे शब्दों और संगीत में व्यक्त होते थे। इस अनुपम छवि से समस्वर लोक-गीतों की धुनें बच्चों की स्मृति में उमड़तीं। भाव-विभोर से हम स्कूल जाते, और अंगीठी में आग जलाकर आगे सेंकते हुए गीत गाते थे।

ऐसी सुबहों को, जब हिमपात नहीं हो रहा होता था और तेज़ हवा नहीं चल रही होती थी, हम उषा की छटा का अवलोकन करते थे। बच्चे इस रमणीयता पर अपनी विमुग्धता को व्यक्त करने के लिए शब्द ढूंढ़ना चाहते थे। मैं शब्दों की खोज में उनकी सहायता करता था। हर नई खोज बाल-हृदयों में हर्ष का संचार तो करती ही थी, साथ ही वह बौद्धिक सक्रियता की नई प्रेरणा भी होती थी।

भरत पंछी का उत्सव

जाड़ों में अपने पशु और पक्षी "चिकित्सालयों" के पिंजड़ों के पास हम वसंत के गरम दिन के सपने देखते थे, जब हमारे नन्हे मित्र नीले गगन में उड़ जाएंगे, उछलते-कूदते उपवन में चले जाएंगे। अंततः यह चिरप्रतीक्षित दिन आ ही गया। आकाश में जब हमें पहला भरत पंछी दिखा, उससे अगले दिन हम अपने पशु-पक्षियों के पिंजड़ों को लेकर टीले पर गए। स्तेपी पक्षियों के कलरव से गूंज रही थी। बच्चों ने पिंजड़े खोले–भरत, कठफोड़वा और पीलक पंछी और ख़रगोश आज़ाद हो गए। हमारा भरत पंछी आकाश में गा रहा था, फिर वह धरती की ओर गिरता आया।... हम मंत्र-मुग्ध से खड़े थे, सब ख़ुश थे कि हमने इन जीवों की प्राण-रक्षा की।

इन क्षणों में मैं भविष्य की कल्पना कर रहा था: हर साल हम वसंत में टीले पर आया करेंगे। यह हमारा भरत पंछी का उत्सव होगा।

भरत पंछी का उत्सव वसंत और ग्रीष्म ऋतुओं के मिलन का उत्सव हो गया। बच्चे नन्हे पंछियों का जीवन बचाना अपने लिए बड़े मान की

बात समझते थे। हर बच्चे ने अपने घर में "जीवन और सुंदरता का कोना" बना लिया। भरत पंछी का रूप, धूप में नहाते खेतों के ऊपर गूंजता उसका गीत—यह सब सदा के लिए बच्चों के आत्मिक जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया। बच्चे बड़ी अधीरता से भरत पंछी के उत्सव की प्रतीक्षा करते थे। इसका एक कारण और भी था: उस दिन वे अपनी माताओं की सहायता से मैदे की चिड़ियां बनाते थे—भरत, अबाबील, कोयल, टोमटिट, मैगपाई, बुलबुल, आदि और इन चिड़ियों को स्कूल लाते थे। इस कलात्मक सृजन की उत्तेजना उनके लिए उत्सव को और भी आकर्षक बनाती थी। अपनी इन चिड़ियों में बच्चे प्रकृति के प्रति प्रेम की भावना को मूर्तरूप देते थे, हर बच्चा सुंदरता की अपनी कल्पना को अपने ही ढंग से व्यक्त करता था।

शरद ऋतु में बच्चे उदास मन से गरम देशों को जा रहे पक्षियों को देखते थे। यह उदासी मानव हृदय को उदार बनाती है। इसके बिना भलाई नहीं हो सकती।

कैसे हमने पढ़ना और लिखना सीखा

प्रिय पाठको, यहां मैं जो कुछ बताने जा रहा हूं, कृपया उसे बच्चों को पढ़ना-लिखना सिखाने की कोई नई विधि न समझिए। हमारे सृजनात्मक कार्य के वैज्ञानिक आधार पर मैंने कभी विचार नहीं किया और मैं यह बिल्कुल नहीं कहना चाहता कि यह पढ़ना-लिखना सिखाने की उन विधियों का स्थान ले सकता है, जो दसियों बरसों के अभ्यास में परखी गई हैं। खेतों-मैदानों में, उपवनों की छाया में और स्तेपी की गरम हवाओं में, ग्रीष्म दिवस की प्रभात वेला में और शीतकालीन संध्या के झुटपुटे में बच्चों के साथ मिलकर हमने यह सृजनात्मक कार्य किया।

कई वर्षों से मुझे यह विचार सता रहा था: स्कूली जीवन के पहले ही दिनों में बच्चों के लिए पढ़ना और लिखना कितना कठिन, नीरस और थकाऊ काम हो जाता है, ज्ञान के कंटीले पथ पर उसे कितनी असफलताओं का मुंह देखना पड़ता है—और इस सब का कारण यह होता है कि शिक्षा पूरी तरह से किताबी काम हो जाती है। मैं देखता आया

था कि पाठों में बच्चे अक्षरों में भेद करने के लिए कितना ज़ोर लगाते हैं और कैसे ये अक्षर उनकी आंखों के सामने नाचते हैं, एक दूसरे में गुंथ जाते हैं और ऐसी टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं-से बन जाते हैं, जो बच्चों की समझ से बाहर होती हैं। साथ ही मैंने यह भी देखा था कि बच्चे कितनी आसानी से अक्षर याद कर लेते हैं और अक्षरों से शब्द बनाते हैं, बशर्ते यह काम उनके लिए रुचिकर हो, किसी खेल से जुड़ा हो, और सबसे बड़ी शर्त यह है कि उनसे कोई यह न कहता हो : देखो, ज़रूर याद कर लो, नहीं तो बुरी बात होगी।

स्कूली जीवन के पहले दिनों से ही शिक्षा के कठिन मार्ग में बच्चों के सामने एक भूत खड़ा होता है—नंबरों का भूत। किसी के लिए वह कृपालु होता है और किसी के लिए निर्दयी, निष्ठुर। इसका क्या कारण है, क्यों वह किसी पर तो कृपा दृष्टि रखता है और किसी को सताता है—बच्चे यह नहीं समझ पाते। आखिर सात साल का बच्चा यह तो नहीं समझ सकता कि नंबर उसके श्रम पर, उसकी कोशिश पर निर्भर होते हैं—यह बात उसकी समझ से बाहर होती है। वह इस भूत को संतुष्ट करने या कम से कम उसकी आंखों में धूल झोंकने की कोशिश करता है और धीरे-धीरे वह अपनी ख़ुशी के लिए नहीं, बल्कि नंबरों के लिए पढ़ना सीख जाता है। नहीं, नहीं, मेरा अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि स्कूल में से नंबरों को निकाल बाहर किया जाए। नहीं, नंबरों के बिना काम नहीं चल सकता। परंतु नंबर बच्चे को तब मिलने चाहिए जब वह यह समझने लगे कि उसके बौद्धिक श्रम की गुणवत्ता पढ़ाई में लगाए गए उसके प्रयासों पर निर्भर है।

मेरे विचार में प्राथमिक विद्यालय में, पहली कक्षाओं में नंबरों को उनके आशावादी, हर्षदायी रूप में इस्तेमाल करना सबसे महत्वपूर्ण बात है। नंबर मेहनत का, परिश्रम का पुरस्कार तो होने चाहिए, लेकिन आलस और लापरवाही का दंड नहीं। अगर अध्यापक बुरे नंबरों को वह कोड़ा समझता है, जिससे आलसी घोड़े को तेज़ चलाया सकता है और अच्छे नंबरों को मिठाई, तो शीघ्र ही बच्चों को कोड़े और मिठाई दोनों से घृणा हो जाएगी। बुरे नंबर बहुत ही तेज और बारीक हथियार हैं, जो प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापक के पास रहता है, और वह कभी भी उसका इस्तेमाल नहीं करता। मैं तो यह कहूंगा कि यह हथियार इसीलिए होना चाहिए कि कभी भी उसे इस्तेमाल न किया जाए। शिक्षक का अध्यापन-विवेक

इसी बात में है कि बच्चा कभी भी अपनी क्षमता में विश्वास न खोने पाए, उसे कभी भी यह महसूस न हो कि वह कुछ नहीं कर पाता। छात्र के लिए हर काम एक छोटा-सा क़दम आगे बढ़ाने के समान होना चाहिए। सात साल के बच्चे को, जिसने अभी-अभी स्कूल की दहलीज़ पार की है और मुश्किल से क और ख में भेद करना सीखा है, अचानक पाठ में बुरे नंबर मिलते हैं। वह नहीं समझ पाता कि बात क्या है और शुरू में तो वह दुखी और परेशान भी नहीं होता। वह तो बस हक्का-बक्का रह जाता है। "समझदार बच्चा कभी-कभी कुटिल प्रौढ़ मूर्खता के आक्रमण के सम्मुख हक्का-बक्का-सा खड़ा रह जाता है," यानुश कोर्चाक ने लिखा था। "बच्चों के अज्ञान का आदर कीजिए," पोलिश शिक्षाशास्त्री के ये शब्द मुझे जीवन भर के लिए याद हो गए। जब शिक्षक मानवविद्या का सर्वोपरि विवेक—बाल अज्ञान का आदर करने की क्षमता—पा लेगा, केवल तभी बुरे अंक वह सबसे तेज़ और सूक्ष्म हथियार होंगे, जिसका इस्तेमाल प्राथमिक स्कूल में कभी नहीं किया जाता।

"ख़ुशियों का स्कूल" खुलने से कुछ साल पहले की बात है। छह साल के कुछ बच्चों के साथ हम उपवन में गए। एक मैदान में बैठकर मैं बच्चों को तितलियों, गुबरैलों के बारे में बताने लगा। हमारा ध्यान एक बड़े से सींगदार गुबरैले की ओर गया, जो घास पर रेंग रहा था। कई बार उसने उड़ने की कोशिश की, पर वह घास से ऊपर नहीं उठ पाया। बच्चों ने बड़े ध्यान से गुबरैले के एक-एक अंग को देखा। मेरे सामने ड्राइंग की कापी रखी थी, मैंने उसमें गुबरैले का चित्र बना दिया। एक बच्चे ने "गुबरैला" लिखने को कहा। मैंने चित्र के नीचे बड़े-बड़े अक्षरों में लिख दिया *ЖУК* (गुबरैले के लिए रूसी शब्द "झूक"—अनु०)। बच्चे कुतूहलवश यह शब्द दोहराने लगे और अक्षरों को ध्यान से देखने लगे, जो उनके लिए चित्रों के समान थे। एक बच्चे ने रेत पर यही शब्द बनाया, दूसरे ने घास के तिनकों से यह शब्द बुना। हर अक्षर बच्चों को किसी बात की याद दिलाता था: उदाहरण के लिए Ж (झ) अक्षर बच्चों को हमारे गुबरैले जैसा लगता था, जब वह पंख उठाकर उड़ने की कोशिश कर रहा था।... कुछ महीने पश्चात मैं इन्हीं बच्चों की क्लास में गया, अब वे स्कूल जाने लगे थे। अध्यापिका को शिकायत थी कि बच्चों को पढ़ना सिखाने में काफ़ी कठिनाई हो रही है। संयोग की बात देखिए, उस दिन बच्चों को Ж अक्षर ही सीखना था। बच्चे मुस्करा उठे, क्लास में हलचल

होने लगी, बच्चे ЖУК शब्द दोहरा रहे थे और Ж अक्षर का अलग से स्पष्ट उच्चारण कर रहे थे। बच्चे हाथ उठा रहे थे, अध्यापिका यह सुनकर हैरान-परेशान थी कि सभी बच्चे ЖУК शब्द लिख सकते हैं। कितना ख़ुशियों भरा था यह पाठ! मेरे लिए यह एक ऐसा पाठ था, जो स्वयं जीवन ने शिक्षाशास्त्र को पढ़ाया था।

अब "ख़ुशियों के स्कूल" में मुझे वह पाठ याद हो आया। बच्चों को सौंदर्य, खेलों, कहानियों, संगीत, चित्रों, कल्पना और सृजन के संसार में जीना चाहिए। और जब हम बच्चों को पढ़ना और लिखना सिखाना चाहते हैं, तब भी उनके चारों ओर यही संसार होना चाहिए। जी हां, ज्ञान की पहली सीढ़ी पर चढ़ते हुए बच्चा क्या अनुभव करेगा, इसी पर ज्ञान शिखर की ओर उसका सारा भावी मार्ग निर्भर है। यह सोचकर ही मन सिहर उठता है कि बहुत-से बच्चों के लिए यह पहली सीढ़ी ही अलंघनीय बाधा बन जाती है। स्कूली जीवन को ज़रा ग़ौर से देखिए, आप पाएंगे कि पढ़ना-लिखना सीखने के काल में ही बहुत-से बच्चे अपनी क्षमता में विश्वास खोते हैं। प्रिय सहयोगियो, आइए, हम इस पहली सीढ़ी पर इस तरह चढ़ें कि बच्चे थकें न, कि ज्ञान की ओर हर नया क़दम गर्वीले पक्षी की उड़ान हो, न कि भारी बोझ से लदे, थके-मांदे यात्री के मुश्किल से उठते क़दम।

मैं बच्चों को शब्दों के स्रोतों की "यात्रा" पर ले जाने लगा: उन्हें संसार का सौंदर्य देखना सिखाता था और साथ ही यह कोशिश भी करता था कि हर शब्द का संगीत बाल-हृदय तक पहुंचे। मेरी चेष्टा यह थी कि बच्चों के लिए शब्द किसी वस्तु, किसी परिघटना का नाम मात्र ही न हो, बल्कि उसमें भावनात्मक रंग भी हो–हर शब्द की अपनी सुरभि, अपनी सूक्ष्मतम छटाएं हों। मैं इस बात को बहुत महत्व देता था कि बच्चे शब्दों को कान लगाकर सुनें, जैसे अनोखी धुन सुनी जाती है, कि शब्द का सौंदर्य और संसार के उस अंश का सौंदर्य, जिसे यह शब्द प्रतिबिंबित करता है, अक्षरों के प्रति बच्चों के मन में रुचि जगाए। अक्षर बच्चों के लिए चित्रों के समान होते हैं, जो मानव-वाणी की ध्वनियों के संगीत को व्यक्त करते हैं। जब तक बच्चे को शब्दों की सुरभि का आभास नहीं हुआ है, वह उसकी सूक्ष्मतम छटाओं को नहीं देख पाया है, तब तक पढ़ना-लिखना सिखाना शुरू ही नहीं करना चाहिए। अगर कोई शिक्षक बिना इसके ही बच्चों को पढ़ना-लिखना सिखाने लगता है, तो वह उनके कंधों पर भारी

बोझ लादता है। (बच्चे आख़िर इस बोझ को सह लेंगे, सारी कठिनाइयां पार कर लेंगे, लेकिन किस क़ीमत पर!)

पढ़ने और लिखने का काम अगर बच्चों के लिए जीवन का ही एक अंश होगा – जीवंत बिंबों, ध्वनियों और धुनों से भरा अंश – तो इसमें बच्चों को कोई कठिनाई नहीं होगी। बच्चे को जो बात याद करनी है, वह सर्वप्रथम दिलचस्प होनी चाहिए। पढ़ना-लिखना सिखाने का काम चित्रकारी के साथ जुड़ा होना चाहिए।

हम सदा कापियां और पेंसिलें लेकर ही शब्दों के स्रोतों की "यात्रा" पर निकलते थे। हमारी एक पहली "यात्रा" ऐसी थी। मैंने अपने सम्मुख यह लक्ष्य रखा कि बच्चों को *ЛУГ* ("लूग" – चरागाह) शब्द का सौंदर्य और उसकी सूक्ष्मतम छटाएं दिखाऊंगा। हम तालाब के किनारे डालें लटकाए खड़े बेदमजनूं के पेड़ तले जा बैठे। दूरी पर धूप में चमकती हरी-भरी चरागाह थी। मैंने बच्चों से कहा: "देखो, कैसा सुंदर दृश्य है। घास के ऊपर तितलियां उड़ रही हैं, मधुमक्खियां गुंजन कर रही हैं। वहां दूर गायों का झुंड चर रहा है, दूर से वे खिलौनों जैसी लग रही हैं। लगता है, जैसे चरागाह उजले हरे रंग की नदी हो और पेड़ गाढ़े हरे रंग के किनारे। गाय नदी में नहा रही हैं। देखो शरद ऋतु ने कैसे-कैसे रंग बिखेरे हैं चारों ओर। आओ, चरागाह का संगीत सुनें: सुन रहे हो पतंगों की बारीक भिनभिनाहट और टिड्डों का गीत?"

मैं अपनी कापी में चरागाह बनाता हूं; गायों और हंसों के चित्र बनाता हूं, जो सफ़ेद फाहों से फैले लगते हैं, और हल्की-सी धुंध और क्षितिज पर सफ़ेद बादल। बच्चे शांत सुहावनी सुबह की छवि पर विमुग्ध हैं, वे भी चरागाह बनाते हैं। मैं चित्र के कोने में लिखता हूं: *ЛУГ*। अधिकांश बच्चों के लिए अक्षर भी चित्र ही हैं। और हर चित्र किसी चीज की याद दिलाता है। किस की? घास के तिनकों की। घास के तिनके को मोड़ा *Л* (ल) अक्षर बन गया, दो तिनके जोड़े *У* (उ) बन गया। बच्चे भी अपने चित्रों पर *ЛУГ* शब्द बनाते हैं। फिर हम यह शब्द पढ़ते हैं। प्रकृति के संगीत की अनुभूति के फलस्वरूप बच्चे इस शब्द के संगीत को भी सुन पाते हैं। हर अक्षर की रूप-रेखा याद हो जाती है, बच्चे हर अक्षर में सजीव ध्वनि सुनते हैं और अक्षर सहज ही याद हो जाता है। शब्द के चित्र को वे एक संपूर्ण चित्र की भांति देखते हैं और शब्द पढ़ा जाता है – यह पढ़ना ध्वनियों के विश्लेषण और संश्लेषण के लंबे अभ्यासों

का परिणाम नहीं है, बल्कि बच्चों ने जो चित्र बनाया है, उस दृश्य-बिंब के समरूप ध्वनिमय, संगीतमय बिंब की बाल-चेतना द्वारा अभिव्यक्ति है। इस प्रकार जब बच्चे श्रवण और दृष्टि इंद्रियों से एकसाथ बोध पाते हैं और उनका यह बोध दृश्य-बिंब तथा शब्द की संगीतमय ध्वनि में निहित विविध भावनात्मक छटाओं से ओत-प्रोत होता है, तब बच्चों को एकसाथ ही अक्षर भी और पूरा शब्द भी याद हो जाते हैं। प्रिय पाठको, यह पढ़ना-लिखना सिखाने की किसी नई विधि की खोज नहीं है। यह तो विज्ञान द्वारा सिद्ध किए जा चुके सत्य का व्यावहारिक रूप है: जिसे याद करना लाज़िमी नहीं होता, वही बात आसानी से याद हो जाती है। बोधगम्य बिंबों का भावनात्मक रंग स्मरण-प्रक्रिया में असाधारण भूमिका अदा करता है।

दृश्य-बिंब, शब्द की ध्वनि और भावनात्मक रंग की एकता किसी भी हालत में अलग-अलग ध्वनियों के विश्लेषण को नज़रंदाज़ नहीं करती। उलटे, *ЛУГ* शब्द के ध्वनि-उच्चारण को सुनते हुए बच्चे उसमें अलग-अलग ध्वनियों को पहचानते हैं और यह समझते हैं कि शब्द अलग-अलग ध्वनियों से मिलकर बना है तथा हर ध्वनि के लिए एक अक्षर है।

कुछ दिन पश्चात हम नई "यात्रा" पर जाते हैं। हम सुबह तड़के स्कूल के बाग़ में आते हैं अरुणोदय का स्वागत करने। मैदान की घास, पेड़ों की पत्तियां, अंगूर के गुच्छे, पीले-पीले बबूगोशे और लाखी आलू-बुख़ारे—हर चीज़ पर ओस की बूंदें बिखरी हुई हैं। ओस की हर बूंद में सूरज की चिनगारी है। चिनगारियां एक जगह ग़ायब हो जाती हैं और दूसरी जगह चमकने लगती हैं। लगता है मानो सूरज कुछ बूंदें पी रहा है और दूसरी बूंदें बिखेर रहा है। पर यह सिर्फ़ लगता ही है। ओस की बूंद में चिनगारी तब चमक उठती है, जब सूर्य किरण उसका स्पर्श करती है। पर यह ओस कहां विलीन होती जा रही है? कुछ बूंदें भाप बनकर उड़ जाती हैं, दूसरी बूंदें घास के तिनकों पर धीरे-धीरे नीचे ढुलक जाती हैं, धरती उन्हें पी लेती है। अगर ओस न हो तो घास और फूल सूख जाएं। फिर हम गुलाब और दूसरे फूलों पर चमचमाती ओस की बूंदों को देखते हैं। मैं कापी में घास का तिनका, फूल, सूरज और चिनगारियों से चमचमाती ओस की बूंदें बनाता हूं। बच्चे भी चित्र बनाते हैं। चित्रों के नीचे हम लिखते हैं: *POCA* ("रोसा"—ओस)। ये अक्षर बच्चों को सूरज और ओस की बूंदों जैसे लगते हैं। हम चित्र-अक्षर पढ़ते हैं। हर बच्चा

अपने ही ढंग से अक्षर बनाता है, वह उसमें संसार की अपनी कल्पना व्यक्त करता है। सेर्योझा अपने साथियों को कहता है:

"यह देखो, ओस की बूंद घास के तिनके पर लटकी हुई है," P (र) अक्षर को वह ऐसे समझता है। "अभी वह ज़मीन पर लुढ़क जाएगी। और यह बूंद सूरज का इंतज़ार कर रही है, पर वह आती ही नहीं," O (ओ) अक्षर उसे ऐसा लगता है। "और इस बूंद में सूरज की चिनगारी चमक रही है," यह कहते हुए वह C (स) अक्षर पर फिर से पेंसिल फेरता है।

मैं सब बच्चों को कहता हूं कि वे घास का तिनका और उस पर ओस की बूंदें बनाएं। बच्चे अपने चित्रों पर लिखते हैं *POCA*। यह कहने में ही आसान लगता है कि बच्चों ने चित्र बनाया और लिखा। उनके लिए चित्र भी और शब्द भी बिंबों, ध्वनियों, रंगों, भावनाओं की पूरी दुनिया हैं। बच्चे की चेतना में हर अक्षर किसी ठोस बिंब के साथ जुड़ा हुआ है, इसीलिए सभी अक्षर भी और सारा शब्द भी आसानी से याद हो जाते हैं।

कई दिनों तक हम बारबार ओस की बूंदों के सौंदर्य का रसपान करते रहे, हर बार हम चित्र बनाते और उस पर *POCA* शब्द लिखते। हर नया चित्र अभ्यास मात्र नहीं होता था, बल्कि यह सृजनात्मक कार्य था। दो-तीन हफ़्ते तक हम *POCA* शब्द पर काम करते रहे। हर बच्चा अपनी पसंद का तिनका या टहनी बनाता था, शब्द का उच्चारण सुनता था, उसमें अलग-अलग ध्वनियों को पहचानता था, उन्हें अक्षरों में अंकित करता था। अक्षरों का चारों ओर के संसार की वस्तुओं से मिलता-जुलता होना वास्तव में बच्चों की कल्पना, उनका सृजन-कार्य ही है।

मैंने ड्राइंग की कापी पर लिखा: "हमारी मातृभाषा"। बच्चों से कहा: "यह कापी हम कई साल तक संभाले रखेंगे जब तक कि तुम स्कूल की पढ़ाई पूरी नहीं कर लोगे, बड़े नहीं हो जाओगे। तुम सब के पास अपनी-अपनी कापी होगी, जिसमें तुम चित्र बनाओगे, शब्द लिखोगे। पर यह सब की साझी कापी होगी।"

दिन बीते, सप्ताह बीते, हम नई-नई "यात्राएं" करते रहे। **गांव, बलूत, बेदमजनूं, जंगल, धुआं, बर्फ़, पहाड़, बाली, आसमान, पुआल, उपवन, सेब, बादल, पतझड़** आदि शब्दों से हमारा परिचय विशेषतः रोचक रहा। वसंत में हमारी "यात्राएं" **फूल, लिलक पुष्प, अंगूर, तालाब, नदी, झील, कोहरा, बारिश, उषा, कबूतर, पॉप्लर** आदि शब्दों को

समर्पित थीं। "हमारी मातृभाषा" की कापी में हर बार वह बच्चा चित्र बनाता था, जिसकी कल्पना में शब्द सुनकर सबसे आकर्षक चित्र उभरा था, शब्द के साथ जुड़ी जिसकी भावनाएं और यादें सबसे उज्ज्वल, ज्वलंत होती थीं। मातृभाषा के सौष्ठव के प्रति कोई भी उदासीन नहीं रहा। १९५२ के वसंत में, अर्थात "खुशियों का स्कूल" खुलने के कोई आठ महीने बाद बच्चे सभी अक्षर सीख गए थे, वे शब्द लिख और पढ़ सकते थे।

यहां पर मैं इस अनुभव को आंख मूंदकर अपनाने के खिलाफ़ चेतावनी देना चाहता हूं। इस विधि से बच्चों को पढ़ना-लिखना सिखाना सृजनात्मक कार्य है, इस में ठप्पेबाज़ी से, नक़ल करने से कुछ नहीं मिल सकता। किसी भी नई बात को केवल सृजनात्मक ढंग से अपनाया जा सकता है।

यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि बच्चों के सामने यह कार्यभार नहीं रखा था कि उन्हें ज़रूर ही अक्षर याद करने हैं, पढ़ना सीखना है। ज्ञान की पहली सीढ़ी पर बच्चे खेल-खेल में चढ़े; उनका बौद्धिक जीवन सौंदर्य, कहानी, संगीत, सृजन और कल्पना की उड़ान से प्रेरित था। बच्चों को बिल्कुल पक्की तरह वह सब याद हो गया, जिसने उनकी भावनाओं को जगाया था, अपने सौंदर्य से उन्हें मुग्ध किया था। मैं यह देखकर चकित था कि बहुत से बच्चे अपनी भावनाओं को केवल शब्दों में व्यक्त ही नहीं करना चाहते थे, बल्कि शब्द लिखना भी चाहते थे।

एक दिन हम जंगल में घूम रहे थे कि बारिश आ गई। हम वनपाल की झोंपड़ी में जा छिपे। बादल गरज रहे थे, बिजली कौंध रही थी। छोटे-छोटे ओले धरती पर बरसे। बारिश ख़त्म होने पर भी वे कुछ देर तक हरी-हरी घास पर पड़े रहे। बच्चे हर्षोल्लास से चिल्ला रहे थे: "कितना सुंदर है!" दूसरे दिन बच्चों ने कल जो देखा था, उसका चित्र बनाना चाहा। यूरा, सेर्योझा, शूरा और गाल्या ने अपने चित्रों पर लिखा भी। वे तब तक अच्छी तरह पढ़ने लगे थे। मैंने उनकी पहली रचनाएं देखीं। उन्होंने लिखा था: "बादल ने घास पर ओले बिखेरे", "हरी घास में सफ़ेद ओले", "सूरज ने ओले पिघला दिए", "काली घटा ने सफ़ेद ओले बरसाए"।

यह देखकर एक बार फिर मेरे मन में इस विचार की पुष्टि हो गई कि बच्चे विचारों और शब्दों के आदिस्रोत – अपने चारों ओर के संसार, अपने परिवेश के जितने पास होंगे, उनकी वाणी उतनी ही समृद्ध और प्रखर होगी। मुझे विश्वास था कि शीघ्र ही सब बच्चे छोटी-छोटी रचनाएं

रचने लगेंगे। १९५२ की गर्मियों में मेरे इस विश्वास की पुष्टि हो गई। स्कूल के बाग़ के एक कोने में लाला फूल उगाए गए थे। जब लाला डंठलों पर सैकड़ों रंग-बिरंगे अंगारे दहक उठे, तब मैं बच्चों को वहां ले गया। यह रमणीय दृश्य देखकर बाल-हृदयों में ख़ुशी की लहर उठी। देर तक खड़े-खड़े हम फूलों को निहारते रहे, मधुमक्खियों का गुंजन सुनते रहे। अगले दिन हम वहां कापियां और पेंसिलें लेकर गए। बच्चे चित्र बना रहे थे और मैं उन्हें कहानी सुना रहा था कि कैसे इंद्रधनुष ने खसखस के दाने को सात रंगों का सौंदर्य दिया। बहुत से बच्चों ने अपनी विमुग्धता को शब्दों में व्यक्त करना चाहा और बड़े ही सुंदर, अभिव्यंजनात्मक वाक्य रचे : "लाला फूलों का ग़लीचा खिल उठा हैं" (तान्या), "धरती पर फूलों का कालीन बिछ गया" (नीना), "लाला फूल खिले हैं, सूरज ख़ुशियां मना रहा है" (ज़ीना), "फूलों के कालीन पर मधुमक्खियां गुंजन कर रही हैं" (गाल्या), "सूरज ने धरती पर फूल बिखेरे : नीले, गुलाबी, लाल, आसमानी" (लरीसा), "आसमानी पंखुड़ियों में रोयेंदार भौंरा" (सेर्योझा), "बारीक-बारीक डंठलों पर फूल लहक रहे हैं" (शूरा), "सूरज की किरणें फूलों से खेल रही हैं" (कोल्या), "आसमान से आसमानी पंखुड़ियां गिरीं, धरती पर ग़लीचा खिल उठा" (कात्या)। इन रचनाओं को बच्चों ने चित्रों सहित "हमारी मातृभाषा" की कापी में उतारा।

सूरजमुखी और कूटू के खिलते खेतों की हमारी "यात्राओं" के समय बच्चों की कल्पना ने बड़े ही सजीव बिंबों का सृजन किया। बच्चे अपने परिवेश के सौंदर्य से जितने अधिक उत्तेजित होते थे, उतनी ही अच्छी तरह उन्हें अक्षर याद होते थे, हालांकि अक्षरों को याद करने का लक्ष्य कभी भी नहीं रखा जाता था। मेरा यह विश्वास अधिकाधिक गहरा होता जा रहा था कि संसार के बिंबमय दर्शन और सौंदर्यानुभूति को शब्दों में व्यक्त करने की कामना बाल-चिंतन की आत्मा और हृदय हैं। बाल-चिंतन कलात्मक, बिंबमय और भावनाओं से ओतप्रोत चिंतन है। अगर आप चाहते हैं कि बच्चा बुद्धिमान और समझदार बने, तो बालावस्था में ही उसे संसार के कलात्मक दर्शन का सुख प्रदान करना चाहिए।

बच्चा जब सौंदर्य को देखता और अनुभव करता है, तो उसमें कल्पना, सृजन और सजीव विचारों के कितने अथाह स्रोत फूट निकलते हैं! सजीव शब्दों के स्रोतों की हमारी एक "यात्रा" मुझे कभी नहीं भूलेगी। गर्मियों

के दिनों में हम फ़ार्म की मधुवाटिका देखने गए। मधुमक्खी पालक एक बूढ़े दादा थे। उन्होंने हमें ताज़ा-ताज़ा शहद चखाया और चश्मे का ठंडा पानी पिलाया। बच्चे सेब के पेड़ की छाया में बैठकर कूटू के खिलते खेत को देखने लगे। मधुमक्खियां कूटू के फूलों से शहद बटोरकर अपने छत्तों को लौटते हुए चश्मे के ठंडे पानी के ऊपर उड़ रही थीं और मंद-मंद गुंजार कर रही थीं। यह देखकर बच्चे कहने लगे : "मधुमक्खियां एक दूसरे से फूलों और उपवन की, सूरजमुखी और कूटू की, लाला के चटकीले फूलों और नीले तिपतिया फूलों की बातें कर रही हैं।"

पांच साल बाद जब ये बच्चे चौथी कक्षा में पढ़ते थे, मैंने उन्हें एक निबंध लिखने को कहा। विषय था : "मधुमक्खियों का गुंजन क्या कहता है?" जून के उस दिन की अविस्मरणीय छापें तब बच्चों के स्मृति-पटल पर उभर आईं, ज्वलंत बिंबों के रूप में सजीव हो उठीं, विचारों की धारा बनकर बह निकलीं। जी हां, बचपन में जो भा जाता है, वह भुलाए नहीं भूलता। बचपन में बाल-चेतना में आस-पास के संसार के और मातृभाषा के सौंदर्य को सदा के लिए अंकित होने दीजिए। ज्ञान की टेढ़ी और दुर्गम सीढ़ी पर उनके पहले क़दम को सौंदर्य से प्रेरित कीजिए।

ज्यों-ज्यों बच्चे पढ़ना-लिखना सीखते जा रहे थे, त्यों-त्यों उनके आत्मिक जीवन में पुस्तक का स्थान बनता जा रहा था। हमने चित्र-पुस्तकों का एक छोटा-सा पुस्तकालय बनाया। उन दिनों दुकानों में अच्छी पुस्तकें नहीं मिलती थीं, सो मुझे ख़ुद ही चित्र बनाने और पुस्तकें लिखनी पड़ीं। सबसे पहले मैंने उक्राइनी लोक-कथा "कम्मो और निकम्मो" पर चित्र-पुस्तक बनाई। पुस्तक छोटी नहीं थी, तीस से अधिक पृष्ठ थे उसमें। हर पृष्ठ पर चित्र और कुछ छोटे-छोटे वाक्य (कभी-कभी केवल एक वाक्य) थे। १९५२ के वसंत तक अधिकांश बच्चे पढ़ना सीख गए थे। वार्या, कोल्या, गाल्या, लारीसा, सेर्योझा और लीदा ख़ास तौर पर अच्छी तरह पढ़ते थे। हम मैदान में जाकर बैठ जाते और कोई बच्चा पुस्तक खोलकर पढ़ने लगता। यह मात्र शब्दों का पढ़ना और उन्हें मिलाकर वाक्य बनाना ही नहीं था। यह सृजन-कार्य था। कहानी पढ़ते हुए बच्चा मानो चित्रों में अंकित संसार में चला जाता था। जिस लहजे से, जिस स्वर में बच्चा पढ़ता था, उसमें उदार हिम-बाबा, दुष्ट सौतेली मां, मेहनती और भली सौतेली बेटी तथा आलसी और निष्ठुर बेटी—सभी की भावनाओं की सूक्ष्मतम छटाएं प्रतिबिंबित होती थीं। बच्चे जो पढ़ते थे, उस पर उनकी

प्रबल भावनात्मक प्रतिक्रिया होती थी। वे दुष्टता से, बुराई से घृणा करते थे और भलाई की विजय पर खुश होते थे।

सबसे दिलचस्प बात तो यह थी कि बच्चों ने दसियों बार यह कहानी पढ़ी, लेकिन फिर भी हर बार उसे बड़े ध्यान से सुनते थे। मुझे अध्यापकों की इस उलझन का खयाल आया: बच्चे क्यों इस तरह एक ही स्वर में पढ़ते चले जाते हैं? उनके पढ़ने में भावनात्मक रंगत क्यों नहीं आती? इसलिए कि बहुत से मामलों में पढ़ने का बच्चों के आत्मिक जगत से, उनके विचारों, भावनाओं और संसार के बारे में उनकी कल्पनाओं से कोई संबंध नहीं होता। बच्चे का मन एक बात पर उत्तेजित होता है और पढ़ता वह दूसरी बात के बारे में है। पठन-पाठन बच्चों के जीवन को केवल तभी समृद्ध बनाता है, जबकि शब्द उनके हृदय के सबसे अंतरंग तारों को स्पर्श करे।

हम नई चित्र-पुस्तकें बनाने लगे। यूरा, सेर्योझा, कात्या, लीदा, ल्यूबा और लरीसा चित्र बनाते थे। कोई भी बच्चा ऐसा नहीं था, जो चित्र बनाना न चाहता हो। पढ़ना-लिखना सीखने की कठिनाइयां चित्र बनाने की प्रबल रुचि से सहज ही पार हो जाती थीं।

१९५२ की गर्मियों में बच्चे छपी हुई छोटी-छोटी बाल-पुस्तकें पढ़ने लगे। सबसे पहले उन्होंने जो पुस्तकें पढ़ीं उनमें लेव तोलस्तोय द्वारा पुन-र्कथित रूसी लोक-कथाएं तथा उशीन्स्की की पुस्तक "मातृभाषा" की छोटी-छोटी कहानियां थीं। बच्चों ने रूसी कवियों पुश्किन, लेर्मोन्तोव, नेक्रासोव, उक्राइनी कवियों शेव्चेन्को, लेस्या उक्राईन्का और इवान फ़्रांको की कविताएं पढ़ीं। एक बार हमने उशीन्स्की की "चलो बच्चो, स्कूल चलें" कविता पढ़ी। वह बच्चों को तुरंत याद हो गई। इस पर मुझे खुशी हुई, साथ ही यह सोचकर दुख हुआ कि आजकल की बाल-पुस्तकों में कभी-कभी कितनी भोंडी कविताएं होती हैं। शुष्क और किताबी भाषा में लिखी ये कविताएं बच्चों में शब्दों के प्रति प्रेम तो क्या ही विकसित करती हैं, उलटे उनकी काव्य भावना की ही जड़ खोदती हैं।

अपनी हर सफलता और हर कठिनाई के बारे में मैं दूसरे अध्यापकों को बताता था। हमारे स्कूल के प्राथमिक कक्षाओं के शिक्षक मिलकर बच्चों को पहली कक्षा के लिए तैयार करने लगे। शिक्षकों के सामूहिक श्रम में बच्चों के शिक्षण की, या यह कहना अधिक सही होगा कि पाठों के अलावा उनके चरित्र-निर्माण कार्य की विधियां सुधरती रही हैं। ये वि-

धियां बच्चों के बौद्धिक विकास और सफल शिक्षा के लिए आवश्यक बुनियादी योग्यताएं पाने के कार्य में सामंजस्य लाने में सहायक होती हैं। ऐसी योग्यताओं में पहला स्थान पाठन-योग्यता का है।

पिछले कई वर्षों से हमारे स्कूल के शिक्षक इस प्रयास में सफल रहे हैं कि पहली कक्षा में आने से पहले ही उनके छात्र पढ़ना सीख लें। इससे न केवल प्राथमिक कक्षाओं में, बल्कि बिचली और बड़ी कक्षाओं में भी अध्यापन प्रक्रिया बहुत हद तक सरल हो जाती है। हम सभी शिक्षकों के सामूहिक अनुभव से बच्चों की अध्ययन प्रक्रिया में सृजनात्मक बौद्धिक श्रम तथा उनके बौद्धिक विकास में धाराप्रवाह, अभिव्यंजनात्मक और सचेत पठन-पाठन की भूमिका के बारे में बहुत महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाला जा सकता है। निष्कर्ष यह है: बच्चा जितनी जल्दी पढ़ना सीख जाएगा और पठन-पाठन का उसके आत्मिक जीवन से जितना गहरा संबंध होगा, पठन-पाठन के समय उसके मस्तिष्क में होनेवाली चिंतन प्रक्रियाएं उतनी ही जटिल होंगी, उसके बौद्धिक विकास में पठन-पाठन उतना ही अधिक सहायक होगा। जो बच्चे सात साल से पहले ही पढ़ना सीख जाते हैं, उनमें एक अमूल्य योग्यता आ जाती है: शब्द और वाक्यांश का उच्चारण करने से पहले ही वे उसे अपनी दृष्टि और बुद्धि से ग्रहण कर लेते हैं। ऐसे बच्चे पढ़ते समय शब्दों से बंधे नहीं होते, वे पल भर को किताब से नज़र हटा सकते हैं और इस पल में वे सोचते हैं, जिसका वे उच्चारण करने जा रहे हैं, उस बात को समझते हैं। इस प्रकार बच्चा एकसाथ ही पढ़ता और सोचता है, पाठ्य-वस्तु को "पचाता" है।

हमारा सामूहिक अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि धाराप्रवाह पठन-पाठन सचेतन शिक्षा, सचेतन अध्ययन के लिए एक अनिवार्य पूर्वाधार है।

तुम लोगों के बीच रहते हो, मेरे बेटे

हमारे स्कूल के बाग़ में एक वीरान जगह में पायोनियरों ने गुलदाउदी के फूल उगाए। गर्मियां ख़त्म होते-होते यहां सफ़ेद, नीले, गुलाबी फूल खिल उठे। शरद के आरंभ का सुहावना दिन था, जब मैं बच्चों को वहां ले

गया। इतने सारे फूल देखकर बच्चे बहुत ख़ुश हो रहे थे। लेकिन मैं अपने कटु अनुभव से जानता था कि बच्चों की सौंदर्य प्रशंसा प्रायः स्वार्थमय होती है। बच्चा फूल तोड़ लेगा और उसे यह ख़याल भी नहीं आएगा कि यह बुरी बात है। उस दिन भी ऐसे ही हुआ। मैं देख रहा था कि बच्चे एक-एक करके फूल तोड़ते जा रहे थे। जब कोई आधे फूल रह गए, तो सहसा कात्या बोली :

"क्या फूल तोड़ सकते हैं?"

उसके शब्दों में न आश्चर्य था और न ही आक्रोश। वह तो बस पूछ रही थी। मैंने कोई जवाब नहीं दिया। ठीक है, यह दिन बच्चों के लिए सबक़ होगा। बच्चों ने और फूल तोड़े, उस जगह की सारी सुंदरता जाती रही। बाल-हृदयों में सौंदर्य की प्रशंसा का जो आवेग उठा था, वह अब जाता रहा था। बच्चे नहीं जानते थे कि फूलों का क्या करें।

"क्यों बच्चो, क्या यह जगह सुंदर है?" मैंने पूछा। "ये डंठल जिनसे तुमने फूल तोड़ लिए हैं, सुंदर लगते हैं?"

बच्चे चुप थे। फिर कुछ बच्चे एकसाथ बोल उठे :

"नहीं, सुंदर नहीं हैं..."

"अब हम कहां सुंदर-सुंदर फूल देखकर ख़ुश होंगे?"

"यह फूल बड़े बच्चों ने लगाए हैं," मैं बच्चों से कह रहा था। "वे यहां की सुंदरता देखने आएंगे और क्या पाएंगे? यह मत भूलो कि तुम लोगों के बीच रहते हो। सभी सुंदरता देखकर ख़ुश होना चाहते हैं। हमारे स्कूल में बहुत सारे फूल हैं। लेकिन अगर सभी छात्र एक-एक फूल तोड़ने लगेंगे, तो क्या होगा? कुछ नहीं बचेगा। लोग क्या देखकर ख़ुश होंगे? सुंदरता बनानी चाहिए, उसे बिगाड़ना नहीं चाहिए। अभी शरद ऋतु आई है, थोड़े दिनों में ठंड पड़ने लगेगी। हम गुलदाउदी के पौधों को तापघर में लगा देंगे। वहां हम इन सुंदर फूलों को देखने जाया करेंगे। एक फूल तोड़ने के लिए दस फूल उगाने चाहिए।"

कुछ दिन बाद हम दूसरी बग़िया में गए। यहां पहलीवाली से भी ज़्यादा फूल खिल रहे थे। इस बार बच्चों ने फूलों को नहीं तोड़ा। वे सौंदर्य को निहारते रहे।

बाल-हृदय लोगों के लिए सौंदर्य और ख़ुशियां रचने के आह्वान के प्रति संवेदनशील होता है। महत्वपूर्ण बात बस यह है कि आह्वान कोरे आह्वान ही न रह जाएं, बल्कि बच्चों को काम में लगाया जाए। अगर

बच्चा यह अनुभव करता है कि उसके आस-पास और लोग हैं और वह अपने कामों से उन्हें ख़ुशी पहुंचाता है, तो वह बचपन से ही अपनी इच्छाओं का लोगों के हितों के साथ ताल-मेल बिठाना सीखता है। बाल-हृदयों को उदार और मानवीय बनाने के लिए यह बात बहुत माने रखती है। जिस आदमी के लिए अपनी इच्छाएं ही सब कुछ हैं, वह कभी भी अच्छा नागरिक नहीं बनेगा। बचपन में जिन्हें केवल अपनी इच्छाओं का ही ख़याल होता है और जो दूसरों के हितों की ओर ध्यान नहीं देते, वही लोग बड़े होकर स्वार्थी, मतलबी, और दूसरों के दुखों, तकलीफ़ों के प्रति उदासीन बनते हैं। अपनी इच्छाओं को वश में रखना यों देखने में तो काफ़ी सरल-सी आदत लगती है, लेकिन वास्तव में मनुष्य काफ़ी कठिनाई से ही इसे पाता है। और इसी आदत में ही, अपनी इच्छाओं को वश में रखने की क्षमता में ही इन्सानियत, संवेदनशीलता, सहृदयता, आंतरिक आत्मानुशासन का स्रोत है, जिसके बिना इन्सान में ईमान नहीं हो सकता, वह सच्चा इन्सान नहीं हो सकता।

यहां पर मैं एक बार फिर इन्सान को इन्सान बनाने में बालावस्था के महत्व पर जोर देना चाहूंगा। नैतिक आस्थाएं, दृष्टिकोण और आदतें, यह सब भावनाओं के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। भावनाएं उच्चतः नैतिक कार्यों के लिए सुफला भूमि के समान हैं। जहां संवेदनशीलता नहीं होता, अपने परिवेश के प्रत्यक्षबोध में सूक्ष्मता नहीं होती, वहीं पर निष्ठुर, निर्मम लोग पनपते हैं। आत्मा की संवेदनशीलता बचपन में ही विकसित होती है। अगर यह समय हाथ से निकल जाने दिया गया, तो फिर वह कभी भी हाथ नहीं आएगा।

बच्चे को मानव संबंधों के जटिल संसार में ले जाना चरित्र-निर्माण का एक सबसे महत्वपूर्ण कार्यभार है। बच्चे ख़ुशियों के बिना जी नहीं सकते। हमारा समाज बचपन को सुखी बनाने के लिए सब कुछ करता है। परंतु ख़ुशियां ऐसी नहीं होनी चाहिए कि उनके साथ कोई फ़िक्र, कोई ज़िम्मेवारी न हो। बड़ों द्वारा बड़ी मेहनत से उगाए गए वृक्ष पर से ख़ुशियों के फल तोड़ते हुए अगर बच्चा यह नहीं सोचता कि लोगों के लिए क्या बचा रहेगा, तो वह सबसे मूल्यवान मानवीय गुण – अंतःकरण – खो बैठता है। बच्चे को यह समझाने से पहले कि वह समाजवादी समाज का भावी नागरिक है, उसे भलाई के बदले भलाई करना, अपने हाथों से लोगों के लिए ख़ुशियां और सुख रचना सिखाना चाहिए।

"ख़ुशियों का स्कूल" खोलने से पहले भी कई बरसों से मैं यह देखकर व्यथित था कि बहुत से माता-पिता अपने बच्चे के प्रति प्रेम में इतने अंधे हो जाते हैं कि उसकी सिर्फ़ अच्छाइयां ही उन्हें नजर आती हैं, बुराइयां नहीं। मुझे एक घटना याद आती है: चार साल का लड़का पाखाने में जाने के बजाए आंगन में ही मां और उसकी पड़ोसिन के सामने बैठ गया। मां इस पर नाराज़ नहीं हुई, उलटे, बोली: "देखा, हमारा बेटा कैसा है, किसी से नहीं डरता।" चार साल के उस फूहड़ की नखरे भरी नज़र, उसके फूले हुए होंठों और अवज्ञापूर्ण मुस्कान में ऐसा घिनौना जीव नजर आता था, जिसे अगर रोका न जाए, दूसरों की नज़रों से अपने को देखने पर मजबूर न किया जाए, तो वह अवश्य ही एक नीच इन्सान बन जाएगा।

वोलोद्या की माता से कई बार मुझे बात करनी पड़ी। हर बार जब वह कुछ कहने को होतीं, तो बेटा उनका पल्ला मसोसने लगता, हाथ खींचने लगता—हर बार उसे कोई ज़रूरी काम पड़ जाता था। बच्चों की ढिठाई और मचलापन, बाल-स्वार्थ के ये रूप उन्हें सब कुछ माफ़ करने, पुचकारते रहने का ही नतीजा होता है। कुछ माता-पिता और खेद के साथ कहना पड़ता है कि अध्यापक भी यह सोचते हैं कि बच्चों के साथ सदा बचकाने लहजे में बात करनी चाहिए; संवेदनशील बाल-हृदय इस लहजे में वही "पुच्ची-पुच्ची" सुनता है। बड़ों के इस बचकाने लहजे का जवाब नादान बाल-हृदय नख़रों में देता है। मैं हमेशा इस बात से डरता था कि कहीं मेरी बातचीत इस लहजे पर न उतर आए। मैं क्षण भर को भी यह नहीं भूलता था कि मेरे सम्मुख बच्चे हैं, लेकिन उनमें सदा भावी वयस्क नागरिकों को देखता था। यह बात मुझे तब ख़ास तौर पर महत्वपूर्ण लगती थी, जब दूसरों के लिए श्रम की चर्चा होती थी। बच्चों के श्रम के साथ जो सबसे बुरी बात जुड़ी होती है, वह यह विचार है कि वे बड़ों पर बहुत बड़ा अहसान कर रहे हैं और इसलिए उनकी ख़ूब प्रशंसा की जानी चाहिए, यहां तक कि उनके काम का इनाम मिलना चाहिए।

...जब शरद के ठंडे दिन आए, तो हम गुलदाउदी के पौधों को उखाड़कर तापघर में ले गए। ग्रामीण बच्चों के लिए यह कोई मुश्किल काम नहीं है। बच्चे रोज़ाना पौधों को पानी देते थे और बड़ी उत्सुकता से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे, जब पहले फूल खिलेंगे। तापघर एक सुंदर जगह बन गया। मैंने बच्चों को सलाह दी: "आओ, अब हम दूसरों को यहां बुलाएं। तुम किसे बुलाना चाहते हो?" बहुत से बच्चों के छोटे

भाई-बहन थे। बच्चे उन्हें तापघर में लाते थे, नन्हे बालक-बालिकाएं फूलों की ओर हाथ बढ़ाते थे, लेकिन मेरे छात्र उन्हें फूल नहीं तोड़ने देते थे।

"अगर हम बहुत सारे फूल उगा लेंगे, तो ८ मार्च के त्यौहार* पर तुम सब अपनी-अपनी माता को फूल भेंट करना," मैंने बच्चों से कहा। इस लक्ष्य से बच्चों को प्रेरणा मिली और मार्च के आरंभ तक हमारे यहां काफ़ी फूल उग आए। त्यौहारवाले दिन हमने सभी माताओं को निमंत्रित किया, उन्हें अपनी पुष्प-वाटिका दिखाई और एक-एक सुंदर फूल दिया। गाल्या की सौतेली मां भी स्कूल आई थीं और बच्ची ने उन्हें फूल भेंट किया। मैंने गाल्या से कई बार सौतेली मां के प्रति उसके रवैये के बारे में बात की थी, उसे समझाया था कि वह नेकदिल हैं। मुझे ख़ुशी थी कि मेरे शब्द बाल-हृदय तक पहुंचे हैं। कोल्या और तोल्या की माताओं, साश्को की दादी और कोस्त्या की सौतेली मां को आया देखकर भी मुझे ख़ुशी हुई।

बच्चों को बहुत सी बातें समझाई नहीं जा सकतीं। उदात्तता, सहृदयता के बारे में सुंदर-सुंदर शब्द सदा उनके मन में नहीं पैठते। पर हां, नन्हे-मुन्ने भी अपने हृदय से मानवीयता के सौंदर्य को अनुभव कर सकते हैं। "ख़ुशियों के स्कूल" के पहले दिन से ही मेरा प्रयत्न यह था कि हर बच्चा दूसरों की ख़ुशी को, दुख-दर्द को महसूस करे। शरद और वसंत में हम अक्सर मधु-वाटिका में मधुमक्खी पालक आन्द्रेई दादा से मिलने जाते थे। बूढ़े दादा का अपना परिवार नहीं था, एकाकीपन उनका बड़ा भारी दुख था। बच्चों ने यह महसूस किया कि हर बार हमारे आने पर आन्द्रेई दादा ख़ुश होते हैं। मधु-वाटिका में जाने से पहले मैं बच्चों से कहता था: चलो, दादा के लिए सेब, अंगूर, आलूबुख़ारे ले चलें – वह ख़ुश होंगे, मैदान में उगते फूल ले चलते हैं – दादा को ख़ुशी होगी। बच्चों के हृदय दूसरों की भावनाओं और मनोस्थिति के प्रति अधिक संवेदनशील हो रहे थे। बच्चे ख़ुद यह सोचने लगे कि वे कैसे बूढ़े व्यक्ति को ख़ुशी पहुंचा सकते हैं। एक बार हम जंगल में खिचड़ी पका रहे थे। अलाव में जब आग की लपटें उठती हैं, तो बच्चों के लिए ये क्षण कितने हर्षमय होते हैं... ऐसे ख़ुशी के क्षण में वार्या कुछ सोचती हुई-सी बोली:

---

*८ मार्च को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाया जाता है। इस दिन माताओं, बहनों, पत्नियों को फूल भेंट करने की परंपरा है। – **अनु०**

"आन्द्रेई दादा वहां अकेले बैठे होंगे।"

सब बच्चे सोचने लग गए। शायद बड़ों में से किसी को यह सब भावुकतापूर्ण लगे। शायद कोई सोचे कि क्या सात साल के बच्चों के मन में ऐसी भावनाएं उठ सकती हैं? जी हां, अगर आप इसी उम्र में बच्चे की आत्मिक संवेदनशीलता को तराशेंगे, अगर आप उसके हृदय में यह महान सत्य बिठा सकें: बेटा, तुम लोगों के बीच रहते हो, तो बच्चा दूसरों के साथ अपनी ख़ुशियां बांटना चाहेगा, यह सोचकर उसका मन दुखी होगा कि वह तो यहां हंस-खेल रहा है और उधर उसका साथी अकेला है।

बच्चों ने आन्द्रेई दादा के साथ अपनी ख़ुशी बांटने का निश्चय किया। "हम दादा के लिए खिचड़ी ले जाएंगे," कोस्त्या ने कहा। उसके इन शब्दों का बड़े उत्साह से स्वागत किया गया। बच्चे इतनी खिचड़ी लाए, कि कोई भूखे से भूखा आदमी भी अकेला न खा सके। मधु-वाटिका में हमने दादा के साथ मिलकर फिर खाना खाया।

दुख-सुख के प्रति संवेदनशीलता केवल बचपन में ही विकसित की जा सकती है। इस उम्र में हृदय इन्सान की तकलीफ़ों और मुसीबतों के प्रति, उदासी और एकाकीपन के प्रति ख़ास तौर पर संवेदनशील होता है। बच्चा सहज ही दूसरे व्यक्ति के स्थान पर स्वयं को रखकर देख सकता है। मुझे याद है, एक बार जंगल से लौटते हुए हम एक घर के पास से गुज़रे। वहां आस-पास और कोई घर नहीं था और न ही इस घर के इर्द-गिर्द कोई पेड़-पौधे लगे हुए थे। मैंने बच्चों को बताया कि इस घर में महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध में अपाहिज हुआ सैनिक रहता है। वह बीमार है, इसलिए अपने अहाते में न सेब का पेड़ लगा सकता है, न अंगूर की बेल। बच्चों की आंखों में आंसू आ गए। हर बच्चा बीमार आदमी के अकेलेपन पर दुखी हो रहा था। हमने वहां सेब के दो पेड़ और अंगूर की दो बेलें लगाईं। यह उस व्यक्ति को हमारा उपहार था। और इससे हमें अमूल्य निधि मिली – दूसरे को सुख पहुंचाने की ख़ुशी।

बच्चों में दूसरे लोगों के दुख-दर्द के प्रति संवेदनशीलता पैदा करना सोवियत स्कूल का एक महत्वपूर्ण कार्यभार है। इन्सान दूसरे इन्सान का मित्र, साथी और भाई तभी बन सकता है, जब दूसरे का दुख उसका अपना दुख हो जाता है। मैंने अपने सामने बच्चों के चरित्र-निर्माण का जो लक्ष्य रखा था, उसे इन शब्दों में निरूपित किया जा सकता है: **बच्चे हृदय से दूसरे व्यक्ति को अनुभव करना सीखें।**

अगर बच्चा इस ओर से उदासीन है कि उसके साथी, मित्र, माता, पिता के मन में, किसी भी देशवासी के मन में, जिससे वह मिला है, क्या गुज़र रही है, अगर बच्चा दूसरे व्यक्ति की आंखों में यह नहीं देख सकता कि उसके मन में क्या है, तो वह कभी भी सच्चा इन्सान नहीं बन सकता। मैं बाल-हृदयों की संवेदनशीलता को इस तरह तराशने का प्रयत्न कर रहा था कि वे जिन लोगों से रोज़ाना मिलते हैं, उनकी ही नहीं, बल्कि "अकस्मात" मिलनेवालों की आंखों में भी उनकी भावनाओं, उनकी ख़ुशियों और उनके गमों को देख सकें।

एक दिन हम बच्चों के साथ जंगल से लौट रहे थे। रास्ते में हमने देखा सड़क के किनारे एक बूढ़ा आदमी घास पर बैठा हुआ था। वह किसी बात पर उदास लगता था। मैंने बच्चों से कहा: "देखो, उस आदमी को कुछ हुआ है। शायद उसे रास्ते में कोई तकलीफ़ हो गई है? शायद कुछ खो गया है?" बूढ़े के पास आकर हमने पूछा: "दादा, हम आपकी कोई मदद करें?" बूढ़े ने गहरी सांस भरी, बोला: "जीते रहो, बच्चो। मदद तो कितनी भी करना चाहो, नहीं कर सकते। बड़ी भारी विपदा आई है मेरे सिर पर। बुढ़िया मेरी अस्पताल में दम तोड़ रही है। उसी के पास जा रहा हूं। बस के इंतज़ार में हूं। मदद तो तुम लोग कुछ नहीं कर सकते, पर इतने में ही मन कुछ हल्का हो गया: दुनिया में तुम जैसे भले लोग भी हैं।" बच्चे ख़ामोश हो गए, उनकी चहल-पहल रुक गई। बूढ़े के शब्दों को मन में लिए हुए ही सब अपने-अपने घर चले गए। बच्चों ने सोच रखा था कि वे थोड़ी देर और खेलेंगे, पर सब ख़ुद-ब-ख़ुद ही घरों को चल दिए।

दुख-सुख महसूस करना सिखाना ही चरित्र-निर्माण का सबसे कठिन काम है। मैत्री और भाईचारा ही बच्चों को सहृदय, संवेदनशील होना, दुख-सुख में शरीक होना सिखाते हैं। बच्चा दूसरे व्यक्ति के मन की उथल-पुथल की बारीकियों को तभी समझता है, जब वह लोगों के सुख और चैन के लिए, उनकी ख़ुशी के लिए कुछ करता है। माता-पिता, नाना-नानी, दादा-दादी के प्रति बच्चे के प्रेम में अगर भलाई करने की भावना नहीं होती, तो यह प्रेम स्वार्थपरक हो जाता है: बच्चा मां को केवल इस-लिए प्यार करता है कि वह उसके लिए ख़ुशियों का स्रोत है। और बाल-हृदय में तो सच्चा मानवीय प्रेम जगाना चाहिए, जिसका अर्थ है दूसरे व्यक्ति के भाग्य की चिंता, उद्विग्नता, व्यथा। सच्चा प्रेम उसी हृदय में

पनपता है, जो दूसरे व्यक्ति के भाग्य पर चिंतित हुआ है। यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि बच्चों का ऐसा मित्र हो, जिसकी उन्हें चिंता करनी हो। मेरे छात्रों के लिए आन्द्रेई दादा ऐसे मित्र थे। मेरा यह विश्वास पक्का हो रहा था कि बच्चा दूसरे इन्सान की जितनी अधिक चिंता करता है, अपने साथियों और माता-पिता के प्रति उसका हृदय उतना ही संवेदनशील होता है। मैंने बच्चों को आन्द्रेई दादा के कठिन जीवन के बारे में बताया: उनके दो बेटे लड़ाई में शहीद हुए, पत्नी का देहांत हो गया। वह बिल्कुल अकेले रह गए हैं।

"बच्चो, हम अक्सर आन्द्रेई दादा से मिलने जाया करेंगे। उन्हें हर बार कोई न कोई ख़ुशी पहुंचानी चाहिए।"

जब हमें आन्द्रेई दादा के यहां जाना होता था, तो हर कोई सोचता था कि दादा का मन कैसे ख़ुश किया जाए? सभी बच्चों ने एक कापी में चित्र बनाए और दादा को यह कापी भेंट की। नदी के तट पर बच्चों ने बहुत सारे रंग-बिरंगे कंकड़ बटोरे आन्द्रेई दादा के लिए। दादा ने लकड़ी की एक पिटारी बनाकर उसमें कंकड़ों को सजाया और पिटारी बच्चों को दे दी। बच्चों ने अपने मित्र के लिए पुआल की टोपी बनाई। दादा ने हमारे लिए लकड़ी के छोटे-छोटे जानवर बनाए—ख़रगोश, लोमड़ी, भेड़ आदि।

बच्चे अपने मित्र को जितना अधिक स्नेह दे रहे थे, उतनी ही अच्छी तरह वे अपने चारों ओर लोगों की तकलीफ़ें, दुख-दर्द देख रहे थे। उनका ध्यान इस बात की ओर गया कि नीना और साशा कभी-कभी खोई-खोई-सी स्कूल आती हैं, उनकी आंखें उदास और सोच में डूबी-सी लगती हैं। बच्चे नीना और साशा से पूछते थे कि उनकी मां कैसी हैं? मां की तबीयत ख़राब होने पर बच्चियां दुखी होती थीं... नेक भावना हृदय में तभी पैठती है, जब बच्चा अपने साथी का ग़म हल्का करने के लिए कुछ करता है। हम कई बार नीना और साशा के घर गए, उनके बाग़ में उग आए झाड़-झंखाड़ को साफ़ किया, क्यारियों में लगा आलू खोदा। हर बार जब हम लोग जंगल में घूमने जाने का कार्यक्रम बनाते थे, तो बच्चों को यह परेशानी होती थी कि नीना और साशा हमारे साथ चल सकेंगी या नहीं। कई बार उन्हें घर के काम में पिता का हाथ बंटाने के लिए घर पर रहना पड़ता था। तब हम घूमने जाने से पहले दिन नीना और साशा के घर जाते थे और जहां तक बन पड़ता था उनकी मदद करते थे।

समाज में जीने का अर्थ है दूसरों के हित और चैन के लिए अपनी

ख़ुशियों को न्योछावर कर सकना। शायद हम सबने ही ऐसा देखा होगा: बच्चे की आंखों के सामने दुख के मारे लोग हैं, आंसू हैं और वह अपनी ख़ुशियों में मस्त है। ऐसा भी होता है कि मां जान-बूझकर बच्चे का ध्यान किसी भी दुखद बात की ओर नहीं जाने देती, इस फ़िक्र में कि कहीं उसके ख़ुशियों के भरे-पूरे प्याले में से एक बूंद भी न छलक जाए। यह तो बच्चे को खुले आम स्वार्थी बनाने की शिक्षा है। मानव जीवन के दुख-दर्दों को बच्चों की नज़रों से मत छिपाइए। बच्चों को यह जानने दीजिए कि हमारे जीवन में केवल ख़ुशियां ही नहीं, ग़म भी हैं। बाल-हृदय में दूसरों के दुख-दर्द के लिए स्थान बनने दीजिए।

व्यक्ति का नैतिक स्वरूप इसी बात पर निर्भर होता है कि मनुष्य ने बचपन में ख़ुशियां किन स्रोतों से पाईं। अगर ख़ुशियां बिना किसी चिंता के, उपभोग की वस्तु की तरह मिलीं, अगर बच्चे ने यह नहीं जाना कि दुख-दर्द क्या है, मुसीबतें क्या हैं, तो वह बड़ा होकर स्वार्थी ही बनेगा, लोगों के लिए उसके हृदय के कपाट बंद होंगे। यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण है कि हमारे छात्र संसार की सबसे बड़ी ख़ुशी अनुभव कर पाएं, जो इन्सान की चिंता से संबंधित मन की हलचल से ही प्राप्त होती है।

हमारा
बाल-समुदाय –
एक मैत्रीपूर्ण परिवार

"ख़ुशियों के स्कूल" के पहले दिनों से ही मेरा प्रयत्न यह था कि हमारे बाल-समुदाय में पारिवारिक आत्मीयता और हार्दिकता का, परस्पर विश्वास और सहायता का वातावरण बने। सितंबर में तीन बच्चों – वीत्या, वाल्या और कोल्या का जन्म दिन था। हम सबने मिलकर इसे मनाया। स्कूल के भोजनालय में हमने केक बनाया, बच्चों को चित्र और पुस्तकें उपहार में दीं। मुझे यह सुनकर हैरानी हुई कि कोल्या के परिवार में न उसका और न ही माता-पिता का जन्मदिन मनाया जाता था। बालक के जीवन में यह पहला उत्सव था। साथियों के ध्यान से वह गद्गद हो गया।

बचपन में हर कोई लाड़-प्यार का भूखा होता है। अगर बच्चा निर्ममता के वातावरण में पलेगा, तो उसका हृदय उदारता और सौंदर्य के प्रति उदासीन रहेगा। स्कूल परिवार का, और ख़ास तौर पर मां का स्थान तो

नहीं ले सकता, परंतु अगर बच्चा घर पर स्नेह, सौहार्द और चिंता से वंचित है, तो हम अध्यापकों को उसका ख़ास ध्यान रखना चाहिए।

हमारे छोटे-से बाल-समुदाय के पास अपनी चीजें, अपने रहस्य, चिंताएं और निराशाएं थीं। एक अलमारी में हमारे खिलौने, कापियां, पेंसिलें रखी हुई थीं। "स्वप्न-लोक" में हमने कुछ खाने-पीने का समान–आलू, प्याज़, सूजी, दलिया, घी-तेल–रखा हुआ था, यह सब ऐसे दिनों के लिए था, जब बाहर शरद की ठंडी बारिश हो रही हो। हमारे परिवार के सभी सदस्य छोटे बच्चे ही थे, और कुछ उनमें सबसे छोटे थे, जैसे दान्को, तीना, वाल्या। जब कभी हम घूमने जाते, जंगल जाते, तो दूसरे बच्चे छोटों का ख़याल रखना अपना कर्त्तव्य समझते थे।

अगर कोई बच्चा घर पर रह जाता, और हमें इसका कारण न पता होता, तो लौटने पर बच्चे उसके यहां जाते, पूछते कि सब ठीक-ठाक तो हैं। यह एक अच्छी परंपरा बन गई। लगाव की भावना मानवात्मा की एक सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता–लोगों के संसर्ग की आवश्यकता–का आधार है और इस संसर्ग के बिना तो लोगों के बीच कम्युनिस्ट संबंधों की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मैं यह कोशिश करता था कि हर बच्चे के लिए अपने साथियों का संसर्ग ही ख़ुशियों का, भावनात्मक अनुभवों का स्रोत हो। हर किसी को समुदाय में अपना योगदान करना चाहिए, दूसरों के लिए ख़ुशियां, सुख रचना चाहिए।

बच्चों को एक समुदाय के रूप में गठित करने, उनमें सामूहिकता की भावना पैदा करने में मुझे बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उन पर विजय पाने के लिए मैं प्रायः प्राथमिक कक्षाओं के अनुभवी शिक्षकों से सलाह-मशविरा करता था, जो बाल-आत्मा को, पूरे बाल-समुदाय के हृदय की धड़कन को अच्छी तरह समझते हैं। समय-समय पर हम शाम को, जब स्कूल में और अहाते में बच्चों का कोलाहल शांत हो जाता, मिलकर बैठते थे और इस बात पर सोच-विचार करते थे कि हम सब बाल-समुदाय के बहुमुखी जीवन की कल्पना कैसे करते हैं, कैसे उसे देखते-समझते हैं। हम सब अच्छी तरह जानते हैं कि मानव-बोध परिवार में ही आरंभ होता है–उस क्षण से जब मां की लोरी सुनता हुआ बच्चा पहली बार मुस्कराता है। भलाई, हार्दिकता और संसार में जो सबसे अनुपम है, अर्थात मनुष्य के प्रति मनुष्य का प्रेम, इसके बारे में विचार निजी अनुभव से ही उत्पन्न हों, माता और पिता बच्चे के लिए सबसे प्रिय व्यक्ति हों–इस

बात का महत्व अपार है। परंतु अगर परिवार में इस सच्ची मानवीयता का अभाव है या वह बिल्कुल है ही नहीं, तो बाल-समुदाय में किस हद तक बच्चे को यह मिल सकती है? संवेदनशील और सहज ही प्रभावित होनेवाले बाल-हृदय के सम्मुख मानवात्मा की उदारता और सौंदर्य को कैसे उजागर किया जाए?

इन संध्याकालीन वार्ताओं, वाद-विवादों और विचार-विमर्शों में बूंद-बूंद करके शिक्षण संबंधी हमारा एक विचार बना। मेरे ख़याल में यह एक बहुत बड़ा विचार था, जो हमारे सारे शिक्षक-समुदाय की दृढ़ धारणा बन गया। विचार यह था: बाल-समुदाय केवल तभी एक चरित्र-निर्माणकारी शक्ति बन सकता है, जबकि वह हर व्यक्ति को ऊंचा उठाए, समुदाय के हर सदस्य में आत्मसम्मान की, गौरव की भावना की पुष्टि करे। माता-पिता के प्रेम का मर्म भी तो यही है कि बेटा-बेटी आत्म-सम्मान का अनुभव करते हुए अच्छा बनने की चेष्टा करें। अनुभवी शिक्षकों के कार्यों में मैंने अत्यंत मूल्यवान विचार पाए, जिनका सार यही था कि बच्चा अपने पर, अपने कार्यों पर गर्व करे, कि वह अपने मान की, अपने गौरव की रक्षा करे।

सर्वश्रेष्ठ शिक्षकों के अनुभव के मोतियों को बटोरते हुए मेरा प्रयास सदा यही रहता था कि अच्छा बनने की अभिलाषा बाल-समुदाय में बच्चों के बीच हार्दिक और आत्मीय संबंधों के रूप में व्यक्त हो। सामूहिक संबंधों में सौहार्द लाने की ओर मैं निरंतर ध्यान देने लगा। अब मैं यह समझने लगा कि बाल-समुदाय का जीवन केवल तभी बहुमुखी हो सकता है, जबकि यह एक से लक्ष्यों और संयुक्त कार्यों द्वारा संगठित समान विचारोंवाले लोगों का समुदाय ही नहीं हो, बल्कि समुदाय के सदस्य एक दूसरे के प्रति संवेदनशील भी हों, उनमें एक दूसरे की खुशियों और दुख-दर्द को मनो-मस्तिष्क से समझने की आत्मिक क्षमता भी हो। समुदाय के संबंधों में इस हार्दिकता और आत्मीयता में ही अच्छा बनाने की अभिलाषा की उदात्तता निहित है: यह अभिलाषा तब दिखावे की नहीं होती, इसलिए नहीं कि तुम्हारी प्रशंसा की जाए, बल्कि यह अपनी उदात्तता अनुभव करने की आत्मिक आवश्यकता का परिणाम होती है।

सभी आगामी वर्षों में मेरे चरित्र-निर्माण कार्य का ध्येय सारतः बच्चों, किशोर-किशोरियों और तरुण-तरुणियों में मानवीय गरिमा की भावना जगाना और उसे ऊंचा उठाना ही था। बाल-समुदाय के संबंध इसी पर आधारित

होते थे और अब भी होते हैं। बाल-समुदाय को समाज के एक अंश के रूप में देखते हुए मैं सदा यही कोशिश करता आया हूं कि समुदाय के जीवन का लक्ष्य मनुष्य को ऊंचा उठाना ही हो। बच्चों के सृजनात्मक कार्यों, उनके रुझानों और उनकी क्षमताओं, प्रतिभाओं के विकास में भी इसी लक्ष्य को सर्वोपरि रखा जाता था।

"स्वास्थ्य-विहार" में

महीने भर बाद स्कूल खुलनेवाले थे। मेरे शिष्य पहली कक्षा में जाएंगे। हमारे यहां की गर्मियों का सबसे प्यारा महीना – अगस्त आ रहा था। जुलाई के गरम दिनों में बच्चे सुबह तड़के या सांझ ढलने से पहले "खुशियों के स्कूल" में आते थे। कुछ बच्चों के घर दूर थे, सो कभी-कभी ६–७ बच्चे स्कूल के भोजनालय में ही खाना खाते थे। मेरे दिमाग़ में एक विचार आया कि घर पर रहने के बजाय बच्चे कहीं बाग़ में रहें। तालाब के पास एक जगह हमें पसंद आ गई; पेड़ों की छाया में पायोनियरों की मदद से हमने टहनियों की झोंपड़ियां बनाईं। झोंपड़ियों के अंदर पुआल बिछा दिया और चित्रकारी के लिए मेज़ें बना दीं। झोंपड़ियों के पास ही सामूहिक फ़ार्म का एक बाग़ था। माली ने हमें बाग़ में आराम करने की इजाज़त दे दी। झोंपड़ियों के पास ही रसोई बनाई, सामूहिक फ़ार्म ने हमें खाने-पीने का सामान दिया और एक रसोइया भी लगा दिया। सान्या के पिता ने तालाब में नहाने का प्रबंध कर दिया। पास ही मोटर बोट खड़ी देखकर बच्चों की आंखें चमक उठीं।

अब हम "स्वास्थ्य-विहार" में रहने लगे – हमारे निवास और विश्राम स्थल का यह नाम बच्चों के माता-पिताओं ने रखा था। महीने भर तक हम ताज़ी हवा में रहे। हम सूरज निकलने से पहले ही उठते थे। तालाब में नहाते, कसरत करते और फिर नाश्ता करके घूमने निकल जाते। इस महीने में शब्दों के स्रोतों की हमारी "यात्राएं" सबसे दिलचस्प रहीं। हम स्तेपी के एक टीले पर चढ़कर उषा की छटा और अरुणोदय देखते थे; हमने देखा कि कैसे सैंकड़ों अबाबीलें गरम देशों को जाने से पहले बड़े-बड़े झुंडों में इकट्ठी हो रही हैं; कैसे सूर्य किरणें और प्रभात समीर नदी पर छाई धुंध की सफ़ेद चादर को उड़ा देते हैं। खेत, चरागाह या जंगल में हम दुबारा नाश्ता करते थे: सेब, नाशपाती, आलूबुख़ारे, उबला हुआ

नया आलू और खीरे, ख़रबूज़े, तरबूज़, मकई के उबले हुए भुट्टे, टमाटर आदि खाते थे। अगस्त हमारे यहां फलों और सब्ज़ियों का महीना होता है; इन दिनों हर बच्चा कम से कम दो किलो सेब और नाशपातियां खा जाता था। आन्द्रेई दादा रोज़ाना हमारे लिए शहद लाते थे। सुबह-शाम बच्चे दूध पीते थे। रसोइया हमारे लिए ताज़ी सब्ज़ियों का स्वादिष्ट सूप बनाता था।

बच्चे दिन भर कच्छा-बनियान पहनकर नंगे पैर घूमते थे, मोटर बोट पर सैर करते थे। धूप से उनके शरीर संवला गए।

पौष्टिक आहार, धूप, ताजी हवा, पानी और यथाशक्ति श्रम तथा विश्राम का यह सुमेल स्वास्थ्य का अद्वितीय स्रोत बन गया।

पहले शैक्षिक वर्ष के अवसर पर कुछ विचार

हमारे "ख़ुशियों के स्कूल" के दिन ख़त्म हो रहे थे। शीघ्र ही मेरे बच्चे पहली कक्षा के छात्र होंगे – यह सोचकर मुझे ख़ुशी भी हो रही थी और साथ ही मन में अजीब धुक-धुक भी हो रही थी। ख़ुशी इस बात की थी कि अभी और कई वर्षों तक मुझे इन बच्चों को जीवन के, श्रम और ज्ञान के मार्ग पर आगे ले जाना है, कि बीते वर्ष में बच्चे हृष्ट-पुष्ट हो गए हैं।

"ख़ुशियों के स्कूल" के दिन जब ख़त्म हो रहे थे, तो मैंने मन ही मन यह तुलना की कि वोलोद्या, कात्या, सान्या, तोल्या, वार्या, कोस्त्या साल भर पहले कैसे थे और अब कैसे हैं। पीला चेहरा, दुबले-पतले, आंखों तले नीली नसें – ऐसे थे वे। और अब उनके गाल लाल-लाल थे, शरीर संवला गए थे। इस बात पर भी ख़ुशी थी कि उमस भरी क्लास के बिना, ब्लैक-बोर्ड और चाक के बिना, बेजान तस्वीरों और गत्ते के टुकड़ों पर बने अलग-अलग अक्षरों के बिना ही बच्चे ज्ञान की पहली सीढ़ी चढ़ गए थे – पढ़ना-लिखना सीख गए थे। अब इनके लिए शिक्षा उन बच्चों की तुलना में कहीं अधिक आसान होगी, जिनके लिए यह सीढ़ी ब्लैक-बोर्ड के चौखटे से शुरू होती है।

स्वयं जीवन की यह मांग है कि ज्ञान-प्राप्ति का कार्य शनैः-शनैः हो, कि शिक्षा, जो बच्चे के लिए सबसे गंभीर और सबसे कठिन, सबसे श्रम-साध्य काम है, वह साथ ही ऐसा हर्षमय श्रम भी हो, जो बच्चे की आत्मिक और शारीरिक शक्ति को सुदृढ़ करे। बच्चों के लिए यह बात विशेषतः महत्वपूर्ण है, क्योंकि वे श्रम का ध्येय और कठिनाइयों का सार नहीं समझ सकते।

हज़ार बार कहा जा चुका है: शिक्षा श्रम है, इसे खेल में नहीं बदला जाना चाहिए। परंतु श्रम और खेल के बीच चीन की दीवार भी तो नहीं खड़ी की जानी चाहिए। ज़रा ग़ौर से देखिए कि बच्चों के, ख़ास तौर पर जो अभी स्कूल नहीं जाते, उनके जीवन में खेल का क्या स्थान है। उनके लिए तो खेल ही सबसे गंभीर कार्य है। खेल में ही बच्चे दुनिया को देखते हैं, खेल में ही व्यक्ति की क्षमताएं प्रकट होती हैं। खेल के बिना तो सर्वांगीण, पूर्ण बौद्धिक विकास हो ही नहीं सकता। खेल संसार में खुलनेवाली विशाल खिड़की के समान है, जिसके रास्ते चारों ओर के संसार के बारे में कल्पनाओं, धारणाओं की जीवनदायी धारा बच्चे के आत्मिक जगत में प्रवेश करती है। खेल वह चिनगारी, जो जिज्ञासा और कुतूहल की आग जलाती है। अगर बच्चा खेल-खेल में लिखना सीखता है, अगर बौद्धिक विकास के निश्चित स्तर पर खेल और श्रम आपस में जुड़े होते हैं और शिक्षक बच्चों को यह नहीं कहता रहता कि "चलो, बस खेल ख़त्म, अब पढ़ाई करेंगे!" तो इसमें डरने की क्या बात है?

खेल की अवधारणा बड़ी व्यापक है और इसके बहुत-से पहलू हैं। बच्चों का दौड़ना और तेज़ी, फुर्ती में एक दूसरे का मुक़ाबला करना– केवल यही उनका खेल नहीं है। सृजन-क्षमताओं और कल्पना के असाधारण तनाव में भी खेल हो सकता है। बौद्धिक शक्ति के खेल और सृजनात्मक कल्पना के बिना तो छोटे बच्चों की सर्वांगीण शिक्षा हो ही नहीं सकती। व्यापक अर्थ में खेल वहीं आरंभ होता है, जहां सौंदर्य है। परंतु चूंकि सौंदर्य के पुट के बिना नन्हे बच्चों के श्रम की कल्पना नहीं की जा सकती, अतः बालावस्था में श्रम का खेल के साथ घनिष्ठ संबंध होता है।

स्कूल के खेत में फ़सल की कटाई आरंभ करने का समारोही दिन है– बच्चे साफ़-सुथरे, सुंदर कपड़े पहनकर आते हैं। पहली बालियों को मेज़पोश से ढंकी मेज पर रखे फूलदान में रखा जाता है। यह सब बच्चों के लिए खेल है, लेकिन इस खेल में गहरा अर्थ है। परंतु जब खेल को ज़बरदस्ती

श्रम के साथ जोड़ा जाता है और सौंदर्य में इन्सान द्वारा अपने परिवेश का और स्वयं अपना भावनात्मक मूल्यांकन व्यक्त नहीं होता, तब खेल का कोई शिक्षात्मक महत्व नहीं रह जाता।

अब यह प्रश्न रह जाता है कि बच्चों को पढ़ना-लिखना कब सिखाया जाए—जब बच्चा पहली कक्षा का छात्र बन जाए, तब या शायद इससे कुछ पहले, जब वह अभी स्कूल नहीं जाने लगा है। हमारे स्कूल के अध्यापक अपने अनुभव से इस बात के क़ायल हो गए हैं कि स्कूल आने के साथ ही बच्चों का जीवन एकदम बदल जाना ठीक नहीं। छात्र बनने पर भी बच्चे को आज वही करने दीजिए, जो वह कल तक कर रहा था। उसके जीवन में नई बातों को धीरे-धीरे प्रवेश करने दीजिए, ऐसा न हो कि बच्चा नई छापों की बाढ़ से हक्का-बक्का रह जाए।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि चित्रकारी और खेल के माध्यम से पढ़ना-लिखना सिखाना ही ऐसा एक पुल हो सकता है, जो स्कूलपूर्व की शिक्षा और स्कूल में अध्ययन को जोड़ेगा। अक्षरों की आकृतियों में मेरे बच्चों ने ओस की बूंदों में सूरज की चिनगारियों का, सौसाला बलूत वृक्ष का, तालाब पर सिर झुकाए खड़े बेदमजनूं के पेड़ का, नीले गगन में सफ़ेद हंसों की डार का और जुलाई के गरम दिन के पश्चात सो रही चरागाह का सौंदर्य देखा। बच्चे अभी बहुत अच्छी तरह अक्षर नहीं बना पाते, तो कोई बात नहीं, हर चित्र में वे जीवन की धड़कन तो सुनने लगे हैं। मुझे इस बात की भी ख़ुशी थी कि बच्चे रंगों की छटाओं और शब्दों के संगीत को समझने लगे हैं: उनकी चेतना में बिंबात्मक, काव्यमय चिंतन का सुदृढ़ आधार बन गया है। चित्रकारी बच्चों के आत्मिक जगत का अभिन्न अंश बन गई थी। बच्चे चित्रों में अपने विचार और अपनी भावनाएं व्यक्त करने का प्रयास करते थे। संगीत सुनना उनके लिए आत्मिक आवश्यकता हो गया।

मेरे मन में इस बात की भी ख़ुशी थी कि बच्चों ने नैतिक विकास का पहला क़दम भर लिया है: वे मानव कर्मों का सौंदर्य देखने लगे थे, उनके हृदयों में दूसरों के दुख-सुख के प्रति संवेदनशीलता जाग गई थी और उन्होंने मनुष्य के लिए ख़ुशियां और सौंदर्य रचने का परम सुख अनुभव किया था। बच्चा जब पहली बार स्कूल की दहलीज़ लांघता है, उस क्षण से लेकर वयस्क, चहुंमुखी विकसित व्यक्तित्व के संसार में प्रवेश करने तक—इस सारे लंबे काल में चरित्र-निर्माण की प्रक्रिया मेरे विचार में सर्वप्रथम

भावनाओं को साधने की प्रक्रिया होती है। जिस व्यक्ति का हम चरित्र-निर्माण करते हैं, उसे मनोमस्तिष्क से यह समझना और महसूस करना चाहिए कि मेरे आस-पास रह रहे लोगों को भी मेरे ही जैसे दुख-दर्द, मुसीबतें, विपदाएं, तकलीफ़ें हो सकती हैं। मैं यह चेष्टा करता था कि बचपन में मेरे छात्रों के नेक कर्म सर्वप्रथम मानवीयता की भावना से प्रेरित हों। मुझे ख़ुशी थी कि बच्चे शीघ्र ही अपने साथियों, अपने माता-पिता और किसी भी बड़े को उद्विग्न कर रही भावनाओं को अनुभव करते थे, उनके हृदय में सह-अनुभूति जागती थी। मेरे लिए सब से हर्षदायी बात यह थी कि बच्चे अपने जीवन में जिस किसी के भी संपर्क में आते थे, उसमें वे सर्वप्रथम मनुष्य को, इन्सान को देखते थे।

ख़ुशी के साथ ही मेरे मन में चिंता का भाव भी था। प्रतिदिन बौद्धिक श्रम करना अब बच्चों का सबसे प्रमुख कर्त्तव्य होगा – क्या मैं ऐसी स्थिति में संसार में उनकी सजीव रुचि बनाए रख सकूंगा? हर बच्चा अपने ही ढंग से अपने चारों ओर के संसार को मौलिक रूप से देखता है, वस्तुओं और परिघटनाओं का उसका बोध अपने ही ढंग का होता है, सोचने का ढंग सबका अलग-अलग होता है – क्या मैं तीव्र गति से बहती धारा को और मंथर प्रवाहवाली भरी-पूरी नदी को भी संज्ञान की, ज्ञान-प्राप्ति की दुनिया में पहुंचा सकूंगा?

हर बच्चे के आत्मिक जगत के विषय पर भी मेरा मन उद्विग्न था। मेरे सम्मुख कोमल, संवेदनशील और सहज ही प्रभावित होनेवाले बाल-हृदय थे। बच्चों के जितने अधिक निकट संपर्क में मैं आ रहा था, उतनी ही स्पष्टता से मैं यह देख रहा था कि मेरे शब्दों, मेरी नज़र और मेरे परामर्शों और आलोचनाओं के प्रति बच्चों के हृदयों और मस्तिष्क की संवेदनशीलता तीव्र होती जा रही है। ये ३१ बच्चे ३१ संसार थे। इस छोटी उम्र में ही कोल्या और कोस्त्या, वार्या और तीना, दान्को और लरीसा, वोलोद्या और स्लावा कितने अलग-अलग थे! और उनकी यह अपनी, निजी, व्यक्तिगत विशिष्टता हर दिन, हर सप्ताह के साथ अधिक प्रखर होती जाएगी। बाल-हृदय के किसी कोने में उसका अपना एक तार होता है, वह अपने ही स्वर में झंकारता है, और अगर मैं चाहता हूं कि बाल-हृदय मेरे शब्द पर प्रतिध्वनित हो, तो मुझे स्वयं उसके इस तार के स्वर से स्वर मिलाना होगा। मैंने कई बार यह देखा था कि अगर बच्चा किसी बात पर व्यथित हो और शिक्षक इसके बारे में कुछ नहीं जानता,

तो बाल-हृदय कितना क्षुब्ध हो उठता है। क्या मैं यह जान सकूंगा कि बच्चे के मन में क्या हो रहा है, किन विचारों, भावनाओं के साथ वह प्रतिदिन जी रहा है? क्या बच्चों के प्रति मेरा रुख सदा न्यायपूर्ण होगा?

मेरे कार्य के सभी वर्षों में जिस प्रश्न ने मुझे निश्चिंत नहीं होने दिया, वह यह था कि बच्चों को सामाजिक जीवन के विशाल जगत में कैसे ले जाया जाए, कैसे यह किया जाए कि हर बच्चा केवल जिस नदी के तट पर उसका बचपन बीता है, उसके सौंदर्य को, अपने गांव को ही नहीं देखे, बल्कि अपनी मातृभूमि के विशाल, असीम जगत को भी देखे, कि बच्चा प्रकृति और मानवात्मा के सौंदर्य से प्रेम ही नहीं करे, बल्कि जनगण को दास बनानेवाली शत्रुतापूर्ण शक्ति – साम्राज्यवाद – से घृणा भी करे, कि वह सोवियत जनता की उपलब्धि... समाजवादी व्यवस्था और हमारे देश के जनगण की स्वाधीनता, सम्मान और मैत्री – की रक्षा करने के लिए भी तत्पर हो।

नागरिकता की भावना को बच्चे के चहुंमुखी विकास का अंग कैसे बनाया जाए? छोटी कक्षाओं के छात्रों का शिक्षण, उनका चरित्र-निर्माण एक अत्यंत जटिल समस्या है। क्या मैं इसे उनकी आयु की अपेक्षाओं के अनुसार हल कर पाऊंगा?

बचपन के दिन

प्राथमिक विद्यालय क्या है?

अगस्त, १९५२ का आखिरी दिन था। शांत-सुहावनी सुबह को स्कूल के सामने हरे-भरे मैदान में सारे छात्र, अध्यापक और माता-पिता इकट्ठे हुए। नया शैक्षिक वर्ष शुरू होने से एक दिन पहले हमारे यहां स्कूल और पुस्तक का समारोह मनाने की परंपरा थी। इस बार यह समारोह विशेषतः हर्षमय था।

दूर-दराज के अनजाने देशों की यात्रा पर चलने से पहले, जिस प्रकार यात्री अपने साथियों और सहयात्रियों की आंखों में आंखें डालकर देखता है, वैसे ही मैं भी अपने बच्चों की आंखों में झांकता हूं। मेरे सामने १६ लड़के और १५ लड़कियां हैं। बच्चों के माता-पिता और बहुतों के नाना-नानी, दादा-दादी भी आए हैं। कोल्या और तोल्या की माताएं यहां हैं। गाल्या की सौतेली मां उसके कंधे पर हाथ रखती है और इस बार साल भर पहले की भांति बच्ची की भौंहें नहीं तन जातीं। सब हमें बधाइयां देते हैं, सफलता की कामना करते हैं। दसवीं कक्षा के छात्र बच्चों के पास आते हैं और सबको उपहारस्वरूप एक-एक पुस्तक देते हैं। इस पर लिखा है: "नन्हे दोस्त, ज्ञान-पथ पर तुम्हारी यात्रा सफल हो। इस पुस्तक को संभालकर रखना। यह जीवन भर तुम्हें स्कूल के इस समारोह की, उस दिन की याद दिलाएगी, जब तुम छात्र बने थे। अपने परिवार के पुस्तकालय में इस पुस्तक को रखना।" (कितने बरस बीत गए हैं, मेरे छात्र अब वयस्क हो गए हैं। उन सबने अपनी-अपनी पुस्तक को सुनहरे बचपन की पावन स्मृति के रूप में संजोकर रखा हुआ है)।

नन्हे बच्चे और उनके माता-पिता, अध्यापक और दसवीं के छात्र—हम सब स्कूल के बाग़ में जाते हैं। युवक-युवतियां ध्यान से सेब के एक छोटे-से पेड़ को जड़ समेत खोदते हैं, ज़मीन के ढेर के साथ उसे एक दूसरे गड्ढे में लगाते हैं। सब बच्चे मुट्ठी भर मिट्टी गड्ढे में डालते हैं,

गड्ढा भर जाता है। बच्चे पेड़ को पानी देते हैं और अपने-अपने घर चले जाते हैं।

कल बच्चे स्कूल आएंगे, उनका पहला पाठ होगा। चार साल तक वे प्राथमिक विद्यालय के छात्र होंगे, चार साल तक मैं उन्हें पढ़ाऊंगा। उनका चरित्र-निर्माण करूंगा। इस दिन की पूर्ववेला में मेरे मस्तिष्क में एक ही प्रश्न था: "प्राथमिक विद्यालय क्या है?" प्राथमिक विद्यालय की विशाल, निर्णायक भूमिका के बारे में बहुत कुछ कहा जाता है। "ज्ञान की सुदृढ़ नींव प्राथमिक कक्षाओं में रखी जाती है", "प्राथमिक कक्षाएं सभी आधारों का आधार हैं", बिचली (५-८) और बड़ी (९-१०) कक्षाओं में शिक्षा की कमियों और त्रुटियों की, छात्रों के सतही ज्ञान की चर्चा चलने पर अक्सर यह सुनने में आता है। प्राथमिक विद्यालय पर प्रायः यह आरोप लगाया जाता है कि उसने बच्चों को वह ज्ञान नहीं दिया, वह सब काम करना नहीं सिखाया, जो आगे की शिक्षा के लिए अनिवार्य है।

हां, हमारा अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि प्राथमिक विद्यालय को सर्वप्रथम बच्चों को पढ़ना, शिक्षा पाना सिखाना चाहिए। चेकोस्लोवाकिया के यान कोमेंस्की (१५९२–१६७०), रूस के उशीन्स्की (१८२४–१८७०) और जर्मनी के ए० डीस्टेवेंग (१७९०–१८६६) जैसे सभी महान शिक्षकों ने भी यही कहा है। व्यवहार से, शिक्षकों के अनुभव से भी इस बात की पुष्टि होती है। प्राथमिक विद्यालय का सबसे महत्वपूर्ण कार्यभार यह है कि वह बच्चों को एक निश्चित दायरे के अंदर ठोस ज्ञान और योग्यता प्रदान करे। पढ़ने, लिखने, अपने चारों ओर के संसार की परिघटनाओं का प्रेक्षण करने, सोचने और अपने विचारों को शब्दों में व्यक्त करने की योग्यताएं ही शिक्षा पाना सीखने के लिए नितांत आवश्यक हैं। यह ज्ञान-प्राप्ति के उपकरणों के समान हैं।

प्राथमिक कक्षाओं में बच्चों को पढ़ाने की तैयारी करते हुए मैंने यह तय करने की कोशिश की कि बच्चों को इन वर्षों में क्या कुछ अच्छी तरह याद कर लेना चाहिए और सदा के लिए स्मृति में रखना चाहिए तथा उन्हें क्या-क्या काम करने आने चाहिए।

परंतु प्राथमिक विद्यालय के कार्यभार यहां तक ही सीमित नहीं हैं। क्षण भर को भी यह नहीं भूलना चाहिए कि प्राथमिक कक्षाओं में अध्यापक का वास्ता बच्चों से ही होता है।

पहली से चौथी कक्षा तक के वर्ष–७ से ११ साल तक की उम्र–

वे वर्ष हैं, जब बच्चा इन्सान के रूप में ढलता है। बेशक, यह प्रक्रिया इस काल में ही पूरी नहीं हो जाती, पर हां, इन चार बरसों में ही मानव-व्यक्तित्व का बुनियादी ढांचा बन जाता है, इस ढांचे में संवार-निखार होकर ही पूर्णतः विकसित व्यक्तित्व बनेगा। इस अवधि में बच्चे को केवल आगे की शिक्षा के लिए तैयार नहीं होना चाहिए, उसे केवल आगे भी सफलता-पूर्वक शिक्षा पाने के लिए आवश्यक ज्ञान और योग्यताओं का भंडार ही नहीं बनाना चाहिए। बच्चे को एक समृद्ध, चहुंमुखी आत्मिक जीवन भी जीना चाहिए! प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षा के वर्ष बच्चे के नैतिक, बौद्धिक, भावनात्मक, शारीरिक और सौंदर्यबोधात्मक विकास का एक पूरा काल है। यह विकास कोरी बातें न होकर यथार्थ कार्य केवल तभी होगा, जबकि बच्चा आज भी समृद्ध जीवन जी रहा हो, केवल भावी जीवन में ज्ञान-प्राप्ति की ही तैयारी न कर रहा हो।

हमारे देश में प्राथमिक कक्षाओं के हज़ारों-हज़ार श्रेष्ठ शिक्षक हैं। इनमें से प्रत्येक बच्चों के लिए केवल ज्ञान-दीप ही नहीं है, बल्कि सच्चे अर्थों में जीवन गुरु भी है। सोवियत देश में प्राथमिक विद्यालय सार्विक माध्यमिक शिक्षा का ठोस आधार है। परंतु यह भी कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि हमारे बहुत-से प्राथमिक विद्यालयों में और विशेषतः माध्य-मिक विद्यालयों की प्राथमिक कक्षाओं में कई गंभीर कमियां भी हैं। कुछ स्कूलों में प्राथमिक कक्षाओं के छात्रों की स्थिति मुझे दयनीय लगती है: बच्चे की पीठ पर मानो बोरा लदा हुआ है, जिसमें मास्टर जी ज़्यादा से ज़्यादा बोझ ठूंसने की कोशिश करते हैं और बच्चे के सारे जीवन की, उसके कार्यकलापों की सार्थकता उनके ख़याल में बस यही है कि वह इस बोझ को एक निश्चित सीमा तक – बिचली और बड़ी क्लासों तक – ढो ले।

प्राथमिक विद्यालय को छात्र को एक निश्चित परिधि के अंदर ठोस ज्ञान प्रदान करना चाहिए। इस प्रश्न में कोई भी अस्पष्टता और अनिश्चित-ता न केवल प्राथमिक विद्यालय को ही, बल्कि शिक्षा की अगली कड़ियों को भी कमज़ोर बनाती है। अगर यह तय नहीं कि बच्चे को क्या ज्ञान, क्या व्यावहारिक शिक्षा देनी है, क्या कुछ करना सिखाना है, तो फिर स्कूल स्कूल ही नहीं। शिक्षा की प्राथमिक कड़ी की एक सबसे गंभीर कमी यही है कि प्रायः अध्यापक को इस बात का ख़याल नहीं रहता कि पढ़ाई के पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे बरस में छात्रों को कौन-कौन-से नियमों और परिभाषाओं को ख़ूब अच्छी तरह समझ लेना और याद कर लेना चाहिए,

कौन-से शब्द उन्हें ठीक-ठीक लिखने आने चाहिए और फिर कभी यह नहीं भूलना चाहिए कि वे कैसे लिखे जाते हैं। बच्चों के बौद्धिक श्रम को अधिक से अधिक सरल बनाने के प्रयत्न में कुछ अध्यापक यह भूल जाते हैं कि बच्चे के लिए कुछ जानना, किसी बात में रुचि लेना ही नहीं, बल्कि उस बात को अच्छी तरह याद करना और सदा के लिए स्मृति में बनाए रखना भी आवश्यक है। आजकल प्राथमिक कक्षाओं के छात्रों के सामान्य विकास के विषय पर बहुत कुछ कहा जा रहा है। निस्संदेह, सामान्य विकास शिक्षा और चरित्र-निर्माण का अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है, किन्तु उस बुनियादी ज्ञान की भी भूमिका इतनी ही महत्वपूर्ण है, जिसे अच्छी तरह याद रखे बिना, स्मृति में सदा बनाए रखे बिना सामान्य विकास भी नहीं हो सकता, क्योंकि सामान्य विकास का अर्थ है निरंतर ज्ञान प्राप्ति और इसके लिए शिक्षा पाना, अध्ययन करना आना चाहिए।

प्राथमिक विद्यालय के कार्यभारों के असाधारण महत्व के बावजूद यह नहीं भूलना चाहिए कि यहां अध्यापक का वास्ता बच्चों से होता है, जिनके तंत्रिकातंत्र का इन बरसों में तीव्र विकास हो रहा होता है। बच्चे के मस्तिष्क को ऐसा सजीव यंत्र नहीं समझना चाहिए, जो बस ज्ञान को "पचाने", याद करने और स्मृति में बनाए रखने के लिए ही तैयार रूप में उपलब्ध है। ७ से ११ साल की उम्र में बच्चे के मस्तिष्क का तीव्र विकास होता है। और अगर अध्यापक यह भूल जाता है कि बच्चे के तंत्रिकातंत्र के विकास की, कार्टेक्स की कोशिकाओं को सुदृढ़ करने की चिंता करनी चाहिए, तो पढ़ाई बच्चे को मंदबुद्धि ही बनाएगी।

निरंतर ज्ञान संचय, स्मरण शक्ति का अभ्यास और रट्टेबाज़ी – यही पढ़ाई नहीं है। रट्टेबाज़ी तो बच्चे के स्वास्थ्य के लिए भी और बौद्धिक विकास के लिए भी हानिकर है। मैंने अपना लक्ष्य यह रखा कि पढ़ाई, शिक्षा बच्चे के समृद्ध आत्मिक जीवन का ऐसा अंश हो, जो बच्चे के विकास में, उसकी बुद्धि को समृद्ध बनाने में सहायक हो। रट्टेबाज़ी नहीं, बल्कि खेलों, कहानियों, सौंदर्य, संगीत, कल्पना और सृजन के संसार में झरने-सा बहता बौद्धिक जीवन – ऐसी होगी मेरे छात्रों की शिक्षा। मैं चाहता हूं कि बच्चे इस संसार में अपने को नए-नए ज्ञान की खोज कर रहा अन्वेषक और सृजनकर्त्ता अनुभव करें। प्रेक्षण करना, सोचना, चिंतन-मनन करना, श्रम से ख़ुशी पाना और अपने कार्य पर गर्व करना, लोगों के लिए सुंदरता और ख़ुशी की रचना करना और उसमें सुख पाना, प्रकृति,

संगीत और कला के सौंदर्य पर विमुग्ध होना और इस सौंदर्य से अपने आत्मिक जगत को समृद्ध बनाना, लोगों के दुख-सुख में हाथ बंटाना – यही है चरित्र-निर्माण का मेरा आदर्श। परंतु इसके साथ ही सुस्पष्ट रूप से निर्धारित लक्ष्य को भी नहीं भूलना चाहिए: बच्चों को क्या कुछ **जानना** है, कौन-कौन-से शब्द लिखने सीखने हैं और उन्हें कभी नहीं भुलाना है, अंकगणित के कौन-से नियम उन्हें सदा के लिए याद करने हैं। "ख़ुशियों के स्कूल" में ही मैंने उन शब्दों की सूची बना ली थी, जो बच्चों को पहली से चौथी कक्षा तक सीखने होंगे।

मेरे विचार में प्राथमिक विद्यालय का एक सबसे बड़ा कार्यभार यह है कि बच्चों को बौद्धिक श्रम की विधियों, रूपों और साधनों से लैस किया जाए। कई स्कूलों के प्रिंसिपल और इंस्पेक्टर प्राथमिक कक्षाओं को महत्व नहीं देते। उनके इस रुख़ पर मुझे बड़ी परेशानी होती है। इंस्पेक्टर स्कूल में आते हैं और सबसे पहले यही जानना चाहते हैं कि बिचली और बड़ी क्लासों में पढ़ाई कैसे होती है, प्राथमिक कक्षाओं की ओर तो वह ऐसे देखते हैं, मानो वहां असली पढ़ाई न होकर, पढ़ाई का खेल ही होता हो। इस खेल पर सब गद्गद होते हैं, लेकिन जब बच्चे पांचवीं कक्षा में पहुंचते हैं, तब उनके अधूरे ज्ञान पर सब परेशान होने लगते हैं।

अपने बच्चों की शिक्षा आरंभ करते हुए मैंने यह दृढ़ निश्चय किया कि ऐसा गद्गद होने का कोई भाव नहीं होगा। दूसरी कक्षा के अंत तक बच्चों को इस तरह धाराप्रवाह और सचेत ढंग से पढ़ना सिखा देना चाहिए कि वे छोटे-छोटे वाक्यों को और बड़े वाक्यों के अंशों को अपनी नज़रों से एक पूर्ण "इकाई" के रूप में ग्रहण करें। पठन-पाठन चिंतन और बौद्धिक विकास का एक स्रोत है। मैंने बच्चों को इस तरह पढ़ना सिखाने का लक्ष्य रखा कि वे **पढ़ते हुए सोचें**। पठन-पाठन बच्चे के लिए ज्ञान-प्राप्ति का एक सूक्ष्म उपकरण और उसके साथ ही समृद्ध आत्मिक जीवन का स्रोत हो जाना चाहिए।

इस अध्याय में मैं यह बताना चाहता हूं कि किस प्रकार १९५२ के शरद से लेकर १९५६ के वसंत तक प्राथमिक विद्यालय के दो महत्वपूर्ण कार्यभारों को एकसाथ निभाया: एक ओर, बच्चों को गहन, सुदृढ़ ज्ञान प्रदान किया, दूसरी ओर, उन्हें रट्टेबाज़ी से बचाते हुए, उनके समृद्ध आत्मिक जीवन और स्वास्थ्य की चिंता की।

स्वास्थ्य, स्वास्थ्य और एक बार फिर स्वास्थ्य

मैं बार-बार यह दोहराते हुए नहीं डरता कि बच्चों के स्वास्थ्य की हित-चिंता शिक्षक का एक सबसे महत्वपूर्ण कार्यभार है। बच्चों की प्रसन्नचित्तता और उनकी स्फूर्ति पर ही उनका ग्रात्मिक जीवन, विश्वदृष्टिकोण, बौद्धिक विकास, ज्ञान की सुदृढ़ता और अपनी शक्ति, अपनी क्षमता में विश्वास निर्भर होता है। शिक्षा के पहले चार वर्षों में बच्चों के बारे में मेरी सारी चिंताओं और उद्विग्नताओं को अगर देखा जाए, तो इनमें से आधी बच्चों के स्वास्थ्य के बारे में होंगी।

परिवार के साथ निरंतर संपर्क बनाए रखे बिना तो स्वास्थ्य की चिंता की ही नहीं जा सकती। माता-पिताओं के साथ मेरी अधिकांश बातचीतों का (ख़ास तौर पर पहले दो बरसों में) विषय बच्चों का स्वास्थ्य ही था। मैंने माता-पिताओं को बताया कि सभी नियम और परिभाषाएं बच्चे पाठ में ही सीखेंगे, याद करेंगे। घर पर बच्चों को मुख्यतः ऐसे अभ्यास करने होंगे, जिनका ध्येय यह होगा कि बच्चों ने पाठों में जो कुछ सीखा है उसे वे अच्छी तरह, गहराई में समझ लें। इसके अलावा बच्चे घर पर अपनी मनपसंद किताबें पढ़ेंगे, चित्र बनाएंगे, प्राकृतिक परिघटनाओं का प्रेक्षण करेंगे, अपने चारों ओर के संसार की वस्तुओं और परिघटनाओं के बारे में छोटी-छोटी रचनाएं लिखेंगे और अपनी पसंद की कविताएं याद करेंगे। घर पर बच्चे का बौद्धिक श्रम ऐसा नहीं होना चाहिए, जिससे वह थक जाए, पर हां, इसके बिना भी काम नहीं चल सकता। मैं इन सब बातों को गंभीरतापूर्वक नहीं लेता कि पाठों में शिक्षण विधियों को ऐसे सुधारा जा सकता है कि घर पर बच्चों को कुछ करना ही न पड़े। ये सब बातें शिक्षा के सच्चे लक्ष्यों और नियमसंगतियों को प्रतिबिंबित नहीं करती हैं, क्योंकि और तो और इनमें इस छोटी-सी बात को ही ध्यान में नहीं रखा जाता कि बच्चे के सारे बौद्धिक श्रम को लगातार ३–४ घंटों में ही केंद्रित नहीं किया जा सकता।

माता-पिता ने इस बात का ख़याल रखने का वायदा किया कि बच्चे

ज़्यादा से ज़्यादा समय तक खुली हवा में रहेंगे, जल्दी सोएंगे और जल्दी उठेंगे, खिड़की खुली रखकर सोएंगे। सारी गर्मियां और शरद तथा वसंत में अच्छा मौसम होने पर बच्चे बाहर आंगन में सोएंगे—यह भी हमने तय कर लिया। माता-पिताओं ने आंगन में सायबान तले सूखी घास बिछाकर बच्चों के लिए सोने की जगह बनाई। बच्चों को यह बड़ा अच्छा लगा। हर परिवार में, जहां बच्चे स्कूल जाते हैं, घर के बग़ीचे में ऐसा लतामण्डप होना चाहिए, जिसमें बैठकर बच्चे वसंत के पहले दिनों से लेकर शरद के अंतिम दिनों तक पढ़ सकें, चित्रकारी कर सकें और आराम कर सकें—यह तो मैंने कुछ साल पहले ही माता-पिताओं के साथ तय कर लिया था। जिन बच्चों की माताएं अकेली यह काम नहीं कर सकती थीं, उनकी मदद बड़ी कक्षाओं के छात्रों ने की।

"ख़ुशियों के स्कूल" में ही मैंने बच्चों को सुबह कसरत करने की आदत डलवा दी थी। अब यह देखना था कि आदत बनी रहे। मैंने यह पाया कि सुबह कसरत करने की आदत छोटी उम्र में ही पड़ती है। माता-पिता यह कोशिश करते थे कि बच्चे रोज़ाना एक ही वक़्त पर उठें। ताज़ी हवा में कसरत करने के बाद वे हाथ-मुंह धोते थे। गर्मियों में वे तालाब में नहाते थे, इसके अलावा बहुत-से घरों में माता-पिताओं ने आंगन में फौवारे लगा दिए थे और बच्चे साल में छह महीने (मई से सितंबर तक) फौवारे तले नहाते थे। उनकी यह आदत इतनी पक्की हो गई कि जाड़ों में भी वे रोज़ाना ठंडे पानी से हाथ-पैर और धड़ भी धोते थे। बेशक, जाड़ों में तो घर के अंदर ही ऐसा किया जा सकता है।

कुछ माता-पिताओं की सहायता से हमने खुले आंगन में छह फौवारे लगाए। तीना, तोल्या, कोस्त्या, लरीसा, नीना, साशा और स्लावा जैसे बच्चे, जिनके लिए यह ख़ास तौर पर ज़रूरी था, यहां नहाते थे। जो बच्चे जन्म से ही किसी विकृति के शिकार होते हैं, जैसे कि कंधे आगे झुका होना या धड़ अथवा चेहरे के गठन में वैषम्य आदि, उनके लिए तो सुबह कसरत करना और फौवारे तले नहाना नितांत आवश्यक है। मनुष्य को केवल स्वस्थ ही नहीं, सुंदर भी होना चाहिए; और सुंदरता का स्वास्थ्य के साथ, शरीर के संतुलित विकास के साथ अटूट संपर्क है।

बचपन में बच्चे को कैसी ख़ुराक मिलती है, इस पर शरीर के अंगों का संतुलित विकास निर्भर होता है, अस्थि ऊतकों और वक्ष के विकास के लिए यह विशेषतः महत्वपूर्ण है। बरसों के प्रेक्षणों से यह पता चलता

है कि भोजन में खनिज पदार्थों ग्रौर सूक्ष्म तत्वों की कमी होने पर शरीर के विभिन्न ग्रंगों का विकास ग्रसंतुलित होता है ग्रौर इसका प्रभाव जीवन भर के लिए बच्चे की चाल-ढाल पर पड़ता है। मेरे बच्चों के साथ ऐसा न होने पाए इसके लिए भी मैं यह देखता था कि उनकी ख़ुराक में विटामिनों ग्रौर खनिज पदार्थों की उचित मात्रा हो।

इससे पहले के कुछ वर्षों के दौरान किए गए प्रेक्षणों ग्रौर विशेष ग्रध्ययनों से एक चिंताजनक बात का पता चला था: स्कूल जाने से पहले २५% बच्चे नाश्ता नहीं करते – सुबह उन्हें भूख नहीं लगती, ३०% बच्चे सुबह ग्रावश्यक मात्रा से ग्राधे से भी कम खाना खाते हैं; २३% बच्चे पौष्टिक नाश्ते का केवल ग्राधा खाते हैं ग्रौर केवल २२% बच्चे उतना खाते हैं जितना ग्रावश्यक है। क्लास में कुछ घंटे बैठे रहने के बाद उन बच्चों को, जो नाश्ता करके नहीं ग्राए, चक्कर ग्राने लगते हैं, ग्रांतों में खिंचाव-सा होता है। बच्चे स्कूल से घर लौटते हैं, कई घंटों से उन्होंने कुछ खाया नहीं, पर फिर भी उन्हें ग्रच्छी भूख नहीं लगी होती (माता-पिता ग्रक्सर शिकायत करते हैं कि बच्चे सादा, पौष्टिक खाना नहीं खाना चाहते, कोई मज़ेदार चीज़ मांगते हैं)।

भूख न लगना स्वास्थ्य के लिए सबसे बड़ा ख़तरा है, बीमारियों, तकलीफ़ों का स्रोत है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि बच्चे कई घंटों तक क्लास में बैठे रहते हैं, सिर्फ़ बौद्धिक श्रम में ही लगे रहते हैं, ताज़ी हवा में तरह-तरह का काम नहीं किया जाता। कुल जमा यह ग्राक्सीजन की कमी का नतीजा होता है, क्योंकि बच्चा सारा दिन स्कूल में या घर पर कमरे के ग्रंदर रहता है, जहां कार्बन डाइ-ग्राक्साइड ज्यादा होती है। कई वर्षों के प्रेक्षणों से मैं एक ग्रौर चिंताजनक निष्कर्ष पर पहुंचा: देर तक बंद जगह में रहने से जहां कार्बन डाइ-ग्राक्साइड ज्यादा हो, पाचन-प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका ग्रदा करनेवाली ग्रंथियां रोग-ग्रस्त हो जाती हैं। यही नहीं, ये रोग लगातार बने रहते हैं ग्रौर फिर इनका कोई इलाज ही नहीं हो पाता। पाचन-प्रणाली के गंभीर रोगों का एक कारण यह भी है कि माता-पिता बच्चों की भूख जगाने के लिए उन्हें मज़ेदार चीज़ें, मिठाइयां ग्रादि देते हैं। बच्चों को ग्राक्सीजन की कमी का शिकार न होने देना, ताज़ी हवा में रहने की उनकी दिनचर्या का ध्यान रखना – स्वास्थ्य चिंता का यह एक महत्वपूर्ण पूर्वाधार है।

मैं माता-पिताओं को सलाह देता था कि वे बच्चों के लिए स्वादिष्ट और पौष्टिक खाना बनाएं, जाड़ों के लिए विटामिनों से समृद्ध फल तैयार कर रखें। उन दिनों स्कूल में मधुमक्खियों के कुछ छत्ते थे, सो जाड़ों में हम बच्चों को स्कूल के भोजनालय में शहद देते थे।

बच्चे दिन में ज़्यादा समय खुली हवा में बिताते थे, ख़ूब चलते-फिरते थे, शारीरिक श्रम करते थे और स्कूल से लौटते ही किताबें लेकर नहीं बैठ जाते थे – इस सब के फलस्वरूप उन्हें अच्छी भूख लगने लगी। सुबह सब बच्चे पूरा नाश्ता करते थे; घर से जाने के तीन घंटे बाद (पढ़ाई शुरू होने के कोई ढाई घंटे बाद) वे स्कूल के भोजनालय में खाना खाते थे: यहां उन्हें गरम सूप, कटलेट, एक गिलास दूध और डबलरोटी व मक्खन मिलता था। स्कूल से लौटकर (स्कूल के खाने के कोई तीन-साढ़े तीन घंटे बाद) वे घर पर खाना खाते थे।

दिन का दूसरा हिस्सा वे घर पर या स्कूल में खुली जगह पर बिताते थे। सिर्फ़ जब बारिश हो रही होती या बर्फ़ीली आंधी चल रही होती, तब वे घर के अंदर रहते थे।

बच्चे के संतुलित विकास में सब कुछ परस्पर संबंधित है। स्वास्थ्य इस बात पर भी निर्भर होता है कि बच्चे को घर पर करने के लिए कैसा काम दिया जाता है और वह उसे कैसे करता है। घर पर स्वावलंबी बौद्धिक श्रम का भावनात्मक पहलू बहुत माने रखता है। अगर बच्चा अनिच्छापूर्वक किताब हाथ में लेता है, तो इससे न केवल उसकी आत्मिक शक्ति कुंठित होती है, बल्कि शरीर के आंतरिक अवयवों के परस्पर संबंधों की जटिल प्रणाली पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। मैंने कई ऐसे मामले देखे हैं, जब बच्चे को पढ़ाई-लिखाई से नफ़रत होने की वजह से उसकी पाचन प्रणाली बिगड़ गई, पेट की बीमारी हो गई।

शरद, जाड़ों और वसंत की छुट्टियां हम सदा खुली हवा में, प्रकृति के आंचल में बिताते थे। हम जंगल में घूमने जाते, वहां कैंप लगाते और खेलते थे। पहले जाड़े की छुट्टियों में ही सब बच्चे स्कीइंग करने लगे। "ख़ुशियों के स्कूल" के दिनों की ही भांति हमने हिम-नगरी बनाई, बर्फ़ की चकफेरी बनाई। जब बच्चे पायोनियर बने, तो वे जंगल में अपनी टोली की दिलचस्प रैलियां करने लगे।

जाड़ों में ताज़ी हवा में श्रम हमारे लिए स्वास्थ्य का बड़ा महत्वपूर्ण स्रोत था। पाला तेज़ न होने पर (शून्य से दस डिग्री सेंटीग्रेड नीचे तक)

८ साल के बच्चे हफ़्ते में एक बार दो घंटे, ९–१० साल के बच्चे तीन घंटे और ११ साल के बच्चे चार घंटे काम करते थे। बच्चे पेड़ों के तनों पर सरकंडे बांधते थे, उन्हें पाले से बचाने के लिए हिम ला-लाकर उनके चारों ओर उसका ढेर लगाते थे। ताज़ी हवा में यह श्रम शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाने और सर्दी लगने से होनेवाले रोगों से बचने का सबसे अच्छा साधन है।

गर्मियों की छुट्टियों में बच्चे पैदल यात्राओं पर जाते थे, जंगल में, खेतों-मैदानों में घूमते थे। प्रकृति के संसर्ग में बिताए ये दिन बच्चों के स्वास्थ्य और बौद्धिक विकास के लिए बहुत उपयोगी होते थे। पहली कक्षा के पश्चात अगस्त के महीने में बच्चे सामूहिक फ़ार्म के फलों के बाग़ और मधु-वाटिका में रहे। दूसरी कक्षा के बाद ख़रबूज़ों-तरबूज़ों के खेतों अर्थात् पालेज़ पर।

हमारे यहां अगस्त वह महीना है, जब प्रकृति दोनों हाथों से अपनी संपदा लुटाती है। इस समय प्रकृति का सौंदर्य अपने निखार के शिखर पर होता है। यह श्रम की विजय का मास है, इन दिनों हवा बिल्कुल निर्मल और पार-दर्शी होती है, कटे गेहूं, पकते हुए ख़रबूज़ों, सेबों और अंगूर की सुगंध लिए हवा अत्यंत स्फूर्तिदायक होती है। ग्रीष्म और शरद ऋतुओं के संगम पर ग्रामीण क्षेत्र में वायु में रोगाणुनाशक तत्वों की बहुतायत होती है। अगर कोई बच्चा सहज ही ठंड से होनेवाली तकलीफ़ों या वात रोगों का शिकार हो जाता है, उसे ऐसे दिनों में चौबीसों घंटे ताज़ी हवा में रखिए, फिर कभी बीमारी उसके पास तक न फटकेगी।

एक बार बच्चों ने सारा दिन फ़ार्म के पालेज़ पर बिताया। वहां उन्होंने ख़ूब सारे ख़रबूज़े, तरबूज़ खाए। उदास मन से बच्चे वहां से चले। उसी दिन शाम को फ़ार्म के अध्यक्ष ने आदेश दिया कि पालेज़ पर टहनियों और फूस की चार नई झोंपड़ियां बना दी जाएं। ऐसी झोंपड़ियों में इन खेतों के रखवाले सारी गर्मियां रहते हैं। एक दिन बाद ही झोंपड़ियां तैयार हो गई थीं। जब मैंने बच्चों से कहा कि हम पालेज़ पर आराम करेंगे, तो उन्हें विश्वास नहीं हुआ: "क्या हमें वहां रहने देंगे?"

झोंपड़ियां देखकर ही उन्हें विश्वास हुआ। मैंने बच्चों को बताया कि हम रात को भी यहीं रहेंगे। यह सुनकर तो बच्चे ख़ुशी से नाचने ही लगे। झोंपड़ियों के अंदर घास-फूस बिछा दिया, जिससे भीनी-भीनी महक आ रही थी। हम चादरें और कम्बल ले आए, बाहर हाथ-मुंह धोने

का इंतज़ाम कर दिया गया, माता-पिताओं ने रसोई बना दी और बच्चों के लिए खाने का प्रबंध कर दिया। दो झोंपड़ियों में लड़के रहने लगे और दो में लड़कियां। पालेज़ पर बिताया यह मास जीवन भर के लिए बच्चों की स्मृति में नीले आकाश और खिली धूप के मनोहारी गीत के रूप में अंकित हो गया।

हम सुबह तड़के उठते थे, नींद से जागती प्रकृति के अनुपम सौंदर्य का रसपान करते थे, ओस पर चलते थे और चश्मे के ठंडे पानी में हाथ-मुंह धोते थे। यह पानी लकड़ी के ड्रमों में भरकर यहां लाया जाता था। यहां हर बात में बच्चों को आनंद मिलता था : सुबह की कसरत और ठंडे पानी से हाथ-पैर और धड़ धोने में भी और टमाटरों के साथ उबले आलू और तरबूज़ खाने में भी। नाश्ते के बाद हम काम करते थे : ख़रबूज़े और तरबूज़ तोड़ने में फ़ार्म के किसानों का हाथ बंटाते थे।

कभी-कभी शहर के बच्चे और उनके माता-पिता हमारे यहां आते थे। हम उन्हें बड़े गर्व से पालेज़ दिखाते थे। तरबूज़ और ख़रबूज़े खिलाते थे। पालेज़ के पास ही एक बहुत बड़े मैदान में ऐसी बूटियां उगाई गई थीं, जिनके फूलों से मधुमक्खियां शहद बटोरती हैं। अगस्त में फ़ार्म की मधु-वाटिका से छत्तों को यहां लाया जाता है। हम हर रोज़ आन्द्रेई दादा के पास जाते थे, उनके लिए तरबूज़, ख़रबूज़े और गरम-गरम खाना लेकर जाते थे, जो बावर्चिन पाशा मौसी बच्चों के लिए बनाती थीं। आन्द्रेई दादा ने हमारी क्लास को मधुमक्खियों का एक छत्ता दिया। "लो, इसे अपने स्कूल के बाग में रखना," उन्होंने कहा। बच्चे बड़े कौतूहल से मधु-मक्खियों के जीवन का प्रेक्षण करते थे।

बच्चे रोज़ाना तालाब में नहाते थे, जंगल में घूमने जाते थे, फूल इकट्ठे करते थे और आन्द्रेई दादा व पाशा मौसी को लाकर देते थे। दोपहर को जब धूप तेज़ होती थी, बच्चे झोंपड़ियों में सोने चले जाते थे। झोंपड़ियों की दीवारों में हम कुछ "खिड़कियां" खोल देते थे और उन पर ऐसे घास-पात डाल देते थे, जिनकी गंध मच्छर-मक्खियां नहीं सह सकते। बाहर गर्मी होती थी और झोंपड़ियों के अंदर ठंडक। हमारी झोंपड़ियों में हवा आर-पार आती-जाती थी। आम तौर पर लोग डरते हैं कि बंद जगह में अगर ऐसे आर-पार की हवा होगी, तो सर्दी लग सकती है। हमारा अनुभव यह बताता है कि अगर बचपन से ही इसकी आदत डाली जाए, तो फिर उन्हें सर्दी लगने का कोई ख़तरा नहीं। बच्चों को बंद जगह की उमस के

प्रति असहनशील बनाना भी मेरे विचार में उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि उन्हें साफ़-सुथरा रहने की आदत सिखाना।

जब गर्मी कम हो जाती, तो बच्चे काम करने जाते थे। अक्सर तीसरे पहर में ही पालेज़ से ख़रबूज़े, तरबूज़ ले जाने के लिए गाड़ियां आती थीं। जब सूरज डूब जाता और खेत-मैदान, टीले सब नीले-नीले धुंधलके में डूबने लगते और आसमान पर एक के बाद एक तारे निकलने लगते, तब हम सब किसी एक झोंपड़ी के पास इकट्ठे होते। रात्रि और संध्या की इस मिलन वेला में अजीबोग़रीब यात्राओं और वीरतापूर्ण कारनामों की कहानियां सुनने को ख़ास तौर पर जी चाहता है। मैं बच्चों को जलपरियों और चुड़ैलों की लोक-कथाएं सुनता था। शरद-सुंदरी की कहानी भी मैंने उन्हें सुनाई। कहते हैं कि अगस्त की शांत रातों में यह सुंदरी खेतों-खलियानों, बाग़-बग़ीचों में घूमती हुई उन्हें समृद्धि का वरदान देती है।

रात्रि की निस्तब्धता में हमने कई बार एक आश्चर्यजनक धुन सुनी: खेतों पर, जहां हाल ही में गेहूं की फ़सल काटी गई थी, मधुर स्वर गूंज उठता था, जो बांसुरी के गीत-सा लगता था। प्रत्यक्षतः, यह किसी निशाचर पक्षी का गीत था, किंतु बच्चों की कल्पना ने एक भले जीव की रचना की। उनकी कल्पना में यह एक छोटी-सी बालिका थी, जिसके सिर पर गेहूं की बालियों का मुकुट है। वह बांसुरी बजाकर, लोगों को ख़ुश करती है। बच्चों ने उसका नाम रखा सूरजबाली। उनकी कल्पना में सूरजबाली सूरज और उर्वरा धरती की संतान थी। जहां गेहूं में बालियां आती हैं, वहीं सूरजबाली का जन्म होता है। जब फ़सल काटी जाती है, तो सूरजबाली महकते पुआल के ढेर में छिप जाती है। सांझ ढलने पर वह हर्षमय और साथ ही उदासी भरा गीत गाती है: जाड़ा आ रहा है, सूरजबाली को धरती माता की गोद में शरण लेनी होगी, जहां उर्वरता का जीवनदायी रस निद्रामग्न है। वसंत आएगा, तो यह रस जागेगा पेड़-पौधों में, बीजों में प्राणों का संचार करेगा, खेत हरे-भरे हो जाएंगे और फिर सूरजबाली धरती के गर्भ से निकल आएगी, अपने अनूठे गीत गाएगी।

किसी को यह लग सकता है कि बच्चों में निर्जीव वस्तुओं को सजीव करने की प्रवृत्ति आवश्यकता से अधिक ही है और यह उन्हें जीवन की वास्तविकता से दूर ले जा सकती है। मैं हज़ार बार कहूंगा कि नहीं, ऐसा नहीं है। जीवन, उर्वरता और मनुष्य की ये कहानियां प्रेरणा का सशक्त स्रोत हैं। बच्चों की कल्पना में यह जीवन, सौंदर्य, उर्वरता और

समृद्धि का मूर्तरूप था। उसके बिंब से प्रेरित होकर उन्होंने सूरजबाली के बारे में एक गीत रचा। यह है वह सीधा-सरल गीत :

सूरज ने धरती जगाई,
गेहूं की बाली भर आई।
कौन बजाता बांसुरी?
सूरजबाली, सूरजबाली।
हरे शूक की घनी भौंहें
और बरौनियां मस्तानी;
पहनावा बालियों का
पहने है जादू की रानी।

बच्चे जब कथा-कहानियों के बिंबों के प्रभाव में होते हैं, तो आश्चर्य-जनक बात घटती है : वह शब्द, जिसे उन्होंने कभी सुना या पढ़ा था, उनकी चेतना के किसी कोने में जाग उठता है, शोख़ रंगों से चमचमाता है—और बच्चा काव्यमय बिंबों का सृजन करता है।

पाठक पूछ सकते हैं : बात तो स्वास्थ्य की हो रही थी और बीच में यह कहानियों, कल्पनाजनित बिंबों और बच्चों के सृजनात्मक कार्य की चर्चा क्यों आ गई? क्योंकि यह सब बच्चों की ख़ुशी है और ख़ुशी के बिना स्वस्थ शरीर और स्वस्थ आत्मा का तारतम्य नहीं हो सकता। अगर बच्चा खेतों की छवि से, तारों की आंख-मिचौनी से, टिड्डों के अनवरत गीत और फूलों की सुरभि से मंत्रमुग्ध होकर गीत रचता है, तो इसका अर्थ यह है कि वह शरीर और आत्मा के इस तारतम्य के शिखर पर है। मनुष्य के स्वास्थ्य की, और वह भी बच्चों के स्वास्थ्य की चिंता का अर्थ केवल साफ़-सुथरा रहने के, दिनचर्या, आहार, श्रम और विश्राम के नि-यमों का पालन करने की आदत डलवाना ही नहीं है। यह तो सर्वप्रथम शारीरिक और आत्मिक शक्तियों के तारतम्य की चिंता है और इस तारतम्य का चरम शिखर है सृजन का हर्ष।

तीसरी कक्षा के बाद भी हमने गर्मियों की छुट्टियां पालेज़ पर बिताई। इस बार हमारी झोंपड़ियां अंगूर-वाटिका के पास थीं। बच्चे यहां भी बड़ों की मदद करते थे : अंगूरों के गुच्छे टोकरियों में लगाते थे। सांझ को बच्चे तालाब में नहाते थे। यहां बच्चों को एक दिलचस्प खेल सूझा : तीन नावें

उनकी कल्पना में ह्वेलमार बेड़ा बन गई, तालाब महासागर हो गया, हम अपने बेड़े पर ह्वेलों की खोज में निकलते थे।... यहां हमने बांसुरियां बनाईं; शाम को हमारी संगीत मंडली लगती थी। हम लोक-गीतों की धुनें बजाते थे। बच्चे ख़ुद भी संगीत रचते थे: ग्रीष्म संध्याओं, बादलों का गर्जन और लोहित गगनमंडल के बारे में, दूर देशों से आनेवाले पक्षियों के बारे में और झील पर बने बांध के पास पानी में पड़नेवाले रहस्यमयी भंवर के बारे में। दिन-पर-दिन संगीत बच्चों के आत्मिक जीवन में अधिकाधिक गहरा स्थान बनता जा रहा था। बच्चे जहां कहीं भी आराम करते थे, हर जगह वे टेप-रिकार्डर पर महान संगीतकारों की रचनाएं और लोक-गीत सुनते थे।

पढ़ाई का चौथा साल ख़त्म हुआ। १९५६ की गर्मियां आईं। इस बार हमने अपनी क्लास का कैम्प चरागाह में बलूत उपवन के पास, झील के तट पर लगाया। टहनियों से झोंपड़ियां बनाईं और उन्हें फूस से छा दिया। माता-पिताओं ने रसोई और गुसलख़ाना बना दिया। अब बच्चे खाना बनाने में बावर्ची का हाथ बंटाते थे, वे रोटी, आलू, मछली, दूध, सब्ज़ियां वग़ैरह लाने गांव जाते थे। हमें २० बछड़े और २ घोड़े सौंपे गए थे। दिन को बच्चे बछड़ों को चराते थे, शाम को उन्हें झील के तट पर बने छोटे-से बाड़े में हांक देते थे। सब बच्चों ने घुड़सवारी सीख ली और वे बारी-बारी से खाने-पीने का सामान लाने गांव जाते थे। बारी का पक्का ध्यान रखा जाता था, क्योंकि हर कोई घोड़े की सवारी करना चाहता था। मुझे यह देखकर बहुत ख़ुशी थी कि वोलोद्या, सान्या और तीना अच्छी घुड़सवारी कर लेते थे, इससे उनका स्वास्थ्य सुदृढ़ हुआ।

इसी वर्ष गहरी झील में नहाते हुए सब बच्चे अच्छी तरह तैरना सीख गए। नहाने के लिए मैंने एक ऐसी जगह ढूंढ़ी थी, जहां कोई ख़तरा नहीं था, यहां सब बच्चे नहाते थे और मैं बारी-बारी से एक-एक बच्चे को लेकर तैरने निकलता था।

गर्मियों के वे दिन, जब जाड़ों के लिए घास काटकर रखी जाती है, बच्चों के लिए विशेषतः हर्षमय थे। हम घास सुखाने और उसके गांज बनाने में बड़ों की मदद करते थे, और शाम को ऊंचे-से गांज पर चढ़ बैठते थे। इन घड़ियों में बच्चों के लिए विशेष आकर्षण था: वे तारों की, दूसरे ब्रह्मांडों की कहानियां सुनना चाहते थे। तारामंडल को देखते हुए बच्चे पूछते थे: "ये तारे, सूरज, पृथ्वी यह सब कहां से आया?" मैंने पाया कि बच्चों

के मन में ऐसे प्रश्न तब उठते हैं, जब वे प्रकृति के सौंदर्य और भव्यता से विस्मय-विमुग्ध हो उठते हैं।

मैं वह शाम कभी नहीं भूलूंगा, जब तारों की कहानी सुनने के बाद बच्चों ने पूछा था: "तारों के आगे क्या है?" यह सुनकर कि तारों के आगे भी तारे हैं, असंख्य ब्रह्मांड हैं, बच्चे स्तब्ध रह गए: "तो फिर संसार का अंत कहां है?" उनके लिए यह समझ पाना अत्यंत कठिन था कि संसार का कोई आदि-अंत नहीं है। मुझे याद है कैसे वे संसार की असीमता पर स्तब्ध होकर चुप हो गए थे, वे असीमता की कल्पना करने की कोशिश कर रहे थे, परंतु कर नहीं पा रहे थे। उस रात को बच्चे देर तक सो नहीं सके; कइयों ने दूर-दराज़ के सूर्यों और ग्रहों के सपने देखे होंगे। अगले दिन कई बार उनका मस्तिष्क इस प्रश्न में उलझा कि यह असीमता, अनंतता क्या है? स्कूल के सभी वर्षों में मेरे छात्रों के लिए यह प्रश्न सदा एक नवीन और रहस्यमय प्रश्न बना रहा।

..."ख़ुशियों के स्कूल" के पहले दिनों से ही मैं बच्चों की क्रीड़ाओं को बहुत महत्व देता था। बड़ी कक्षाओं के छात्रों की सहायता से हमने खेलकूद का मैदान तैयार किया, झूले लगाए। हमारे पास फ़ुटबाल, वालीबाल खेलने के लिए सदा काफ़ी गेंदें होती थीं, दूसरी कक्षा में ही बच्चे टेबल-टेनिस खेलने लगे। बहुत-से बच्चों को चक्का और गेंद फेंकने, बांस और रस्से पर चढ़ने के खेल पसंद थे।

सारी गर्मियां बच्चे नंगे पैर घूमते थे, बारिश से नहीं डरते थे। मैं इसे शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाने का एक सबसे महत्वपूर्ण साधन समझता था। पहली और दूसरी कक्षाओं में केवल तीन बच्चों को सर्दी लगी, तीसरी-चौथी में किसी को भी नहीं।

तरह-तरह के ज़ुकामों के प्रति रोधक्षमता विकसित करने को मैं बहुत महत्वपूर्ण समझता था। कई बरसों से मुझे यह मुसीबत चैन नहीं लेने दे रही थी: जैसे ही मौसम तेज़ी से बदलता, आधे बच्चे छींकने लगते थे। बच्चे को अगर बुख़ार न हो, तो भी वह ऐसी हालत में ठीक तरह से काम नहीं कर सकता। ज़ुकाम का कोई इलाज तो है नहीं। चिकित्साविज्ञानी यह सिद्ध कर चुके हैं कि ज़ुकाम की बहुत-सी क़िस्में संक्रामक नहीं हैं, बल्कि यह पर्यावरण में परिवर्तन पर संवेदनशील शरीर की प्रतिक्रिया है। कई साल का अनुभव यह बताता है कि पैर विशेषतः संवेदनशील होते हैं। अगर कोई व्यक्ति पैरों के ज़रा-से भी ठंडा होने से डरता है, तो उसे अक्सर

असंक्रामक जुकाम होता है। हम शरीर के सुदृढ़ीकरण का काम पैरों से ही शुरू करते थे; बेशक ऐसा करते हुए शरीर की सामान्य अवस्था को भी ध्यान में रखा जाता था। पैरों को मज़बूत और रोधक्षम बनाने के लिए निश्चित अवधि के लिए निर्धारित कोई विशेष अभ्यास नहीं है। आम दिनचर्या का पालन करना, बच्चों की ज़रूरत से ज़्यादा रक्षा न करना, उन्हें ऐसे वातावरण में न रखना कि शरीर की रोधक्षमता कम हो जाए— यही सबसे बड़ी बात है। अगर बच्चा गर्मियों में नंगे पैर नहीं घूमता, तो नहलाना और गीले तौलिये से बदन रगड़ना यह सब किसी काम न आएगा।

...सो, बच्चों ने प्राथमिक विद्यालय की पढ़ाई पूरी कर ली थी। गर्मियों की छुट्टियों का आख़िरी दिन था। झील में नहाने के बाद वे सब हरे-भरे मैदान में इकट्ठे हुए थे—हृष्ट-पुष्ट और सुंदर। वे सब ११ साल के थे, पर देखने में १२-१३ साल के लगते थे। नन्हे दान्को को बहुत दिनों तक सब मुन्ना कहते रहे थे, अब उसका क़द भी पांचवीं के बच्चों जितना था।

साल में कुछ बार बच्चों की नज़र, हृदय और फेफड़ों की डाक्टरी जांच होती थी। पहली कक्षा में चार बच्चों की नज़र कमज़ोर थी, दूसरी में दो की और तीसरी में किसी की भी नहीं। जीवन से इस बात की पुष्टि हुई थी कि नज़र कमज़ोर पड़ना आंखों का रोग नहीं है, बल्कि इस बात का परिणाम है कि बच्चे के शारीरिक और आत्मिक विकास में सामंजस्य नहीं है। पहले दो बरसों में डाक्टरी जांच-पड़ताल से यह पता चला था कि ३ बच्चों में हृद-वाहिका-तंत्र की कमज़ोरी के लक्षण हैं, दो बच्चों में प्लूराइटिस के अवशेष, दो बच्चों में श्वासनली शोथ (ब्रांकाइटिस) के लक्षण दिखे थे और एक बच्चे में क्षय रोग के गुप्त रूप का शक हुआ था। चौथी कक्षा के अंत में केवल एक बच्चे में हृद-वाहिका-तंत्र की कमज़ोरी के लक्षण दिखे थे और वे भी पढ़ाई के पहले दो सालों की अपेक्षा कहीं अधिक क्षीण थे।

शिक्षा –
आत्मिक जीवन का
एक अंश

यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि स्कूल से पहले बच्चे के चारों ओर प्रकृति, खेलों, सौंदर्य, संगीत, कल्पना और सृजन का जो आश्चर्यजनक संसार होता है, वह क्लास के दरवाज़े के बाहर ही न रह जाए। स्कूल के पहले महीनों और वर्षों में शिक्षा को ही बच्चों का एकमात्र कार्यकलाप नहीं होना चाहिए। बच्चे को स्कूल तभी अच्छा लगेगा, जबकि शिक्षक उसे वही ख़ुशियां प्रदान करेगा, जो उसके पास पहले थीं। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि शिक्षा को बच्चे की ख़ुशियों के अनुकूल ढाला जाए, जान-बूझकर सरल किया जाए, ताकि बच्चा बोर न हो। बच्चे को धीरे-धीरे मानव जीवन के सबसे बड़े कार्य – डटकर, गंभीरतापूर्वक श्रम करने के लिए तैयार करना चाहिए, और ऐसा श्रम मस्तिष्क पर ज़ोर डाले बिना नहीं हो सकता।

बच्चों को धीरे-धीरे तन्मय होकर सृजनात्मक बौद्धिक श्रम करने की आदत डालना मेरे विचार में शिक्षण का एक अत्यंत महत्वपूर्ण कार्यभार है। बच्चे को यह सिखाना चाहिए कि वह बौद्धिक श्रम करते हुए चारों ओर से ध्यान हटा सके और एकाग्र होकर अपने सारे बौद्धिक प्रयास निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति में लगा सके। मेरी चेष्टा यही थी कि बच्चे ऐसी एकाग्रचित्तता के अभ्यस्त हो जाएं। ऐसा होने पर ही बौद्धिक श्रम उनके लिए प्रिय कार्य होगा।

प्राथमिक विद्यालय का कार्यभार है बच्चों को न केवल शारीरिक, बल्कि बौद्धिक श्रम में भी धीरे-धीरे कठिनाइयों पर विजय पाना सिखाना। बच्चों को बौद्धिक श्रम के सार को समझना चाहिए, जो इस बात में है कि वस्तुओं, तथ्यों, परिघटनाओं की विविधतम जटिलताओं और बारीकियों में, ब्योरों और अंतर्विरोधों में पैठने, उन्हें समझने के लिए दिमाग़ पर ज़ोर डाला जाए। ऐसा कभी भी नहीं होने देना चाहिए कि छात्रों के लिए सब कुछ बाएं हाथ के खेल जैसा हो, उन्हें पता ही न हो कि कठिनाई क्या होती है। ज्ञान-प्राप्ति के साथ-साथ बच्चों में बौद्धिक श्रम का तौर-तरीक़ा, उसकी संस्कृति और आत्मानुशासन की चेतना विकसित होती है। बौद्धिक शिक्षा आत्मिक जीवन का एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें शिक्षक

का प्रभाव छात्र की आत्मशिक्षा के साथ पूरी तरह से मिला होता है। इच्छा-बल का विकास उस क्षण से आरंभ होता है, जब बच्चा स्वयं अपने लिए कोई लक्ष्य निर्धारित करता है, बौद्धिक शक्ति को इस लक्ष्य की पूर्ति पर केंद्रित करता है, अपने कार्यों को समझता है और स्वयं अपने पर नियंत्रण रखता है। बच्चे बौद्धिक श्रम में ही यह जान पाएं कि कठिनाई क्या होती है–यह भी मेरे विचार में शिक्षा का एक महत्वपूर्ण कार्यभार है।

अगर बच्चे को पढ़ाई में किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता, सब कुछ उसे आसानी से ही आ जाता है, तो इससे धीरे-धीरे उसमें बौद्धिक आलस्य विकसित होता जाता है, जो इन्सान को बिगाड़ देता है, वह ज़िंदगी को खेल समझने लगता है। बात तो अजीब है, पर यह बौद्धिक आलस्य ज्यादातर होशियार बच्चों में ही विकसित होता है। और ऐसा तब होता है, जब पढ़ाई में उन्हें ऐसी कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता। ज्यादातर छोटी कक्षाओं में ही यह दिमाग़ी आलस पैदा होता है, जब होशियार बच्चा वह सब आसानी से ही सीख लेता है, जिसके लिए दूसरे बच्चों को दिमाग़ लड़ाना पड़ता है और फिर वस्तुतः निठल्ला बैठा रहता है। बच्चों को निठल्ला न रहने देना भी अध्यापक के लिए एक बहुत बड़ा काम है।

हमारी पहली कक्षा एक छोटी-सी इमारत में लगती थी। हमारा कमरा काफ़ी बड़ा और रोशनदार था, उसकी खिड़कियां पूर्व और दक्षिण की ओर खुलती थीं। खिड़कियों के सामने हेज़लनट की झाड़ियां, उनके पीछे सेब, बबूगोशे, ख़ूबानियों के पेड़ थे और उनसे आगे बलूत उपवन। हमारी इमारत ही नहीं, बल्कि स्कूल की दूसरी इमारतें भी हरियाली से घिरी हुई थीं। पेड़ों की पत्तियां ख़ूब आक्सीजन देती थीं। स्कूल के अहाते में सदा शांति रहती थी। हमारी कक्षा के बाहर बड़ा-सा गलियारा था और उसके दूसरे सिरे पर एक और कमरा था। यहां हम कथा-कहानियों का कमरा बनाना चाहते थे।

हमारी इमारत के ओसारे के सामने छोटा-सा पक्का आंगन था। आंगन से चारों ओर को पगडंडियां जाती थीं, जिनके दोनों ओर आड़ू के और लिंडन तथा चेस्टनट के पेड़ लगे हुए थे। एक पगडंडी बड़ी अंगूर-वाटिका को जाती थी, जो स्कूल के अहाते के बीचोंबीच स्थित थी, दूसरी हमारे सबसे पासवाली इमारत को, जहां पांचवीं की दो क्लासें लगती थीं, तीसरी

हरे-भरे मैदानों और उपवनों को तथा चौथी झाड़ियों से भरे खड्ड को जाती थी।

मैं तब भी यही सोचता था कि पहली और दूसरी कक्षाओं के पाठ अलग इमारत में होने चाहिए। इन कक्षाओं में, ख़ास तौर पर पहली में, बच्चों की पढ़ाई, श्रम और विश्राम की विशेष दिनचर्या होती है। जहां बहुत सारे बच्चे हों, वहां पर जो शोर-गुल और हंगामा होता है, वह छोटे बच्चों के लिए बिल्कुल अवांछनीय है। चहुंमुखी बौद्धिक विकास के लिए शांतिमय वातावरण बहुत आवश्यक है, बच्चों को यथासंभव अधिक समय तक ऐसे वातावरण में रहने दीजिए। बरसों के प्रेक्षणों से इस बात की पुष्टि हुई है कि स्कूली जीवन के पहले दिनों में बच्चा अपने को जिस वातावरण में पाता है, उससे वह सकपका जाता है। बच्चे बौद्धिक श्रम से इतना नहीं थकते जितना कि पाठों के पहले और पाठों के बीच छुट्टियों में होनेवाले शोर-गुल और हंगामे के कारण उत्पन्न उत्तेजना से। पांच साल तक मैंने आधी छुट्टी के बाद पहली कक्षा के बच्चों के व्यवहार का प्रेक्षण किया। आधे घंटे तक बच्चे स्कूल के विशाल बाल-समुदाय में हो-हल्ले, धक्का-मुक्की, शोर-शराबे के वातावरण में रहते हैं। आधी छुट्टी ख़त्म होती है, बच्चे अपनी क्लास में जाते हैं, और वहां अनुभवी शिक्षक उन्हें शांत करने में, उनकी उत्तेजना कम करने में दस मिनट लगाते हैं। जहां पर पहली कक्षा के छात्र अलग से अपने छोटे-से समुदाय में आराम करते थे, वहां पर बच्चों को शांत करने में दो मिनट से ज़्यादा नहीं लगते थे।

अनियंत्रित शोर-गुल और भाग-दौड़ स्कूल के अच्छे लक्षण नहीं हैं। बच्चों की ख़ुशियों की नदी कितनी भी भरी-पूरी क्यों न हो, उसके अपने किनारे होने चाहिए, जो उनकी इच्छाओं और आवेगों को नियंत्रित करें।

आजकल हमारे स्कूल में पहली और दूसरी कक्षा की पढ़ाई एक छोटे-से मकान में होती है, जो हरियाली से घिरा हुआ है। बच्चों के लिए ऐसा वातावरण बनाया गया है कि वे बारी-बारी से काम और आराम कर सकें।

पहले हफ़्तों में मैंने बच्चों को धीरे-धीरे नए जीवन का आदी बनाया। फ़िलहाल उनकी शिक्षा "ख़ुशियों के स्कूल" से कोई ख़ास भिन्न नहीं थी, और यही मेरी कोशिश भी थी। सितंबर में हम ४० मिनट से ज्यादा क्लास में नहीं बैठते थे और अक्तूबर में ज़्यादा से ज़्यादा २ घंटे। यह हमारा लिखाई और अंकगणित के पाठों का समय होता था। बाकी २ घंटे हम ताज़ी हवा में बिताते थे। बच्चे बड़ी उत्सुकता से **असली पाठ** का इंतज़ार करते

थे। क्लास में पढ़ाई को ही वे असली पाठ कहते थे। मुझे उनकी इस इच्छा पर ख़ुशी होती थी और साथ ही ख़याल आता था : "बच्चो, तुम्हें क्या पता कि तुम्हारे हमउम्र उमसभरी क्लास में बैठे-बैठे कितनी उतावली से छुट्टी की घंटी का इंतज़ार करते हैं..."

क्लास में पढ़ाई के लिए बच्चों को धीरे-धीरे तैयार करना उनकी सर्वांगीण नैतिक, शारीरिक, बौद्धिक और श्रम-शिक्षा का आवश्यक पूर्वाधार है। इसका अंतिम ध्येय है इन्सान को विभिन्न परिस्थितियों में काम करने के लिए तैयार करना। क्लास में पाठ कोई मजबूरी नहीं, जिसे चाहो न चाहो, मानना पड़ता है। उलटे, इन पाठों में ही बौद्धिक श्रम के लिए सबसे अनुकूल वातावरण होता है, परंतु इसके लिए बच्चों को धीरे-धीरे तैयार करना चाहिए – यही छोटी कक्षाओं के बच्चों के पाठों की विशिष्टता है। अगर बच्चे को एकदम ही रोज़ाना चार घंटे क्लास में काम करने पर विवश किया जाए, तो वह वातावरण, जो भविष्य में बौद्धिक श्रम के लिए अनुकूल होता, अब स्वास्थ्य के लिए हानिकर होगा।

क्लास में हम 'अक्षरमाला' पढ़ते थे, अक्षर लिखते थे और अंकगणित के सवाल बनाकर उन्हें हल करते थे – यह सब धीरे-धीरे बच्चों के बहुमुखी आत्मिक जीवन में अपना स्थान बना रहा था और उन्हें अपनी एकरसता से थकाता नहीं था। हमें 'अक्षरमाला' में एक ही पाठ को बार-बार नहीं पढ़ना पड़ता था – सब बच्चों को अक्षरों की पहचान तो थी ही, उन्हें अच्छी तरह पढ़ना सिखाने के लिए मैं तरह-तरह के सक्रिय अभ्यासों से काम लेता था। बच्चे प्रकृति के बारे में छोटी-छोटी रचनाएं सोचते और लिखते थे। किताब में बार-बार एक ही पाठ पढ़ने के बजाय इन अभ्यासों से बच्चों की पठन योग्यता कहीं अधिक विकसित होती थी।

मैं इस बात का ध्यान रखता था कि हर बच्चे में पठन-पाठन की योग्यता विकसित हो। अभ्यासों के बिना, पठन-पाठन की निश्चित मात्रा के बिना कुछ नहीं हो सकता। अक्षर पढ़ पाना, अक्षर जोड़कर शब्द पढ़ पाना ही काफ़ी नहीं है। पठन-पाठन वह "खिड़की" है, जिसमें से संसार दिखता है, यह शिक्षा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपकरण है। जब बच्चा तेज़ी से और धाराप्रवाह पढ़ सकेगा केवल तभी यह उपकरण इस्तेमाल के लिए तैयार होगा। मेरी चेष्टा यह थी कि तरह-तरह के सक्रिय कार्यकलापों – अभिव्यंजनात्मक पठन-पाठन, लिखाई और चित्रकारी – की सहायता से पढ़ने की प्रक्रिया "अर्द्धस्वचालित" हो जाए, ताकि बच्चे दूसरी कक्षा में ही

बड़े-बड़े शब्दों को भी एक नज़र से देखकर ही पढ़ लें। बच्चों से प्रकृति के बारे में छोटी-छोटी रचनाएं बनवाना और ऐसे कार्य में बच्चों की रुचि जगाना यह सब "शैक्षिक विधियां" ही थीं, जिनका लक्ष्य एक ही था – बच्चों को अच्छी तरह पढ़ना सिखा देना।

पाठों में बच्चों के श्रम में विविधता लाने को भी मैं ऐसी ही एक विधि समझता था। हमारा अनुभव यह बताता है कि पहली कक्षा के आरंभ में कोई भी पाठ किसी एक विषय का नहीं होना चाहिए। एकरसता से बच्चे बड़ी जल्दी थक जाते हैं। जैसे ही मैं देखता था कि बच्चे थक रहे हैं, मैं किसी नए काम में उन्हें लगाने की कोशिश करता था। पाठों में विविधता लाने का एक सबसे अच्छा रास्ता था चित्रकारी। मैं जब देखता कि बच्चे पढ़ते-पढ़ते थक गए हैं, तो कहता: "चलो, बच्चो, अब अपनी कापी और पेंसिलें निकालो। जो कहानी हम पढ़ रहे हैं, उसके चित्र बनाएंगे।" थकावट के पहले लक्षण तुरंत दूर हो जाते, बच्चों की आंखों में चमक आ जाती – एकरस कार्य का स्थान सृजनात्मक कार्य ले लेता। अंकगणित के पाठ में भी ऐसा ही होता था: जब मैं देखता कि बच्चों को स्वयं हल करने के लिए जो सवाल दिया गया है, वे उसे नहीं समझ पा रहे, तो यहां भी चित्रकारी उनकी मदद को आती। बच्चे बार-बार सवाल पढ़ते और उसका "चित्र" बनाते। अब तक सवाल की जो बातें उन्हें बिल्कुल समझ में नहीं आ रही थीं, वे अब एकदम स्पष्ट हो जातीं।... लगातार सुनते-सुनते भी बच्चे थक जाते हैं। जब मैं देखता कि बच्चों की नज़र धुंधली पड़ रही है, मैं कहानी वहीं पर ख़त्म कर देता और फिर हम चित्र बनाने लगते।

पढ़ाई शुरू होने के तीन हफ़्ते बाद ही मेरे छात्र प्रकृति के बारे में "चित्र-पुस्तकें" बनाने लगे। बड़ी कक्षाओं के छात्रों ने हर बच्चे के लिए मोटे काग़ज़ के बीस-बीस पन्नों की गत्ते की जिल्दवाली एक-एक कापी बना दी। जिल्द के साथ पेंसिल जोड़ दी। हफ़्ते में एक बार हम शब्दों और विचारों के स्रोत की यात्रा पर जाते थे और एक चित्र बनाते थे। यह बच्चों के चारों ओर के संसार की कहानी होती थी। पहली "यात्रा" पर हम फलों के बाग़ में गए, सेब के पेड़ के पास। उन दिनों वहां सेब पक रहे थे। बच्चों ने कहानियां बनाईं, जिनमें हर किसी के विचारों और भावनाओं का व्यक्तिगत जगत प्रतिबिंबित हुआ।

"सेब धरती पर झुक गए हैं", "सेब धूप सेंक रहे हैं", "हरी-

हरी पत्तियों में लाल-लाल सेब", "सूरज सेब को सहलाता है, डाली उसे झुलाती है", "वसंत में थे सफ़ेद-सफ़ेद फूल और शरद में बने सुनहरे सेब", "हम सेबों के घर गए"–बच्चों ने अपनी चित्र-पुस्तकों में लिखा। ये लघु रचनाएं बच्चों ने क्लास में पढ़ीं, जिससे उन्हें बड़ी ख़ुशी हुई। बाग़ में पढ़ाई अपने आप में अंतिम ध्येय नहीं थी। लघु रचनाएं रचवाना भविष्य में डटकर बौद्धिक श्रम करने के लिए बच्चों को तैयार करने का बहुत अच्छा साधन है। पहली कक्षा में ही और विशेषतः दूसरी कक्षा में मैं यह प्रयत्न करता था कि हर बच्चे को अपना अलग काम मिले और वह उसे अंत तक पूरा करे। यह बौद्धिक श्रम का अनुशासन विकसित करने के लिए नितांत आवश्यक है।

पढ़ाई के पहले साल में सभी चित्र-पुस्तिकाएं चित्र-रचनाओं से भर गईं। इनके विषय अनेक थे: पेड़ पर लटकते लाल-लाल बेरियों के गुच्छे; फ़सल की कटाई; सपनों में खोई झील (बच्चों ने शायद उसे "सपनों में खोई" इसलिए कहा कि जब भी हम झील पर गए उसका जल सदा दर्पण-सा लगता था, निर्मल और शांत); स्कूल के बाग़ में बच्चों का श्रम; सूर्यास्त के समय लाल आसमान; शरद ऋतु में पहला हल्का पाला; महान अक्तूबर क्रांति की वर्षगांठ का त्यौहार; हमारे गांव का जीवन; पहला हिमपात; जनवरी की बर्फ़ीली आंधियां; जादूगर हिम बाबा, जो नदियों और झीलों को जमा देता है; फ़रवरी में बर्फ़ का टपाटप पिघलना; मार्च में हिम पर पड़ती नीली परछाइयां; बर्फ़ के नीचे से निकला पहला फूल; गरम देशों से जल्दी ही लौट आई और मार्च की बर्फ़ीली आंधी में फंस गई मैनाएं; दूर देशों से आई चिड़ियों के ख़ुशियों भरे वसंती झुंड (**"ख़ुशियों भरे वसंती झुंड"**–बच्चों के ही शब्द हैं); मधुमक्खियां, जो शरद के अंतिम सुहावने दिनों में फूलों से विदाई ले रही हैं।

प्रकृति के बारे में ये चित्र-पुस्तकें एक तरह से हमारे बाल-समुदाय का "कविता संग्रह" थीं, जिसमें प्रकृति के रंगों की सूक्ष्मतम छटाएं, शब्द की सुरभि तथा धरती और आकाश का संगीत प्रतिबिंबित हुए थे। ये चित्र-रचनाएं बच्चों के लिए वह ख़ुशी थीं, जिसके बिना शिक्षा आत्मिक जीवन में स्थान नहीं पा सकती।

बच्चों द्वारा क्लास में बिताए गए समय को अगर पाठों (पीरियडों) में मापा जाए, तो पहले दो महीनों में हमारा रोज़ाना एक पाठ होता था, तीसरे-चौथे महीने में दो पाठ, पांचवें–छठे महीने में ढाई पाठ और सातवें

–आठवें महीने में तीन पाठ होते थे। पहले दो महीनों में हम क्लास में आधा घंटा पढ़ाई करने के बाद छुट्टी करते थे और फिर अगले महीनों में ४५ मिनट बाद छुट्टी करने लगे। अगर बच्चों को छुट्टी से पहले क्लास से बाहर जाना होता था, तो वे इजाज़त लेकर बाहर चले जाते थे। अगर वे देखते थे कि अध्यापक कुछ बता रहा है और उसे बीच में नहीं टोकना चाहिए, तो वे चुपके से बाहर चले जाते थे: अध्यापक देखता है कि बच्चे को बाहर जाना है, सो मौन अनुमति दे देता है। कुछ बच्चों के लिए इस दिनचर्या का आदी होना कठिन था, जिसे अधिकांश बच्चे सहज ही निभा लेते थे। तोल्या, कात्या, कोस्त्या और शूरा जल्दी ही थक जाते थे। उनके थकने का शायद सबसे बड़ा कारण यही था कि क्लास में बैठे हुए वे यह महसूस करते थे कि अब उनकी आज़ादी निश्चित दिनचर्या के कारण पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सीमित है। कहना न होगा कि बच्चों की सभी इच्छाएं पूरी करने की कोई ज़रूरत नहीं है; सभी छात्रों को धीरे-धीरे टिककर बैठना और गंभीरतापूर्वक श्रम करना सिखाना चाहिए, परंतु साथ ही एक ही झटके में बच्चों की इच्छाओं और आदतों को बदलने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। कुछ सप्ताह तक मैं इन बच्चों को क्लास से बाहर जाने देता रहा और उन्हें धीरे-धीरे टिककर काम करने की आदत डालता रहा। ३-४ महीने गुज़रते न गुज़रते सभी बच्चे स्कूल की दिनचर्या का सहज ही पालन करने लगे।

शरद के धुपहले दिनों में हम अपनी एक "हरी कक्षा" में पढ़ाई करते थे, जो सेब के ऊंचे-ऊंचे पेड़ों के बीच छोटे-से मैदान में थी। कुछ साल पहले हमने बड़े छात्रों के साथ मिलकर लोहे के सींख़चों और तारों से भावी "हरी कक्षा" का ढांचा बना दिया था और उसके चारों ओर बेलें लगा दी थीं। दो साल बाद हरा कमरा तैयार हो गया था–बेलें छत पर भी छा गई थीं। कुछ "खिड़कियों" की मदद से यहां रोशनी भी रहती थी। गरम दिनों में यहां शीतलता होती थी और शरद के दिनों में गरमाहट। बेलों की टहनियों से "खिड़कियां" बंद भी की जा सकती थीं और तब यहां हरा झुटपुटा छा जाता था, पत्तियों से छनकर आती धूप अजीबोग़रीब चित्र बनाती थी। बच्चे इसको "कहानियों के लिए खिड़कियां बंद करना" कहते थे। हरी कक्षा में छोटी-छोटी मेजें और स्टूल थे, यहां बच्चे लिखते, पढ़ते और सवाल हल करते थे।

दूसरी "हरी कक्षा" एक छोटा-सा हरा-भरा मैदान थी, जिसके

तीन ओर अंगूर की बेलें लगी हुई थीं। गरम दिनों में यहां ठंडक होती थी।

खड्ड के पास ही पेड़ों के घने कुंज में घास पर हमारी एक और "हरी कक्षा" थी। यहां पर हम कभी-कभी अंतिम पाठ के लिए आते थे, जब स्कूल नहीं लौटना होता था। पहले साल में हमारे लगभग ४०% पाठ "हरी कक्षाओं" में हुए। शेष ६०% पाठों में से अधिकांश "हरी प्रयोगशाला" और स्कूल के तापघर में हुए। "हरी प्रयोगशाला" एक अलग इमारत थी, जिसके चारों ओर पेड़ और अंगूर की बेलें थीं। यहां पर पढ़ाई के लिए कमरा था, जिसमें बहुत-से पौधे और फूल थे।

बच्चों के लिए यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण थी कि हमारे अधिकांश पाठ प्रकृति की गोद में, नीले आकाश तले, ताज़ी हवा में होते थे। पाठों के दौरान बच्चे अपने आप को चुस्त महसूस करते थे, वे कभी भी भारी सिर लिए स्कूल से नहीं लौटते थे।

पाठों के बाद बच्चे घर पर आराम करते थे। इस बात की कितनी भी कोशिश क्यों न की जाए कि पाठों में श्रम से थकावट न हो, तो भी बच्चा काफ़ी थक जाता है और पाठों के बाद उसे आराम करना चाहिए। कई वर्षों के अनुभव से मेरा यह विश्वास बन गया है कि दिन के उत्तरार्ध में बच्चों को इतना सक्रिय बौद्धिक श्रम नहीं करना चाहिए, जितना कि वे स्कूल में करते हैं। छोटे बच्चों पर पढ़ाई का अत्यधिक बोझ डालना तो बिल्कुल ही अवांछनीय है। अगर स्कूल में ३-४ घंटे के बौद्धिक श्रम के बाद बच्चे को घर पर भी इतना ही श्रम करने पर विवश किया जाए, तो यह शीघ्र ही बच्चे को बिल्कुल थका डालेगा।

घर पर करने के लिए काम दिए बिना भी बात नहीं बन सकती। बच्चे को अपने दिमाग़ पर ज़ोर लगाना, ध्यान केंद्रित करना सिखाना चाहिए। लेकिन ऐसा सर्वप्रथम पाठों में ही धीरे-धीरे स्वावलंबी बौद्धिक श्रम की आदत डालते हुए करना चाहिए। बच्चों के लिए ध्यान से और एकाग्रचित होकर काम करना आसान नहीं है। अनुभवी शिक्षक बच्चों को कुछ सुनाते, समझाते और बताते हुए उनका ध्यान किन्हीं विशेष साधनों से नहीं बांधते, बल्कि स्वयं पाठ के अंतर्य से ही ऐसा करते हैं। छोटी उम्र के बच्चों के लिए मानसिक श्रम को आयोजित करने का कौशल इसी में है कि बच्चा ध्यान से अध्यापक की बातें सुने, याद करे, सोचे और उसे

आरंभ में इसका आभास ही न हो कि उसे इसके लिए कोई विशेष यत्न करना पड़ रहा है।

अगर शिक्षक ऐसा करने में सफल रहेगा, तो बच्चे की स्मृति में वह सब कुछ बना रहेगा, जिसमें उसकी रुचि जागी थी, और विशेषत: जिस बात पर वह विस्मित हुआ था। मेरे बच्चों ने इतनी आसानी से अक्षर कैसे याद कर लिए और वे पढ़ना-लिखना कैसे सीख गए? क्योंकि बच्चों के लिए हर अक्षर एक सजीव बिंब का मूर्तरूप था, जिस पर बच्चे का मन विमुग्ध हुआ था। अगर मैं बच्चों को रोज़ाना "ज्ञान का एक पोर्शन" देता—अक्षर दिखाता और कहता कि इसे याद कर लो, तो कोई बात न बनती। बेशक, इसका मतलब यह नहीं है कि बच्चों से लक्ष्य को छिपाना चाहिए। बच्चों को ऐसे पढ़ाना चाहिए कि वे लक्ष्य के बारे में न सोचें—इससे उनका मानसिक श्रम सरल हो जाएगा। यह सब इतना आसान नहीं, जितना कि पहली नज़र में लगता है। यहां चर्चा बच्चे के बौद्धिक विकास के एक निश्चित चरण की है, जिसे वैज्ञानिक मनुष्य के तंत्रिका-तंत्र की बालावस्था कहते हैं। इस काल में—छोटी कक्षाओं में, ख़ास तौर पर पहली कक्षा में—बच्चे को अभी अपना ध्यान केंद्रित करना नहीं आता। शिक्षक को बच्चों का ध्यान "जीतना" चाहिए, उनमें ऐसी अवस्था जगानी चाहिए, जिसे मनोविज्ञान में अचेतन ध्यान कहा जाता है।

बच्चों का ध्यान बड़ी "नाज़ुक" चीज़ है। मुझे यह डरपोक चिड़िया जैसा लगता है, जिसके घोंसले के पास पहुंचने की कोशिश करते ही वह उड़ जाती है। और जब चिड़िया अंतत: पकड़ ली जाए, तो उसे केवल हाथों में या पिंजड़े में रखा जा सकता है। पर अगर चिड़िया अपने आप को बंदी महसूस करती है, तो फिर उससे गाने की उम्मीद मत कीजिए। ऐसे ही छोटे बच्चे का ध्यान है: अगर आप उसे बंदी पंछी की तरह रखते हैं, तो वह आपका अच्छा सहायक नहीं होगा।

कुछ अध्यापक कक्षा में ऐसा वातावरण बनाने को ही अपनी उपलब्धि समझते हैं, जिसमें बच्चे "निरंतर दिमाग़ लड़ाएं"। अक्सर ऐसा बाहरी कारकों की सहायता से किया जाता है, जो बच्चों का ध्यान बांधे रखने के लिए लगाम का काम करते हैं—बच्चों को बार-बार कहा जाता है: ध्यान से सुनो; जल्दी-जल्दी एक तरह के काम की जगह दूसरी तरह का काम करवाया जाने लगता है, बच्चों के मन में यह डर बनाए रखा जाता है कि अध्यापक जो बात समझा रहा है, उसके फ़ौरन बाद ही उनसे उस

पर सवाल पूछेगा और अगर बच्चा ध्यान से नहीं सुनता रहा है, तो उसकी रिपोर्ट बुक में फ़ेल लिख दिया जाएगा; या फिर किसी नियम को समझाने के तुरंत बाद ही व्यावहारिक अभ्यास करने को कहा जाता है।

वाक़ई, यों देखने में लगता है कि बच्चे बड़े सक्रिय तौर पर अपने दिमाग़ से काम ले रहे हैं: कक्षा में अलग-अलग तरह के काम किए जाते हैं, बच्चे अपना सारा ध्यान केंद्रित करके अध्यापक का एक-एक शब्द सुनते हैं, कक्षा में तनावपूर्ण ख़ामोशी छाई रहती है। लेकिन किस क़ीमत पर यह सब किया जाता है और इसके क्या परिणाम होते हैं? छात्र इस उम्र में अभी अपना ध्यान केंद्रित किए रखने में असमर्थ होते हैं और उन्हें अध्यापक का एक-एक शब्द सुनते रहने के लिए दिमाग़ पर ज़ोर डालना पड़ता है—यह सब बच्चे के तंत्रिका-तंत्र को बुरी तरह से थका डालता है। पाठ में सक्रिय बौद्धिक श्रम के बिना एक मिनट भी, एक क्षण भी न खोने पाए—शिक्षा के, चरित्र-निर्माण के अत्यंत सूक्ष्म कार्य में भला इससे अधिक बेतुकी बात और क्या हो सकती है। अध्यापक के कार्य में ऐसी लक्ष्य प्राप्ति की चेष्टा का सीधे-सीधे यही अर्थ निकलता है कि बच्चों को "आख़िरी बूंद तक" अपना सारा ज़ोर लगाने के लिए विवश किया जाता है। ऐसे "कारगर" पाठों के बाद बच्चा थका-मांदा घर लौटता है। उसे अब आराम ही आराम की ज़रूरत होती है, लेकिन उसे घर के लिए दिया गया काम भी करना होता है, और कापियों, क़िताबों से भरे बस्ते को देखते ही उसका मन बुझ जाता है।

यह अकारण ही नहीं कि स्कूलों में अनुशासन भंग करने के कई मामले होते हैं, बच्चे अध्यापकों से और एक दूसरे से बदतमीज़ी से पेश आते हैं। पाठों में बच्चे अत्यधिक मानसिक तनाव की अवस्था में रहते हैं और अध्यापक भी कोई इलैक्ट्रोनिक मशीन नहीं है—पूरे पाठ में एक के बाद एक कई तरह के कामों की "उच्च कारगरता" बनाए रखने के साथ-साथ बच्चों का ध्यान केंद्रित किए रहना कोई खेल नहीं है। यह अकारण ही नहीं कि बच्चे अक्सर स्कूल से लौटने पर खोए-खोए से रहते हैं, किसी भी बात में वे रुचि नहीं लेते या फिर ज़रा-ज़रा-सी बात पर झुंझला उठते हैं।

नहीं, ऐसी क़ीमत पर बच्चों का ध्यान केंद्रित करना, उन्हें एकाग्रचित्त करना और उनमें बौद्धिक सक्रियता लाना ठीक नहीं। छात्रों की, विशेषतः छोटी उम्र के छात्रों की बौद्धिक शक्ति और तांत्रिक ऊर्जा कोई

अथाह कुआं नहीं है, जिसमें से जितना चाहो पानी निकालते रहो। बहुत सोच-समझकर और सावधानी से इस कुएं से जल लेना चाहिए और सबसे बड़ी बात यह है कि बच्चे की तांत्रिक ऊर्जा के स्रोत में निरंतर वृद्धि का ध्यान रखना चाहिए। इस वृद्धि का स्रोत है—चारों ओर के संसार की वस्तुओं और परिघटनाओं का प्रेक्षण करना, प्रकृति की गोद में रहना, पठन-पाठन करना, लेकिन ऐसा पठन-पाठन, जो कुछ जानने की इच्छा से, रुचि से प्रेरित हो, इस डर से नहीं कि कुछ पूछा जाएगा। सजीव विचारों और शब्दों के स्रोतों की "यात्राएं" बच्चों में बौद्धिक सक्रियता लाने का अच्छा साधन हैं।

स्कूल के जीवन में एक ऐसी चीज़ है, जिसका कोई प्रत्यक्ष आभास नहीं होता। इसे आत्मिक संतुलन कहा जा सकता है। इस अवधारणा का अंतर्य मेरे विचार में यह है: बच्चों को अपने भरे-पूरे जीवन की अनुभूति, विचारों की सुस्पष्टता, अपनी क्षमता में, कठिनाइयों पर विजय पा सकने की संभावना में विश्वास। बाल-समुदाय में मित्रता की भावना होना, एक दूसरे से चिढ़ना, खीझना, झुंझलाना नहीं और सोद्देश्य श्रम का शांतिपूर्ण वातावरण होना—यही आत्मिक संतुलन की लाक्षणिक विशिष्टता है। आत्मिक संतुलन के बिना ठीक तरह से काम नहीं किया जा सकता। जहां यह संतुलन नहीं रहता, वहां समुदाय का जीवन नरक हो जाता है: छात्र एक दूसरे से बदतमीज़ी करते हैं, स्कूल में तनावमय वातावरण बना रहता है। आत्मिक संतुलन कैसे स्थापित किया जाए और सबसे बड़ी बात कैसे इसे बनाया रखा जाए? श्रेष्ठ शिक्षकों के अनुभव से मैं यह देख रहा था कि शिक्षा के इस अत्यंत सूक्ष्म क्षेत्र में सबसे बड़ी बात यह है कि बच्चे सदा सोचें-विचारें, दिमाग़ से काम लें, परंतु इस बौद्धिक कार्य में कोई जल्दबाज़ी न हो, कि यह कार्य "झटकों" के साथ न किया जाए, बच्चों को ज्यादा थकानेवाला न हो और इससे उनकी मानसिक शक्ति पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर न पड़े।

जहां आत्मिक संतुलन होता है, वहां सद्भावना और परस्पर सहायता का वातावरण होता है, प्रत्येक छात्र की बौद्धिक क्षमताओं और यथाशक्ति श्रम में तारतम्य होता है। मैंने प्राथमिक कक्षाओं के कई शिक्षकों के, जो आत्मिक संतुलन लाने में दक्ष थे, शिक्षण-कौशल का बड़े ध्यान से अध्ययन किया। मैं एक सबसे बुद्धिमत्तापूर्ण और साथ ही बिल्कुल स्वाभाविक बात का "रहस्य" खोजने की चेष्टा कर रहा था: इन अध्यापकों का हर छात्र

अपनी पूरी क्षमता के अनुसार पढ़ता था; ऐसा कोई बच्चा नहीं था, जो बहुत अच्छी तरह पढ़ सकता हो, लेकिन पढ़ता साधारण स्तर पर ही हो। और जो बच्चे पढ़ाई में साधारण स्तर पर थे वे अपने को बदक़िस्मत नहीं समझते थे और उनके साथी उनकी ओर बड़प्पन भरे तरस की दृष्टि से नहीं देखते थे।

मुझे यह देखकर बड़ी परेशानी होती थी कि कैसे छात्रों और अध्यापकों पर सर्वश्रेष्ठ अंकों* का भूत सवार रहता है – यह प्रवृत्ति परिवार में जन्म लेती है और फिर अध्यापक भी इसके शिकार हो जाते हैं, बाल-आत्माओं पर यह भारी बोझ के समान होती है, उन्हें विकृत करती है। बच्चे में अभी ऐसी क्षमता नहीं है कि वह सर्वश्रेष्ठ अंक पाए, लेकिन माता-पिता यही चाहते हैं कि वह "पांच" ही लाए, हद से हद वे "चार" पर संतोष कर लेते हैं और बेचारे छात्र को अगर "तीन" मिल जाते हैं, तो उसे लगता है मानो उससे कोई बड़ा भारी अपराध हो गया। अनुभवी अध्यापकों के पाठों में ऐसा कभी नहीं होता। वहां "पांच" पानेवाले अपने आप को ख़ुशक़िस्मत नहीं समझते और "तीन" पाकर किसी में हीन भावना नहीं पैदा होती। मैंने इन सच्चे शिक्षकों से बौद्धिक श्रम का कौशल सीखा। मैंने उनकी शिक्षण कला में एक विलक्षण बात पाई: वे बच्चों के मनोमस्तिष्क में ज्ञान प्राप्ति की ख़ुशी की भावना जगाते थे। इन अध्यापकों के पाठों में हर बच्चे की छोटी से छोटी सफलता भी इस हर्षमय आवेग के साथ जुड़ी होती थी, कि उन्होंने कोई नई बात जानी है, खोजी है। इन अध्यापकों के अनुभव के मोतियों को पिरोते हुए मैं यह चेष्टा करता था कि बच्चे अंक पाने के लिए नहीं, बल्कि ज्ञान-प्राप्ति की ख़ुशी अनुभव करने के लिए मेहनत करें। मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होती थी कि हमारी कक्षा में बच्चे सर्वश्रेष्ठ अंकों के पीछे नहीं भागते फिरते और न

---

*सोवियत संघ में छात्रों के ज्ञान का मूल्यांकन तीन अंकों द्वारा किया जाता है: सर्वश्रेष्ठ, श्रेष्ठ और साधारण। आम बोलचाल में इन्हें क्रमश: पांच, चार और तीन अंक कहा जाता है। दो अंक का अर्थ है फ़ेल। स्कूल में अध्यापक जब कक्षा में किसी छात्र से कोई सवाल पूछता है, तो उसके लिए उसे अंक मिलते हैं। इन अंकों के आधार पर हर तिमाही में प्रत्येक विषय के लिए औसत अंक मिलते हैं। छोटी कक्षाओं में वार्षिक परीक्षाएं भी नहीं होतीं, केवल साल भर के दौरान प्राप्त अंकों के आधार पर औसत अंक दिए जाते हैं। – **अनु०**

ही "तीन" अंक पाकर कोई अपने आप को अभागा समझता है, जो कि उतना ही हानिकर है।

...हर हफ़्ते हमारे कुछ पाठ विचार और शब्दों के स्रोतों की "यात्राओं" के, प्रेक्षण के होते थे। यह प्रकृति से सीधा संसर्ग था, जिसके बिना बच्चों की बौद्धिक शक्ति और तांत्रिक ऊर्जा का कुआं जल्दी ही सूख जाता। शरद ऋतु के सुहावने दिनों में, वसंत और गर्मियों में हम सूरज निकलने से काफ़ी पहले ही इन "यात्राओं" पर निकलते थे—गांवों में तो बच्चे जल्दी उठ ही जाते हैं। प्रकृति के बारे में, चारों ओर के संसार की वस्तुओं और परिघटनाओं के बारे में कहानियों ने बच्चों की जिज्ञासा और कौतूहल को जगा दिया था, मुझे कई प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता था। यह देखिए कुछ प्रश्न: सुबह तड़के सूरज लाल क्यों होता है और दोपहर को तपे सफ़ेद गोले-सा क्यों होता है? बादल कहां से आते हैं? कुकरौंधे के फूल क्यों सुबह खिल जाते हैं और दोपहर को बंद हो जाते हैं? बादल क्यों गरजते हैं और बिजली क्यों चमकती है? पश्चिम से चलनेवाली हवा बारिश क्यों लाती है और पूरब से चलनेवाली—सूखा? लोहे को जंग क्यों लगता है? कबूतर कभी भी पेड़ पर क्यों नहीं बैठते? गर्मियों में जब पेड़ पर पत्तियां होती हैं, तब उसे एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह क्यों नहीं रोपा जा सकता? आकाश से तारे कहां गिरते हैं? हिम कण इतने सुंदर क्यों होते हैं, मानो उन्हें किसी ने तराशा हो? दूर देशों को जाने-वाली चिड़ियों को रास्ते का कैसे पता चलता है? चांद के चारों ओर सफ़ेद घेरा क्यों बना होता है? बारिश से पहले दिन सूरज डूबते समय आसमान लाल क्यों होता है? शहद बटोरने जाने से पहले मधुमक्खी "नाचती" क्यों है? जब फलों के पेड़ों पर फूल खिलते हैं, तो बाग़ों में पुआल क्यों जलाते हैं? जंगल में प्रतिध्वनि क्यों होती है? इंद्रधनुष क्या है? जाड़ों में बादल क्यों नहीं गरजते और बिजली नहीं चमकती? नमकीन पानी बहुत तेज़ पाला पड़ने पर ही क्यों जमता है? गर्मियों में मिट्टी की हांडी में दूध रखकर हांडी को गीले तौलिये से लपेट दो, तो सख़्त गरमी पड़ने पर भी दूध गरम क्यों नहीं होता? बारिश से पहले अबाबीलें ज़मीन के पास-पास क्यों उड़ती हैं? भरत पक्षी क्यों खेत में घोंसला बनाता है और मैना, टोमटिट पेड़ पर बनाते हैं? बत्तखें तैरती हैं, तो मुर्गियां क्यों नहीं तैरतीं? आज तो हवाई जहाज़ के पीछे आसमान में धुएं की पट्टी छूटती जा रही है, कल क्यों नहीं छूट रही थी? आसमान में तारे क्यों टूटते

हैं, वे कहां गिरते हैं? हवा से कभी-कभी धूल ऐसे क्यों उठती है, जैसे नदी में भंवर बनता है? जुगनूं क्यों चमकता है? गाय के तो एक ही बछड़ा होता है और सूअरनी के कई सारे बच्चे—ऐसा क्यों है? क्यों गर्मियों में सूरज आसमान में बहुत ऊपर होता है और जाड़ों में नीचे? ठंड से जम गए शीशों पर बर्फ़ से तरह-तरह के बेल-बूटे क्यों बन जाते हैं? शारद ऋतु में पेड़ों पर पत्तियां पीली क्यों पड़ जाती हैं?

मैं हर प्रश्न का उत्तर इस तरह से देने की कोशिश करता था कि बच्चों को प्राकृतिक परिघटनाओं का सार ही न समझ में आए, बल्कि उनकी जिज्ञासा और भी बढ़े। बच्चों के प्रश्नों के उत्तर, चारों ओर के संसार के बारे में बातचीत—यह चिंतन का पहला पाठ है। कभी-कभी तो मेरी समझ में नहीं आता था कि किसी सवाल का जवाब कैसे दूं। सवाल देखने में जितना आसान लगता था, उनका जवाब देना उतना ही मुश्किल होता था। हम प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापक ख़ास तौर पर बैठकर इस बात पर सोच-विचार करते थे कि बच्चों के "दार्शनिक" प्रश्नों के उत्तर कैसे दिए जाएं। कभी-कभी बच्चों के चिंतन की जटिल "भूलभुलैया" को समझने में हमें सारी-सारी शाम लग जाती थी। बाल-चिंतन को ख़ूब अच्छी तरह से समझनेवाले प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापकों के अनुभव से मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि बाहरी सरलता और स्पष्टता के पीछे प्राय: भारी जटिलता छिपी होती है। मैं इस बात को अपना एक बहुत बड़ा कार्यभार मानता था कि प्राकृतिक जगत की "यात्राओं" के समय बच्चे वस्तुओं और परिघटनाओं के बीच कार्य-कारण संबंधों की ओर ध्यान दें, वे यह देखना सीखें कि कैसे संसार में एक बात दूसरी पर निर्भर है, उससे जुड़ी हुई है।

अगर प्रकृति की "यात्रा" पर हम अंतिम पाठ में जाते थे, तो इसके बाद हम खेलते थे। बच्चे ख़ुद ही कोई खेल सोचते थे। इन खेलों में प्राकृतिक परिघटनाएं कथा-कहानियों के साथ गुंथी होती थीं। बच्चों को एक खेल बहुत अच्छा लगता था। उसका नाम उन्होंने रखा था: "रहस्य-मयी द्वीप की खोज"। हम सब दो दलों में बंट जाते थे। एक दल जंगल में कहीं जा बैठता था। खेल की जगह के चारों ओर हम निशानियां बनाते थे—यह द्वीप का ऊंची-ऊंची चट्टानों और ख़ूंख़्वार जानवरों से भरा तट होता था। रहस्यमयी द्वीप पर बैठे बच्चे—वे यात्री थे, जिनका जहाज़ दुर्घटनाग्रस्त हो गया था। वे कुछ स्थानों पर अच्छी तरह छिपाकर ऐसी निशानियां बनाते थे, जो द्वीप पर जाने का संकरा रास्ता दिखाती थीं।

निशानियां पहले से ही दोनों दल तय कर लेते थे। दूसरे दल को इन "अभागे यात्रियों" को बचाना होता था। बच्चे जंगल में फैल जाते थे और चप्पा-चप्पा करके कई किलोमीटर लंबे "तट" की छानबीन करते थे, ऐसे स्थान ढूंढ़ते थे, जिनसे होकर "द्वीप" पर पहुंचा जा सकता हो। इसके लिए तीखी नज़र और साहस की ही आवश्यकता नहीं, बल्कि प्रकृति की कई परिघटनाओं की भी समझ होनी चाहिए, तर्कसंगत ढंग से सोचना आना चाहिए। ऐसे खेल में ईमानदारी और सच्चाई की भी भावना विकसित होती है। बच्चे "द्वीप" के गुप्त रास्ते खोजते, यात्रियों की सहायता करते, बीमारों को अस्पताल ले जाया जाता, खेल में कोई विमान-चालक बन जाता और कोई डाक्टर। खेल का अंत यह होता कि "दुर्घटनाग्रस्त यात्री" और उनके "रक्षक" सभी मिलकर खिचड़ी पकाते; हम सब अलाव के पास बैठ जाते और मैं बच्चों को कोई कहानी सुनाता। कई बच्चे कहानी पर चित्र बनाते—उनके दिमाग़ में कहानी के काल्पनिक जीवों की जो तस्वीर उभरती, उसे वे काग़ज़ पर उतारते।

प्रकृति की "यात्राओं" के समय पशु-पक्षियों के जीवन का प्रेक्षण करने की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। हम हर बार एक नये, आश्चर्यजनक संसार का दर्शन करते। शरद के एक सुहावने दिन को हमने देखा कि कैसे एक बूढ़ी साही अपने बच्चों को घोंसले में से पानी पीने ले जा रही है, कैसे वह बच्चों की रक्षा करती है। वसंत के दिनों में हम ख़रगोशों के जीवन का प्रेक्षण करते थे। बच्चों ने देखा कि मां-ख़रगोश छोटे-से बच्चे को, जिसका अभी-अभी जन्म हुआ है, खेत में छोड़कर चली जाती है और फिर कभी उसके पास नहीं लौटती। छोटा-सा बच्चा वहीं पड़ा रहता है, जब तक कि उधर से गुज़रती कोई दूसरी ख़रगोशनी उसे खाना नहीं खिला देती। जुलाई में बच्चों ने मेंढकों के जीवन का प्रेक्षण किया। एक बार जंगल के वीरान कोने में हमें लोमड़ी की मांद मिली। बच्चों ने देखा कैसे लोमड़ी अपने छोटे-छोटे बच्चों को घुमाने ले जाती है, उन्हें दौड़ना सिखाती है और उनके साथ खेलती है। घने जंगल में हमने ऊदबिलावों को भी देखा।

हमारी ये यात्राएं और प्रेक्षण विचारों को समृद्ध बनाते थे, कल्पना और वाणी को विकसित करते थे। घूमते, सैर करते हुए बच्चे जितने अधिक प्रश्न पूछते, उतना ही अधिक कक्षा में प्राकृतिक परिघटनाओं, श्रम और दूसरे देशों की चर्चा होने पर वे जिज्ञासा और कौतूहल दिखाते थे। प्रकृति की "यात्राओं" के बाद बच्चों की भावनात्मक अवस्था को देखते

हुए हर बार मुझे इस प्राचीन सूक्ति की सच्चाई का प्रमाण मिलता कि चिंतन आश्चर्य से ही आरंभ होता है।

मैं यह चेष्टा करता था कि प्रकृति के रहस्यों के सम्मुख आश्चर्य की, विस्मय की भावना तथा कुछ नया जानने से, संज्ञान से होनेवाली ख़ुशी बच्चों के लिए ऐसी प्रेरक शक्ति के समान हों, जो उन्हें जगाए, सक्रिय बनाए। हमारी कक्षा में कुछ छात्र (वाल्या, पेत्रिक, नीना) ऐसे थे, जिन्हें सीधे-सादे सवाल को समझने में भी काफ़ी समय लगता था। हर छात्र के लिए इसका अपना कारण था, लेकिन परिणाम एक ही था: इन बच्चों के कार्टेक्स की कोशिकाएं निष्क्रियता की स्थिति में होती थीं। क्लास में जो बात समझाई जा रही होती थी, उसके प्रति ये बच्चे उदासीन रहते थे।

प्रेक्षणों से पता चला कि इन बच्चों की चिंतन-प्रक्रिया में कुछ दोष है। इस दोष का मैंने जो कारण पाया उससे भी इस निष्कर्ष की पुष्टि होती थी कि उनके कार्टेक्स की कोशिकाएं निष्क्रियता की अवस्था में हैं। दोष इस बात में था: बच्चों के लिए कुछेक वस्तुओं या परिघटनाओं के बीच संबंध स्थापित करना और विशेषतः उसे स्मृति में बनाए रखना कठिन था। उदाहरण के लिए, छात्रों को सेबों, टोकरियों और बच्चों का सवाल दिया जाता है। जब तक छात्र सेबों और टोकरियों के बारे में सोचता है, बच्चों को भूल जाता है। बच्चों के बारे में याद दिलाया, तो सेबों और टोकरियों को भूल गया। और अब, जब बच्चे अपने परिवेश लें वस्तुओं और परिघटनाओं के बीच कार्य-कारण संबंधों को देखते और समझने की कोशिश करते थे, तो इन छोटी-छोटी "खोजों" से, सत्य के सम्मुख विस्मय-विमुग्धता की भावना से वाल्या, पेत्रिक और नीना का मन हर्ष से ओत-प्रोत हो उठता था। हर्षावेग से उनकी आंखें चमकने लगती थीं, उदासीनता का कहीं नमोनिशान नहीं रहता था, अध्ययन के विषय में उनकी रुचि जाग उठती थी। अगर बाल-चेतना में कोई ऐसा प्रश्न जगाया जा सकता था, जिसमें स्पष्टतः भावनात्मक रंगत होती थी, तब मानो बाल-मस्तिष्क में सोई पड़ी शक्तियां सक्रिय हो उठती थीं। मैं बड़ी ख़ुशी से यह देख रहा था कि जिन बच्चों का बौद्धिक विकास काफ़ी कठिनाई से हो रहा था, वे भी धीरे-धीरे मानो जाग रहे थे: कक्षा में ध्यान लगाकर अध्यापक की बातें सुनते थे, सवालों को अधिक अच्छी तरह समझने लगे थे। बेशक, अभी इस दिशा में काफ़ी कठिन और सूक्ष्म कार्य करने की

ज़रूरत थी। मैंने प्राथमिक कक्षाओं के अनुभवी शिक्षकों को अपने प्रेक्षणों के बारे में बताया और हमने इस कार्य का नाम रखा: **बुद्धि का भावनात्मक जागरण।**

मैं यह समझने का प्रयत्न कर रहा था कि जब अध्यापक संज्ञान के विषय में वाल्या, पेत्रिक, नीना जैसे बच्चों की रुचि जगाने में सफल होता है, तो उस वक़्त इन बच्चों के मस्तिष्क में कैसी प्रक्रियाएं होती हैं। मैंने जीववैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों, शिक्षाशास्त्रियों, तंत्रिका-तंत्र विशेषज्ञों की पुस्तकें पढ़ीं। आस्ट्रियाई वैज्ञानिक फ़ायड (१८५६-१९३९) की रचनाओं में मैंने कार्टेक्स की कोशिकाओं तथा सबकार्टिकल केंद्रों के परस्पर संबंध के बारे में रोचक विचार पाए। फ़ायड यह मानते हैं कि चिंतन में निर्णायक भूमिका सबकार्टिकल केंद्रों की है। अनेक वैज्ञानिक अनुसंधानों से यह सिद्ध हो चुका है कि ये केंद्र मनुष्य की भावनाओं का संचालन करते हैं। फ़ायड भावनाओं और बुद्धि की तुलना घोड़े और घुड़सवार से करते हैं; उनके मत में घोड़ा ही रास्ता तय करता है (अर्थात भावनाएं–सबकार्टिकल केंद्र)। वह जिधर चाहता है, उधर ही चलता है, लेकिन इतनी चालाकी से ऐसा करता है कि घुड़सवार को लगता है, मानो वह स्वयं घोड़े को चला रहा है। अतः, फ़ायड के अनुसार कार्टेक्स नहीं, सबकार्टेक्स ही प्रधान है।

महान रूसी शरीरक्रियाशास्त्री इवान पाव्लोव फ़ायड से तो सहमत नहीं थे, परंतु सबकार्टेक्स की भूमिका को वह भी काफ़ी महत्वपूर्ण समझते थे। वह लिखते हैं: "कार्टेक्स के कार्य के लिए प्रेरणा मुख्यतः सबकार्टेक्स से ही मिलती है। अगर इन भावनाओं को निकाल दिया जाए, तो कार्टेक्स शक्ति के प्रमुख स्रोत से वंचित हो जाएगा।" पर हां, पाव्लोव के मत में कार्टेक्स ही मानव-चिंतन और व्यवहार का प्रधान संचालनकर्त्ता है (घुड़सवार घोड़े को रोक भी सकता है तथा दूसरी ओर भी मोड़ सकता है)।

बच्चों के बौद्धिक श्रम का प्रेक्षण करते हुए मैं इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण पा रहा था कि सबकार्टेक्स से कार्टेक्स को जानेवाले भावनात्मक आवेग (हर्षमय उत्तेजना, आश्चर्य, विस्मय की भावना) मानो कार्टेक्स की सोई पड़ी कोशिकाओं को जगाते हैं, उन्हें सक्रिय बनाते हैं। हमारा अनुभव यह बताता था कि छोटे बच्चों का बौद्धिक विकास उनमें संज्ञान की भूख–जिज्ञासा और कौतूहल–के विकास के ज़रिए किया जाना चाहिए।

प्रकृति की "यात्राएं" प्राथमिक कक्षाओं में एक अच्छी परंपरा बन

गई। बच्चे सदा बड़ी उत्सुकता से उस दिन की प्रतीक्षा करते थे, जब वे जंगल या खेत में या झील के तट पर जाएंगे। वे पहले से ही खेल सोचने में लगे रहते थे। बच्चों को ऐसे खेल सबसे ज्यादा अच्छे लगते थे, जिनमें उन्हें कठिनाइयों पर विजय पानी होती थी, जिनमें कथा-कहानियों के या यथार्थ जीवन के नायक होते थे। दूसरी कक्षा में मैंने बच्चों को रॉबिनसन क्रूजो की कहानी सुनाई और तब कई महीनों तक वे इसका खेल खेलते रहे। स्पार्टकस की कहानी सुनकर बच्चों ने ऊंचे टीले पर, गहरे खड्ड के ऊपर विद्रोही दासों का शिविर बनाया। मैंने उन्हें शकों के बारे में बताया, जो सदियों पहले हमारे इलाक़े में बसते थे; इन शिकारियों, मछेरों और पशुपालकों के बारे में कहानियों ने बच्चों को इतना प्रभावित किया कि वे प्राचीन लोगों के रहन-सहन पर अपने खेल बनाने लगे।

शिक्षा का शारीरिक और बौद्धिक शक्तियों के बहुविध अभ्यास के साथ घनिष्ठ संपर्क होना चाहिए, ताकि ये अभ्यास बच्चों के मनों में भावनाओं का आवेग जगाएं और अपने चारों ओर की दुनिया उन्हें ऐसी रोचक पुस्तक लगे, जिसे पढ़ने को जी चाहता है। प्रकृति की "यात्राओं" और खेलों के अलावा, शारीरिक श्रम में भी शारीरिक और बौद्धिक शक्तियों के विकास की व्यापक संभावनाएं निहित हैं। बच्चों का श्रम अगर हर्षमय भावनाओं से उत्प्रेरित नहीं है, अगर बच्चे को उत्तेजित करनेवाली भावनाएं उसके श्रम को सार्थक नहीं बनातीं, तो इसके बिना भरे-पूरे सुखी बचपन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। हमारा अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि छोटे बच्चे के लिए शारीरिक श्रम का अर्थ कोई काम करना सीखना ही नहीं है, केवल नैतिक शिक्षा ही नहीं है, यह श्रम तो उसके लिए विचारों के असीम, आश्चर्यजनक विविधतावाले संसार के समान है। यह संसार नैतिक, बौद्धिक, सौंदर्यबोधात्मक अनुभूतियों को जन्म देता है, जिनके बिना अपने चारों ओर की दुनिया का संज्ञान नहीं हो सकता, अर्थात शिक्षा भी नहीं हो सकती। पढ़ाई के साथ-साथ शारीरिक श्रम बच्चों के लिए सपनों और सृजन के संसार की यात्रा के समान है। शारीरिक श्रम करते हुए ही मेरे छात्रों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बौद्धिक गुण विकसित हुए थे। ये हैं—जिज्ञासा, कौतूहल, चिंतन-तीव्रता तथा जीवंत कल्पना-शक्ति।

अगर बच्चा अपने जीवन में ऐसा शारीरिक श्रम करता है, जिसकी प्रेरणा उसे स्वयं अपने विचारों से मिलती है, तो ऐसी स्थिति में ही पाठों

में बौद्धिक श्रम भी उसके लिए रोचक होगा, उसे अच्छा लगेगा। दूसरी कक्षा में ही सप्ताह में एक बार बच्चों के लिए एक पीरियड ऐसा रखा गया था, जिसमें वे अपना मनपसंद काम करते थे। तीसरी और चौथी कक्षाओं में हर सप्ताह में ऐसे दो पीरियड होते थे।

बच्चों के मनपसंद काम का अर्थ यह नहीं कि अध्यापक बैठा यह देखता रहे कि कब बच्चों में किसी काम के प्रति रुचि जागेगी। शिक्षा के, चरित्र-निर्माण के सारे कार्य की ही भांति श्रम-शिक्षा में भी किसी भी बात को अपने आप ही होने देने के लिए नहीं छोड़ना चाहिए। बच्चों के चारों ओर श्रम की लगन का वातावरण होना चाहिए। मेरे छात्र स्कूल के किशोरों, युवकों को काम करते देखते थे। स्कूल के सभी छात्र अपने मनपसंद के दसियों काम करते थे। वे पेड़ लगाते थे, अनाज उगाते थे, मशीनों और कल-पुर्ज़ों के नमूने बनाते थे, तरह-तरह से मिट्टी और खाद मिलाकर उसका परिणाम देखते थे, पशुओं की देखभाल करते थे, नया तापघर, वर्कशॉप बनाने में, नल लगाने में हाथ बंटाते थे।

खोज, जिज्ञासा और कौतूहल की भावना ही बच्चे में श्रम के प्रति रुचि जगाती है। मैं सदा यही मानता था कि श्रम ही अंतिम लक्ष्य नहीं है, बल्कि यह तो चरित्र-निर्माण प्रक्रिया के अन्य बहुमुखी लक्ष्यों—सामाजिक, वैचारिक, नैतिक, बौद्धिक, सृजनात्मक, सौंदर्यबोधात्मक और भावनात्मक लक्ष्यों—की प्राप्ति का साधन मात्र है।

शिक्षा बच्चों के लिए रोचक और मनपसंद काम तभी हो सकती है, जबकि वह विचारों, भावनाओं, सृजन, सौंदर्य और खेलों की उज्ज्वल किरणों से आलोकित हो। पढ़ाई में सफलता की मेरी चिंता इस चिंता से आरंभ होती थी कि बच्चा क्या खाता-पीता है, कैसे सोता है, उसका स्वास्थ्य कैसा है, कैसे वह खेलता है, दिन में कितने घंटे ताज़ी हवा में रहता है, कौन-सी पुस्तक पढ़ता है और कौन-सी कथा-कहानी सुनता है, कैसे चित्र बनाता है और चित्रों में अपने विचारों, अपनी भावनाओं को कैसे व्यक्त करता है, प्रकृति का संगीत तथा संगीतकारों द्वारा रचित संगीत और लोक संगीत उसके मन में कैसी भावनाएं जगाता है, कौन-सा काम उसे पसंद है, लोगों के दुख-सुख के प्रति वह कितना संवेदनशील है, उसने दूसरों के लिए क्या कुछ किया है और ऐसा करते हुए उसके मन में क्या भाव उठे हैं।

शिक्षा केवल तभी बच्चों के आत्मिक जीवन का एक अंश बनती है,

जबकि ज्ञान सक्रिय कार्यों के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ हो। बच्चों से यह आशा नहीं की जा सकती कि पहाड़े या समकोण चतुर्भुज का क्षेत्रफल निकालने के नियम आप से आप उन्हें आकर्षित करेंगे। जब बच्चा यह देखता है कि ज्ञान सृजन के या श्रम के लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन है, तभी यह ज्ञान पाने की इच्छा उसके मन में जागती है। मैं यह चेष्टा करता था कि छोटी उम्र में ही शारीरिक श्रम में बच्चों को अपनी होशियारी और कुशाग्र बुद्धि का परिचय देने का अवसर मिले। स्कूल का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यभार है – बच्चों को ज्ञान का प्रयोग करना सिखाना। छोटी कक्षाओं में ही यह ख़तरा सबसे ज़्यादा होता है कि ज्ञान निरर्थक बोझ बनकर रह जाएगा, क्योंकि इस उम्र में बौद्धिक श्रम नई-नई बातें सीखने से ही संबंधित होता है। अगर ये नई-नई बातें केवल सीखी ही जाती हैं और उन्हें व्यवहार में नहीं लाया जाता, तो धीरे-धीरे शिक्षा बच्चे के आत्मिक जीवन की परिधि से बाहर होती जाती है, वह उसकी रुचियों और शौक़ों से कट जाती है। ऐसा न होने देने के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक हर बच्चे को अपने ज्ञान और कौशल को सृजनात्मक कार्य में लगाना सिखाए।

"प्रकृति पुस्तक" के तीन सौ पृष्ठ

सुविख्यात जर्मन गणितज्ञ फ़ेलिक्स क्लाइन (१८४९–१९२५) स्कूली छात्र की तुलना तोप से करते थे, जिसमें दस वर्षों तक ज्ञान ठूंसा जाता है और फिर दाग़ दिया जाता है, जिसके बाद उसमें कुछ भी नहीं बचा रहता। यह कटु व्यंग्य मुझे तब याद आता था, जब मैं किसी बच्चे को वह सब याद करते देखता था, जिसे वह समझता नहीं था, जिससे उसकी चेतना में कोई भी सजीव बिंब, चित्र नहीं बनते थे, उस विषय से संबंधित कोई बात, कोई विचार नहीं उभरते थे। विचारों के स्थान पर स्मृति को रखना, परिघटनाओं के सार का प्रेक्षण करने, उनका प्रत्यक्ष बोध पाने के स्थान पर उनके बारे में जानकारी को रटना – यह एक बहुत बड़ी बुराई है, जो बच्चे को मंदबुद्धि बनाती है और अंततः पढ़ाई में उसकी सारी रुचि जाती रहती है।

छोटे बच्चों की तीव्र स्मरण शक्ति देखकर हममें से भला कौन आश्चर्य-चकित नहीं हुआ है। पांच साल का बच्चा माता-पिता के साथ जंगल की

सैर करके लौटा है। अभी तक उसकी आंखों के सामने सुंदर-सुंदर दृश्य घूम रहे हैं। महीना बीतता है, साल बीतता है, माता-पिता फिर जंगल में घूमने जाने की सोचते हैं, बेटा बड़ी अधीरता से शांत सुहावनी सुबह का इंतज़ार करता है, वह दिन याद करता है, जब वह बहुत पहले पापा और अम्मा के साथ जंगल में घूमने गया था। माता-पिता यह देखकर हैरान हैं कि बच्चे की स्मृति में कैसे सजीव चित्र उभर रहे हैं, कितनी छोटी-छोटी बातें भी उसे याद आती हैं: वह दो अलग-अलग रंगों की पंखुड़ियोंवाले फूल को याद करता है। पापा आश्चर्यचकित होकर बेटे के मुंह से भाई-बहन की कहानी सुनते हैं, जो फूल बन गए थे। यह कहानी साल भर पहले उन्होंने बच्चे की मां को सुनाई थी। उस वक़्त तो लगता था कि बेटा कहानी नहीं सुन रहा, वह तो तितली के पीछे भाग रहा था – उसकी स्मृति में यह छोटी-सी घटना कैसे अंकित हो गई?

यही तो बात है कि बच्चे रंगों और ध्वनियों की विविधतम छटाओं-वाले बिंबों को सहज ही ग्रहण कर लेते हैं और अपनी स्मृति में संजोए रखते हैं। अपने चारों ओर के संसार के बिंबों को ग्रहण करते हुए बच्चे की चेतना में कई अनोखे सवाल उठते हैं, जिन्हें सुनकर बड़े हैरान रह जाते हैं। वह बेटा भी अब पापा से पूछता है: "भाई-बहन एक दूसरे को देखते हैं कि नहीं? आपने कहा था पेड़-पौधों में भी जान होती है, तो क्या वे भी देखते-सुनते हैं? एक दूसरे से बातें भी करते हैं? हम भी उनकी बातें सुन सकते हैं?" विचारों की धारा फूट निकली है, पापा विस्मित हैं: साल भर पहले बच्चे ने यह सब क्यों नहीं पूछा था? इतनी देर तक उसकी स्मृति में न केवल फूल का उज्ज्वल बिंब ही, बल्कि उन क्षणों का भावनात्मक रंग भी उसकी स्मृति में कैसे बना रहा? पापा देखते हैं कि बेटे को वह फूलों से भरा मैदान और नीला आकाश और दूर कहीं उड़ते हवाई जहाज़ की आवाज भी अच्छी तरह याद है।

इन सब बातों पर सोचते, मनन करते हुए, मैं अपने आप से एक सवाल पूछता था: क्या कारण है कि स्कूल में २-३ साल पढ़ने के बाद ऐसी सजीव कल्पना शक्ति और तीक्ष्ण स्मृतिवाला बच्चा भी व्याकरण का साधारण-सा नियम याद नहीं कर सकता, वह नहीं जानता कि छह अट्ठे कितना होगा? मेरा निष्कर्ष भी जर्मन वैज्ञानिक के निष्कर्ष से कम दुखद नहीं था: स्कूल में ज्ञान-प्राप्ति की प्रक्रिया प्रायः बच्चे के आत्मिक जीवन से कट जाती है। बच्चों की स्मरण-शक्ति इसीलिए इतनी तीव्र होती है कि

ज्वलंत बिंबों, चित्रों, कल्पनाओं और प्रत्यक्ष बोध की निर्मल धारा उसे सींचती है। बाल-चिंतन इसीलिए हमें अपने इतने सूक्ष्म, अप्रत्याशित, "दार्शनिक" प्रश्नों से विस्मित करता है, क्योंकि वह इस धारा के जीवन-दायी स्रोत से पोषित होता है। यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण है कि स्कूल बच्चों को उनके चारों ओर की दुनिया से अलग न कर दे। मैं यही चेष्टा करता था कि बचपन के सभी वर्षों में बाल-चेतना प्रकृति से, चारों ओर के संसार से सजीव बिंबों, चित्रों को ग्रहण करे, कि चिंतन के नियमों को बच्चे एक सुघड़ भवन के रूप में देखें, समझें, जिसकी वास्तुकला और भी अधिक सुघड़ भवन – स्वयं प्रकृति – से ही ली गई है। बच्चे को ज्ञान का, तथ्यों, नियमों और सूत्रों का भंडार बनने से बचाने के लिए उन्हें सोचना सिखाना चाहिए। बाल-चेतना और बाल-स्मृति की प्रकृति की ही यह मांग है कि क्षण भर के लिए भी बच्चा अपने उज्ज्वल परिवेश और उसकी नियम-बद्धताओं से न कट जाए। मेरा दृढ़ विश्वास है कि बाल-स्मृति की तीव्रता और विचारों की स्पष्टता स्कूल में पढ़ते हुए न केवल धुंधली ही नहीं होगी, बल्कि और भी प्रखर हो जाएगी, बशर्ते जिस माध्यम में बच्चा सोचना, याद करना और विचार करना सीखेगा, वह स्वयं प्रकृति ही हो, बच्चे के चारों ओर की दुनिया ही हो।

बौद्धिक विकास, बौद्धिक शिक्षा में प्रकृति की भूमिका का अतिमूल्यांकन भी नहीं करना चाहिए। कुछ अध्यापकों का यह सोचना बिल्कुल ग़लत है कि अगर बच्चे प्रकृति के आंचल में हैं, तो इस तथ्य में ही बौद्धिक विकास की प्रबल प्रेरक शक्ति निहित है। प्रकृति में ऐसी कोई जादुई शक्ति नहीं है, जो बुद्धि, भावनाओं और इच्छा-बल पर सीधे-सीधे प्रभाव डालती हो। प्रकृति केवल तभी चरित्र-निर्माणकारी शक्ति बनती है, जबकि मनुष्य उसका बोध पाता है, अपनी बुद्धि से उसके कार्य-कारण संबंधों को समझने का प्रयत्न करता है। किसी चीज़ को देखकर उसे जानने, समझने की क्षमता का अतिमूल्यांकन करने का अर्थ है बाल-चिंतन की कुछ विशिष्टताओं को ही सब कुछ मानना, ज्ञान-प्राप्ति के कार्य को ऐंद्रिय ज्ञान के क्षेत्र तक ही सीमित करना। बाल-चिंतन की विशिष्टताओं को ऐसे नहीं लेना चाहिए कि यही सब कुछ है। ख़ास तौर पर इस विशिष्टता को कि बच्चा बिंबों, रंगों, ध्वनियों के माध्यम से सोचता है। यह विशिष्टता एक वस्तुगत सत्य है, जिसका महत्व उशीन्स्की ने बड़ी अच्छी तरह सिद्ध किया था। परंतु अगर बच्चा बिंबों, रंगों और ध्वनियों के माध्यम से

सोचता है, तो इससे यह निष्कर्ष कदापि नहीं निकलता कि बच्चे को अमूर्त चिंतन नहीं सिखाना चाहिए। बौद्धिक विकास में प्रकृति की विशाल भूमिका देखकर तथा ज्ञान पाने की क्षमता के महत्व पर जोर देते हुए अनुभवी शिक्षक इन कारकों को अमूर्त चिंतन के विकास तथा लक्ष्यबद्ध शिक्षा के साधनों के रूप में ही देखता है।

मैंने ख़ूब सोच-विचार कर यह तय कर लिया था कि मेरे बच्चों के लिए विचारों का स्रोत क्या होगा, कि चार बरस के दौरान दिन-प्रति-दिन बच्चे किन बातों का प्रेक्षण करेंगे, चारों ओर के संसार की कौन-सी परिघटनाएं उनके चिंतन का स्रोत होंगी। इस तरह "प्रकृति पुस्तक" के तीन सौ पृष्ठ बने। यह ३०० प्रेक्षण, ३०० उज्ज्वल चित्र थे, जो बच्चों की चेतना में अंकित हुए। हफ़्ते मे दो बार हम प्रकृति के आंचल में जाते थे—सोचना सीखने के लिए। केवल प्रेक्षण करने के लिए नहीं, बल्कि सोचना सीखने के लिए। वस्तुतः ये चिंतन के पाठ थे। जी हां, यह मन बहलाव के लिए सैर-सपाटा नहीं था, बल्कि पाठ ही होता था। बेशक, पाठ भी अत्यंत रोचक हो सकता है, मन भी बहला सकता है—और ऐसा होने पर वह बच्चों के आत्मिक जगत को और अधिक समृद्ध बनाता है।

मैंने यह लक्ष्य रखा था कि बच्चों की चेतना में यथार्थ जीवन के ज्वलंत चित्र अंकित हों। मेरा प्रयत्न यही था कि सजीव, बिंबात्मक कल्पनाओं के आधार पर ही चिंतन प्रक्रिया हो, कि बच्चे अपने परिवेश का प्रेक्षण करते हुए परिघटनाओं में कार्य-कारण संबंध स्थापित करें, वस्तुओं के गुणों और लक्षणों की तुलना करें। मेरे प्रेक्षणों से बच्चों के बौद्धिक विकास की एक महत्वपूर्ण नियमसंगति की पुष्टि हुई: पाठ में बच्चों को जितने अधिक अमूर्त सत्यों, सामान्य निष्कर्षों को समझना होता है, यह बौद्धिक श्रम जितना अधिक कठिन होता है, उतना ही अधिक छात्रों को ज्ञान के आदि स्रोत—प्रकृति—की ओर उन्मुख होना चाहिए, अपने चारों ओर के संसार के बिंब और चित्र उनकी चेतना में उतनी ही अधिक स्पष्टता से अंकित होने चाहिए। परंतु उज्ज्वल बिंब बच्चे की चेतना में ऐसे अंकित नहीं होते, मानो वह फ़ोटो की रील हो। बिंब और चित्र कितने ही सजीव, कितने ही उज्ज्वल क्यों न हों, तो भी वे स्वयं ही लक्ष्य नहीं हैं, शिक्षा का अंतिम लक्ष्य नहीं हैं। बौद्धिक शिक्षा अर्थात बुद्धि का विकास वहीं आरंभ होता है, जहां सैद्धांतिक चिंतन है, जहां प्रकृति का प्रत्यक्ष बोध पाना अंतिम लक्ष्य नहीं, बल्कि केवल माध्यम है: परिवेश का सजीव बिंब शिक्षक

के लिए ऐसा स्रोत है, जिसके विभिन्न रूपों, रंगों और ध्वनियों में हज़ारों प्रश्न छिपे हुए हैं। इन प्रश्नों के अंतर्य को उजागर करते हुए शिक्षक मानो "प्रकृति पुस्तक" के पन्ने पलटता है।

हमारी "प्रकृति पुस्तक" के पहले पृष्ठ का नाम है: "सजीव और निर्जीव"। शरद ऋतु के आरंभ में धुपहली दुपहरी को हम नदी के तट पर पहुंचते हैं, घास पर बैठ जाते हैं। हमारे सामने चरागाह है, जिसमें शरद पुष्प खिल रहे हैं। नदी के पारदर्शी जल में मछलियां तैर रही हैं। तितलियां उड़ रही हैं और नीले आकाश में अबाबीलें उड़ान भर रही हैं। हम ऊंचे कगार की ओर जाते हैं, जहां कई बरसों के दौरान धरती इस तरह कट गई है कि नदी के किनारे खड़े होकर उसकी अलग-अलग परतें देखी जा सकती हैं। बच्चे बड़े कौतूहल से अलग-अलग रंगों की मिट्टी और रेत की परतें देखते हैं—पीली, लाल, नारंगी, सफ़ेद। सफ़ेद मिट्टी की पतली परत के नीचे पीली रेत है, और नीचे घनाकार क्रिस्टल दिखाई देते हैं। बच्चे धरती की काली मिट्टीवाली ऊपरी परत की तुलना गहराई की परतों से करते हैं।

"ज़मीन की ऊपरी परत में हम क्या देखते हैं?"

"पौधों की जड़ें। गहराई में जड़ें नहीं हैं," बच्चे उत्तर देते हैं।

"बच्चो, कगार के ऐन सिरे पर उग रही घास को देखो और पीली रेत की इस परत को। घास और रेत में क्या फ़र्क है?"

"घास गर्मियों में उगती है, शरद में मुरझा जाती है और वसंत में फिर जी उठती है," बच्चे कहते हैं। "घास के छोटे-छोटे बीज हैं, वे ज़मीन पर गिरते हैं और उनसे नए डंठल उग आते हैं।"

"और रेत?" मैं चाहता हूं कि अपने परिवेश की वस्तुओं की तुलना सभी बच्चे करें, ख़ास तौर पर मंदबुद्धि बच्चे—पेत्रिक, वाल्या, नीना। जैसा कि मैं पहले भी कह चुका हूं क्लास में ऐसे बच्चे भी हैं, जिनके विचारों की धारा की तुलना मंथर गति से बहती भरी-पूरी नदी से की जा सकती है। मीशा और साश्को ऐसे ही हैं। एक और बच्ची है—ल्यूदा, जिसका चिंतन अभी मेरे लिए सात तालों में बंद रहस्य ही है। पहले तो मैं यह सोचता था कि बच्ची के बौद्धिक विकास की गति धीमी है और उसके लिए वह सब समझना कठिन है, जो दूसरे बच्चे सहज ही समझ लेते हैं। परंतु बच्ची की आंखों में मुझे विचारों की चमक दीख पड़ती थी, जिसे मानो कोई आंतरिक शक्ति रोके रहती थी; बच्ची मानो जान-बूझकर

वह सब कहने से अपने आप को रोकती थी, जो ख़ुद अच्छी तरह जानती थी।

"बच्चो, यह देखो – यह रही पीली रेत और यह रही हरी घास। या यह और भी अच्छा होगा – यह है हरी रेत और यह है हरी घास। ये दोनों एक दूसरी से किस बात में भिन्न हैं, इनमें क्या फ़र्क़ है?"

बच्चे सोचने लगते हैं, वे हरी घास को और कगार में ज़मीन की परतों को देखते हैं। ल्यूदा की आंखें विचारमग्न हैं, पेत्रिक ने भौंहें सिकोड़ ली हैं, वाल्या एक मुट्ठी से दूसरी में रेत डाल रही है।

"रेत पर फूल नहीं हैं, और घास पर हैं," ल्यूदा कहती है।

"घास को गाएं चरती हैं, रेत को कोई चरके देखे तो!" पेत्रिक सहसा बोल उठता है।

"घास तो बारिश होने पर बढ़ती है, पर रेत क्या बढ़ती है?" मीशा विचारमग्न-सा कहता है।

"रेत तो ज़मीन में गहराई पर है और घास ऊपर-ऊपर," यूरा कहता है।

लेकिन सेर्योझा उसकी बात काटता है: "किनारे पर क्या रेत नहीं है? घास सूरज की ओर बढ़ती है, और रेत तो बस धूप में गरम ही होती है..."

फिर हम एक कंकड़ और हरी पत्ती की, लाल कांच के टुकड़े और फूल की, नदी में तैरती मछली और बत्तख़ के पर की, पुल की लोहे की रेलिंग और पेड़ पर चढ़ती बेल की तुलना करते हैं। बच्चों के विचारों की धारा कलकल करती बह निकलती है, लड़के-लड़कियां वस्तुओं और परिघटनाओं में ऐसे परस्पर संबंधों की ओर ध्यान देते हैं, जो पहली नज़र में ही दिख जाते हैं, फिर वे उन संबंधों को भी देखते हैं, जो इतने प्रत्यक्ष नहीं हैं। धीरे-धीरे बच्चों को सजीव और निर्जीव की अवधारणा समझ में आने लगती है। कुछ वस्तुएं सजीव हैं और कुछ निर्जीव – यह तो बच्चे बहुत से तथ्यों से देखते हैं, लेकिन जब मैं पूछता हूं: "परंतु सजीव और निर्जीव में अंतर क्या है?" – तो वे उत्तर नहीं दे पाते। उत्तर धीरे-धीरे ही मिलता है और इसकी खोज में उनका विचार उन्हीं चीज़ों की ओर उन्मुख होता है, जिन्हें वे अपने आस-पास देखते हैं। कई लक्षण तो वे ठीक ही देखते हैं, लेकिन साथ ही कुछ ग़लतियां भी करते हैं, जिन्हें यहीं, प्रेक्षणों की प्रक्रिया में ठीक करते जाते हैं। जब कोस्त्या कहता है:

"सजीव चीज़ चलती है, निर्जीव नहीं चलती," तो प्रायः सभी बच्चे उसकी बात से सहमत हो जाते हैं, परंतु फिर ख़ामोशी छा जाती है, बच्चे अपने चारों ओर देखते हैं, कोई आपत्ति करता है।

"छड़ी को नदी में फेंक दो तो वह बहती चलती है, पर वह क्या सजीव है?"

"ट्रैक्टर भी चलता है, पर वह तो निर्जीव है न?"

"मकड़ी का तार हवा में उड़ता है, पर क्या वह सजीव है?"

"और रेत? वह भी तो चलती है। हम एक बार खुली ख़दान में गए थे, वहां रेत की धाराओं को चलते देखा था।"

नहीं, सब समझते हैं कि बात चलने की, गति की नहीं है। तो फिर सजीव और निर्जीव में क्या भेद है? बच्चे बार-बार अपने चारों ओर की वस्तुओं की तुलना करते हैं। शूरा ख़ुशी से चिल्लाकर कहता है:

"सजीव चीज़ें बढ़ती हैं, निर्जीव नहीं बढ़तीं।"

बच्चे इन शब्दों पर ग़ौर करते हैं और फिर उनकी नज़रें अपने चारों ओर दौड़ती हैं। वे बोलते हुए विचार करते हैं: घास सजीव है, घास बढ़ती है; पेड़ सजीव है, वह भी बढ़ता है; जंगली गुलाब की झाड़ी सजीव है, गुलाब बढ़ता है; पत्थर निर्जीव है—वह नहीं बढ़ता; रेत भी निर्जीव है, क्योंकि वह नहीं बढ़ती। हां, यही बात है—सभी सजीव चीज़ें बढ़ती हैं; निर्जीव चीज़ें नहीं बढ़तीं। मीशा दूर कहीं नज़रें गड़ाए अपनी सोच में डूबा हुआ है। क्या वह अपने साथियों की बातें सुन रहा है? जब बच्चे अपने चारों ओर की सभी सजीव और निर्जीव वस्तुओं के नाम ले चुकते हैं, तब वह बोलता है:

"जो सजीव है, वह सूरज के बिना नहीं रह सकता," और हाथ से जंगल, खेत, चरागाह की ओर दिखाता है।

ये शब्द सुनकर एक बार फिर मेरा यह विश्वास सुदृढ़ हो जाता है कि प्रायः मंदबुद्धि बच्चे बड़े ध्यान से सब कुछ देखते हैं और उनकी नज़र पैनी होती है। मीशा के शब्दों से बच्चों की चेतना में मानो सारी बात एकदम स्पष्ट हो जाती है। "मैंने पहले क्यों नहीं यह सोचा?" मन ही मन वे अपने आप से पूछते हैं। वे एक बार फिर अपने मस्तिष्क से चारों ओर के पदार्थों को मानो टोहते हैं, वे सोचते हुए बोलते हैं: "घास, फूल, पेड़, गेहूं कुछ भी सूरज के बिना नहीं उग सकता। आदमी भी सूरज के बिना नहीं जी सकता... या क्या वह जी सकता है? नहीं,

क्या हम यह कल्पना कर सकते हैं कि लोग कहीं गहरे तहख़ाने में रहें? हम अच्छी तरह जानते हैं कि घने छतनार पेड़ की छाया में घास मुरझा जाती है, सूख जाती है। पापा कहते हैं: "बारिश के बाद अगर सूरज गर्मी दे दे, तो फ़सल तुरंत हरी-भरी हो जाए, धूप न निकली, तो बुरी बात होगी..." और पत्थर तो धूप में हो या तहख़ाने में एक-सा ही रहता है। नहीं, एक-सा नहीं रहता। तहख़ाने में उस पर काई जम जाती है... काई क्या है? यह जीवन है या नहीं? सूरज से केवल लाभ ही नहीं होता, अगर देर तक बारिश न हो, तो वह फ़सल को सुखा भी सकता है। तो इसका मतलब यह हुआ कि जो सजीव है उसे केवल धूप ही नहीं, पानी भी चाहिए।

ऐसी छोटी-छोटी धाराओं में बच्चों के विचार बहते चलते हैं, फिर वे मिलकर एक बड़ी नदी बन जाते हैं, बच्चों के लिए यह बात अधिकाधिक स्पष्ट होती जाती है कि जो कुछ भी जीवित है, उसमें कुछ ऐसी परिघटनाएं होती हैं, जो उनकी समझ से परे हैं, और ये परिघटनाएं सूरज, पानी तथा प्रकृति में हमारे चारों ओर जो कुछ है, उस पर निर्भर करती हैं। इस तरह बच्चे "प्रकृति पुस्तक" की पहली पंक्तियां पढ़ लेते हैं। वे समझ गए हैं कि सारा संसार दो तत्वों से बना है—सजीव और निर्जीव। इन दो तत्वों के बारे में उनकी चेतना में जो बात बैठती है, उससे बहुत से प्रश्न उठते हैं। घर लौटते हुए बच्चे अपने चारों ओर उन सब चीज़ों को ध्यान से देखते हैं, जो उन्हें जानी-पहचानी लगती थीं और बहुत-सी ऐसी बातें पाते हैं, जिनकी ओर पहले कभी उनका ध्यान नहीं गया था, और जितनी अधिक नई बातें वे देखते हैं, उतने ही सवाल पूछते हैं: "बीज में से निकला छोटा-सा अंकुर इतना बड़ा पेड़ कैसे बन जाता है? पत्तियां, टहनियां, मोटा तना—यह सब कहां से आता है? शरद में पेड़ों की पत्तियां क्यों झड़ जाती हैं? जाड़ों में पेड़ बढ़ते हैं या नहीं बढ़ते? इन सब प्रश्नों का उत्तर एकदम नहीं दिया जा सकता और न ही इसकी कोई आवश्यकता भी है। यही बहुत अच्छा है कि बच्चों के मन में ये सब प्रश्न उठे हैं। यही बहुत अच्छा है कि बच्चा सोचते समय ज्ञान, विचार के आदिस्रोत—अपने चारों ओर के संसार—की ओर उन्मुख होना सीखता है। यही बहुत अच्छा है कि अपने विचार को व्यक्त करने के लिए वह ठीक-ठीक, सही शब्द ढूंढ़ लेता है। विचारों की सुस्पष्टता

चिंतन का एक सबसे महत्वपूर्ण गुण है और यह गुण अपने चारों ओर के संसार के साथ सीधे संपर्क में ही पाया जा सकता है।

बच्चा बिंबों, रंगों और ध्वनियों के माध्यम से ही सोचता है, किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि उसे ठोस चिंतन पर ही रुक जाना चाहिए। बिंबात्मक चिंतन अवधारणाओं के माध्यम से चिंतन की ओर संक्रमण का एक अनिवार्य चरण है। मैं यह प्रयत्न कर रहा था कि बच्चे धीरे-धीरे **परिघटना, कारण, परिणाम, घटना, अन्योन्याश्रयता, निर्भरता, भेद, सामान्यता, संगतता, असंगतता, संभव, असंभव** आदि अवधारणाओं से काम लेना सीखें। कई वर्षों के अनुभव से मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि ये अवधारणाएं अमूर्त चिंतन के गठन और विकास में बहुत बड़ी भूमिका अदा करती हैं। इन अवधारणाओं से काम लेना तब तक नहीं आ सकता, जब तक कि बच्चा स्वयं सजीव तथ्यों और परिघटनाओं का विश्लेषण नहीं करता, अपनी आंखों से वह जो कुछ देखता है, उसे पूरी तरह समझता नहीं, जब तक कि बच्चा ठोस वस्तु, तथ्य, परिघटना से शनैः-शनैः अमूर्त सामान्यीकरण करना नहीं सीख लेता। प्रकृति का प्रेक्षण करते हुए बच्चों के मन में जो सवाल उठते हैं, वे ही ठोस चिंतन से अमूर्त चिंतन की ओर संक्रमण में सहायक होते हैं। मैं अपने छात्रों को प्रकृति की ठोस परिघटनाओं का प्रेक्षण करना, कार्य-कारण संबंध खोजना सिखाता था। चिंतन के ठोस बिंबों के साथ घनिष्ठ रूप से संबंधित होने के फल-स्वरूप बच्चे धीरे-धीरे अमूर्त अवधारणाओं से काम लेना सीख रहे थे। कहना न होगा कि यह एक लंबी, कई साल तक चलनेवाली प्रक्रिया थी।

"प्रकृति पुस्तक" पढ़ना बच्चों के लिए बहुत ही रोचक कार्य था। लेकिन उनकी यह रुचि ही अपने आप में एक लक्ष्य नहीं थी। सोवियत शिक्षाशास्त्री शिक्षा में बच्चों की रुचि को ही सब कुछ नहीं मानते, वे यह भी स्वीकार नहीं करते कि बच्चों के कार्यकलाप, उनकी गतिविधियां ही शिक्षण प्रक्रिया का अंतिम लक्ष्य हैं। १९ वीं सदी में ही उशीन्स्की ने लिखा था : "बच्चे को जो अच्छा लगता वह सब करना तो सिखाइए ही, लेकिन साथ ही वह सब करना भी सिखाइए, जिसमें उसका जी नहीं लगता। उसे सिखाइए कि वह अपना कर्त्तव्य निभाने का संतोष पाने के लिए यह करे : आप बच्चे को जीवन के लिए तैयार करते हैं और जीवन में सभी कर्त्तव्य रोचक नहीं होते।" सोवियत शिक्षाशास्त्र में वह प्रवृत्ति कदापि नहीं है, जो कुछ बुर्जुआ वैज्ञानिकों में पाई जाती है : वे छात्रों की निजी

आवश्यकताओं की पूर्ति की दृष्टि से ही शिक्षा के अंतर्य, रूपों और विधियों को देखते हैं। सोवियत शिक्षाशास्त्र में बच्चे की व्यक्तिगत रुचि को स्कूल के शैक्षिक और चरित्र-निर्माणात्मक कार्यभारों की पूर्ति का साधन ही माना जाता है। ये कार्यभार हैं—बच्चों को निश्चित वैज्ञानिक ज्ञान देना, द्वंद्वात्मक-भौतिकवादी धारणाएं बनाना। "प्रकृति पुस्तक" पढ़ने को मैं समय बिताने का मनोरंजक साधन या मनबहलाव के लिए खेल नहीं, बल्कि ऐसा मार्ग समझता था, जो वैज्ञानिक ज्ञान के संसार में ले जाता है। जिन परिघटनाओं में प्रकृति के नियमों का सार प्रकट होता है, उन पर बच्चे सोच-विचार करते हुए उन्हें समझने की कोशिश करते थे। "प्रकृति पुस्तक" के विषय हर बच्चे की व्यक्तिगत रुचियों को संतुष्ट करने की दृष्टि से नहीं, बल्कि संसार को वैज्ञानिक ढंग से जानने-समझने, उसका संज्ञान पाने के नियमों को ध्यान में रखकर निर्धारित किये जाते थे। यहीं पर सोवियत शिक्षा-सिद्धांत में स्कूली छात्रों की गतिविधियों के लक्ष्य तथा इस व्यावहारवादी सिद्धांत के बीच कि गतिविधियों से ही ज्ञान मिलता है, भेद निहित है।

सोवियत शिक्षाशास्त्र में गतिविधियों को सुव्यवस्थित वैज्ञानिक शिक्षा के स्थान पर नहीं रखा जाता, बल्कि इन्हें शैक्षिक और चरित्र-निर्माणात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन माना जाता है। कहना न होगा कि बच्चों की निजी रुचि के बिना ज्ञान-प्राप्ति में सहायक गतिविधियों की कल्पना भी नहीं की जा सकती। सोवियत शिक्षाशास्त्र में रुचि को सोचने-समझने, अध्ययन-मनन करने की प्रक्रिया में बच्चों की सृजनात्मक आत्मिक शक्ति के सक्रिय सहयोग के रूप में देखा जाता है। ज्ञान-प्राप्ति के दौरान जिन सत्यों को बच्चा जानता-समझता है, ज्यों-ज्यों वे उसकी निजी धारणाएं बनते जाते हैं, त्यों-त्यों अध्ययन और संज्ञान के विषय में उसकी रुचि बढ़ती जाती है। सोवियत शिक्षाशास्त्र में रुचि तथा विचारधारात्मक और वैज्ञानिक भौतिकवादी शिक्षा के बीच अभिन्न संबंध है।

हम एक के बाद एक "प्रकृति पुस्तक" के पृष्ठ पढ़ते हैं, सोचना सीखते हैं। दूसरे पृष्ठ का विषय है: "निर्जीव और सजीव का संबंध"। हम तापघर में जाते हैं, वहां बड़ी कक्षाओं के छात्रों को ज़मीन की गहराई में से ली गई पीली रेत और बारीक रोड़ी पर खीरे, टमाटर, जौ और जई उगाते देखते हैं। बच्चे देखते हैं कि कैसे लोहे और लकड़ी की उथली पेटियों में छात्र रेत और रोड़ी भरते हैं, उस पर रासायनिक पदार्थों का

घोल डालते हैं। खीरे और टमाटर की जड़ें इस पर्यावरण में से पौधे की वृद्धि और फलों के उगने के लिए रस लेती हैं। निर्जीव पत्थर और पानी में घुला सफ़ेद चूरा—लगता है जीवन के लिए बस इसी की आवश्यकता है। इधर इन उथले पात्रों में तो जौ के हरे-हरे डंठल रेत और रोड़ी के बिना ही उग रहे हैं: जड़ें सफ़ेद चूरे के घोल से ही पोषक पदार्थ पाती हैं। फूलों के खिलने और फल लगने की प्रक्रिया को ध्यान से देखते हुए बच्चे यह पाते हैं कि निर्जीव पदार्थ सजीव पदार्थ के लिए पर्यावरण तभी बनते हैं, जबकि वहां सूरज और पानी हो। प्रकाश, गरमी और जल के बिना जीवन असंभव है। आज बाहर बादल छाए हुए हैं, इसलिए तापघर में बत्तियां जलाई गई हैं। बाहर जब ठंड होती है, तो तापघर में गरम पानी के पाइप हवा को गरम करते हैं।

मैं बच्चों से कहता हूं: "बच्चो, तुम जो कुछ देख रहे हो, उस पर ग़ौर करो, सोचो कि क्या सजीव पदार्थ निर्जीव के बिना रह सकते हैं? तुम्हारे सामने एक बड़ा डिब्बा रखा है, जिसमें कई छोटे-छोटे डिब्बे हैं: इनमें तरह-तरह की रासायनिक खादें हैं। देखो कैसे तुम्हारे बड़े साथी अलग-अलग डिब्बों में से सफ़ेद, पीला, भूरा चूरा लेते हैं, उन्हें मिलाकर पानी में घोलते हैं। यह देखो यहां उपजाऊ मिट्टी बनाई जा रही है: छात्र मोटी रेत में कम्पोस्ट मिला रहे हैं। देखा इस मिट्टी पर कैसे टमाटर उगते हैं? पौधा अपनी पत्तियों, टहनियों, फलों के लिए सामग्री कहां से लेता है? निर्जीव पदार्थों से। निर्जीव पदार्थ सजीव पदार्थों का पर्यावरण हैं।" ये सत्य बाल-आत्माओं में प्रकृति के रहस्यों के सम्मुख विस्मय की भावना जगाते हैं।

एक बार फिर मुझे वह प्राचीन सूक्ति याद आती है, जो अरस्तू (३८४–३२२ ई० पू०) के मुंह से निकली बताई जाती है: चिंतन विस्मय से ही आरंभ होता है। प्रकृति का जो रहस्य खुला है उस पर विस्मय की भावना विचारों की तीव्र धारा के लिए एक प्रबल प्रेरक शक्ति है। जब बच्चों ने यह देखा कि रासायनिक पदार्थों के घोल पर बिल्कुल अलग-अलग तरह की वनस्पतियां—टमाटर, खीरा, जौ—उग रही हैं, तो उन्होंने प्रश्नों की झड़ी लगा दी: "यह पारदर्शी घोल मोटे-मोटे डंठलों में, फूलों में और रसदार फलों में कैसे बदल जाता है?", "सजीव पदार्थ कहां से आते हैं? सूरज तो पौधे को हरियाली के टुकड़े देता नहीं—वह

तो बस रोशनी और गरमी देता है?", "एक ही घोल में से दो अलग-अलग चीज़ें – हरा खीरा और लाल टमाटर – क्यों उगती हैं?", "खीरा हरा क्यों है और टमाटर लाल क्यों – वे पास-पास ही तो उग रहे हैं?", "इन रंग-बिरंगे चूरों में क्या है?", "मिट्टी में डाले गए कम्पोस्ट से पौधे हरे क्यों हो जाते हैं?"

बच्चों के बौद्धिक विकास के लिए सजीव और निर्जीव के संबंधों को पहली बार अपनी आंखों से देखना-समझना कितना महत्वपूर्ण है! "सजीव पदार्थ कहां से आता है?", "सूरज निर्जीव पदार्थ में से सजीव पदार्थ कैसे 'बनाता' है?" ऐसे प्रश्नों पर मनन करते हुए बच्चा जीवन की महान पुस्तक को पढ़ने, जटिलतम प्रक्रियाओं के रहस्यों को जानने की तैयारी करता है।

"प्रकृति पुस्तक" पढ़ने को मैं बौद्धिक सक्रियता विकसित करने का साधन समझता था। मस्तिष्क में किसी बात का चित्र, बिंब, कल्पना बनना – यह तो चिंतन प्रक्रिया की केवल शुरुआत ही है। "कोई भी विधि अगर छात्र को केवल ज्ञान पचाना सिखाती है या निष्क्रियता का आदी बनाती है, तो वह बुरी विधि है, और जिस हद तक वह उसमें सृजनात्मक स्वावलंबन विकसित करती है, उसी हद तक अच्छी है," जर्मन शिक्षा-शास्त्री डिस्टेर्वेग (१७९०–१८६६) ने लिखा था। मेरी चेष्टा सदा यही होती थी कि "प्रकृति पुस्तक" का पढ़ना बच्चों के लिए प्रकृति के चित्रों और बिंबों को ग्रहण करना मात्र ही न हो, बल्कि यह सक्रिय चिंतन का, संसार के सैद्धांतिक संज्ञान का, वैज्ञानिक ज्ञान की प्रणाली का आरंभ हो।

"अच्छे से अच्छा अंतर्य भी छात्रों की चेतना तक तभी पहुंचता है, जबकि वह उनकी अपनी गतिविधियों का अंग बनता है", सुविख्यात सोवियत मनोवैज्ञानिक कोस्त्यूक लिखते हैं।

गतिविधियां महज़ गतिविधियों के लिए या निजी रुचियों की पूर्ति के लिए न हों, बल्कि ऐसी हों, जो वैज्ञानिक ज्ञान के अंतर्य को उजागर करें – यही सोवियत शिक्षाशास्त्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और सक्रियता की एकता का सार है।

"प्रकृति में सब कुछ परिवर्तनशील है" – यह है "प्रकृति पुस्तक" के अगले पृष्ठ का शीर्षक। हम कई बार इस विषय पर विचार करते हैं। शरद ऋतु के एक सुहावने दिन हम फलों के बाग़ में जाते हैं। सेबों और नाशपातियों के बोझ से टहनियां झुकी हुई हैं। मैं कहता हूं: "बच्चो, ज़रा

याद करो कि जाड़ों में हमारा बाग़ कैसा था—टहनियां नंगी थीं, तुषार से ढकी हुई और तने के चारों ओर हिम के ढेर... और अब टहनियों पर कितनी सारी पत्तियां हैं, सेब और नाशपातियां धरती का रस पाकर बढ़ रहे हैं।"

दो महीने बाद हम फिर बाग़ में जाते हैं। अब वह कैसा हो गया? धरती पर पीली पत्तियों का नरम कालीन बिछा हुआ है, टहनियों पर थोड़ी-सी ही पत्तियां रह गई हैं। पास-पास ही एक पुराना पेड़ और छोटी-सी जंगली पौध उग रहे हैं। यह सेब का पेड़ हमारे दादा-परदादा ने लगाया होगा। अब इसकी आधी टहनियां सूख गई हैं। सिर्फ़ कुछेक टहनियां ही हरी होती हैं और उन पर बड़े-बड़े फल लगते हैं। और एक-दो साल तक यह पेड़ खड़ा रहेगा, फिर इसे काटना पड़ेगा। उधर जंगली सेब के पतले से तने पर हरी टहनी है—छात्रों ने पुराने पेड़ से इसमें क़लम लगाई है। साल बीतेंगे और यह क़लम पेड़ बन जाएगी, उस पर फूल खिलेंगे और सुनहरे सेब लगेंगे।

"बच्चो, ध्यान से अपने चारों ओर देखो, क्या कोई भी ऐसा पौधा है, जो हमेशा एक जैसा रहता हो?"

बच्चों का जीवन अनुभव अभी अधिक नहीं है, किंतु वे जानते हैं कि पौधे का जन्म होता है, उस पर फूल आते हैं और फल लगते हैं। वे बताते हैं कि कैसे ज़मीन में से छोटा-सा अंकुर फूटता है, कैसे वह मोटे तने में बदल जाता है, कैसे कोंपलें खिलती हैं और पत्तियां निकलती हैं। बच्चे संसार में तेज़ी से, मानो छलांगों के रूप में होनेवाले परिवर्तनों को देखकर विस्मित होते हैं। कल हम आड़ू के बाग़ में गए थे, नंगी टहनियां और काली कोंपलें देखी थीं। आज सुबह आए तो बिल्कुल दूसरी ही तस्वीर देखते हैं: टहनियां छोटे-छोटे गुलाबी फूलों से लदी हुई हैं। ये कोंपलें इतनी जल्दी, एक ही रात में क्यों खिल गईं? पेड़ रात को सोता है या नहीं? क्या पेड़ सोते हैं? जब टहनी काटते हैं, तो क्या पेड़ को दर्द होता है? पेड़ क्यों पुराना पड़ता है और सूख जाता है?—इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढ़ने के लिए मुझे काफ़ी दिमाग़ लड़ाना पड़ा। लेकिन उत्तर पाकर प्रश्नों की नई बौछार होने लगी।

"प्रकृति पुस्तक" के इस पृष्ठ को हम तालाब के किनारे और खड्ड में, झाड़ियों के झुरमुट में और खेत में भी पढ़ते हैं। छिछले पानी में छोटे-छोटे टेडपोल तैर रहे हैं—बच्चे जानते हैं कि ये मेंढक बन जाएंगे।

लेकिन यह कैसे होता है? आख़िर मछलीघर में छोटी से छोटी मछली भी मछली क्यों होती है और यह टेडपोल मेंढक जैसा बिल्कुल भी क्यों नहीं? हम फ़ार्म में रेशम के कीड़ों को पालते हुए देखते हैं। खसखस के दाने जितने अंडे में से पेटू कीड़ा निकलता है। वह सिर्फ़ शहतूत की पत्तियां ही खाता है – क्यों? कीड़ा बड़ा होता जाता है और फिर कई बार केंचुली छोड़ता है – क्यों? फिर वह अपने चारों ओर रेशम का धागा लपेटता है, सुनहरी घर – कोया – बनाता है, उसमें छिप जाता है, वहां उसके साथ क्या होता है? हम कुछ कोये लेकर खिड़की पर रख देते हैं, और थोड़ी देर बाद सुंदर-सुंदर तितलियों को निकलते देखते हैं। तितलियां अंडे देती हैं – फिर से वही क्रम शुरू हो जाता है। कीड़ा बारीक रेशमी धागा कैसे बनाता है? कोया बनाने से पहले वह बहुत सारी शहतूत की पत्तियां क्यों खाता है?

प्रकृति के सक्रिय संज्ञान से संबंधित बच्चों की जितनी अधिक गतिविधियां होंगी, उतनी ही अधिक गहराई से, अधिक समझ के साथ वे अपने चारों ओर के संसार को देखेंगे। मेरे छात्र हर दिन अपने चारों ओर ऐसी परिघटनाओं को देख रहे थे, जिनकी ओर पहले उनका ध्यान नहीं जाता था। अब उन्होंने जीवन के ऐसे रूप देखे, जो उन्हें ज्ञात रूपों जैसे कदापि नहीं थे: अंधेरे, नम तहख़ाने में आलू पर सफ़ेद धागे-से निकल आए हैं – यह क्या है, जड़ें या भावी डंठल? पेड़ों के तनों के उन हिस्सों पर, जहां धूप नहीं पड़ती है हरी काई उग आती है – वह सूरज से क्यों छिपती है? काई के बीज क्यों नहीं होते? उसकी उपज कैसे होती है? सभी पेड़-पौधों पर फूल आते हैं, लेकिन काई पर तो नहीं आते। यह कैसी वनस्पति है?

"प्रकृति पुस्तक" की और कुछ पंक्तियां पढ़कर बच्चे देखते हैं कि जो सजीव है, केवल वही परिवर्तनशील नहीं है। हम नदी के तट पर चट्टान को देखते हैं। बच्चों को उसमें दरारें दीखती हैं। पत्थर की एक परत टूटकर हाथ में चूरचूर हो जाती है। मतलब, पत्थर भी सदा पत्थर नहीं रहता? बच्चों को याद आता है कि उन्होंने कुछ महीने पहले कहा था: "पत्थर धूप में भी और तहख़ाने में भी एक-सा रहता है।" दिन को पत्थर गरम हो जाते हैं और रात को ठंडे पड़ते हैं, उनमें दरारें पड़ती हैं, जिनमें पानी पहुंच जाता है। सो, पत्थर भी शाश्वत नहीं है।

"प्रकृति में सब कुछ परिवर्तनशील है"—इस विषय को समर्पित चिंतन के पाठों का विश्लेषण करते हुए मैंने यह देखा कि बच्चा जितना अधिक जानता जाता है, दैनंदिन जीवन में वह जितनी अधिक नियमसंगतियों को देखता जाता है, जिनकी ओर पहले उसका ध्यान नहीं गया था, उतना ही अधिक जानने की गहरी इच्छा उसमें जागती है, उसकी ज्ञानेंद्रियां चारों ओर के संसार की परिघटनाओं के प्रति उतनी ही अधिक संवेदनशील होती जाती हैं, ज्ञानेंद्रियों और चिंतन के बीच संबंध उतने ही सूक्ष्म होते हैं। सोवियत नृवंशविज्ञानी प्रोफ़ेसर नेस्तुर्ख की रचनाओं में मैंने ऐसे शब्द पाए, जो मेरे विचार में बच्चे के बौद्धिक विकास की प्रक्रिया को समझने की कुंजी देते हैं: बचपन में मनुष्य निरंतर नई-नई जानकारी पाता है और इसके फलस्वरूप इसी उम्र में उसमें **संज्ञान की निरंतर बढ़ती कामना** जागती है।

नई-नई जानकारी—पूर्ण बौद्धिक विकास के लिए यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण पूर्वाधार है। और अगर किन्हीं कारणों से बच्चे को नई-नई जानकारी नहीं मिलती, तो क्या होता है? बच्चा स्वयं जो कुछ देखता है, वह अभी जानकारी नहीं है। मानव समाज में शिक्षा इसी बात में निहित है कि बड़े छोटों को संसार के बारे में अपना ज्ञान देते हैं, बच्चों को वह नई-नई जानकारी देते हैं, जो उन्हें प्रभावित करती है।

मैं बड़े ध्यान से इस बात का पता लगाने लगा कि जन्म से लेकर स्कूल आने तक बच्चा किस वातावरण में पला था। कई रोचक नियमबद्ध बातें देखने में आईं। अगर स्कूल से पहले के वर्षों में बच्चे को अकेला छोड़ दिया जाता है, अगर बड़े उसे वह नई-नई जानकारी नहीं देते, जिसके बिना सामान्य मानवीय परिवेश की कल्पना भी नहीं की जा सकती, तो ऐसी हालत में बाल-मस्तिष्क निष्क्रिय रहता है: उसमें कौतूहल और जिज्ञासा जाती रहती हैं, उदासीनता विकसित होती है। क्या संज्ञान की निरंतर बढ़ती कामना ही वह सर्वाधिक महत्वपूर्ण चिंतन शक्ति नहीं है, जो बहुत हद तक बच्चे का बौद्धिक विकास निर्धारित करती है? प्रत्यक्षतः, यह ऐसा ही है।

पेत्रिक बचपन में सारा दिन अकेला ही रहता था। मां और नाना सुबह काम पर चले जाते थे और बच्चा घर पर सायबान के नीचे या बाड़ से घिरे लॉन में बैठा रहता था। थोड़ी-थोड़ी देर बाद पड़ोसिन आकर देख जाती थी कि बच्चा ठीक-ठाक है न। इस तरह २ से ५ साल तक बच्चे

की देख-रेख हुई। यह किसी पेड़-पौधे की देख-रेख जैसी थी। बच्चे को ठीक खाना मिलता था, पहनने को कपड़े, जूते मिलते थे, लेकिन उसके जीवन में सबसे बड़ी चीज़ का अभाव था – उसे मानवीय संसर्ग प्राप्त नहीं था। पांच साल की उम्र में पेत्रिक बाहर गली में अपने हमउम्र बच्चों के साथ खेलने लगा। जब वह स्कूल जाने लगा, तब भी वह अपनी मातृभाषा के बहुत-से बिल्कुल साधारण शब्दों का अर्थ नहीं समझता था। उसकी उदासीन दृष्टि, जो किसी भी वस्तु पर नहीं टिकती थी, मुझे किसी बूढ़े की दृष्टि लगती थी। इसका अर्थ यह था कि बच्चे के मस्तिष्क में चिंतन का सजीव भूद्रव्य – कार्टेक्स की कोशिकाएं – निष्क्रिय था, क्योंकि तंत्रिका-तंत्र के गठन के सबसे महत्वपूर्ण काल – मस्तिष्क की बालावस्था के काल – में बच्चे को अपने चारों ओर के संसार से निरंतर नई जानकारी नहीं मिल रही थी। इसलिए मैं सोचता था कि ऐसे बच्चे की शिक्षा में "प्रकृति पुस्तक" बहुत बड़ी भूमिका अदा करेगी।

...हम अगला पृष्ठ खोलते हैं: "जीवन बीज"। शरद ऋतु में बच्चे नाशपाती, सेब, आड़ू, आलूबुख़ारे के बीज इकट्ठे करते हैं। अपने अनुभव से वे जानते हैं कि बीजों में से ही पौधे उगते हैं। वसंत और गर्मियों में, जब वन-उपवन में, स्तेपी में, कुंज-विहार में, जीवन का निखार आता है, पेड़-पौधों पर बीज पकते हैं और इस तरह उनका वंश जारी रहता है। हम घूमने जाते हैं। वसंती हवा पाप्लर के बड़े-बड़े पेड़ों से और घास में उग रहे कुकरौंधे के फूलों से रोयें उड़ाती है। बच्चे इन हल्के-हल्के रोयों में बीज पाते हैं। वे आश्चर्यचकित हो जाते हैं: प्रकृति ने इन वनस्पतियों के बीजों की कितनी चिंता की है: सूखी धरती पर तो रोयें टिकते नहीं, लेकिन जहां भी नमी होती है, वहीं रोयें चिपक जाते हैं, "लंगर" डाल देते हैं और बीज में से अंकुर फूट निकलता है। बच्चे बड़ी लगन से "प्रकृति पुस्तक" की नई-नई पंक्तियां पढ़ते जाते हैं, वे देखते हैं कि कैसे कई पौधे अपने बीज "दाग़ते" हैं और जीवन के बीज चारों ओर उड़ जाते हैं, कैसे हवा में डोलते पोस्त के डोड़े के छोटे-से छेद में से वे बीज उड़ जाते हैं, जो दूसरे बीजों से पहले पक जाते हैं। आवर्धक लेन्स में हम कई बीजों के वे कांटे और "पंजे" देखते हैं, जिनसे वे लोगों के कपड़ों से या जानवरों के रोयों से चिपक जाते हैं। हम अनाज के बीज इकट्ठे करते हैं। बच्चे सोचते हैं: बीज में से पौधा कैसे उगता है? बीज सजीव है या निर्जीव? इस पृष्ठ की कुछ रोचक पंक्तियां बच्चे जाड़ों में पढ़ते हैं:

कुछ पौधे बर्फ़ पर अपने बीज फेंकते हैं, कुछ हफ़्तों तक बर्फ़ में पड़े रहने के बाद ही वे उगते हैं।

ज्ञान-पिपासा जितनी अधिक प्रबल होगी, उतनी ही अधिक लगन से बच्चे काम करेंगे, उतनी ही अधिक अच्छी तरह वे श्रम के अनुसंधानात्मक स्वरूप को देख पाएंगे। चारों ओर के संसार से मिलनेवाली जानकारी तब विशेषत: प्रबल प्रेरक शक्ति बन जाती है, जबकि हाथ सोचने में सहायता करते हैं, जब अपने श्रम में बच्चा उसे उद्विग्न करनेवाले प्रश्नों का उत्तर पाने की, रहस्यों को खोलने की तथा जिस बात को अभी वह अनुमान से ही समझ रहा है, उसकी सचाई का प्रमाण पाने की चेष्टा करता है। जो बच्चा विवश किए जाने पर नहीं, बल्कि अपनी सच्ची इच्छा से मेहनती बना है, वही सच्चा चिंतक बनता है। बच्चों के लिए श्रम करने की इच्छा का स्रोत सर्वप्रथम कुछ **जान पाने की अभिलाषा** ही है। अगर इस अभिलाषा को विकसित किया जाता है, तो बच्चों में श्रम से लगाव सुदृढ़ होता जाता है। शिक्षण कार्य में जिसे श्रम से लगाव कहा जाता है, वह वास्तव में जिज्ञासा, कौतूहल और बच्चे की आत्म-सम्मान की भावना का मिश्रण है।

"प्रकृति पुस्तक" के एक सबसे रोचक पृष्ठ "जीवन का स्रोत–सूरज" को समर्पित हमारी "यात्राओं" की बच्चों की चेतना और भावनात्मक स्मृति पर गहरी छाप पड़ी। गर्मियों की दुपहरी में हम खेत में, फलों के बाग़ में और अंगूर-वाटिका में जाते हैं। हमारे सामने गेहूं और सूरजमुखी के खेत हैं, अंगूर के गुच्छे, पीले पड़ते बबूगोशे और पकते टमाटर हैं। धरती की उर्वरता के इन वरदानों में बच्चे सूरज का प्रकाश और उष्मा देखते हैं। इन्सान को जो कुछ भी चाहिए वह उसे सूरज की बदौलत ही धरती देती है। बहुत से प्रेक्षणों और तुलनाओं से तथा कार्य-कारण संबंध स्थापित करके बच्चे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, जो उन्हें विस्मित करता है और विचारों की एक नई उड़ान की प्रेरणा देता है। बच्चे ग़ौर से अपने चारों ओर देखते हैं, हर वस्तु की उत्पत्ति के बारे में सोचते हैं। और जब वे यह पाते हैं कि सूरज ही जीवन का एकमात्र स्रोत है, तो उनकी विस्मय भावना और भी गहरी हो जाती है।

गेहूं, आलू, सूरजमुखी – कोई भी चीज़ सूरज के बिना नहीं हो सकती थी। गोश्त, दूध, मक्खन भी नहीं होता, क्योंकि पशु भी वही खाते हैं, जो सूरज के प्रकाश और गरमी से धरती पर उगता है। आश्चर्यचकित

हो बच्चे पूछते हैं : "यह सूरज क्या है? वह गरमी कहां से आती है, जो सूरज हमें भेजता है? जाड़ों में सूरज की गरमी इतनी कम क्यों होती है? क्या वह बुझ तो नहीं जाएगा? अगर सूरज बुझ जाएगा, तो क्या होगा?"

"प्रकृति पुस्तक" पढ़ते हुए बच्चों के मन में जो प्रश्न उठते हैं, वे उस ज्ञान-शिखर की ओर विचारों की तेज़ उड़ान की शुरुआत हैं, जहां से कुछ बरस बाद बच्चे जीवन के रहस्यों की जटिलता देख पाएंगे। मैं यह ख़याल रखता था कि बच्चे जिज्ञासु अन्वेषक और संसार के खोजकर्त्ता हों, कि जीवन के सत्यों को वे अध्यापक द्वारा दिखाए जाने पर तैयार रूप में ही न देखें, बल्कि वे इन सत्यों को अपने परिवेश के ज्वलंत चित्रों के रूप में देखें और इनसे उनका हृदय स्पंदित हो उठे। बच्चे ने अपने चारों ओर के संसार में जो नई चीज़ देखी है, जो खोज की है, वह अगर उसे उत्ते-जित करती है, तब जीवन के सत्य उसकी निजी धारणाएं बन जाते हैं, जिनके प्रति वह जीवन भर निष्ठावान रहता है। कुछ जान पाने की, संज्ञान की ख़ुशी तथा प्रकृति की भव्यता और उसकी नियमसंगतियों की सुघड़ता के सम्मुख विस्मय-विमुग्धता – यही पक्की याददाश्त का स्रोत है।

मैं बौद्धिक अनुभूतियों को ही कुछ बच्चों की स्मरण-शक्ति विकसित और पक्की करने का प्रमुख साधन समझता था। वाल्या को कुछ भी याद नहीं रहता था। यह आवश्यक था कि बच्ची का हृदय अपने चारों ओर के संसार के चित्रों पर विस्मय-विमुग्धता की भावना से ओत-प्रोत हो। कुछ दिनों तक हम खेत और जंगल में, नदी के तट पर, बाग़ और मधु-वाटिका में जाते रहे। वहां हमने "प्रकृति पुस्तक" का नया पृष्ठ पढ़ा, जिसका नाम था: "सभी सजीव पदार्थ अपने परिवेश के अनुसार अपने को ढालते हैं"। मैंने बच्चों का ध्यान इस ओर दिलाया कि कुछ फूल दोपहर की गर्मी में अपनी पंखुड़ियां समेट लेते हैं और शाम को खोल लेते हैं; कैसे वसंत में सबसे पहले उगनेवाले स्नोड्रॉप के फूल का कोमल डंठल पुरानी पत्तियों की परत को तीर की तरह चीरता हुआ सिर उठाता है; कैसे मधुमक्खियां, छत्ता बनाती हैं और कैसे उसके खानों में शहद भरती हैं; कैसे अंगूर की जड़ें तीन मीटर की गहराई तक पहुंचकर ज़मीन में से नमी लेती हैं; कैसे बेदमदजनूं की टहनी पानी के पास जमी काई में गिरकर जड़ें छोड़ती है और उसमें से पेड़ उग आता है।... इन सब खोजों से बच्ची के मन में हर्षमय उत्तेजना हुई। उसकी आंखों में उदासीन-

ता की जगह अब जिज्ञासा की चमक दिखने लगी। सदा चुप रहनेवाली वाल्या बोल उठी, वह पूछने लगी: "मधुमक्खी को कैसे पता चलता है कि उसका घर कहां है? वह अपना छत्ता कैसे ढूंढ़ती है? स्नोड्रॉप के फूल को ठंड नहीं लगती, क्या – जब वह खिलता है, तब तक पेड़ों तले कहीं-कहीं बर्फ़ बची होती है?" जहां प्रश्न है, वहां विचार भी है और जहां विचार है, वहां स्मृति अपने परिवेश के सजीव चित्रों को, प्रकृति की नियमबद्धताओं के ज्ञान को संजोए रखती है।

"प्रकृति पुस्तक" के निम्न पृष्ठ हमने एक के बाद एक पढ़े: 'वनस्पति जगत और जीव जगत', 'पानी की बूंद की यात्रा', 'मनुष्य प्राकृतिक शक्तियों का उपयोग करता है', 'वसंत में प्रकृति का जागरण', 'गर्मियों के सबसे लंबे दिन', 'जंगल, खेतों और मैदानों में वसंती फूल', 'गर्मियों के फूल', 'शरद की संतान – गुलदाउदी के फूल', 'तालाब में जीवन', 'शरद ऋतु के अंतिम सुहावने दिन', 'प्रकृति जाड़े की प्रतीक्षा में', 'जाड़े की पहली सुबह', 'शीतकालीन वन में पक्षियों का जीवन', 'गेहूं की बालियां', 'मधुमक्खियों का जीवन', 'अबाबीलें घोंसले बनाती हैं', 'काली घटाएं आ रही हैं', 'जाड़ों में फूलों की दुनिया', 'जंगल नमी बनाए रखता है', 'सारस आ गए', 'पंछी गरम देशों को जाने की तैयारियां कर रहे हैं', 'गर्मियों की बारिश के बाद धूप खिली है', 'नदी के ऊपर इंद्रधनुष', 'सूरजमुखी के फूल खिले', 'आकाश पर तारे', 'मिट्टी का जीवन', 'हरी पत्ती – सूरज का भंडारघर', 'खुंबियां और काई' 'कैसे छोटे-से बीज से बड़ा बलूत वृक्ष उगता है', तथा अन्य।

"बुरा अध्यापक बच्चों को सत्य से परिचित कराता है, अच्छा अध्यापक उन्हें सत्य खोजना सिखाता है," डिस्टेर्वेग ने लिखा था। आजकल के ज़माने में संसार की परिघटनाओं के प्रति अनुसंधानात्मक रुख़ का महत्व बहुत बढ़ गया है। यह बहुत ज़रूरी है कि छात्रों के सोचने-समझने का ढंग खोज और अनुसंधान पर आधारित हो, कि वैज्ञानिक सत्य को जानने-समझने से पहले छात्र तथ्यों को देखें, उनकी परस्पर तुलना और विश्लेषण करें। प्रकृति की परिघटनाओं और चित्रों का प्रेक्षण करते हुए बच्चा चिंतन के रूपों और प्रक्रियाओं में दक्षता पाता है, नई-नई अवधारणाओं का उसे पता चलता है, और ये अवधारणाएं उन ठोस कार्य-कारण संबंधों की सार्थकता लिए होती हैं, जिसे जिज्ञासु अन्वेषक अपनी तीव्र दृष्टि से देख लेता है। "प्रकृति पुस्तक" पढ़ते हुए बच्चों में एक विशेष गुण विकसित

हुआ : अमूर्त अवधारणाओं से काम लेते हुए बच्चे मन ही मन उन बिंबों और चित्रों का ख़याल करते थे, जिनके आधार पर ये अवधारणाएं निरूपित हुईं।

जब मेरे छात्र किशोर और फिर तरुण हुए, तो मुझे यह जानने की विशेष उत्सुकता थी कि संसार के सक्रिय संज्ञान का उनके सामान्य बौद्धिक विकास पर, उनके बौद्धिक श्रम के ढंग और स्वरूप पर तथा उनकी बौद्धिक अभिरुचियों पर क्या प्रभाव पड़ा है। मैंने यह पाया कि मेरे छात्रों के बौद्धिक जीवन में जिज्ञासा का विशेष स्थान है। वे सब कुछ जानना-समझना चाहते हैं, उनके चारों ओर जो कुछ भी है, वह सब उनकी भावनाओं और विचारों को प्रभावित करता है। किशोरावस्था में और यौवन के पहले वर्षों में भी मेरे छात्रों के बौद्धिक जीवन का एक लक्षण यह था कि वे परिघटनाओं और वस्तुओं को उनके परस्पर संबंध में देखते थे। जो कुछ भी अस्पष्ट होता, उन्हें समझ में न आता, उसे वे पुस्तकें पढ़कर जानने-समझने का प्रयत्न करते थे। पुस्तकें उनके लिए ज्ञान का स्रोत और आत्मिक आवश्यकता बन गईं।

वस्तुओं की दुनिया से समाज की ओर। क्या चीज़ कहां से आती है?

प्रकृति मानव-निर्माण का फलप्रद स्रोत है। परंतु प्रकृति के संज्ञान के साथ तो बुद्धि, भावनाओं, दृष्टिकोण और धारणाओं का गठन केवल आरंभ ही होता है। मनुष्य समाज में जीता है और सारतः उसका सारा जीवन वे संबंध ही हैं, जो वह दूसरे लोगों के साथ स्थापित करता है। मेरी चेष्टा यह थी कि प्राथमिक विद्यालय में चार वर्षों तक पढ़ने के दौरान बच्चे धीरे-धीरे एक महत्वपूर्ण सत्य को पूरी तरह समझ लें, आत्मसात कर लें: मनुष्य इसी बात की बदौलत जीता है कि सैकड़ों, हज़ारों दूसरे लोग उसकी भौतिक और आत्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं; सैकड़ों, हज़ारों लोगों के लिए भौतिक और आत्मिक संपदा का सृजन किए बिना समाज में नहीं रहा जा सकता। श्रम में, सामाजिक संबंधों में मनुष्य का नैतिक

स्वरूप, उसकी ग्रात्मिक संस्कृति, जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण बनते हैं। शिक्षक का एक महत्वपूर्ण कार्यभार यह है कि बच्चे अपने मनोमस्तिष्क से यह समझें और अनुभव करें कि भौतिक और आत्मिक संपदा के सृजन के ज़रिए ही हमारे समाज में इन्सान के प्रति इन्सान का रुख़, नागरिक का सामाजिक रूप व्यक्त होते हैं।

अपने अनुभव से मैंने यह पाया कि छोटे बच्चे वस्तुओं की समझ के ज़रिए ही सामाजिक संबंधों को समझने लगते हैं और इस प्रक्रिया में उनके मन में उठनेवाले इस प्रश्न का बहुत महत्व होता है: "क्या चीज़ कहां से आती है?"

हमने स्कूल के भोजनालय में खाना खाया, बर्तन धो दिए। ठहरो, बच्चो, अभी नहीं जाओ। आओ, थोड़ी देर और बैठे रहें। ज़रा सोचें कि आज जो चीज़ें हमें मिलीं वे कहां से आईं? यहां भोजनालय में हमारे लिए जो कुछ रखा हुआ है, वह सब कहां से आया है? बच्चे वे सारी चीज़ें गिनाते हैं, जो आज उन्होंने खाई थीं: रोटी, गोश्त, आलू, दूध, मक्खन, अंडे... खाना भट्ठी में पकाया गया, जिसे अभी हाल ही में नई ईंटों से बनाया गया है। भट्ठी में कोयला जलाया जाता है, कोयला खान से आया है। हम कुर्सियों पर बैठे हैं। कुर्सियां और मेज़ें धातु की नालियों और प्लास्टिक से बनी हैं।

"सब कुछ गिना दिया?" मैं पूछता हूं।

"सब कुछ," बच्चे कहते हैं।

"ज़रा ग़ौर से देखो, अभी कुछ चीज़ों पर तुम्हारा ध्यान नहीं गया..."

कोने में फ़्रिज रखा है, वह बिजली के बिना नहीं चल सकता। दीवारों पर बिजली के बल्ब जल रहे हैं। क्या इन चीज़ों की ओर बच्चों का ध्यान जाएगा?

बच्चे यह सब देख लेते हैं। आश्चर्यचकित होकर वे इस सत्य का बोध पाते हैं कि अगर बिजली न होती तो घर पर रहना और स्कूल में पढ़ना कितना कठिन होता।

ये सब चीज़ें कहां से आईं, जिनके बिना हम नहीं रह सकते?

इस प्रश्न से सामाजिक उत्पादन के क्षेत्र, श्रम संबंधों की हमारी "यात्राएं" आरंभ हुईं। हमारा हर क़दम एक नई खोज था। बच्चों ने देखा: हमारी मेज़ पर रोटी हो, इसके लिए प्रायः सभी बच्चों के माता-पिता को श्रम करना चाहिए। लेकिन यही काफ़ी नहीं। उन मज़दूरों को

भी श्रम करना चाहिए, जो ट्रैक्टर, हल, कम्बाइनें बनाते हैं–इन मशीनों के बिना तो अन्न नहीं उगाया जा सकता। खनिकों को भी श्रम करना चाहिए, क्योंकि कोयले के बिना लोहा नहीं गलाया जा सकता, जिससे ये मशीनें बनती हैं। इस सत्य की खोज करके बच्चों के मन में श्रमिकों के प्रति गहरे आदर की भावना जागी।

दूसरी वस्तुओं को पास से देखने पर हम और कई आश्चर्यजनक खोजें करते हैं। हमारी मातृभूमि के दूर-पास के शहरों और गांवों में रह रहे विभिन्न पेशों के हज़ारों लोग श्रम करते हैं, तब कहीं कोयला धरती के गर्भ में से हमारे स्कूल के भोजनालय में पहुंचता है। सैकड़ों लोगों को हमारे लिए मेज़ें बनाने, ईंटें बनाने के लिए श्रम करना चाहिए।

इसी तरह हम इस बात पर सोच-विचार करते हैं कि हमारे कपड़े कहां से आए, कागज़ कैसे बनता है, किसने हमारे लिए किताबें और फ़िल्में बनाई हैं, कौन संगीत रचता है। हर दिन, हर सप्ताह, हर मास हम धीरे-धीरे सामाजिक संबंधों के जटिल अंतर्ग्रंथन को देख रहे थे, समझ रहे थे। हम वस्तुओं के संसार के ज़रिए इन्सान को जान-समझ रहे थे। वस्तुएं, भौतिक और आत्मिक संपदाएं मनुष्य को देखने, समझने, अनुभव करने में हमारी सहायता कर रही थीं। नानबाई स्तेपान मक्सीमोविच को बच्चों ने काम करते देखा था; अब वह उनके लिए एक साधारण श्रमिक नहीं थे, जो अपने श्रम से रोटी-रोज़ी कमाते थे, बल्कि जीवन के सृजनकर्त्ता भी थे, जिनके बिना सैकड़ों, हज़ारों लोग नहीं रह सकते थे। हर हफ़्ते हम कम्बाइन और ट्रैक्टर चालकों, ख़रादियों और फ़िटरों तथा दूसरे लोगों से मिलते थे, जो सैकड़ों, हज़ारों लोगों के लिए भौतिक और आत्मिक संपदा का सृजन करते हैं। वसंत में एक दिन हम क्रेमेन्चूग पनबिजलीघर देखने गए। वहां हमने बिजली बनते देखी, वहां काम करनेवाले लोगों से मिले।

बच्चों की नैतिकता के लिए यह बात बहुत मानी रखती है कि जिन लोगों से वे मिलते हैं, उनका अपने श्रम के प्रति क्या रुख़ है। बाल-हृदयों पर इस बात का गहरा प्रभाव पड़ा कि देखने में साधारण-सी वस्तुएं जैसे रोटी, गोश्त, दूध, चीनी आदि बनानेवाले लोग अपने श्रम पर गर्व करते हैं, यह समझते हैं कि इस तरह वे समाज की सेवा कर रहे हैं। यह सत्य कि श्रम मनुष्य को ऊंचा उठाता है, उसे भरे-पूरे सुख की अनुभूति प्रदान करता है, अब बच्चों के लिए कोई कोरी बात नहीं थी, बल्कि स्वयं

जीवन का सार था। बचपन में ही वे इस बात के कायल हो गए थे कि समाज के हित में ईमानदारी से श्रम करते हुए ही वे अपनी शक्ति को, अपनी सृजन-क्षमताओं को मुखरित कर सकते हैं।

एक हज़ार पहेलियां

स्कूल का एक प्रमुख कार्यभार है छात्रों को सृजनात्मक विचारोंवाले व्यक्ति बनाना, जिनमें जिज्ञासा और अन्वेषण की ललक हो। बचपन की कल्पना मैं चिंतन-शिक्षा के काल के रूप में करता हूं और शिक्षक को ऐसा व्यक्ति मानता हूं, जो बड़ी सावधानी और जतन से अपने शिष्यों के चरित्र तथा आत्मिक जगत का निर्माण करता है। बच्चे के मस्तिष्क को विकसित और सुदृढ़ करने की चिंता, यह चिंता कि संसार को प्रतिबिंबित करनेवाला यह दर्पण सदा संवेदनशील और ग्रहणशील बना रहे—यह शिक्षक का एक सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। जिस प्रकार मांसपेशियां शारीरिक अभ्यास से, कठिनाइयों को लांघते हुए विकसित और मज़बूत होती हैं, उसी प्रकार मस्तिष्क के विकास के लिए भी श्रम करने की, उस पर ज़ोर डालने की आवश्यकता होती है।

बच्चे का मस्तिष्क कोशिकाओं की ऊर्जा के आवेग की आंतरिक प्रक्रिया के फलस्वरूप ही विकसित और सुदृढ़ होता है। जब बच्चा वस्तुओं और परिघटनाओं के बीच कार्य-कारण, कालगत या क्रियागत आदि तरह-तरह के संबंध देख पाता है, तभी उसके मस्तिष्क की कोशिकाओं में ऊर्जा का यह आवेग आता है। बच्चा जिन संबंधों को नहीं समझता है, उनके बारे में सोच-विचार करता है, उनके सार को खोजता है, उसे समझने की कोशिश करता है, तब उसके मस्तिष्क की कोशिकाओं में मानो उनकी "सूक्ष्म मांसपेशियां" तन जाती हैं और इनकी शक्ति ही बुद्धि होती है। मैं अपना कार्यभार यह समझता था कि "तनी हुई सूक्ष्म मांसपेशियों" में हर बार नई शक्ति का प्रवाह हो। यह जटिल परिघटना ही मस्तिष्क के तथा उसके सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुण—तीव्र, जिज्ञासु और प्रेक्षणकारी बुद्धि के गठन, सुदृढ़ीकरण और विकास की प्रक्रिया है।

मानव मस्तिष्क का कार्य असतत होता है। चारों ओर के संसार से आनेवाले सूचना प्रवाह से कार्टेक्स की कोशिकाओं का कभी एक और कभी

दूसरा समूह उत्तेजित होता है। विचार पलक झपकते ही एक विषय से दूसरे पर जाता है, विचार का यह अंतरण चिंतन प्रक्रिया की एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण नियमसंगति है। क्षण भर में ही विचार को दूसरे विषय पर ले जाने की क्षमता अच्छी बौद्धिक क्षमता का प्रमुख पूर्वाधार है। विचार के अंतरण के अनुसार ही मस्तिष्क में कोशिकाओं का कभी एक समूह और कभी दूसरा उत्तेजित होता है। बच्चा सोच सकता है—इसका अर्थ यह है कि एक निश्चित समय के दौरान (उदाहरणतः, एक सेकंड में) विचार अनेक बार एक विषय से दूसरे विषय पर जाता है—इतनी तेज़ी से कि स्वयं सोचनेवाले को इस अंतरण का कोई आभास नहीं होता और उसे लगता है, मानो वह एक ही समय पर तालाब के क्षेत्रफल के बारे में भी तथा पहले और दूसरे नलों के बारे में भी, जिनसे समय की एक इकाई में अलग-अलग मात्रा में पानी तालाब में गिरता है, सोच रहा है। दूसरे शब्दों में छात्र एकसाथ ही विभिन्न वस्तुओं और परिघटनाओं पर विचार करता है, उनकी तुलना और विश्लेषण करता है। हमारा कार्यभार यह है कि प्रत्येक बच्चे में मस्तिष्क की यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षमता विकसित हो।

हाज़िरजवाबी और समझदारी परखने के लिए बच्चों से पूछे जानेवाले सवाल एक तरह से मस्तिष्क की आंतरिक ऊर्जा को क्रियाशील करने, "बौद्धिक मांसपेशियों" को सक्रिय बनाने के लिए अभ्यास होते हैं। हमारे चारों ओर की वस्तुएं और परिघटनाएं ही ये सवाल पेश करती हैं। मैं बच्चों का ध्यान किसी परिघटना की ओर दिलाता था और यह कोशिश करता था कि बच्चे उसमें छिपे संबंधों को देखें, कि उनके मन में इन संबंधों के सार का पता लगाने, सत्य को समझने की इच्छा जागे। सवालों की कुंजी सदा मनुष्य के श्रम में, सक्रिय गतिविधि में ही होती है। दिमाग़ पर ज़ोर डालते हुए, वस्तुओं और परिघटनाओं के बीच संबंध स्थापित करने का प्रयत्न करते हुए बच्चा निश्चित कार्य करता है। बच्चों के चारों ओर के संसार में हज़ारों सवाल हैं। सदियों से लोग इन्हें सोचते और पहेलियों के रूप में बूझते आए हैं। एक दिन आराम करते समय बच्चों से मैंने इस तरह का पहला सवाल पूछा :

"एक आदमी को भेड़िये, बकरी और गोभी को नदी के पार ले जाना है। नाव में वह अपने साथ सिर्फ़ दो 'सवारियां' ले जा सकता है। भेड़िये और बकरी को या बकरी और गोभी को न तो एकसाथ ले जाया

जा सकता है, न छोड़ा जा सकता है। आदमी जितनी बार चाहे नदी के आर-पार जा सकता है। बताओ, वह कैसे सबको उस पार ले जाए कि सब कुछ सही-सलामत रहे?"

ऐसी सैकड़ों पहेलियां हैं। इस तरह के सवालों को हल करने में बच्चों को बड़ी दिलचस्पी होती है। सभी बच्चे सोचने लगे कि कैसे "सवारियों" को उधर ले जाया जाए, ताकि भेड़िया बकरी को या बकरी गोभी न खा जाए। हम तालाब के किनारे बैठे हैं। बच्चे रेत पर नदी बनाते हैं, छोटे-छोटे कंकड़ भेड़िया, बकरी और गोभी बन गए। हो सकता है, सभी बच्चे पहेली न बूझ सकें। लेकिन बच्चे जो दिमाग़ पर ज़ोर लगाते हैं, यह उनकी बौद्धिक शक्ति के विकास का अनुपम साधन है।

ऐसे सवालों-पहेलियों को हल करना शतरंज के खेल के समय बौद्धिक श्रम के समान है: दोनों में आगे की कुछ चालों को ध्यान में रखना होता है। मैंने यह सवाल सातवर्षीय बच्चों को दिया, जब उन्हें पहली कक्षा में पढ़ते हुए कुछ ही दिन हुए थे। कोई दस मिनट बाद तीन बच्चों–शूरा, सेर्योझा और यूरा ने सवाल हल कर लिया। इनके विचारों की तेज़ी से बहती धारा के साथ ही स्मरण-शक्ति भी तीव्र है। १५ मिनट में प्रायः सभी बच्चों ने सवाल हल कर लिया, लेकिन वाल्या, नीना, पेत्रिक और स्लावा कुछ नहीं सोच पा रहे थे। मैं देख रहा था कि बच्चों की चेतना में विचारों का क्रम मानो टूट जाता है। बच्चे सवाल का अर्थ समझते थे, सवाल में जिन वस्तुओं और परिघटनाओं की चर्चा थी, उनकी वे स्पष्टतः कल्पना कर रहे थे, लेकिन जैसे ही वे कोई अनुमान लगाते, उनकी चेतना में बना चित्र धुंधला पड़ जाता, जो अभी-अभी इतना स्पष्ट था, दूसरे शब्दों में बच्चों को क्षण भर पहले जो बात याद थी, उसे वे भूल जाते थे।

मैं बच्चों के लिए नई-नई पहेलियां ढूंढ़ता था, सर्वप्रथम इस आशा से कि मेरे मंदबुद्धि छात्रों के मन में पहेलियों के अंतर्य, कथानक के प्रति रुचि जाग जाए। कुछ दिनों बाद मैंने यह पहेली बूझी: "सैनिकों की एक छोटी-सी टुकड़ी को नदी पार करनी थी। पुल टूटा हुआ था और नदी काफ़ी गहरी थी। अब क्या किया जाए? अचानक कमांडर को नदी के किनारे दो लड़के दिखे, जो एक छोटी-सी नाव में खेल रहे थे। पर नाव इतनी छोटी थी कि उसमें सिर्फ़ एक सिपाही या दो लड़के ही नदी पार कर सकते थे। परंतु फिर भी सब सिपाही इस नाव में ही नदी के पार पहुंच गए। बताओ कैसे?"

मैं फिर देखता हूं कि बच्चे कैसे सोचते हैं। वे फिर रेत पर चित्र बनाते हैं, स्मृति में कुछेक "शतरंज की चालें" बनाए रखने की कोशिश करते हैं। नीना, स्लावा और पेत्रिक उलझन में हैं। वाल्या की आंखें चमक उठती हैं: उसने पहेली बूझ ली है।

मैं मंदबुद्धि छात्रों के साथ अलग से सवाल हल करने लगा। उनके लिए मैंने कुछ ऐसी आसान-सी पहेलियां ढूंढ़ीं, जिनकी सहायता से वे गिनती अच्छी तरह समझ सकें और अंकों के बीच परस्पर संबंध स्थापित कर सकें। यह देखिए ऐसी कुछ पहेलियां:

१. "बाज़ और पेड़": बाज़ उड़ते-उड़ते थक गए, उन्होंने सोचा, चलो पेड़ पर बैठा जाए। नीचे कुछ पेड़ थे, अगर एक-एक बाज़ एक-एक पर बैठता है, तो एक बाज़ बच जाता है और अगर एक पेड़ पर दो-दो बाज़ बैठें, तो एक पेड़ बच जाता है। बताओ, कितने बाज़ हैं और कितने पेड़ हैं?

२. "दो गड़रिये": दो गड़रिये भेड़ें चरा रहे थे। एक गड़रिया दूसरे से बोला: "अगर तू मुझे एक भेड़ दे दे, तो हमारे पास एक जितनी भेड़ें हो जाएं।" दूसरा गड़रिया बोला: "अगर तू मुझे एक भेड़ दे दे, तो मेरे पास तेरे से दुगनी भेड़ें हो जाएं।" बताओ, दोनों गड़रियों के पास कितनी-कितनी भेड़ें थीं?

३. "कितने हंस?": हंसों का झुंड उड़ता जा रहा था, सामने से एक दूसरा हंस आ रहा था। वह बोला: "नमस्ते, सौ हंसो!" हंसों ने जवाब दिया: "नहीं, हम सौ नहीं हैं। अगर हम जितने हैं, उतने ही हमारे साथ और आ मिलें और हमारे से आधे और आ जाएं, फिर हमारे से चौथाई और आ जाएं और फिर तुम भी आ मिलो, तब हम सौ हो जाएंगे।" बताओ, कितने हंस थे?

४. "सिर और पैर": अहाते में मुर्ग़ियां दाना चुग रही हैं और ख़रगोश उछल-कूद रहे हैं, कुल १० सिर और २४ पैर हैं। बताओ, कितने ख़रगोश हैं और कितनी मुर्ग़ियां?

५. "कितनी गेंदें हैं?": एक झोले में १० पीली गेंदें हैं, १० लाल, ५ हरी और ५ काली। आंखें मूंदकर झोले में से कम से कम इतनी गेंदें निकालो कि उनमें एक ही रंग की सात गेंदें हों।

ऐसी पहेलियां बौद्धिक अभ्यास का अद्वितीय साधन हैं। हर सवाल को

हल करते हुए पहले की और आगे की २ से ४ तक "शतरंजी चालें" याद रखनी होती हैं। यह काम शुरू करने के कोई छह महीने बाद वाल्या और स्लावा सवाल हल करने लगे, पेत्रिक और नीना अभी कुछ नहीं कर पाते थे। वे उन बातों को अपनी स्मृति में नहीं बनाए रख सकते थे, जिनके बिना अगली "शतरंजी चाल" नहीं चली जा सकती।

इसका क्या कारण है? प्रत्यक्षतः, कुछ बच्चों में तुरंत ही एक विषय से दूसरे विषय पर विचार ले जाने की क्षमता नहीं होती। इस क्षमता की अभिव्यक्ति इस बात में होती है कि बच्चा सवाल के सभी तत्वों को स्मृति में बनाए रख सकता है, अपने विचारों में एकसाथ कुछेक "शतरंजी चालों" को देख सकता है। कुछ बच्चों में कॉर्टेक्स की कोशिकाओं की यह क्षमता क्यों नहीं प्रकट होती – यह दूसरा प्रश्न है। यह आवश्यक नहीं कि ऐसा जन्मजात विशिष्टताओं के ही कारण हो, परंतु फिर भी इस कारण को नज़रंदाज़ नहीं किया जा सकता। मेरे प्रेक्षण से इस बात की पुष्टि हुई कि अगर विचारों का क्रम सहसा टूट जाता है, अगर बच्चा एक ही क्षण में अपनी कल्पना में वह नहीं देख पाता, जो इस क्षण उसे स्पष्टतः नज़र आता है और जो क्षण भर पहले स्पष्टतः नज़र आ रहा था, तो इसका अर्थ है कि वह सोच नहीं सकता, उसके लिए कुछेक वस्तुओं और परिघटनाओं के बीच संबंध स्थापित करना मुश्किल है।

मैं वाल्या, पेत्रिक और नीना जैसे मंदबुद्धि बच्चों के चिंतन का अध्ययन किसी सैद्धांतिक उद्देश्य से नहीं कर रहा था। मेरा लक्ष्य था इन बच्चों के लिए बौद्धिक श्रम आसान बनाना, उन्हें पढ़ाई करना, अध्ययन करना सिखाना। प्रेक्षणों से इस बात की पुष्टि हुई कि सर्वप्रथम बच्चों को अपने विचारों में एकसाथ कुछेक वस्तुओं, परिघटनाओं, घटनाओं की कल्पना करना, उनके बीच संबंधों को समझना सिखाना चाहिए। बच्चे को एक वस्तु के सार और उसकी आंतरिक नियमबद्धताओं को गहराई से देखते हुए धीरे-धीरे कुछेक वस्तुओं को एकसाथ मानो दूरी से देखना सीखना चाहिए। मंदबुद्धि बच्चों के चिंतन का प्रेक्षण करते हुए मेरा यह विश्वास पक्का हो रहा था कि उदाहरणतः सवाल को न समझ सकना, ठोस वस्तुओं से हटकर अमूर्त रूप से न सोच सकने का परिणाम है। बच्चों को अमूर्त अवधारणाओं के माध्यम से सोचना सिखाना चाहिए। वाल्या को अपनी कल्पना में भेड़िये का बिंब बनाने की कोई ज़रूरत नहीं है, उसका विचार इस बात पर नहीं रुकना चाहिए कि कैसे बकरी गोभी की ओर मुंह बढ़ा

रही है। ये सब बिंब उसकी कल्पना में अमूर्त होने चाहिए। परंतु अमूर्त बिंब की कल्पना करने के लिए ठोस बिंब की गहरी समझ होनी चाहिए। हमें यह समझना चाहिए कि बच्चा जब सोचता है, तो उसके मस्तिष्क में क्या होता है। बच्चों में चिंतन-क्षमता विकसित करनी चाहिए, अन्यथा वे स्मरण-शक्ति पर ज़ोर देंगे, रटेंगे, जिससे चिंतन-शक्ति और भी कमज़ोर होती है। मैंने यह कल्पना करने की कोशिश की कि मेरे छात्रों के दिमाग़ में क्या प्रक्रियाएं होती हैं। हो सकता है मेरी कल्पना में इन प्रक्रियाओं का जो चित्र बना, वह स्थूल हो, लेकिन मेरे ख़याल में वह काफ़ी हद तक वास्तविकता को प्रतिबिंबित करता है। जब बच्चे का विचार एक विषय से, बिंब से दूसरे पर जाता है, तो मस्तिष्क की कोशिकाओं का एक नया समूह उत्तेजित होता है। विचार केवल तभी आगे ही आगे बढ़ता जाएगा, जबकि उत्तेजना के नए केंद्र और इससे पहले के केंद्र के बीच वे तार नहीं टूट जाते, जिनसे दोनों ओर सूचना, संकेत आते-जाते हैं: नया बिंब मानो पहले प्राप्त बिंब को अपने बारे में बताता है और पहले प्राप्त बिंब, जो अब मस्तिष्क में पक्का हो रहा है, नए बिंब को अपना आभास दिलाता है; क्षण भर में ही अनेक बार यह आदान-प्रदान होता है; यह प्रक्रिया ही वह बात है, जिसके बारे में हम कहते हैं: बच्चा सोच रहा है, समझ रहा है। उत्तेजना के केंद्रों के बीच ये तार जितने सुदृढ़ होंगे, विचार उतना ही गहरा होगा, तथा बच्चे अपनी बुद्धि में एकसाथ जिन वस्तुओं और परिघटनाओं को देख सकते हैं, उनकी परिधि उतनी ही व्यापक होगी।

इन तारों की सुदृढ़ता के स्रोत प्रत्यक्षतः मस्तिष्क के सजीव भूद्रव्य की प्रकृति में, मस्तिष्क में होनेवाली अतिसूक्ष्म जैवरासायनिक प्रक्रियाओं में भी निहित हैं; और जैसा कि स्कूल से पहले के वर्षों में बच्चों के प्रेक्षण से पता चलता है, उस परिवेश में भी ये स्रोत निहित हैं, जिन पर तंत्रिका-तंत्र की बालावस्था में बौद्धिक क्षमताओं का गठन निर्णायक रूप से निर्भर है। इसमें कोई संदेह नहीं था कि वाल्या, नीना और पेत्रिक के मस्तिष्क की कोशिकाओं में वह तंत्रिकीय ऊर्जा पर्याप्त रूप से विकसित नहीं है, जो चिंतन के सजीव द्वीपों को जोड़नेवाले तारों की सुदृढ़ता का स्रोत है। तार कमज़ोर हैं, "द्वीपों" के बीच संबंध शीघ्र ही बुझ जाते हैं, बच्चा एक समय पर कुछेक बिंबों को अपने विचारों में नहीं समेट सकता। जब पेत्रिक उस बात को, जिसकी वह अभी-अभी क्षण भर पहले बिल्कुल स्पष्टतः कल्पना कर रहा था, याद करने का भरसक प्रयत्न करता था और

याद नहीं कर पाता था – तब मैं मानो अपनी आंखों से यह देख पाता था कि विचारों का तार टूट जाता है।

प्रत्यक्षतः, चिंतन की इस विशिष्टता के कारण अलग-अलग बच्चों के लिए अलग-अलग हैं। मेरे ख़याल में, सबसे बड़ा कारण यह है कि शैशव काल में जब चारों ओर के संसार से बच्चा जिन बिंबों, चित्रों को ग्रहण करता है, उनका प्रवाह अत्यंत विविधतापूर्ण होता है, तब वह वस्तुओं और परिघटनाओं के बीच संबंधों के बारे में बहुत कम सोचता है, बच्चे के मस्तिष्क में चिंतन के सजीव द्वीप द्विपक्षीय सूचना के प्रवाह से आपस में नहीं जुड़े होते – यह सब बड़ों द्वारा बच्चों के चिंतन की ओर ध्यान न देने, उसके प्रति उदासीनता दिखाने का ही परिणाम है। बच्चे ने एक बार बड़ों से पूछा: "क्यों?" उसे जवाब नहीं मिला, दूसरी बार पूछा – फिर जवाब नहीं मिला। बड़ों की यह उदासीनता (और कभी-कभी तो झल्लाहट भरी चीख़ तक: "जाओ, बाबा, सिर मत खाओ!") उन कोमलतम तारों को क्षीण करती है, जिन्हें इस उम्र में दिन दूना, रात चौगुना मज़बूत होना चाहिए।

चिंतन की इस नकारात्मक विशिष्टता का एक कारण यह भी होता है कि संसार की परिघटनाओं के प्रति कुछ बच्चों की भावनात्मक प्रतिक्रिया क्षीण होती है। इसके फलस्वरूप सबकार्टेक्स से आनेवाले भावनात्मक आवेग कमज़ोर पड़ जाते हैं।

समय के साथ-साथ मैं यह अधिकाधिक स्पष्टता के साथ देख रहा था कि स्कूल जाने से पहले के वर्षों में बच्चों के लिए माता-पिता का शिक्षा संबंधी ज्ञान कितना महत्व रखता है। जब बच्चा स्कूल में नहीं पढ़ रहा होता, उन्हीं दिनों माता-पिता को शिक्षा और चरित्र-निर्माण के बारे में ज्यादा बताना चाहिए। भावी स्कूल-छात्रों के बारे में सोचते हुए हमने माता-पिताओं के लिए कक्षाएं आयोजित कीं, जिनमें २ से ६ साल तक के बच्चों की माताओं और पिताओं को बुलाया। उनके लिए पाठ्यक्रम में बच्चों का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक और सौंदर्यबोधात्मक विकास, बच्चों के चिंतन के बारे में चिंता जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल किए। अब ये कक्षाएं नियमित रूप से लगती हैं।

माता-पिता का शिक्षा संबंधी ज्ञान उस काल में विशेष महत्व रखता है, जब वे अपने बच्चों के एकमात्र चरित्र-निर्माता और शिक्षक होते हैं – अर्थात बच्चे के स्कूल जाने से पहले के वर्षों में। २ से ६ वर्ष तक की उम्र

में बच्चों का बौद्धिक विकास, उनका आत्मिक जीवन निर्णायक रूप से इस बात पर निर्भर होता है कि माता-पिता कितनी बुद्धिमत्ता से, कितने विवेक से विकासशील मानव के मानस में होनेवाली जटिलतम हलचल को समझते हैं। माता-पिताओं के लिए कक्षाओं में इस प्रश्न की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था कि बच्चों को सोचना कैसे सिखाया जाए, किस तरह उनकी बौद्धिक क्षमता विकसित की जाए। अपने बरसों के अनुभव के आधार पर हमने अनेक ऐसे प्रश्न निरूपित किए, जो बच्चे प्रायः माता-पिता से पूछते हैं। माता-पिताओं को यह समझाया जाता था कि किस तरह वे बच्चों के प्रश्नों का उत्तर दें ताकि उनमें जिज्ञासा और कौतूहल बढ़े। माता-पिताओं के साथ मिलकर हमने बच्चों के लिए प्रकृति की सैरों का कार्यक्रम निर्धारित किया, यह तय किया कि किन बातों की ओर बच्चों का ध्यान आकर्षित कराया जाना चाहिए। इस बात की ओर विशेष ध्यान दिया गया कि ऐसे सभी परिवारों में जहां छोटे बच्चे हैं, पुस्तकों के प्रति आदर का वातावरण हो।

वर्षों के अनुभव से यह पता चलता है कि कई ऐसे आनुवंशिक कारक भी हैं, जिनके कारण बौद्धिक विकास में कठिनाई होती है। माता-पिता को शराब की लत होने पर बच्चे के सारे शरीर पर ही बुरा असर पड़ता है, लेकिन उसके मस्तिष्क पर तो इसका प्रभाव विशेषतः घातक होता है।

हर बार जब हम बौद्धिक अभ्यास के लिए सवाल हल करने बैठते, तो मैं उन बच्चों को अपने पास ही बिठाता था, जो धीरे सोचते थे और मुश्किल से याद कर पाते थे। मैंने बहुत सारी पहेलियां और सवाल सोचे, तब कहीं जाकर आख़िर नीना के मस्तिष्क में विचारों के सजीव द्वीपों के बीच पहले तार जुड़े, जो चारों ओर के संसार के चित्रों और बिंबों को एक दूसरे से संबंधित करते थे।

मुझे जाड़ों का वह दिन याद है, जब हम अपने कमरे में मछलीघर के पास बैठे थे। बच्चे मछलियां गिन रहे थे, किसी के हिसाब से ज़्यादा थीं, किसी के हिसाब से कम। तब मैंने बच्चों को एक लतीफ़ा-सवाल सुनाया: "भैया को मछलीघर में दो बड़ी और चार छोटी मछलियां दिखीं, दीदी को दो बड़ी और तीन छोटी मछलियां दिखीं। मां को तीन बड़ी और पांच छोटी मछलियां दिखीं। मां ने सारी मछलियां देख लीं। बताओ, मछलीघर में कितनी मछलियां थीं?" अधिकांश बच्चों के लिए सवाल ज़रा भी मुश्किल नहीं था, लेकिन नीना काफ़ी देर तक सोचती रही। आख़िर

वह ख़ुश होकर बोली : "ओहो, भैया और दीदी ने तो सारी मछलियां देखी नहीं थीं, मां ने ही सारी मछलियां देखीं। मछलीघर में तीन बड़ी और पांच छोटी मछलियां हैं। वे घास-पात में छिप जाती हैं, इसलिए दिखती नहीं, पर मां ने सारी देख लीं।" ऐसे ही सवाल, या शायद इससे भी कुछ कठिन सवाल, वाल्या और पेत्रिक हल करने लगे।

धीरे-धीरे मैं इन बच्चों को अधिक कठिन सवाल देने लगा, ताकि उन्हें जो सफलता मिली है, वह बनी रहे। पढ़ाई के तीसरे वर्ष में जब हम सामूहिक फ़ार्म के बाग़ में सेब की फ़सल बटोर रहे थे, तब नीना ने यह पहेली बूझ ली : "तीन भाई खेत में काम कर रहे थे। दोपहर को वे आराम करने के लिए पेड़ के नीचे लेटे और सो गए। उनकी बहन उनके लिए खाना लाई : सूप, रोटी और सेब। उसने भाइयों को जगाया नहीं, खाने की पोटली पेड़ तले रखकर घर चली गई। सबसे बड़ा भाई जागा। उसने सेबों को तीन हिस्सों में बांटा, पर अपना हिस्सा सारा नहीं खाया, उसमें से एक सेब अपने प्यारे छोटे भैया के लिए रहने दिया। सेब खाकर वह फिर सो गया। बिचला भाई जागा, उसे पता नहीं था कि बड़ा भाई अपना हिस्सा खा चुका है। उसने भी सेबों के तीन हिस्से किए, पर अपना हिस्सा पूरा नहीं खाया, उसमें से एक सेब छोटे भाई के लिए रहने दिया, उसे सेब बड़े अच्छे लगते थे। फिर वह सो गया। आख़िर छोटा भाई उठा। उसने देखा सात सेब रखे हुए हैं। वह सोचने लगा : कैसे इन्हें तीन हिस्सों में बांटूं ? बड़ी देर तक सोचता रहा, पर कुछ समझ में नहीं आया। आख़िर दोनों बड़े भाई भी उठ गए। तब सारी बात साफ़ हो गई। बताओ, बहन कितने सेब लाई थी ?"

बच्चे जो सवाल हल करते थे, उनमें बहुत से उस श्रम से संबंधित होते थे, जिससे वे अच्छी तरह परिचित थे। इन सवालों को हल करते हुए बच्चे बार-बार यह देखते थे कि कैसे बड़े ज़मीन जोतते हैं, बीज साफ़ करते हैं, पेड़ लगाते हैं, खाद डालते हैं, फ़सल काटते हैं और उसे संभालकर रखते हैं, घर बनाते हैं और सड़कों की मरम्मत करते हैं। जीवन में वे जो संबंध देखते थे, वे सवाल हल करते समय बच्चों के मस्तिष्क में बननेवाले चित्रों के बीच संबंध स्थापित करने में सहायक होते थे। उनकी स्मरण और चिंतन शक्ति एक दूसरी से जुड़ी हुई, साथ-साथ विकसित होती थीं। अधिकांश सवालों को हल करते समय बच्चे तस्वीरें बनाते थे या जिन वस्तुओं की चर्चा होती थी, उनके मॉडल-से बनाते थे। तीसरी कक्षा

में हमने गणित की प्रतियोगिता आयोजित की। बच्चों को अलग-अलग तरह के सवाल दिए गए – यह ध्यान में रखकर कि सभी बच्चे सवाल हल कर पाएं। बच्चे यहां यह दिखा सकते थे कि वे कितने मेहनती, कितने अध्यवसायी हैं और किस तरह डटकर काम कर सकते हैं। धीरे-धीरे अन्य प्राथमिक कक्षाओं में भी और फिर सारे स्कूल में ऐसी प्रतियोगिताएं होने लगीं।

स्वयं जीवन से लिए गए सवालों को हल करते हुए बचपन में बच्चे सोचना सीखते हैं। अगर बच्चों ने सोचना नहीं सीखा है, अगर चिंतन प्रक्रिया ने उनके मस्तिष्क को सुदृढ़ नहीं किया है तो न गणित में और न ही किसी और विषय में वे अच्छा ज्ञान पा सकते हैं।

लेव तोलस्तोय का परामर्श था: "बच्चों को अंकगणित के नियम और परिभाषाएं मत सिखाइए, बल्कि उनसे ज्यादा से ज्यादा सवाल करवाइए और उनकी ग़लतियां इसलिए नहीं ठीक कीजिए कि उन्होंने सवाल नियमों के अनुसार नहीं किया, बल्कि इसलिए कि उन्होंने जो किया है उसका कोई मतलब नहीं निकलता।" यह परामर्श सिद्धांत की – परिभाषाओं और नियमों की – अवहेलना करने का आह्वान नहीं करता, जैसा कि पहली नजर में कुछ पाठकों को लग सकता है। उलटे, इसका लक्ष्य तो यह है कि छात्र परिभाषाओं और नियमों के सार को ख़ूब अच्छी तरह समझ लें और नियम या परिभाषा उनके लिए न जाने कहां से और कैसे बना सत्य न हों, बल्कि वे देखें कि स्वयं वस्तुओं की प्रकृति में जो नियमबद्धता है, उसी का सामान्यीकरण करके नियम या परिभाषा बने हैं। सत्य के प्रति अध्यापक का ऐसा रुख़ होने पर बच्चे मानो स्वयं परिभाषा को "खोजते" हैं। इस खोज की ख़ुशी सशक्त भावनात्मक आवेग के समान है, जो चिंतन के विकास में बहुत बड़ी भूमिका अदा करता है। यह भी नहीं भूलना चाहिए कि लेव तोलस्तोय का यह परामर्श केवल छोटे बच्चों के लिए है।

ऐसे सवालों को हल करना ही छात्रों को अंकगणित का ज्ञान प्रदान करने का एकमात्र साधन नहीं था। बेशक यह काम चिंतन के विकास में सहायक था, परंतु फिर भी यह पाठों में शिक्षण कार्य का पूरक ही था। यह साधन बौद्धिक, नैतिक, सौंदर्यबोधात्मक और श्रम-शिक्षा की विविधतम विधियों और साधनों के समुच्चय के साथ मिलकर ही कारगर हो सकता था। मैं इसे प्राथमिक विद्यालय के प्रमुख लक्ष्य की प्राप्ति का एक मार्ग समझता था। यह लक्ष्य है – बच्चों को निश्चित परिधि में ठोस ज्ञान प्रदान करना और व्यावहारिक कार्य करना सिखाना। गणित के अध्ययन में यह

बात बहुत मानी रखती है कि लक्ष्य स्पष्टतः निर्धारित किया गया हो, शिक्षक को बिल्कुल ठीक-ठीक यह पता हो कि उसे बच्चों को कब क्या सिखाना है। मैंने हर शैक्षिक वर्ष के लिए यह निर्धारित कर लिया था कि बच्चों को क्या कुछ अच्छी तरह समझना और सदा के लिए याद कर लेना होगा। गिनती कैसे बनती है—इस सिद्धांत का ज्ञान वह नींव है, जिस पर गणित शिक्षा में बच्चों की सफलता निर्भर होती है। मेरा प्रयत्न यह था कि पहली कक्षा में ही सभी छात्र १०० तक की गिनती में जोड़ने और घटाने के किसी भी सवाल का बिना सोचे ही तुरंत उत्तर दें। इसके लिए मैंने कई ऐसे अभ्यास बनाए, जिनसे बच्चे किसी संख्या का विश्लेषण करना सीखते थे। मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि पहाड़ों को अच्छी तरह जाने बिना बच्चे प्राथमिक कक्षाओं में भी और आगे चलकर भी सृजनात्मक कार्य कैसे कर सकते हैं। निश्चित परिधि में ज्ञान को स्मृति में बनाए रखना सृजनात्मक चिंतन का एक सबसे महत्वपूर्ण साधन है।

जिस बच्चे की स्मरण-शक्ति कमज़ोर है उसके लिए सोचना-विचारना मुश्किल होता है। मैं बरसों से इस प्रश्न पर चिंतित था कि बच्चों की स्मरण-शक्ति कैसे विकसित की जाए, कैसे उसे उन अवधारणाओं, सत्यों और सामान्यीकरणों से समृद्ध किया जाए, जिनको वे चिंतन के औज़ारों के रूप में किसी भी वक्त इस्तेमाल कर सकें। स्मरण-शक्ति के विकास का एक साधन हमने बनाया—"अंकों की पिटारी"। इसकी सहायता से बच्चे अंकगणित का अपना ज्ञान परखते थे। यह एक दिलचस्प खेल के समान था : बच्चे लकड़ी की गिट्टियों से गणितीय वर्ग बनाते थे, गिट्टियों पर लिखे अंकों का जोड़ वर्क की चारों भुजाओं में एक-सा होना चाहिए। "अंकों की पिटारी" में पहाड़ों को दोहराने के लिए भी विशेष अभ्यास थे।

बच्चों की स्मरण-शक्ति विकसित और सुदृढ़ करने का एक और अनुपम साधन था—'एलेक्त्रीना'। यह एक बिल्कुल सीधी-सादी-सी बिजली की तख़्ती थी। सभी बच्चे इस पर गिनती और पहाड़े दोहराते थे। तीसरी कक्षा में ही हमने अपने लिए ऐसी तख़्तियां बनानी शुरू कीं, चौथी के अंत तक हमारे पास चार ऐसी तख़्तियां थीं। इस काम के दौरान मैंने एक बार फिर यह देखा कि चिंतन और हाथों के काम का मेल छात्रों के बौद्धिक विकास के लिए कितना महत्वपूर्ण है। जिन बच्चों की स्मरण-शक्ति कमज़ोर थी, वे बिजली की तख़्ती—'एलेक्त्रीना'—जैसे दृश्य-साधनों को बनाने के काम में हिस्सा लेते हुए उसे विकसित कर पाते थे। कहना न होगा कि

चिंतन प्रक्रियाओं पर प्रभाव डालने के अन्य साधनों के साथ मिलकर ही यह काम सफल होता था।

चिंतन-शक्ति के विकास में मैं शतरंज को भी बहुत महत्व देता था। "ख़ुशियों के स्कूल" में ही शूरा, गाल्या, सेर्योझा, यूरा, वान्या, मीशा और कुछ दूसरे बच्चे शतरंज खेलना सीख गए थे। लड़के-लड़कियां अक्सर बिसात ले बैठते थे। शतरंज खेलते हुए बच्चे सोचना, ध्यान केंद्रित करना, एकाग्रचित्त होना सीखते हैं। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उनकी स्मरण-शक्ति बढ़ती है। मैं देखता था कि किस तरह बच्चे शतरंज खेलते समय पहले जो स्थिति थी उसे मन में दोहराते हैं और यह कल्पना करते हैं कि कोई चाल चलने पर आगे क्या स्थिति होगी। मैं बहुत चाहता था कि वाल्या, नीना और पेत्रिक भी शतरंज खेलने लगें। मैं उन्हें खेल सिखा रहा था और वे दूसरों को खेलते देखते समय यह सोचते थे कि अगली चाल क्या होगी। बिसात की बदौलत ही मैंने ल्यूबा और पावेल में गणितीय चिंतन की क्षमता देखी। ये बच्चे तीसरी कक्षा में शतरंज खेलने लगे। इससे पहले मेरा ध्यान कभी उनके चिंतन की तीव्रता की ओर नहीं गया था।

शतरंज के बिना तो बौद्धिक क्षमताओं और स्मरण-शक्ति के बहुमुखी, सर्वांगीण विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। शतरंज को बौद्धिक संस्कृति के एक तत्व के रूप में प्राथमिक विद्यालय में स्थान मिलना चाहिए। चर्चा प्राथमिक विद्यालयों की ही है, जहां बौद्धिक शिक्षा का, बौद्धिक विकास का विशेष स्थान है और जहां इसके लिए कार्य के विशेष रूपों और विधियों की आवश्यकता होती है।

देश-विदेश की हमारी "यात्राएं"

प्राथमिक कक्षाओं के शिक्षक को यह प्रयत्न करना चाहिए कि उसके छात्रों का दृष्टि-क्षितिज अपने जन्म स्थान के खेतों-मैदानों और जंगलों तक ही सीमित न रहे, बल्कि धीरे-धीरे वे अपनी मातृभूमि के चित्रों और जीवन से, सारे संसार से परिचित होते जाएं।

पहली कक्षा में ही मेरे छात्र अच्छी तरह जानते थे कि पृथ्वी एक बहुत बड़ा गोला है, जिसका कभी एक भाग सूरज की ओर होता है और कभी दूसरा, कि एक ही समय पर धरती के अलग-अलग कोनों में कड़ाके की सर्दी भी होती है और ज़ोरों की गर्मी भी, रात भी और दिन भी। दूसरी कक्षा से हम देश-विदेश की **"यात्राएं"** करने लगे।

बच्चे "हरी कक्षा" में बैठे हैं, उनके सामने एक बड़ा-सा ग्लोब है, जिस पर कृत्रिम "सूर्य" का प्रकाश पड़ रहा है; "पृथ्वी" "सूरज" के गिर्द घूमती है, और "चांद" "पृथ्वी" के गिर्द। मैं बच्चों से कहता हूं: "देखो, बच्चो, यह है हमारा विशाल देश। हम इसकी पश्चिमी सीमा से थोड़ी ही दूरी पर रहते हैं। आओ, हम अपने देश के पूरब की ओर चलें, रास्ते में बहुत सारे नगर, देहात आएंगे, हम देखेंगे कि लोग वहां कैसे रहते हैं।" फिर मैं उन्हें रास्ते में आनेवाले खेतों, नदियों और बस्तियों के बारे में बताता हूं। शब्दों को सुनते हुए बच्चे चित्र और स्लाइड फ़िल्म भी देखते जाते हैं।

शाम ढल रही है, दो घंटे बीतते पता भी नहीं चला, पर हम सिर्फ़ १०० किलोमीटर का रास्ता तय कर पाए हैं। बच्चे बड़ी अधीरता से उस दिन की प्रतीक्षा करते हैं, जब हम अपनी "यात्रा" पर आगे बढ़ेंगे।

...फिर से नगर और देहात, जंगल और नदियां, नए निर्माण स्थल और प्राचीन स्मारक हम देखते हैं, लेकिन ये "यात्राएं" बच्चों को एकरस नहीं लगतीं, क्योंकि हमारी मातृभूमि के हर कोने में बच्चे कोई नई, अनोखी बात देखते हैं। हमें "यात्रा" करते कुछ दिन हो गए हैं, अब हम वोल्गा के पास पहुंच रहे हैं, हम इस महान नदी पर बने विशाल पनबिजलीघर देखते हैं, नदी के दोनों ओर फैले असीम मैदानों में गड़रियों से मिलते हैं। बच्चे सांस रोककर स्तालिनग्राद की उस महान लड़ाई* की वीरगाथा सुनते हैं, जिस पर सारी मानवजाति का भविष्य निर्भर था। अगर हज़ारों-हज़ार शूरवीर यहां न डटे रहते, अगर वे क्रूर और शक्तिशाली शत्रु के ज़ोरदार हमलों को न पछाड़ देते, अगर उन्होंने स्वयं मृत्यु का

---

*१९४२-१९४३ में स्तालिनग्राद (वोल्गोग्राद) के इलाक़े में हुई लड़ाई। स्तालिनग्राद में सोवियत सैनिकों की विजय से फ़ासिस्ट हमलावरों के विरुद्ध सोवियत संघ के महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध और सारे द्वितीय विश्वयुद्ध में आमूल परिवर्तन आया। – **अनु०**

आलिंगन करते हुए दुश्मन की कमर न तोड़ दी होती, तो आज हम यहां इस आरामदेह कक्षा में न बैठे होते। बच्चों को छोटी उम्र में ही मानवजाति के भविष्य के बारे में विचारों और चिंताओं का ज्ञान दिलाना चाहिए। बच्चों को यह जानने-समझने दीजिए कि आज भी संसार में ऐसी शक्तियां हैं, जो नया ख़ूनी युद्ध छेड़ने को तैयार हैं। बाल-हृदयों में शांति के शत्रुओं के प्रति घृणा की भावना विकसित होने दीजिए, उन्हें अपने दादाओं-परदादाओं के वीरतापूर्ण कार्यों से इस बात का विश्वास पाने दीजिए कि मनुष्य भाग्य के बवंडर में एक तिनका नहीं है, बल्कि प्रबल शक्ति है।

हम अपनी मातृभूमि के असीम विस्तार में आगे ही आगे बढ़ते जाते हैं, बच्चे नए-नए चित्र देखते हैं: भव्य उराल पर्वत और उनके गर्भ में छिपी अथाह संपदा, रहस्यमय ताइगा जंगल, साइबेरिया की विराट नदियां। कुछ दिनों तक हम प्राकृतिक संपदा के भंडारों को खोजनेवाले भूवैज्ञानिकों के साथ उराल के रत्नों के अनुपम देश की "यात्रा" करते हैं। जहाज़ में बैठकर हम संसार की सबसे गहरी झील बाइकाल की यात्रा करते हैं, उसके किनारों पर खड़े पर्वतों और वनों की अनुपस छवि का रसपान करते हैं, अलाव के पास आग सेंकते हुए रात बिताते हैं। फिर हम आगे बढ़ते हैं—हमारे सम्मुख सुदूर पूर्व की अथाह संपदा के दृश्य हैं और फिर हम महासागर के तट पर पहुंचते हैं। समुद्री जहाज़ में बैठकर हम सख़ालीन और कुरील द्वीपों की यात्रा करते हैं। यहां हमारी मातृभूमि में दिन चढ़ता है।

हमारी यह "यात्रा" लगभग तीन महीने तक चली, हम रोज़ाना औसतन १०० किलोमीटर का फ़ासला तय करते थे। इस यात्रा में चालीस से अधिक जातियों के लोगों से मिले, इनमें अनेक विलक्षण लोग थे—किसान और भवन-निर्माता, खनिक, मछेरे और भूगर्भवेत्ता। वे सब श्रम करते हैं, ताकि हम अच्छी तरह रहें। बच्चों के मन में गर्व की भावना जागती है: कितना विशाल, कितना समृद्ध और मैत्रीपूर्ण है हमारा देश।

अपनी मातृभूमि की हम और भी कई "यात्राएं" करते हैं। हम उत्तर की ओर बढ़ते हैं, बच्चे विषम जलवायुवाले टुंड्रा प्रदेश को और भव्य उत्तरध्रुवीय महासागर को देखते हैं; हम साहसी ध्रुववैज्ञानिकों से, हिरन पालकों और जंगल काटनेवालों से मिलते हैं। पश्चिम में हम कार्पेथियाई पर्वतमाला की घाटियों में रहनेवाले अपने बंधुओं—गुत्सूल जाति के लोगों का जीवन देखते हैं, पर्वतीय चरागाहों की अनुपम छटा देखते हैं। दक्षिण

की ओर काकेशियाई पर्वतमाला की ओर मध्य एशिया के मैदानों की "यात्रा" करते हैं।

मातृभूमि की हमारी "यात्राएं" साल भर चलती हैं। अब बच्चों के लिए "मातृभूमि" मात्र एक शब्द नहीं रहता, बल्कि इसके साथ अनेक ज्वलंत चित्र जुड़ जाते हैं, जो उनके हृदयों में सोवियत लोगों के वीरतापूर्ण श्रम के प्रति गर्व की भावना जगाते हैं। हमारी देखा-देखी दूसरी कक्षाओं के शिक्षक भी छात्रों को ऐसी "यात्राओं" पर ले जाने लगे। हमारी चेष्टा यह थी कि बच्चों के मन में "मातृभूमि" की जो अवधारणा बने, उसमें वह सब शामिल हो, जिसे सोवियत लोगों ने बड़े बलिदानों से पाया है, जो उन्हें जान से भी प्यारा है।

सोवियत संघ के जनतंत्रों की "यात्राएं" बच्चों पर नैतिक प्रभाव की दृष्टि से अत्यंत फलप्रद थीं। द्नेप्र नदी की "यात्रा" से यह क्रम आरंभ हुआ। यह नदी तीन बंधु जनगण – रूसी, उक्राइनी और बेलोरूसी – के जनतंत्रों में बहती है। इस नदी पर "यात्रा" करते हुए हमने इसके तट पर बसे नगर और देहात देखे, बंधु जनगण के वीरतापूर्ण अतीत और वर्तमान की कहानियां सुनीं। स्मोलेन्स्क और लोयेव, कीयेव और कानेव, चेर्कास्सी और क्रेमेन्चुग, ज़ापोरोज्ये और काखोव्का – ये सब नगर बच्चों को इस बात की याद दिलाते थे कि गृहयुद्ध* और विश्वयुद्ध के दिनों में अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए तथा जनता का शोषण करनेवाली और उसे ग़ुलाम बनानेवाली शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष में विभिन्न जातियों के लोगों ने ख़ून बहाया था। द्नेप्र की "यात्रा" करते हुए बच्चों ने वे उक्राइनी, रूसी और बेलोरूसी गीत सुने, जिनमें इस नदी के सौंदर्य और भव्यता का, जनगण के भाईचारे और मैत्री का महिमागान किया गया है। जब बच्चों ने यह सुना कि सोवियत सत्ता के वर्षों में हमारे जनतंत्र में क्या कुछ बनाया गया है, तो अपनी समाजवादी मातृभूमि के प्रति गर्व से उनका सिर ऊंचा उठ गया।

कुछ दिन तक हमने उन स्थानों की "यात्रा" की, जिन्हें हमारे देश के जनगण की मैत्री के स्मारक कहा जा सकता है। "यात्रा" हमने पेरे-

---

*सोवियत संघ में गृहयुद्ध (१९१८–१९२०) – १९१७ की अक्तूबर समाजवादी क्रांति की रक्षा करने के लिए विदेशी और घरेलू प्रतिक्रांतिकारी शक्तियों के विरुद्ध मज़दूरों और मेहनतकश किसानों का युद्ध। – **अनु०**

यास्लाव-ख़्मेल्नीत्स्की नगर से शुरू की, जहां पर उक्राइनी लोगों ने सदा-सदा के लिए रूसी भाइयों के साथ मिलकर रहने का संकल्प व्यक्त किया था। अपनी कल्पना में हम उन सैंकड़ों नगरों से गुज़रे, जहां पर उक्राइनी और रूसी भाइयों ने कंधे से कंधा मिलाकर अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए, गृहयुद्ध और फ़ासिस्ट हमलावरों के ख़िलाफ़ युद्ध में तहस-नहस हुए उद्योगों के पुनरुत्थान के लिए संघर्ष किया।

रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी जनतंत्र की कई दिनों की "यात्रा" की बच्चों के मन पर अमिट छाप पड़ी। हमने यहां जनगण की भव्य मैत्री का दृश्य देखा – रूसी जनतंत्र में सौ से अधिक जातियों के लोग रहते हैं। बच्चों ने वोल्गा तटीय प्रदेश, उत्तरी काकेशिया, उराल, साइबेरिया, सुदूर पूर्व और सुदूर उत्तर में बसनेवाली जातियों के लोगों के जीवन और श्रम का परिचय पाया।

हमारी कुछ "यात्राएं" हमारे देश के उन स्थानों को समर्पित थीं, जो लेनिन के नाम के साथ जुड़े हुए हैं। उल्यानोव्स्क, कुइबिशेव, कज़ान, लेनिनग्राद, मास्को, शूशेन्स्कोये – ये सब स्थान बच्चों की कल्पना में ज्वलंत चित्र जगाते थे: मैंने बच्चों को कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत राज्य के संस्थापक व्लादीमिर इल्यीच लेनिन के बचपन, किशोरावस्था और प्रौढ़ा-वस्था के दिनों के बारे में बताया।

बेलोरूस और मोल्दाविया की, मध्य एशिया, बाल्टिक तटीय क्षेत्र और ट्रांस-काकेशिया क्षेत्र के बंधु जनतंत्रों की "यात्राओं" में बच्चों के सम्मुख जनगण की महान मैत्री के नये-नये चित्र उजागर होते थे। हमारी ये काल्पनिक यात्राएं इसलिए और भी सजीव तथा रोचक होती थीं, क्योंकि उन दिनों ही हमारी कक्षा के बच्चे रूसी और बेलोरूसी छात्रों के साथ पत्र-व्यवहार करने लगे थे।

हम दूसरे देशों की "यात्राओं" पर भी निकलते थे। मैंने यह ध्येय रखा था कि बच्चे संसार के अलग-अलग कोनों में प्रकृति की विविधता और सौंदर्य देखें, उन्हें उन सब अच्छी बातों का पता चले, जो संसार के जनगण के जीवन और श्रम में हैं, उनके मन में विभिन्न भाषाओं में बोलनेवाले लोगों की संस्कृति के प्रति, उनके अतीत और वर्तमान के प्रति रुचि जागे, वे देखें कि कैसे सारे संसार में बुराई और भलाई के बीच संघर्ष चलता है। इन "यात्राओं" में दृश्य-साधनों का महत्व अपने देश की "यात्राओं" से भी कहीं अधिक था: दूर-दराज़ के देशों और वहां की

प्रकृति के बारे में, जिसे हमारे यहां नहीं देखा जा सकता, बच्चों की कल्पना में उज्ज्वल चित्र बनाने की आवश्यकता थी।

पहले हम उन देशों में गए, जहां कभी हमारे यहां जैसा जाड़ा नहीं होता, बर्फ़ नहीं पड़ती। मिस्र, भारत, श्री लंका, इंडोनेशिया के बारे में कहानियां सुनते हुए और फ़िल्में देखते हुए बच्चे हर दिन वहां की प्रकृति, वहां के लोगों के रहन-सहन, श्रम और संस्कृति के बारे में नई-नई बातें जानते जा रहे थे। वे अपनी कल्पना में इन देशों के सुघड़ वृक्षों तले जा पहुंचते थे, उष्णकटिबंध की चिलचिलाती धूप की गर्मी और मूसलाधार बारिश की शीतलता महसूस करते थे, वहां के मेहनतकशों को काम करते देखते थे। पिरामिडों के देश – मिस्र – की "यात्रा" अत्यंत रोचक थी।

फिर हम अपने पड़ोसी देशों की "यात्रा" पर निकले। हमने स्कैंडि-नेवियाई और केंद्रीय यूरोप के देशों की, तुर्की, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और जापान की "यात्रा" की। ऐसे ही हम अफ़्रीका, दक्षिणी अमरीका, कनाडा, संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया और अंटार्कटिक गए।

संसार के विभिन्न कोनों में लोगों के श्रम के जो चित्र बच्चों ने देखे, उससे वे बहुत प्रभावित हुए। आदमी चाहे कहीं भी रहता हो, उसकी चमड़ी का रंग कैसा भी हो, वह चाहे कोई भी भाषा बोलता हो – हर जगह वह श्रम करता है, बच्चों का पालन-पोषण करता है और उनके सुख के सपने देखता है। मैंने बच्चों को हमारे बंधुओं – समाजवादी देशों के जनगण के जीवन के उज्ज्वल चित्र दिखाए। मेरी चेष्टा यही थी कि संसार के सभी मेहनतकशों के प्रति बच्चों के मन में मैत्री की भावना जागे।

बच्चों ने ज्वलंत उदाहरणों से यह देखा-समझा कि फ़ासिज़्म और जर्मन जनता एक ही नहीं, कि जर्मनी के मज़दूर वर्ग के सपूतों और सुपुत्रियों ने हिटलरी हुकूमत के काले दिनों में नाज़ीवाद के ख़िलाफ़ अपनी आवाज़ बुलंद की, अपने प्राणों की आहुति दी। इस तरह वे भी उसी शत्रु से जूझे, जिसके ख़िलाफ़ युद्ध में सोवियत जनता को इतने बलिदान करने पड़े।

संसार की "यात्रा" करते हुए बच्चों ने देखा कि सभी जगह लोग सुखी नहीं हैं: संसार में ऐसे देश भी हैं, जहां इन्सान इन्सान को उत्पी-ड़ित करता है, जहां ग़रीबी और भुखमरी का राज है। बच्चों की चेतना में इस बुराई के कारणों के बारे में एक विचार-सा जड़ पकड़ रहा था। वे समझने लगे कि यह अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था का परिणाम है। धीरे-धीरे बच्चे यह देख रहे थे कि संसार में शोषकों और शोषितों के बीच

तीव्र, अनम्य संघर्ष चल रहा है। मैं यह कोशिश करता था कि मेरे बच्चे अपने हृदय से उन मेहनतकशों के दुखों को अनुभव करें, जो अभी तक शोषण का शिकार हैं, उन पूरे जनगण के दुख-दर्द को समझें, जो अभी तक पराधीन हैं। बच्चों के हृदय में वेदना जागी। अब वे अपनी मातृभूमि के नागरिकों के स्वतंत्र श्रम को नई दृष्टि से देखने लगे, वे महसूस करने लगे कि अपनी मातृभूमि के हित में, अपने परिवार और अपने जनगण के हित में श्रम करना बहुत बड़ा सुख है।

जब तक संसार में कहीं भी इन्सान इन्सान का शोषण करता है, तब तक बच्चों को सारी मानवजाति से प्रेम करने की शिक्षा नहीं दी जा सकती, क्योंकि कोई अमूर्त मानवजाति नहीं है, बल्कि वर्ग बंधु – शोषित लोग – हैं और हैं उनके अनम्य शत्रु – शोषक। यह बात बहुत मानी रखती है कि छोटी उम्र में ही हर बच्चा यह समझ ले और अपने हृदय से अनुभव कर ले कि क्रांतिकारी, कम्युनिस्ट विचार क्या है। हमारी मातृभूमि के निकट अतीत के बारे में, स्वतंत्रता के लिए हमारे जनगण के संघर्ष के बारे में बताते हुए तथा ठोस, ज्वलंत उदाहरण देकर यह दिखाते हुए कि किस प्रकार औपनिवेशिक और पूंजीवादी देशों के मेहनतकश आजकल अपने हितों के लिए संघर्ष कर रहे हैं, मैं धीरे-धीरे बच्चों में यह धारणा बना रहा था कि विचारों के लिए लोग मौत का आलिंगन करते हैं, कि विचारों के संघर्ष में ही वर्ग-विरोध का सार बिल्कुल स्पष्टतः उजागर होता है। यह बहुत महत्वपूर्ण है कि जिन लोगों ने महान विचारों के लिए अपने प्राणों की आहुति दी है, वे हमारे शिष्यों के आदर्श हों। और साथ ही जो लोग गर्दन झुकाकर चुपचाप सारे अत्याचार, उत्पीड़न सह लेते हैं, उनके प्रति बच्चों के मन में तिरस्कार की भावना जागे। यही कारण है कि बच्चों को संसार सर्वप्रथम लोगों के जीवन, उनके श्रम और सुखी भविष्य के लिए संघर्ष के रूप में ही दिखाना चाहिए।

कम्युनिस्ट विचार की समझ से मैं बच्चों को धीरे-धीरे कम्युनिस्ट पार्टी की अवधारणा की ओर ले जा रहा था। अपनी मातृभूमि के अतीत के बारे में बताते हुए मैं सुस्पष्ट उदाहरण देकर यह दिखाता था कि किस तरह मज़दूर वर्ग के सर्वश्रेष्ठ लोगों ने इन्सान द्वारा इन्सान का शोषण ख़त्म करने के लिए, मेहनतकशों का जीवन सुखी बनाने के लिए संघर्ष किया। वे चाहते थे कि भौतिक संपदाएं उन्हीं लोगों के लिए हों, जो उनका निर्माण करते हैं। मैं बच्चों को बड़े सजीव ढंग से यह बताता था कि किस

तरह लेनिन और कम्युनिस्ट पार्टी ने ज़ारशाही को ख़त्म करने और सोवियत सत्ता स्थापित करने के लिए मज़दूरों और किसानों को तैयार किया। महान लेनिन के साथियों के, कम्युनिस्टों के आत्मबलिदानपूर्ण संघर्ष के ज्वलंत उदाहरण देते हुए मैं बच्चों को यह बताता था कि कितने कठिन संघर्ष में महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति हुई, जिसने हमारे देश के जनगण के लिए मुक्ति और सुख का द्वार खोला और पूंजीवादी देशों के करोड़ों पराधीन जनगण के लिए स्वाधीनता का मार्ग प्रशस्त किया।

अपनी मातृभूमि की "यात्रा" पर ले जाते हुए मैं बच्चों को यह बताता था कि सोवियत सत्ता के वर्षों में हमारा देश कितना बदल गया है, यहां कैसे विशाल कारख़ाने बने हैं, कैसे शानदार सामूहिक फ़ार्मों ने इसकी धरती को चार चांद लगाए हैं, सोवियत लोगों के रहन-सहन और संस्कृति में कितना सुधार हुआ है। अपनी वार्ताओं में मैं हमारे देश के बच्चों के जीवन की ओर विशेष ध्यान देता था, जिनके सुखी बचपन की रक्षा सारी जनता करती है।

सोवियत देश में फलते-फूलते जीवन के बिल्कुल विपरीत था पूंजीवादी देशों में अंधकारमय जीवन।

जापान की "यात्रा" करते हुए बच्चों को पता चला कि वहां १९४५ में हिरोशिमा पर गिराये गये परमाणु बम से हज़ारों लोग विकिरण रोग के शिकार हो गये हैं। बच्चों ने नन्ही बच्ची सदाको ससाकी के बारे में सुना, जो इस भयानक रोग के कारण बिस्तर से लग गई है। बच्चों को दूर देश में बैठी अपनी हमउम्र बच्ची के दुख पर गहरी व्यथा हुई। वे बीमार बच्ची की सहायता करना चाहते थे, लेकिन कैसे करें, क्या करें? जापान की "यात्रा" के कुछ सप्ताह पश्चात मैंने बच्चों को अख़बार में छपी एक छोटी-सी ख़बर पढ़कर सुनाई। अख़बार में लिखा था कि सदाको ससाकी ने काग़ज़ के एक हज़ार सारस बनाने का लक्ष्य रखा है। जापानी लोगों का विश्वास है कि जो आदमी अपने हाथों से एक हज़ार सारस बना लेगा, वह सदा सुखी रहेगा। उक्राइनी लोगों में भी कुछ ऐसा ही विश्वास है: हमारे यहां बीमार बच्चे की मां उसके लिए काग़ज़ से भरत पंछी बनाती है, जो बच्चे के लिए स्वास्थ्य लाते हैं। ख़बर सुनकर लड़के-लड़कियां काग़ज़ के सारस बना-बनाकर उगते सूरज के देश को भेजने लगे। कई साल बीत गए, मेरे बच्चे बड़े हो गए, सदाको ससाकी के स्वास्थ्य के बारे में हर समाचार उनके हृदय में वेदना जगाता था। दूर देश की अपनी

सहेली की मृत्यु का दुखद समाचार पाकर युवक-युवतियों को लगा मानो उनका कोई निकट संबंधी नहीं रहा।

संसार, जिसका क्षितिज धीरे-धीरे बच्चों के सामने फैलता जाता है, यह संसार केवल सागर और महासागर, महाद्वीप और द्वीप, अनदेखे जीव-जंतु और वनस्पतियां, उत्तरी ध्रुव की मेरु ज्योति और उष्ण कटिबंध की शाश्वत हरियाली में ही नहीं है। जी नहीं, यह संसार सर्वप्रथम इसमें बसनेवाले लोग हैं, उनका श्रम और सुखी भविष्य के लिए उनका संघर्ष है, न्याय और सुख का मानवजाति का सदियों पुराना सपना है, जो उन देशों में साकार हो गया है, जहां इन्सान द्वारा इन्सान का शोषण ख़त्म कर दिया गया है। बच्चों को इस संसार में निरपेक्ष पर्यवेक्षकों के रूप में प्रवेश नहीं करना चाहिए, जिन्हें यह पता हो कि कहां क्या होता है और जो इसके बारे में बता सकते हों, बल्कि उन्हें तो ऐसे लोगों के रूप में संसार में प्रवेश करना चाहिए, जो मानवजाति के भाग्य पर चिंतित, व्यथित हो सकें।

अपने देश की और विदेशों की "यात्राओं" पर बच्चों को ले जाते हुए इस ख़तरे के प्रति ख़ास तौर पर सतर्क रहना चाहिए कि बच्चों पर नई-नई जानकारी और छापों की बौछार न कर दी जाए। "स्कूलों के लिए किताबों में (ख़ास तौर पर विदेशी किताबों में) अक्सर ऐसे असाधारण परिणामों के बारे में बताया जाता है, जो विज्ञान ने पाए हैं, जैसे कि: धरती और सूरज का भार कितना है, सूर्य किससे बना है, किस प्रकार कोशिकाओं से पेड़-पौधे और मनुष्य बनते हैं, लोगों ने कैसी अनोखी मशीनें बना ली हैं। इस सब से बचिए," लेव तोलस्तोय छोटे बच्चों के शिक्षकों को परामर्श देते हैं। महान लेखक और शिक्षक ने इसका कारण यह बताया है कि ख़ाली परिणामों का बच्चों पर बुरा प्रभाव पड़ता है, वे उन्हें किसी भी बात पर बिना सोचे-समझे विश्वास करना सिखाते हैं। जब ये शब्द लिखे गए थे, तब से दसियों बरस बीत गए हैं, संसार में कथनातीत परिवर्तन आए हैं, विज्ञान ने अभूतपूर्व सफलताएं पाई हैं, छोटे बच्चों का दृष्टि-क्षितिज अब दूसरा है। परंतु तोलस्तोय का परामर्श आज भी उतना ही मूल्यवान है। बच्चों को नई चीज़ों के बारे में बताते हुए उनमें ऐसी जानकारी नहीं भरनी चाहिए, जिसे सुनकर वे हक्के-बक्के रह जाएं।

बच्चे को पढ़ाई में सफलता की ख़ुशी प्रदान कीजिए

छात्र का बौद्धिक श्रम, पढ़ाई में उसकी सफलताएं और असफलताएं – यह उसका आत्मिक जगत है, जिसकी उपेक्षा करने के परिणाम बड़े दुखद हो सकते हैं। बच्चा केवल किसी नई बात को, पाठ्य-सामग्री को जानता, समझता और याद ही नहीं रखता, बल्कि उसकी मेहनत उसके दिल को लग जाती है, वह जो कर पाता है या नहीं कर पाता उसके प्रति अपना रवैया ज़ाहिर करता है, जो बिल्कुल उसका अपना रवैया होता है।

छोटे बच्चे के लिए शिक्षक न्याय का जीता-जागता रूप होता है। पहली कक्षा के जिस छात्र को २ नंबर मिले हों, उसकी आंखों में झांक कर देखिए... वह न सिर्फ़ ख़ुद को अभागा समझता है, बल्कि अध्यापक के प्रति भी उसके मन में नफ़रत और कभी-कभी तो शत्रुता का भाव जागता है। वह अध्यापक, जो बच्चे को सारतः इसलिए २ नंबर लगा देता है कि वह कुछ समझ नहीं पाया, बच्चों की नज़रों में अन्यायी होता है।

एक स्कूल में ऐसी घटना घटी। एक छात्र किसी तरह यह समझ ही नहीं पा रहा था कि पौधे कैसे आहार पाते और सांस लेते हैं, कैसे कोंपल बढ़कर पत्ती बन जाती है और फूल फल में बदल जाता है, इत्यादि। अध्यापक कक्षा में अक्सर उससे सवाल पूछता था और हर बार कहता था: "क्या तुम ऐसी सीधी-सीधी बातें भी नहीं समझ सकते, आख़िर तुम्हारी समझ में क्या आता है?" एक पाठ में अध्यापक ने कहा: "कुछ दिनों बाद चेस्टनट के पेड़ों पर कोंपलें फूटने लगेंगी। हम सब अपने चेस्टनट कुंज में जाएंगे। अगर वहां भी अल्योशा ये सीधी-सादी बातें नहीं बता पाए-गा, जो कि बच्चा-बच्चा समझता है, तो फिर इससे कोई उम्मीद नहीं की जा सकती।" अध्यापक को अपने इस चेस्टनट कुंज से बड़ा प्रेम था, चेस्टनट के फलों से उसने ये छोटे-छोटे पेड़ उगाए थे। पाठ से एक दिन पहले वह कुछ छात्रों के साथ चेस्टनट कुंज में गया, जहां पेड़ों के शिखर लाल-गुलाबी कोंपलों से सजे लगते थे। अगले दिन जब सारी क्लास वहां पहुंची, तो अध्यापक स्तंभित रह गया: पेड़ों की सारी कोंपलें टूटी हुई

थीं। सब बच्चों को अफ़सोस हो रहा था। अध्यापक ने देखा – अल्योशा की आंखों में दुष्टताभरी ख़ुशी की चमक दौड़ गई।

बच्चे की इस हरकत के पीछे विस्फोट था, बाल-हृदय की गहरी पीड़ा थी। बच्चे ने उसकी शक्ति, उसकी क्षमता में अविश्वास पर विरोध प्रकट किया था। लेकिन शिक्षण कार्य में कई बार ऐसा भी देखने में आता है कि जिन बच्चों को हर बार २ नंबर मिलते रहते हैं, वे आख़िर यही सोच लेते हैं कि उनकी क़िस्मत में यही लिखा है और उन्हें नंबरों की कोई परवाह नहीं रहती, वे इस ओर से बिल्कुल उदासीन हो जाते हैं। कभी-कभी नंबरों के प्रति बच्चे के इस उदासीनता भरे रुख़ पर दूसरे बच्चे उसका मज़ाक़ उड़ाते हैं और फिर धीरे-धीरे सभी यह मान बैठते हैं कि वान्या या पेत्या को तो "दो" के अलावा और कोई नंबर ही नहीं मिल सकते। जो व्यक्तित्व अभी गठित ही हो रहा है, जिसका अभी निर्माण ही हो रहा है, उसके आत्मिक जीवन में इससे अधिक भयानक और किसी बात की कल्पना ही नहीं की जा सकती। उस इन्सान से क्या उम्मीद की जा सकती है, जिसमें बचपन से ही आत्म-सम्मान की भावना कुंठित हो गई हो?

शिक्षा का, चरित्र-निर्माण का एक सबसे महत्वपूर्ण कार्यभार यह है कि ज्ञान-प्राप्ति की प्रक्रिया में हर बच्चा मानव गरिमा का, गर्व का अनुभव करे। शिक्षक छात्रों को न केवल संसार का ज्ञान दिलाता है, बल्कि उन्हें यह अहसास भी दिलाता है कि वे इस संसार के रचयिता, सृजनकर्त्ता हैं, जिन्हें अपनी सफलताओं पर गर्व होता है। बच्चों की शिक्षा तो समूह में ही होती है, किंतु ज्ञान के मार्ग पर हर क़दम बच्चे स्वयं ही भरते हैं; बौद्धिक श्रम एक बिल्कुल व्यक्तिगत प्रक्रिया है, जो न केवल बच्चे की योग्यता पर, बल्कि उसके चरित्र पर तथा और भी बहुत-सी परिस्थितियों पर, जो सदा दिखाई भी नहीं देतीं, निर्भर होती है।

बच्चे साफ़ दिल से स्कूल आते हैं, उनमें अच्छी तरह पढ़ने की सच्ची अभिलाषा होती है। बच्चे को तो यह सोचकर भी डर लगता है कि कोई उसे आलसी या निकम्मा समझ सकता है। अच्छी तरह पढ़ने की अभिलाषा, यह सुंदर मानवीय अभिलाषा मुझे उस लौ जैसी लगती है, जो सारे बाल-जीवन को सार्थक बनाती है, बच्चों की ख़ुशियों की दुनिया को प्रदीप्त करती है। इस लौ को लेकर, जो कटु शब्दों या उदासीनता के ज़रा-से झोंके से बुझ सकती है, बच्चा असीम विश्वास के साथ शिक्षक के पास आता है और अगर आप बच्चे की अभिलाषा को नहीं देखते हैं, तो इसका

अर्थ है कि आप अपने छात्रों के वर्तमान और भविष्य के लिए उत्तरदायित्व की हर्षमय और साथ ही उद्विग्नतापूर्ण भावना से वंचित हैं। पढ़ाई में बच्चे की सफलता, इस विचार की सगर्व चेतना और अनुभूति कि मैं आगे क़दम बढ़ा रहा हूं, ज्ञान के दुर्गम मार्ग पर अग्रसर हो रहा हूं – केवल यही वह प्राणदायी वायु है, जो ज्ञान-पिपासा की इस हल्की लौ को बुझने से बचा सकती है।

बेकार की, बिना किसी नतीजे की मेहनत तो बड़ों के लिए भी उबा देनेवाली, निरर्थक और घिनौनी हो जाती है, जबकि हमारा वास्ता तो बच्चों से होता है। अगर बच्चा अपने श्रम के परिणाम नहीं देखता, तो ज्ञान-पिपासा की लौ बुझ जाती है, बाल-हृदय में उदासीनता की पथरी बन जाती है, जो तब तक नहीं घुल सकती, जब तक कि यह लौ फिर से न जल जाए (उसे दुबारा जलाना तो कितना कठिन है!); बच्चा अपनी शक्ति, अपनी योग्यता में विश्वास खो बैठता है, वह मन के सारे कपाट बंद कर लेता है, रूखा और चौकन्ना हो जाता है, अध्यापक के कुछ कहने, सलाह देने पर उद्दंडता से जवाब देता है। या फिर इससे भी बुरी बात यह होती है कि उसमें आत्म-सम्मान की भावना कुंठित हो जाती है, वह इस विचार का आदी हो जाता है कि उसमें किसी भी काम के लिए योग्यता नहीं है। यह देखकर मन क्रोध से तिलमिला उठता है कि किस तरह बच्चा एकदम उदासीन होकर, बिना चूं-चां के, घंटे भर अध्यापक की नसीहतें और साथियों के ताने सुन सकता है: तू तो फिसड्डी है, तू अगली क्लास में नहीं जाएगा। इन्सान में उसकी आत्म-सम्मान की भावना कुचल देने से अधिक अनैतिक बात भला और क्या हो सकती है?

बचपन और किशोरावस्था में छात्र स्वयं अपने को कैसा समझता है, श्रम-जगत में वह स्वयं को कैसा देखता है, इसी बात पर बहुत हद तक उसका चाल-चलन, उसकी नैतिकता निर्भर है। उशीन्स्की ने लिखा था कि कोई भी बच्चा स्वभाव से ही आलसी नहीं होता, उसे सब कुछ ख़ुद करना ही अच्छा लगता है। बच्चों को श्रम करना, यह देखना, सोचना और समझना सिखाना चाहिए कि बौद्धिक श्रम क्या है, कि अच्छी तरह श्रम करने का अर्थ क्या है – केवल इसके पश्चात ही उन्हें उनकी सफलताओं के लिए अंक दिए जा सकते हैं। जिस बच्चे ने कभी पढ़ाई में श्रम की ख़ुशी नहीं पाई, जिसे कभी इस बात पर गर्व नहीं हुआ कि उसने कठिनाइयों पर विजय पाई है, वह अभागा इन्सान है। अभागा इन्सान

हमारे समाज के लिए बड़ी भारी लानत है, अभागा बच्चा—इससे भी सौ गुनी बड़ी लानत है। मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं कि बचपन के नाम से ही गद्‌गद हुआ जाए; मैं तो यह सोच-सोच कर परेशान होता रहता हूं कि बचपन में ही अक्सर इन्सान आलसी हो जाता है, वह मेहनत से नफ़रत करने लगता है, अपनी पूरी शक्ति, सामर्थ्य से श्रम करने के विचार से भी उसे घृणा होती है। लेकिन बच्चा आलसी क्यों बनता है? इसलिए, प्रिय साथी अध्यापको, कि वह **श्रम का सुख** क्या है, यह नहीं जानता। उसे यह सुख प्रदान कीजिए, उसकी क़द्र करना सिखाइए—और वह अपने मान की क़द्र करेगा, श्रम से प्रेम करेगा।

बच्चों को श्रम की ख़ुशी, पढ़ाई में सफलता की ख़ुशी प्रदान करना, उनके हृदयों में गर्व की, आत्म-सम्मान की भावना जगाना—यह शिक्षा का, चरित्र-निर्माण का पहला नियम है। हमारे स्कूलों में अभागे बच्चे, ऐसे बच्चे नहीं होने चाहिए, जिनके मन को यह ख़याल सताए कि वे किसी काम के योग्य नहीं हैं। पढ़ाई में सफलता बच्चे के मनोबल का एकमात्र स्रोत है। इसी मनोबल से उसमें कठिनाइयों को पार करने की शक्ति, पढ़ने की अभिलाषा जागती है।

अगर बच्चे में पढ़ने की अभिलाषा नहीं है, तो हमारी सारी योजनाएं, सारी नई-नई विधियां, रास्ते, सब धरे के धरे रह जाएंगे, निर्जीव ममी के समान होंगे। यह अभिलाषा पढ़ाई में सफलता के साथ ही आती है। यह एक विरोधाभास-सा लगता है: बच्चा पढ़ाई में सफल हो, इसके लिए उसे असफल नहीं होना चाहिए। पर इस बात में कोई विरोधाभास नहीं है, यह तो बौद्धिक श्रम की प्रक्रिया की द्वंद्वात्मक एकता है। पढ़ाई में रुचि केवल तभी जागती है, जब कि प्रेरणा है, जो ज्ञान-प्राप्ति में सफलता से मिलती है; प्रेरणा के बिना पढ़ाई बच्चों के लिए बोझा बन जाती है। अध्यवसाय को मैं वह प्रेरणा कहूंगा, जो बच्चे के इस विश्वास से कई गुना बढ़ गई है कि उसे अवश्य ही सफलता मिलेगी।

छात्रों के ज्ञान का मूल्यांकन जैसा देखने में सरल कार्य वास्तव में यह दिखाता है कि अध्यापक हर बच्चे के प्रति सही रुख़ ढूंढ़ सकता है कि नहीं, वह बाल-हृदयों में जलती ज्ञान-पिपासा की लौ को संजोए रखने में समर्थ है कि नहीं। प्राथमिक विद्यालय में चार साल की पढ़ाई के दौरान मैंने कभी भी किसी बच्चे को फ़ेल नहीं किया, "दो" अंक नहीं लगाए—न लिखित काम के लिए और न ही मौखिक जवाब के लिए। बच्चे पढ़ना,

लिखना, सवाल हल करना सीखते हैं। एक बच्चे ने अपने बौद्धिक श्रम में सकारात्मक परिणाम पा लिया है, दूसरे ने अभी नहीं पाया। एक बच्चा वह काम कर पाता है, जो अध्यापक उसे सिखाना चाहता है, दूसरा अभी नहीं कर पाता, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि वह सीखना नहीं चाहता। मैं बच्चों के बौद्धिक श्रम का मूल्यांकन केवल तभी करता था, जब कि वे उसमें सकारात्मक परिणाम पा लेते थे। अगर बच्चा अपने श्रम से जो परिणाम पाना चाहता है, वह अभी नहीं पा सका है, तो मैं उसे कोई नंबर नहीं लगाता। बच्चे को अभी सोचना, एकाग्रचित्त होना चाहिए, एक बार फिर अपना काम करना चाहिए।

पहली कक्षा में पढ़ाई शुरू होने के चार महीने बाद ही मैंने पहली बार बच्चों को नंबर दिए। यहां सबसे पहले यह बात महत्व रखती है कि बच्चा यह समझे कि टिककर काम करना क्या है, अध्यवसाय क्या है। बच्चा काम ठीक तरह से नहीं करता, इसका कारण यह नहीं कि वह चाहता नहीं, बल्कि इसलिए कि उसे यह पता ही नहीं कि अच्छा क्या है और बुरा क्या है—तो फिर उसे अंक किस बात के दिए जाएं? मैं यह प्रयत्न करता था कि बच्चा एक ही काम को कई बार करते हुए स्वयं यह देखे कि शुरू में उसने जैसे काम किया है, उससे कहीं अधिक अच्छी तरह वह उसे कर सकता है। इसका बहुत बड़ा शैक्षिक महत्व है: बच्चा अपने अंदर सृजन-शक्ति का अनुभव करता है; उसे अपनी सफलता देखकर ख़ुशी होती है, वह अधिक अच्छी तरह काम करने की कोशिश करता है। अपने अधिक अच्छे काम की कम अच्छे काम से तुलना करते हुए बच्चे को प्रेरणा की अनुभूति होती है।

पहली कक्षा के काम का प्रेक्षण करते हुए मैंने देखा कि सब बच्चे एक-सा नहीं सोचते, वे अपने श्रम का अलग-अलग मूल्यांकन करते हैं। बच्चों ने एक शब्द लिखा है। लीदा, सेर्योझा, कात्या, सान्या, पावेल के अक्षर एकसार हैं, सुंदर हैं। यूरा के अक्षर लाईनों के बाहर निकलते हैं, टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं; कोल्या और तोल्या लिखते नहीं, बल्कि चित्रकारी करते हैं, उनके अक्षर वैसे ही हैं, जैसे कि चित्र-पुस्तक में, जहां वे प्रकृति के बारे में अपनी पहली रचनाएं लिखते हैं। पेत्रिक की कापी में कुछ गोल-मटोल रेखाएं हैं। मैं बच्चों को अगला अभ्यास नहीं देता। बच्चे और कई बार वही शब्द लिखते हैं। हर बार उसी काम को दोहराना एक सीढ़ी के समान हो जाता है, जिस पर बच्चे चढ़ते हैं—जिन्होंने ख़राब

लिखा है वे भी और जिन्होंने अच्छी तरह लिख लिया है वे भी। बच्चे ख़ुश होते हैं कि वे पहले से ज्यादा अच्छी तरह काम कर पा रहे हैं।

इस ख़ुशी में ही गर्व और आत्म-सम्मान की भावना जन्म लेती है। जिस बच्चे के मन में यह भावना जागी है, वह आसान रास्ता नहीं ढूंढ़ता, दूसरों के श्रम के परिणामों से फ़ायदा नहीं उठाता। जब बच्चों ने एक ही काम को बार-बार करते हुए उसे सुधारना सीख लिया, ऐसा करने में ख़ुशी और आत्म-सम्मान का अनुभव किया, केवल तभी मैं उन्हें नंबर देने लगा – बेशक, नंबर केवल सकारात्मक परिणाम के लिए, सफल कार्य के लिए मिलते थे। कुछ बच्चों को पढ़ाई शुरू होने के चार महीने बाद और कुछ को छह महीने बाद नंबर मिलने लगे। पेत्रिक और मीशा को दूसरी कक्षा के आरंभ में ही पहली बार नंबर मिले। उनको मैं अलग से भी पढ़ाता था, यह कोशिश करता था कि वे कल के मुक़ाबले आज थोड़ा-सा ही सही, पर बेहतर काम करें, कि वे अपनी योग्यता में विश्वास न खोएं।

शिक्षा का अर्थ यांत्रिक तौर पर अध्यापक द्वारा छात्रों को ज्ञान दिया जाना नहीं है, यह तो सर्वप्रथम मानवीय संबंध हैं। ज्ञान के प्रति, शिक्षा के प्रति बच्चे का रुख़ बहुत हद तक इस बात पर निर्भर होता है कि शिक्षक के प्रति उसका क्या रवैया है। अन्याय देखकर तो बच्चा स्तंभित रह जाता है। फ़ेल होने को, "दो" अंक पाने को तो बच्चे सदा अन्याय ही समझते हैं और उस पर बहुत दुखी होते हैं, क्योंकि ऐसा कभी भी नहीं होता कि बच्चा पढ़ना न चाहे। वह पढ़ना चाहता है, लेकिन पढ़ना नहीं जानता, उसमें अभी एकाग्रचित होने की, अपने को काम करने पर विवश करने की क्षमता नहीं होती है।

अगर बच्चा आज भी और कल भी और सारे साल के दौरान अन्याय पर दुखी होता है, तो उसका तंत्रिका-तंत्र पहले तो उत्तेजित होता है और फिर उसमें शिथिलता, उदासीनता आती है। इस बार-बार की उत्तेजना और शिथिलता का परिणाम यह होता है कि बच्चा बीमार पड़ जाता है। यह देखने में अजीब लगनेवाला रोग – स्कूल जनित तंत्रिका-रोग – है। इसकी विडंबना यह है कि यह केवल स्कूल में ही होता है – उस पवित्र ज्ञान-मंदिर में, जहां पर इन्सानियत को ही बच्चों और अध्यापक के परस्पर संबंधों का प्रमुख लक्षण होना चाहिए। स्कूल में होनेवाला यह तंत्रिका-विकार अन्याय की उपज है। बच्चे के प्रति माता-पिता या अध्यापक के

अन्यायपूर्ण रवैये के बहुत-से रूप हैं। सबसे पहले आती है उदासीनता। बच्चे के मनोबल और नैतिक गुणों के विकास के लिए उसकी सफलता के प्रति अध्यापक की उदासीनता से बढ़कर ख़तरनाक और कोई चीज़ नहीं है। फिर आते हैं – डांट-डपट, धमकियां, खीझ और जिन लोगों में शिक्षण-संस्कृति नहीं होती, वे तो द्वेष के साथ ख़ुश भी होते हैं: "अच्छा बच्चू, कुछ नहीं आता-जाता तुझे, ला इधर अपनी रिपोर्ट-बुक, अभी लगाता हूं 'दो' नंबर, देख लें तेरे मां-बाप भी – कैसा है उनका लाल।"

मैं कई वर्षों से स्कूल में बच्चों को होनेवाले तंत्रिका-रोगों की समस्या का अध्ययन कर रहा हूं। अध्यापक के अन्याय पर बच्चों के तंत्रिका-तंत्र की प्रतिक्रिया यह होती है कि कुछ बच्चे सदा उत्तेजित रहने लगते हैं, दूसरों को यह लगने लगता है कि उनके साथ सदा अन्यायपूर्ण बरताव ही होता है, कि हर कोई उन्हें तंग करने पर उतारू है, तीसरे सब से ख़ार खाए रहते हैं, चौथे यह दिखावा करते हैं कि उन्हें किसी बात की परवाह नहीं, पांचवें हर ओर से उदासीन, गुमसुम रहते हैं, छठों के मन में सदा सज़ा का भय समाया रहता है, वे स्कूल से, मास्टर जी से डरते हैं, सातवें बनते रहते हैं, मसख़री करते हैं, आठवें निष्ठुर हो जाते हैं और कभी-कभी (ऐसा विरले ही होता है, लेकिन तो भी इसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए) यह निष्ठुरता बहुत भयानक रूप धारण कर लेती है। इन सब तंत्रिका-विकारों को न होने देना माता-पिता और अध्यापक की शिक्षण-संस्कृति पर निर्भर होता है। शिक्षण-संस्कृति का सर्वप्रमुख लक्षण यह है कि माता-पिता और शिक्षक को हर बच्चे के मानसिक जगत की अनुभूति हो, उनमें हर बच्चे की ओर उतना ध्यान देने की योग्यता हो, जितना बच्चे को यह महसूस करने के लिए चाहिए कि उसे भुलाया नहीं गया है, कि उसके दुख-दर्द को बांटा जाता है।

बच्चे के लिए अध्यापक की ओर से सबसे बड़ा अन्याय यह होता है कि एक तो बच्चे के दृढ़ विश्वास के अनुसार मास्टर जी ने उसे अनुचित ही फ़ेल कर दिया है और ऊपर से वह यह भी चाहते हैं कि इसके लिए उसे माता-पिता से सज़ा मिले। जब बच्चा यह देखता है कि अध्यापक यह चाहता है कि माता-पिता को जरूर ही बच्चे के बुरे अंकों की ख़बर मिले, तो उसे अध्यापक से भी और स्कूल से भी चिढ़ हो जाती है। उसे बौद्धिक श्रम से घृणा हो जाती है। उसकी भावनाओं में जो रूखापन आ जाता है, वह दूसरे लोगों, सर्वप्रथम माता-पिता के साथ संबंधों में भी व्यक्त होता है।

ऐसी और कोई चीज़ नहीं है, जो बाल-आत्मा को इतना विकृत करती हो, जितना कि अन्याय के कारण उत्पन्न भावनात्मक उदासीनता। बच्चा स्वयं अपने प्रति जब उदासीनता अनुभव करता है, तो वह भलाई और बुराई के प्रति भी सारी संवेदनशीलता खो बैठता है। वह यह नहीं समझ पाता कि उसके चारों ओर के लोगों में अच्छाई क्या है और बुराई क्या है। उसके मन में लोगों के प्रति अविश्वास और संदेह घर कर लेते हैं— और यह कटुता का सबसे बड़ा स्रोत है।

आजकल अध्यापकों के बीच प्रोत्साहन और दंड की चर्चाएं चल रही हैं। कई शानदार सिद्धांत पेश किए जाते हैं, जिनका अगले दिन प्रभात के कोहरे की भांति कोई नामोनिशान नहीं रहता... लोग यह भूल जाते हैं कि शिक्षण-कार्य में सबसे प्रमुख प्रोत्साहन और सबसे सख़्त सज़ा (जो सदा कारगर नहीं होती) अंक ही हैं। यह सबसे तेज़ उपकरण है, जिसे इस्तेमाल करने के लिए बड़ा कौशल चाहिए।

इस उपकरण का इस्तेमाल करने का अधिकार पाने के लिए सर्वप्रथम बच्चों से प्रेम होना चाहिए। उन्हें प्रेम के बारे में कहने की कोई ज़रूरत नहीं, उनकी हित-चिंता में इसे व्यक्त कीजिए। लेव तोलस्तोय का कहना है: "अगर शिक्षक को केवल अपने काम से प्रेम है, तो वह अच्छा शिक्षक होगा। अगर शिक्षक को केवल अपने छात्रों से प्रेम है, माता-पिता जैसा प्रेम, तो वह उस शिक्षक से अच्छा होगा, जिसने सब पोथियां पढ़ डाली हैं, लेकिन जिसे न अपने काम से और न बच्चों से प्रेम है, वह तो सच्चा शिक्षक है।"

आत्मिक संवेदनशीलता वह गुण है, जो केवल शिक्षा से ही नहीं पाया जा सकता। शिक्षक की मानवीय संवेदनशीलता उसकी बौद्धिक, नैतिक, सौंदर्यबोधात्मक और भावनात्मक संस्कृति पर आधारित होती है। ये सब गुण अलग-अलग अपने आप में इतना महत्व नहीं रखते, बल्कि इन सबका मेल ही अधिक महत्वपूर्ण है। इन गुणों का मेल आदमी में उसकी शिक्षा से भी और समुदाय में नैतिक संबंधों के उसके सामाजिक अनुभव से भी बनता है। शिक्षक को यह जानना और अनुभव करना चाहिए कि उस पर हर छात्र के भाग्य का उत्तरदायित्व है, कि उसकी आत्मिक संस्कृति और विचारों की संपदा पर उस व्यक्ति की बुद्धि, स्वास्थ्य और सुख निर्भर है, जिसे स्कूल शिक्षा दे रहा है।

...दूसरी कक्षा में व्याकरण का पाठ। मैं बच्चों को नियम सम-

झाता हूं, फिर हम उदाहरण देखते हैं और उसके बाद बच्चों को स्वयं करने के लिए काम देता हूं, जिसका लक्ष्य है—ज्ञान को पक्का करना और साथ ही परखना। काम के लिए बच्चों को अंक मिलते हैं। कापियां जांचते हुए मैं देखता हूं कि मीशा और पेत्रिक ने काम ठीक तरह से नहीं किया है। अगर मैं उन्हें "दो" नंबर लगा देता हूं, तो ये बच्चे, जो तन-मन से अच्छी तरह पढ़ने का यत्न कर रहे हैं, इसे मेरा यह फ़ैसला समझेंगे: "तुम्हारे साथी एक क़दम आगे बढ़ गए हैं और तुम वहीं के वहीं रह गए।" ग़लतियां ठीक करके और कापी में सुलेख के नमूने देकर मैं मीशा और पेत्रिक को कोई नंबर नहीं लगाता हूं। कापियां लौटाते हुए बच्चों से कहता हूं:

"मीशा और पेत्रिक ने अभी नंबर पाने लायक़ काम नहीं किया। बच्चो, तुम्हें ख़ूब मेहनत करनी चाहिए। दूसरा अभ्यास करो। कोशिश करो कि तुम्हें नंबर मिलें।"

बच्चे इस बात के आदी हो जाते हैं कि अगर काम असंतोषजनक है, तो उसके लिए नंबर नहीं लगाए जाते। उनके मन में धीरे-धीरे यह धारणा बनती जाती है कि जो काम उन्होंने कर लिया है, वह कोई बीता चरण नहीं है, जो अध्यापक के "फ़ैसले" के साथ ख़त्म हो गया है। बच्चे के सम्मुख सफलता का मार्ग सदा खुला रहता है: अभी वह जो नहीं कर पाया है, उसे वह भविष्य में कर लेगा, शायद आज ही या कल। मीशा और पेत्रिक को ऐसा नहीं लगता कि हमारी क़िस्मत में तो बस यही लिखा है, जैसा कि "दो" अंक पाकर अपने साथियों से पिछड़ जाने की भावना मन में पैदा होने पर बच्चों को लगता है। पाठ में ही वे कहते हैं: "जी, हमें और काम दे दीजिए।" मैं उन्हें नया अभ्यास देता हूं। स्कूल में ही वे उसे करने के लिए समय पा लेते हैं। (हमने स्कूल के घंटे इस तरह रखे हैं कि हर बच्चे को रोज़ाना आधा घंटा वह काम करने के लिए मिलता है, जिसे करना वह सबसे जरूरी समझता है)। लड़के पूरा जतन करते हैं कि उनका काम अंक पाने लायक़ हो। वे यह दिखाना चाहते हैं कि वे दूसरों से बुरे नहीं। मैं उनका काम देखता हूं, और जैसा कि सदा ऐसे मामलों में होता है, वह अच्छे नंबरों के लायक़ होता है।

अंकों को सावधानी से प्रेरक शक्ति के रूप में इस्तेमाल करना तब ख़ास तौर पर महत्वपूर्ण होता है, जबकि बच्चों को जो काम दिया गया है, उसके लिए उन्हें विशेष बौद्धिक प्रयास की, सोचने-समझने, विश्लेषण

करने की ज़रूरत हो। एक बच्चे का दिमाग़ तेज़ चलता है, दूसरे का इतनी तेज़ नहीं चलता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि एक बच्चा दूसरे से ज्यादा अक़्लमंद है या दूसरे से ज्यादा मेहनत करता है। प्राथमिक विद्यालय में अंकगणित के पाठ चरित्र-निर्माण के पहले नियम की कसौटी होते हैं। यहीं पर यह देखा जा सकता है कि अध्यापक कैसे बच्चों को बौद्धिक श्रम में सफलता की ख़ुशी प्रदान करता है, उनमें गर्व और आत्म-सम्मान की भावना जगाता है। यह कोशिश करनी चाहिए कि बच्चा पहली कठिनाइयों से सामना होते ही हिम्मत न हार बैठे। मैंने बच्चों को सवाल हल करने के लिए तब तक नंबर नहीं दिए, जब तक कि वे स्वयं सोचना, सवाल की शर्तों को समझना और उसे हल करने की विधि ढूंढ़ना नहीं सीख गए, दूसरे शब्दों में, जब तक उन्होंने इस श्रम की ख़ुशी नहीं पा ली। यहां पर यह बात बहुत ज़रूरी है कि एक ढर्रे पर न चला जाए; एक छात्र को महीने में तीन बार अंकगणित के लिए अंक मिल सकते हैं और दूसरे को एक बार भी नहीं। किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि दूसरा बच्चा कुछ नहीं कर रहा और आगे नहीं बढ़ रहा। वह सवाल को समझना सीख रहा है, और पहला अपेक्षाकृत जटिल सवाल, जिसे छात्र ने स्वयं हल किया है—वह बच्चे के विकास में एक महत्वपूर्ण चरण है।

कई बरसों से मैं उन छात्रों को देखता आ रहा था, जो गणित में कमज़ोर थे। आख़िर मैं इस बात का क़ायल हो गया कि छोटी और बिचली कक्षाओं में कोई भी कमज़ोर बच्चा एक भी सवाल ख़ुद हल नहीं करता। वे मानो धारा के साथ बहते चलते हैं, उस जगह पैर रख देते हैं, जहां उनके साथी पहले ही खड़े हैं: वे बोर्ड से या दूसरे छात्रों की कापियों में से सवाल का हल उतार लेते हैं और असल में उन्हें यह पता भी नहीं होता कि सवाल को स्वयं हल करना क्या है।

इस बुराई को शिक्षण-कौशल में सुधार के कोई रास्ते खोजकर दूर नहीं किया जा सकता। गणित के पाठ में बौद्धिक श्रम चिंतन की कसौटी है। बुराई की जड़ यह है कि बच्चे ने सोचना नहीं सीखा है; चारों ओर का संसार और उसकी वस्तुएं, परिघटनाएं तथा परस्पर संबंध उसके लिए विचारों का स्रोत नहीं बन पाए हैं। हमारा अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि अगर छोटी उम्र में ही प्रकृति की "यात्राएं" बौद्धिक श्रम का सच्चा अभ्यास बन गई हैं, तो कक्षा में एक भी बच्चा गणित में कमज़ोर नहीं होगा। वस्तुओं से बच्चे को सोचना सीखना चाहिए—यह

इस बात का अत्यंत महत्वपूर्ण पूर्वाधार है कि सभी सामान्य बच्चे बुद्धिमान, समझदार, जिज्ञासु और कौतूहली बनें। मैं अध्यापकों को यह परामर्श देता रहता था: अगर आपका छात्र कुछ समझ नहीं पा रहा है, अगर उसका विचार पिंजड़े में बंद पक्षी की तरह असहाय है, तो अपने काम को ध्यान से देखिए: क्या आपके छात्र की चेतना ऐसी छोटी-सी सूखती हुई झील तो नहीं बन गई है, जो विचार के प्राणदायी और शाश्वत आदि-स्रोत – वस्तुओं के जगत, प्रकृति की परिघटनाओं – से कट गई है? इस छोटी-सी झील को प्रकृति के, वस्तुओं के, चारों ओर के संसार के महासागर से जोड़ दीजिए और फिर आप देखेंगे कि सजीव विचारों का चश्मा फूट निकलेगा।

परंतु यह सोचना भयंकर भूल होगी कि चारों ओर का संसार स्वयं ही बच्चे को सोचना सिखा देगा। सैद्धांतिक चिंतन के बिना वस्तुएं अभेद्य पर्दे के पीछे बच्चे की नज़रों से छिपी रहेंगी। बच्चा अपने चारों ओर की वस्तुओं को, उनके ठोस रूप से हट कर, अमूर्त रूप में देखता है, केवल तभी प्रकृति बौद्धिक श्रम का पाठ सिखाती है। यथार्थ जीवन के ज्वलंत बिंब इसलिए चाहिए, ताकि बच्चा वस्तुओं की, परिघटनाओं की अन्योन्यक्रियाओं को चारों ओर के संसार के एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण के तौर पर देखना-समझना सीखे। हेगेल के इस विचार को सही मानते हुए कि अन्योन्यक्रिया ही हर अस्तित्वमान वस्तु का causa finalis* होती है, एंगेल्स ने लिखा: "हम इस अन्योन्यक्रिया के संज्ञान से आगे ठीक इसीलिए नहीं बढ़ सकते कि इसके परे संज्ञान के लिए कुछ है ही नहीं।" अमूर्त चिंतन की तैयारी के रूप में अन्योन्यक्रियाओं का संज्ञान पाना गणितीय चिंतन के विकास का महत्वपूर्ण पूर्वाधार है। बच्चे सफलतापूर्वक सवाल हल कर पाते हैं कि नहीं, यह इस बात पर निर्भर होता है कि उन्होंने वस्तुओं और परिघटनाओं के परस्पर प्रभाव, अन्योन्यक्रिया को देखना सीखा है या नहीं।

सवालों को हल करने में स्वावलंबी बौद्धिक श्रम के सफल होने की एक शर्त यह भी है कि ऐसे साधारण नियम (गिनती, पहाड़े), जिनके बिना चिंतन की कल्पना भी नहीं की जा सकती, वे बच्चों को सदा याद हों।

पेत्रिक बड़ी देर तक अंकगणित के सवालों का अर्थ (शर्तें) नहीं

---

* अंतिम कारण।

समझ पाता था। मैं उसे समझाने की जल्दी नहीं करता था। सबसे बड़ी बात यह थी कि लड़का अपने दिमाग़ पर ज़ोर डालकर वस्तुओं और परिघटनाओं के बीच परस्पर संबंधों के सार को समझ ले। परंतु सजीव विचार तब तक चश्मे की तरह नहीं फूट निकलेगा, जब तक कि बच्चा सैद्धांतिक चिंतन के लिए तैयार नहीं, उसे तुलना और विश्लेषण करना नहीं आता। मैं बच्चों को प्रकृति की गोद में ले जाता था और उन्हें बार-बार प्रेक्षण करना, वस्तुओं, गुणों, घटनाओं की तुलना करना, उनकी अन्योन्यक्रिया देखना सिखाता था। मैं पेत्रिक का ध्यान चारों ओर के संसार की उन परिघटनाओं की ओर आकर्षित कराता था, जिन्हें देखकर बच्चे की चेतना में यह विचार बनता है कि राशि और संख्या वस्तुओं का एक महत्वपूर्ण गुण है। मैं यह कोशिश करता था कि बच्चा संख्याओं के बीच संबंध को समझ जाए, वह यह देख ले कि ये संबंध किसी के दिमाग़ की उपज नहीं हैं, बल्कि वास्तविक जीवन में पाए जाते हैं। यहां बड़ी बात यह नहीं है कि बच्चा तुरंत ही हिसाब लगाना, संख्याओं को जोड़ना, घटाना आदि सीख ले, बल्कि उसे यह समझना चाहिए कि इन संबंधों का सार क्या है, क्यों संख्या को जोड़ा, घटाया जाता है, उनको गुणा-भाग किया जाता है।

हम खेत में बैठे यह देख रहे थे कि कैसे कम्बाइन फ़सल काट रही थी। थोड़ी-थोड़ी देर बाद कम्बाइन के पास से अनाज से लदा ट्रक चलता था। कम्बाइन का बंकर कितनी देर में भर जाता है? बच्चे घड़ी देखने लगे, पता चला १७ मिनट में बंकर भर जाता है। लोगों ने कैसे अपने काम का ऐसा हिसाब लगाया है कि कम्बाइन को रुकना नहीं पड़ता? बंकर भरने में ५, ४, ३ मिनट रह गए थे, बच्चे बेचैन हो रहे थे: अब तो शायद कम्बाइन को रुकना पड़ेगा। २ मिनट बाक़ी रह गए थे कि जंगल के पीछे से ख़ाली ट्रक आता दिखा। गोदाम तक पूरे एक घंटे का रास्ता था। इसका मतलब यह था कि लोगों ने दूरी और समय के बीच संबंध का हिसाब लगा लिया था। उन्होंने अनाज की लदाई के लिए इतनी गाड़ियां रखी थीं, जितनी कम्बाइन के बिना रुके काम करते रहने के लिए ज़रूरी थीं। और अगर गोदाम तक एक घंटे का नहीं, बल्कि दो घंटे का रास्ता होता, तो अनाज की लदाई के लिए ज़्यादा ट्रकों की ज़रूरत होती या कम की?

"ज़्यादा की ही ज़रूरत होती," पेत्रिक बोला। उसकी आंखें ख़ुशी से चमक रही थीं। "अब तो तीन ट्रक रास्ते में रहते हैं और एक में अनाज

लादा जाता है, दूसरे से उतारा जाता है। अगर रास्ता ज़्यादा लंबा होता, तो ज़्यादा ट्रकों को रास्ते में रहना होता।"

बच्चा दिमाग़ पर ज़ोर डाल रहा था, मैं देख रहा था कि वह यह सोच रहा है कि अगर रास्ता दुगना लंबा होता, तो कितनी गाड़ियां रास्ते में होतीं। लेकिन इस वक़्त बड़ी बात यह नहीं थी। महत्व तो इस बात का था कि वह समझ गया कि सवाल लोगों के दिमाग़ की उपज नहीं हैं। सवाल हमारे चारों ओर के संसार में हैं, क्योंकि यहां गति है, जीवन है, मनुष्य का श्रम है।

पेत्रिक तीसरी कक्षा में चला गया था, अभी तक वह सवाल हल नहीं कर पाता था। एक भी सवाल उसने साथियों की या अध्यापक की मदद के बिना हल नहीं किया था और इस बात पर मैं चिंतित था। लेकिन मुझे विश्वास था कि लड़का सोचना सीख जाएगा। मैं यह कोशिश करता था कि पेत्रिक उन परिघटनाओं के बारे में सोचे, उनका विश्लेषण करे, जिन पर अंकगणित के सवाल आधारित होते हैं। लेकिन उसे अमूर्त चिंतन के लिए तैयार करने के वास्ते यही काफ़ी नहीं था। जिसे गिनना नहीं आता, वह ज्ञान कैसे पा सकता है? मैं इस बात को बहुत महत्वपूर्ण समझता था कि धीरे-धीरे पेत्रिक की स्मृति में वे सब बुनियादी बातें बैठती जाएं, जिनके बिना चिंतन नहीं हो सकता। वह "गणित की पिटारी" लेकर बैठ जाता था और अभ्यास करता था, अपना ज्ञान परखता था। मैं इस बात का बहुत ध्यान रखता था कि छात्र यह सोचने में न लग जाए कि १२–८, १६+१३, ४१–१६ कितना होगा (अगर तीसरी में छात्र यह सोचने लग जाएगा, तो वह सवाल को नहीं समझ पाएगा)।

मैंने अपने अनुभव से यह देखा है कि अक्सर बीजगणित में बच्चे इसलिए असफल रहते हैं, कि उन्होंने गिनती को इतनी अच्छी तरह नहीं समझा-बूझा होता कि जोड़, घटा, गुणा, भाग जैसी बुनियादी बातों के बारे में न सोचें और अपने दिमाग़ का सारा ज़ोर अमूर्त चिंतन पर लगा दें। जिस प्रकार पठन-पाठन एक "अर्द्धस्वचालित" प्रक्रिया तक तब नहीं हो सकता, जब तक कि बच्चे ने हज़ारों बार उन अक्षरों को न पढ़ा हो, जिनसे मिलकर शब्द बनते हैं, उसी प्रकार अमूर्त गणितीय चिंतन उसके लिए सात तालों में बंद पुस्तक रहेगा, अगर उसने वे दसियों, सैकड़ों उदाहरण याद नहीं कर लिए हैं, जिनके बारे में लोग अपने रोज़मर्रा के जीवन में ज़रा भी सोचते नहीं हैं, क्योंकि इन उदाहरणों के उत्तर उन्हें

ज़बानी याद होते हैं। मैं यह प्रयत्न करता था कि मंदबुद्धि छात्र, और सर्वप्रथम पेत्रिक, गणितीय चिंतन के यथासंभव अधिक बुनियादी उपकरणों के इस्तेमाल में – जोड़, घटा, गुणा, भाग के उदाहरणों में – माहिरी हासिल कर लें।

हम जब प्रकृति की "यात्राओं" पर जाते थे, तो मैं बच्चे का ध्यान उन अनेक सवालों की ओर दिलाता था जिन्हें लोग अपने काम में हल करते हैं। और आख़िर वह दिन आ गया, जिसके बारे में मुझे पक्का विश्वास था: पेत्रिक ने स्वयं ही सवाल हल कर लिया। उसकी आंखें चमकने लगीं, वह यह समझाने लगा कि सवाल में चर्चा किस बात की है, वह बहुत अच्छी तरह नहीं बता पा रहा था, लेकिन मैं यह देख रहा था कि आख़िर बच्चे के लिए वह बात स्पष्ट हो गई थी, जो अब तक अंधेरे में डूबी हुई थी। पेत्रिक ख़ुश था। मैंने भी चैन की सांस ली। बच्चे ने बड़ी मुश्किल से पढ़ाई ख़त्म होने का इंतज़ार किया और मां को अपनी ख़ुशी बताने घर दौड़ चला। मां घर पर नहीं थी। "मैंने अपने आप सवाल कर लिया," उसने नाना से कहा। पेत्रिक को अपनी सफलता पर गर्व था, और यह शुद्ध नैतिक गर्व तो मानव-गरिमा का स्रोत है। अपने श्रम पर गर्व की भावना के बिना सच्चा इन्सान नहीं हो सकता।

हमने अपने अध्यापक समुदाय में इस घटना पर सोच-विचार किया। हमने उन बच्चों को नई रोशनी में देखा, जिन्हें कठिनाई से पढ़ाई में सफलता मिलती है। कभी भी यह अंतिम फ़ैसला सुनाने की जल्दी नहीं करनी चाहिए कि यह बच्चा तो कुछ नहीं कर पाएगा, इसकी क़िस्मत में यही लिखा है। साल, दो साल, तीन साल तक वह किसी काम को करने में असफल हो सकता है, लेकिन आख़िर वह वक़्त आएगा, जब बच्चे को सफलता मिलेगी। विचार उस फूल की तरह है, जो धीरे-धीरे जीवन-रस संचित करता है। जड़ों को यह रस दीजिए, फूल पर धूप पड़ने दीजिए और आख़िर वह खिल जाएगा। बच्चे को ज्ञान पाने का हर्ष – यह परम मानवीय हर्ष प्रदान कीजिए।

हम, प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापकों ने कई संध्याएं एक जटिल और उग्र शिक्षण समस्या का हल ढूंढने लगाईं। समस्या यह थी कि कैसे बच्चों को ठोस वस्तुओं, पदार्थों की गिनती से, परिघटनाओं के बीच प्रत्यक्षतः दिखनेवाले संबंधों से अमूर्त सामान्यीकरण – नियम, सूत्र – की ओर ले जाया जाए? हमने एक दूसरे को कई ऐसे दिलचस्प तथ्यों के बारे में बताया,

जिनसे यह पता चलता था कि सभी बच्चे ऐसा सहज ही नहीं कर पाते हैं। कई ऐसे छात्र होते हैं, जो गिनती ख़ूब अच्छी तरह जानते हैं, फ़ौरन हिसाब लगा लेते हैं, लेकिन सवाल के अर्थ (शर्तों) को मुश्किल से समझ पाते हैं। कुछ बच्चों के लिए जो ठोस, ज्वलंत बिंबों के माध्यम से सोचते हैं, उन ठोस संख्याओं से हटकर सोचना मुश्किल होता है, जिन पर सवाल आधारित है। कई बच्चे ऐसे भी होते हैं, जो सवाल को पढ़कर फ़ौरन जवाब ढूंढ़ने की कोशिश करते हैं: हिसाब लगाने लगते हैं, यह सोचे बिना ही कि कैसा हिसाब लगाना चाहिए, किसलिए लगाना चाहिए।

हम सब की कक्षाओं में ऐसे बच्चे थे। हम आपस में सलाह-मशविरा करते थे: कैसे बच्चों को ठोस चिंतन से अमूर्त चिंतन की ओर ले जाया जाए। हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इसके लिए सवालों को हल करते समय बच्चों को नए ढंग से सोचना सिखाना चाहिए–बच्चे पहले सवाल की शर्तों पर सोच-विचार करें, फिर सवाल को संख्याओं के बिना, अंकगणितीय कार्यों के बिना हल करें। हम एक दूसरे की कक्षाओं में जाने लगे, यह देखने के लिए कि कैसे बच्चे सवाल पर सोच-विचार करते हैं, उसे हिसाब लगाए बिना हल करते हैं। इस प्रकार हम अलग-अलग बच्चों के बौद्धिक विकास का मार्ग ढूंढ़ने की कोशिश कर रहे थे।

ऐसा कभी नहीं होने देना चाहिए कि बच्चों को दिए जानेवाले नंबर उनके विचारों की बेड़ियां बन जाएं। मैं हमेशा कमज़ोर से कमज़ोर बच्चे को, जिससे लगता था कोई भी उम्मीद नहीं की जा सकती, यह अवसर देता था कि उससे जो काम नहीं हो पाता है उस पर वह अच्छी तरह सोच सके। पढ़ाई में बच्चों की रुचि कभी भी बुझती नहीं थी। बच्चों में गर्व, मान और आत्मसम्मान की भावनाएं जगाते हुए मैं यह लक्ष्य रखता था कि बच्चे बिना किसी की सहायता के, ख़ुद ही काम करना चाहें।

बच्चे को सोचने देना... पहली नज़र में यह बात जितनी आसान लगती है, वास्तव में यह उतनी आसान नहीं है। पहली से चौथी तक कक्षाओं के छात्रों के बौद्धिक श्रम को ग़ौर से देखिए–आप पाएंगे कि अधिकांश मामलों में (या प्रायः सदा ही ऐसा होता है) बच्चे ने आपके प्रश्न का उत्तर इसलिए नहीं दिया (या काम पूरा नहीं किया) कि वह सोच नहीं पाया, एकाग्रचित्त नहीं हो पाया। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बच्चे से बिल्कुल अचानक ही सवाल पूछा जाता है, वह सकपका जाता है। हम, प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापकों ने मिलकर इस बात पर

विचार-विमर्श किया कि बच्चे को सोचने का अवसर कैसे प्रदान किया जाए। हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे: कभी यह फ़ैसला सुनाने की जल्दी नहीं करनी चाहिए कि बच्चा कोई बात जानता है या नहीं जानता। कई बार ऐसा होता है, अध्यापक बच्चे से कहता है: "जाओ, जाकर बैठ जाओ, नहीं पता तुम्हें!" बच्चा अपनी जगह पर बैठता है और तभी उसके दिमाग़ में सारी बात साफ़ हो जाती है—वह देखता है कि उसे सब पता है। सो, उसे अध्यापक की कही बात बहुत बुरी लगती है। ऐसा क्यों होता है? इस प्रश्न का उत्तर हमें तुरंत नहीं मिला। इसके लिए बच्चों के काम का प्रेक्षण करने की, अनेक तथ्यों का अध्ययन करने की आवश्यकता थी।

जो बच्चा एक बार अपने मनोबल से और अपने मस्तिष्क पर ज़ोर डालकर लक्ष्य प्राप्त कर लेता है, उसे फिर टीपा-टापी से, नक़ल करने से, किसी से चुपके-से पूछने या बताने से घिन हो जाती है। बच्चों और मेरे बीच परस्पर विश्वास तथा सद्भावना भरे संबंध थे। छात्र कभी भी मुझे यह कहने से नहीं डरता था कि बहुत कोशिश करने पर भी उससे कोई काम नहीं हो पाया है। अपनी सभी शंकाओं, ख़ुशियों और निराशाओं के बारे में वे अध्यापक को बताते थे। मैं बच्चों के लिए कभी भी उन्हें दुख पहुंचानेवाला व्यक्ति नहीं बना—"दो" नंबर पाना तो सभी बच्चों के लिए बड़े दुख की बात होती है। जब अध्यापक बच्चे को रोज़-रोज़ कहता है: "तुम्हें 'दो' मिलेंगे," तो इससे बाल-आत्मा कितनी कुंठित होती है! बच्चा अपने आप को अभागा महसूस करने लगे इसके लिए उसे कोई बड़ा दुख नहीं चाहिए। यह विपदा इसलिए और भी भयानक हो जाती है कि नन्हा इन्सान अपने दुख का आदी होता हुआ चारों ओर से उदासीन हो जाता है, उसके स्वभाव में रुखाई आ जाती है। और यह रूखापन तो निष्ठुरता के लिए फलप्रद भूमि है। अगर क्लास में अभागे बच्चे हैं और उनके साथी किसी तरह उनकी सहायता करने की कोशिश नहीं करते, तो कभी भी अच्छा, मैत्रीपूर्ण और सद्भावनापूर्ण बाल-समुदाय नहीं बन पाएगा।

पर हां, ऐसा भी नहीं होने देना चाहिए कि नंबर बच्चों को बिगाड़ दें। कई स्कूलों में ऐसा होता है कि बच्चे ने दो शब्द कह दिए, बस फ़ौरन उसे "पांच" नंबर मिल गए। कई बार ऐसा भी होता है कि एक ही सवाल कई बच्चों से पूछा जाता है और उन सब को नंबर दिए जाते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि बच्चे में पढ़ाई के प्रति लापरवाही पैदा

होती है। बच्चों को सदा यह आभास होना चाहिए कि नंबर उनके बौद्धिक श्रम का परिणाम हैं।

छात्रों को इस बात का क़ायल कराना चाहिए कि बौद्धिक कार्य ऐसा श्रम है, जिसके लिए भारी प्रयत्न करने, अपने इच्छाबल से एकाग्रचित्त होने तथा कई ख़ुशियों से इंकार करने की ज़रूरत होती है। श्रम के वातावरण में ही अध्यवसाय और संकल्पशक्ति विकसित होते हैं। वह बच्चा, जिसने प्राप्त परिणामों को आलोचनात्मक दृष्टि से देखना सीख लिया है, जिसे अपने काम से असंतोष की अनुभूति हुई है और जो उसे अधिक अच्छी तरह करने की कोशिश करता है—ऐसा बच्चा कभी भी आलसी नहीं बनेगा।

अपने अनुभव से यह देखते-समझते हुए कि बौद्धिक श्रम में सफलता कैसे पाई जाती है, बच्चे आत्मनियंत्रण सीखते हैं। डटकर मेहनत करने, अधिक अच्छा परिणाम पाने की आदत के फलस्वरूप बच्चों में जैसे-तैसे किए गए काम, निठल्लेपन और काहिली के प्रति असहनशीलता विकसित होती है।

जब बच्चों के लिए पढ़ाई के श्रम की, सफलता की ख़ुशी ही पढ़ाई करने की प्रमुख प्रेरक शक्ति होती है, तब क्लास में कोई आलसी नहीं होता। सच्चे शिक्षक विरले ही आलसी बच्चों से संघर्ष करते हैं, वे तो बुद्धि की निष्क्रियता के परिणाम के रूप में आलस्य को दूर करने का प्रयत्न करते हैं।

धीरे-धीरे हमारे स्कूल की पहली से दसवीं तक सभी कक्षाओं में बौद्धिक श्रम के केवल सकारात्मक परिणामों का मूल्यांकन करने की प्रणाली अपनाई जाने लगी। पाठक यह पूछ सकते हैं: तिमाही या साल के अंत में अगर यह पता चले कि छात्र को किसी विषय में अंक मिले ही नहीं, तब क्या किया जाए? यही तो बात है कि अंकों का न होना बच्चे के लिए "दो" अंक होने से भी कहीं अधिक परेशानी की बात होती है। बच्चे के दिमाग़ में यह बात बिठाई जाती है: अगर मुझे अभी तक किसी विषय में अंक नहीं मिले, तो इसका मतलब यह है कि मैंने अभी काफ़ी मेहनत नहीं की। यही कारण है कि हमारे यहां ऐसा प्रायः कभी नहीं हुआ कि साल के अंत तक छात्रों को एक बार भी नंबर न मिले हों। चार साल के दौरान मैंने केवल छह बार बच्चों को तिमाही के अंत में नंबर नहीं लगाए। माता-पिता जानते थे: अगर उनके बेटे या बेटी को अंक नहीं मिले, तो इसका

अर्थ है कि सब कुछ ठीक नहीं है। वे यह भी जानते थे कि अंकों का न होना—बच्चे का अपराध नहीं है, बल्कि उसका संकट है। और संकट में तो सहायता करनी चाहिए, सो हम मिलकर छात्र की सहायता करते थे। मैंने माता-पिताओं को समझा-बुझाकर इस बात का क़ायल कराया कि वे कभी भी बच्चों से केवल सर्वश्रेष्ठ अंकों की ही मांग न करें, "फ़ेल" को बच्चे के आलस्य, अकर्मण्यता या अपर्याप्त प्रयास का सूचक न समझें।

कुछ अध्यापक शिक्षण के इस सूक्ष्म उपकरण—अंकों—का इस्तेमाल बिना सोचे-समझे करते हैं। कई स्कूलों में "तीन" अंक पाना बुरी बात समझी जाती है। "केवल 'चार', 'पांच' पाएंगे!"—ये आह्वान केवल पायोनियरों की सभाओं में ही नहीं सुनने में आते। बाल पत्र-पत्रिकाओं में भी ऐसे आह्वान पढ़े जा सकते हैं। पढ़ाई में संतोषजनक सफलता के प्रति ऐसे रवैये को बढ़ावा देते हुए अध्यापक वस्तुतः उस टहनी को ही काटता है, जिस पर बैठा है: वह बच्चों में पल्लवग्राहिता, छिछोरापन और लापरवाही जैसे गुण विकसित करता है।

दूसरी कक्षा में पढ़ाई शुरू होने के कुछ सप्ताह पश्चात बच्चों की रिपोर्ट-बुकें बना दी गईं, जिनमें बच्चे पाठों में मिलनेवाले अंक लिखते थे। एक बार भी ऐसा नहीं हुआ कि बच्चों ने मां-बाप से अपने नंबर छिपाने की कोशिश की हो। अगर अंक सफलता की ख़ुशी प्रतिबिंबित करते हैं, तो और कुछ हो ही नहीं सकता। रिपोर्ट-बुक में अध्यापक के हस्ताक्षरों की भी कोई ज़रूरत नहीं—यह तो स्कूल के पुराने परस्पर संशय और अविश्वास के वातावरण का अवशेष है। अगर क्लास में परस्पर विश्वास नहीं है, अगर छात्र शिक्षक को धोखा देने की कोशिश करते हैं, अगर नंबर वह कोड़ा है, जिससे बड़े बच्चों को "हांकते" हैं, तो सही शिक्षा का आधार ही नष्ट हो जाता है।

अनुचित ही लगाए गए "दो" अंक से स्कूल की एक सबसे बड़ी बुराई शुरू होती है। यह है—बच्चों का झूठ, अध्यापक और माता-पिता को धोखा देने की कोशिश। माता-पिता से स्कूल में अपनी असफलता और अध्यापक से अपनी अकर्मण्यता छिपाने के लिए बच्चे क्या-क्या तरकीबें नहीं सोचते। छात्रों के प्रति जितना अधिक अविश्वास होता है, उतनी ही चालाकी से वे धोखा देने की कोशिश करते हैं, आलस्य और अकर्मण्यता के लिए उतना ही अच्छा आधार होता है। आलस्य अविश्वास की संतान है। जिसे मैं शिक्षा देता हूं, वह सर्वप्रथम जीता-जगता इन्सान है, बच्चा

है और उसके बाद ही छात्र। उसे मैं जो अंक देता हूं, वह केवल उसके ज्ञान का मापदंड ही नहीं है, बल्कि सर्वप्रथम एक मनुष्य के नाते उसके प्रति मेरे रुख़ की अभिव्यक्ति है।

मैं सभी शिक्षकों को परामर्श देता हूं: बच्चे में जिज्ञासा, कौतूहल और ज्ञान-पिपासा की लौ की रक्षा कीजिए। इस लौ को जलाए रखने का एकमात्र स्रोत है श्रम में सफलता की ख़ुशी, एक श्रमिक के गर्व की भावना। बच्चे की हर सफलता को, कठिनाइयों पर उसकी हर विजय को अंकों से पुरस्कृत कीजिए, परंतु साथ ही अंकों का दुरुपयोग भी मत कीजिए। यह मत भूलिए कि जिस नींव पर आपके शिक्षण कौशल का भवन बनता है वह स्वयं बच्चे में ही, ज्ञान के प्रति और शिक्षक के प्रति उसके रवैये में ही है। पढ़ने की अभिलाषा, प्रेरणा और कठिनाइयों को पार करने की तत्परता ही यह नींव है। बड़े ध्यान से इस नींव को सुदृढ़ बनाइए, इसके बिना ज्ञान का मंदिर, विद्या का घर – विद्यालय – नहीं बन सकता।

"कथा-लोक"

कथा-कहानियां, खेल, कल्पना – यह बाल-चिंतन का, उदात्त भावनाओं और आकांक्षाओं का जीवनदायी स्रोत है। हमारा कई वर्षों का अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि कथा-कहानियों के बिंबों के प्रभाव में बाल-आत्मा में उत्पन्न होनेवाली सौंदर्यबोधात्मक, नैतिक और बौद्धिक अनुभूतियां विचारों के प्रवाह को सक्रिय बनाती हैं, जो मस्तिष्क को सक्रिय कार्य की प्रेरणा देता है, चिंतन के जीवंत "द्वीपों" को सुदृढ़ तारों से जोड़ता है। कथा-कहानियों के बिंबों के ज़रिए शब्द अपनी सूक्ष्मतम छटाओं के साथ बाल-चेतना में प्रवेश करता है; वह बच्चे के आत्मिक जीवन का क्षेत्र, उसके विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम – चिंतन का सजीव यथार्थ बन जाता है। कथा-कहानियों के बिंबों द्वारा जगाई गई भावनाओं के प्रभाव में बच्चा शब्दों के माध्यम से सोचना सीखता है। ऐसी सजीव, ज्वलंत कहानियों के बिना, जो बच्चे की चेतना और भावनाओं पर छा जाएं, मानव-चिंतन और वाणी के निश्चित चरण के रूप में बाल-चिंतन और बाल-वाणी की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

बच्चों को इस बात से गहरा संतोष मिलता है कि उनके विचार कथा-कहानियों के संसार में रहते हैं। बच्चा एक ही कहानी को पांच,

दस बार सुना सकता है और हर बार उसे उसमें कोई नई बात दिख सकती है। कहानियों के बिंब सजीव, सुस्पष्ट तथा ठोस से अमूर्त की ओर पहला क़दम हैं। मेरे छात्रों के आत्मिक जीवन में अगर कथा-कहानियों का एक पूरा काल न होता, तो उनमें शायद अमूर्त चिंतन की क्षमता इतनी अच्छी तरह न विकसित हो पाती। बच्चे ख़ूब अच्छी तरह यह समझते हैं कि संसार में दुष्ट चुड़ैल या राजकुमारी मेंढकी या राक्षस नहीं हैं, लेकिन वे इन बिंबों में भलाई और बुराई का मूर्त रूप देखते हैं। एक ही कहानी को सुनाते हुए वे अच्छाई और बुराई के प्रति अपना निजी रुख़ व्यक्त करते हैं।

कथा-कहानियों को सौंदर्य से अलग नहीं किया जा सकता, वे बच्चों में सौंदर्य की भावना विकसित करती हैं, जिसके बिना आत्मा की उदात्तता लोगों की यातनाओं, दुख-दर्द के प्रति हृदय की संवेदनशीलता नहीं हो सकती। कथा-कहानियों की बदौलत बच्चा न केवल मस्तिष्क से, बल्कि हृदय से भी संसार को जानता-समझता है। और वह केवल जानता-समझता ही नहीं, बल्कि चारों ओर के संसार की घटनाओं पर प्रतिक्रिया भी दर्शाता है, भलाई और बुराई के प्रति अपना रवैया भी प्रकट करता है। कथा-कहानियों में ही बच्चे पहली बार न्याय और अन्याय की बात सुनते और समझते हैं। बच्चे के पहले विचार और धारणाएं भी कथा-कहानियों की मदद से बनते हैं। बच्चे विचार को केवल तभी समझ पाते हैं, जबकि वह ज्वलंत बिंबों में मूर्तिमान हो।

बच्चों में मातृभूमि के प्रति प्रेम की भावना विकसित करने के लिए कथा-कहानियां अद्वितीय साधन हैं। कहानी का देश-भक्तिपूर्ण विचार उसके अंतर्य की गहनता में निहित होता है; सदियों से लोग जो कथा-कहानियां बनाते आए हैं, उनके बिंब बच्चों को मेहनतकश जनता की सशक्त सृजन भावना का, जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण, उसके आदर्शों और आकांक्षाओं का आभास दिलाते हैं। लोक-कथा में बच्चों में मात्र इसीलिए ही मातृभूमि के प्रति प्रेम जगाने की शक्ति होती है कि वह जनगण द्वारा रची गई है। जब हम कीयेव के सोफ़िया मठ में अनुपम भित्तिचित्रों को देखते हैं, तो हम उन्हें जन-जीवन के एक अंश के रूप में, जन-प्रतिभा के सृजन के रूप में ग्रहण करते हैं, और हमारे मन में जनता की सृजन भावना, उसके विचार, उसके कौशल पर गर्व की भावना जागती है। बाल-आत्मा पर लोक-कथा का प्रभाव भी कुछ ऐसा ही होता है। लगता है कि लोक

कथा का कथानक ग्राम जीवन की घटना पर ही ग्राधारित है: दादा-दादी ने शलगम उगाया,... दादा ने भेड़िये को धोखा देने की सोची, सो पुग्राल का बछड़ा बनाया,... परंतु लोक-कथा का हर शब्द ग्रमर भित्ति-चित्र पर हल्की-सी रेखा के समान है, हर शब्द में, हर बिंब में जन मानस की सृजन शक्ति व्यक्त होती है। लोक-कथाएं लोक-संस्कृति की ग्रात्मिक संपदा हैं, जिसे देखते-समझते हुए बच्चा ग्रपने हृदय से ग्रपने जनगण का बोध पाता है।

"ख़ुशियों का स्कूल" खुलने के तीन महीने बाद हमने ग्रपना "कथा-लोक" बनाया। बड़े छात्रों की मदद से एक कमरे में ऐसी चीज़ें बना दीं, जिनके बीच बच्चों को लगे, मानो वे कथा-कहानियों के बिंबों से घिरे हुए हैं। हमें ऐसा वातावरण बनाने के लिए काफ़ी मेहनत करनी पड़ी, जहां की हर चीज़ सांझ के झुटपुटे की ग्रौर उन कहानियों की, जो कभी मां ने सुनाई थीं, याद दिलाए। एक कोने में हमने दुष्ट चुड़ैल की झोंपड़ी बनाई, जो कहानी के ग्रनुसार मुर्ग़ी की टांगों पर खड़ी थी, उसके चारों ग्रोर ऊंचे पेड़ ग्रौर ठूंठ थे, झोंपड़ी के पास ही लोक-कथाग्रों के दूसरे नायकों की ग्राकृतियां थीं: चालाक लोमड़ी, भूरा भेड़िया, दूसरे कोने में दादा-दादी का घर, ग्रासमान में हंस थे, जो ग्रपने परों पर उक्राइनी लोक-कथा के छोटे-से लड़के को चुराए ले जा रहे थे। तीसरे कोने में नीला सागर-महासागर था, जिसके किनारे पर नेक बूढ़े ग्रौर चिढ़चिढ़ी बुढ़िया की टूटी-फूटी झोंपड़ी थी, दहलीज़ के पास लकड़ी का टूटा हुग्रा टब रखा था, बुड्ढा-बुढ़िया एक लट्ठे पर बैठे थे ग्रौर समुद्र में सुनहरी मछली तैर रही थी। चौथे कोने में शीतकालीन वन था, जिसमें हिम के टीले बन गए थे ग्रौर उनके बीच छोटी-सी बच्ची बर्फ़ में धंसती हुई जा रही थी–दुष्ट सौतेली मां ने उसे जंगल से बेरियां लाने भेजा था... छोटी-सी झोंपड़ी की खिड़की में से बकरा झांकता था। एक ग्रोर बड़ा-सा दस्ताना रखा था, जिसमें चूहे का घर था। प्लाईवुड से हमने एक बड़ा ठूंठ बनाया था, जिस पर गुड़ियां रखी थीं–नन्ही-मुन्नी बच्ची, ख़रगोश, लोमड़ी, भेड़िया, भालू, पुग्राल का बछड़ा, लाल टोपीवाली लड़की।

यह सब हमने ग्रपने हाथों बनाया था। मैं ग्राकृतियां काटता था, तस्वीरें बनाता ग्रौर चिपकाता था, बच्चे मेरा हाथ बंटाते थे। मैं उस वातावरण के सौंदर्यात्मक पहलू को बहुत महत्वपूर्ण समझता था, जिसमें बच्चे कथा-कहानियां सुनेंगे। कमरे में हर तस्वीर, प्रत्येक दृश्य-बिंब कहानियों

के शब्दों के प्रति बच्चों की ग्रहणशीलता बढ़ाता था, कहानी के विचार को अधिक गहराई से उजागर करता था। कहानियों के कमरे में रोशनी का भी अपना महत्व था। जब राजकुमारी मेंढकी की कहानी सुनाई जाती, तो जंगल में छोटी-छोटी बत्तियां जलती थीं, कमरे में हरा झुटपुटा होता था, जो उस वातावरण का सृजन करता था, जिसमें कहानी की घटनाएं होती हैं।

कहानियों के कमरे में मैं बच्चों को बहुत ज्यादा नहीं ले जाता था – हफ़्ते में एक बार या दो हफ़्तों में एक बार। सौंदर्य-पिपासा की अतितृप्ति नहीं की जानी चाहिए। जहां अतितृप्ति होती है, वहां नाक-भौंह चढ़ाने की प्रवृत्ति, छिछोरी निराशाएं, बोरियत और वक़्त ज़ाया करने के साधनों की खोज शुरू हो जाती है।

शरद और जाड़ों में संध्या समय हम अपने कहानियों के कमरे में जाते हैं। सांझ के झुटपुटे में कथा-कहानियां सुनने में बच्चों के लिए विशेष आकर्षण होता है, ऐसा आकर्षण और किसी समय, उदाहरणतः दोपहर को नहीं आता। बाहर अंधेरा छाता जा रहा है, हम कमरे में रोशनी नहीं करते, झुटपुटे में बैठे रहते हैं। सहसा एक कोने में बनी झोंपड़ी में बत्ती जल उठती है, आकाश में तारे चमकने लगते हैं, जंगल के पीछे से चंद्रमा निकलता है। कमरे में मंद-मंद प्रकाश फैल जाता है, कोनों में अंधेरा और भी घना हो जाता है। मैं बच्चों को दुष्ट चुड़ैल की लोक-कथा सुनाता हूं। यों तो मेरे शब्दों में बच्चों के लिए कोई भी नई बात नहीं है, लेकिन उनकी आंखों में विमुग्धता की चमक है। बच्चे कहानी के नायकों के दुख में दुखी होते हैं, ख़ुशी में ख़ुश होते हैं। उन्हें बुराई से नफ़रत होती है और भलाई का वे बड़े उत्साह से स्वागत करते हैं। दुष्ट चुड़ैल, भोली-भाली बच्ची अल्योन्का और हंसों की आकृतियां उनकी कल्पना में सजीव हो उठती हैं, उन्हें लगता है कि वे सब भी ऐसे जीव हैं, जो सोच सकते हैं, सुख-दुख महसूस कर सकते हैं। ये बाल-कथाएं बच्चों के लिए अजीबो-ग़रीब, रोमांचक घटनाओं का विवरण ही नहीं होती हैं, उनके लिए तो यह एक पूरा संसार होता है, जिसमें वे रहते हैं, संघर्ष करते हैं, बुराई का अपनी अच्छाई से मुक़ाबला करते हैं। कथा-कहानियों में बच्चे की आत्मिक शक्ति को शब्दों में अभिव्यक्ति मिलती है, वैसे ही जैसे खेलकूद में गति और संगीत में धुन उसे व्यक्त करती है। बच्चा कहानी सुनना ही नहीं चाहता है, बल्कि सुनाना भी चाहता है, जैसे कि वह गीत सुनना

ही नहीं, बल्कि गाना भी चाहता है, खेल देखना ही नहीं, खेलना भी चाहता है।

कुछ दिन बीतने पर बच्चे पूछने लगते हैं: "'कथा-लोक' कब चलेंगे?" हर्षमय क्षणों की प्रतीक्षा में बाल-हृदय पुलकित होता है। हम फिर सांझ के झुटपुटे में "कथा-लोक" में जाते हैं, फिर से पहले मैं कहानी सुनाता हूं और उसके पश्चात बच्चे सुनाते हैं। ऐसे क्षणों में सबसे शर्मीले बच्चे भी निडर और दृढ़संकल्प हो जाते हैं। जो बच्चे ग्राम बोलचाल में दो शब्द भी ठीक तरह से जोड़कर नहीं बोल पाते, वे ही कहानी सुनाते हुए धारा-प्रवाह बोलने लगते हैं। नीना, पेत्रिक, ल्यूदा, स्लावा, वाल्या जैसे बच्चे, जिनके चिंतन और वाणी के विकास में कई कठिनाइयां हैं, वे भी कहा-नियां सुनाते हैं।

हर बार जब हम "कथा-लोक" में आते हैं, तो बच्चों का खेलने का मन करता है। लड़के-लड़कियां सभी अपना प्यारा खिलौना, गुड्डा-गुड़िया ढूंढ़ लेते हैं। खेल सृजनात्मक कार्य बन जाता है: लड़के-लड़कियां कथा-कहानियों के नायक बन जाते हैं और उनके हाथों में जो खिलौने होते हैं, वे उनके विचारों और भावनाओं को अधिक अच्छी तरह व्यक्त करने में सहायक होते हैं। एक बच्चा पुआल के बछड़े को उठा लेता है, दूसरा दादी-गुड़िया को, तीसरा दादा-गुड्डे को – और वे लोक-कथा के संसार में पहुंच जाते हैं। वे कहानी के शब्दों को ही नहीं दोहराते, बल्कि अपनी कल्पना से उसमें नई-नई बातें जोड़ते जाते हैं। कुछ बच्चियां यों ही गुड़ियों से खेलना चाहती हैं। एक बच्ची गुड़िया को छोटे-से खटोले में लिटाकर उसे लाड़-प्यार करती है, लोरी सुनाती है। दूसरी बच्ची की नन्ही-मुन्नी गुड़िया बीमार पड़ गई है, वह उसकी टहल करती है।

मुझे इस बात पर कोई उलझन नहीं थी कि लड़के-लड़कियां कई बरसों तक गुड्डे-गुड़ियों से खेलते रहे। यह कोई "बचपना" नहीं है, जैसा कि कुछ अध्यापक सोचते हैं। गुड्डे-गुड़ियों में बच्चे उनका सजीव बिंब देखते हैं, जिन्हें फ़्रांसीसी लेखक सेंट-एक्ज़ुपेरी (१९००–१९४४) के शब्दों, वे "**अपना बनाना**" चाहते हैं। हर बच्चा यह चाहता है कि उसका अपना कोई हो, जिसे वह बेहद प्यार करे। मैं बड़े ध्यान से यह देखता था कि बच्चों और उनके प्यारे गुड्डे-गुड़ियों के बीच कैसे आत्मिक संबंध बनते हैं। मैं इस बात पर ख़ुश था कि लड़के भी काफ़ी देर तक गुड्डे-गुड़ियों से खेलते रहे थे। कोस्त्या का प्यारा गुड्डा था – बूढ़ा मछेरा। गुड्डे की टांग

बार-बार टूट जाती थी, आखिर कोस्त्या ने लकड़ी की टांग लगा दी और साथ ही मछेरे के हाथ में गांठदार लाठी भी थमा दी। अब वह लाठी के सहारे नदी पर मछली पकड़ने जाता था। कोस्त्या को अपने बूढ़े दोस्त से बातें करने का शौक़ था: वह उसे बताता था कि कहां कौनसी मछली होती है। लरीसा की प्यारी गुड़ियां थीं – दादी और पोती। लरीसा ने दादी के लिए ऐनक बना दी, उसके पैरों तले गरम नमदा बिछा दिया, कंधों पर दुशाला ओढ़ दिया; वाल्या के पास भी दो गुड़ियां थीं – छोटी-सी बिल्ली और चुहिया। वाल्या हर हफ़्ते बिल्ली के गले में नया रिबन बांधती थी और चुहिया के लिए न जाने क्यों हरा बिछौना ले आई थी।

"कथा-लोक" में बच्चे कभी कल्पना की उड़ानें भरते न थकते थे। किसी नई वस्तु को देखते ही उनकी कल्पना-शक्ति उसे किसी दूसरी वस्तु के साथ जोड़ देती, उनके बारे में अजीबोग़रीब बातें बच्चों के दिमाग़ में उठतीं, कल्पना उड़ानें भरने लगतीं, विचारों की धारा फूट निकलती, आंखें चमकने लगतीं और वाणी-सरिता मुक्त होकर बहने लगती। इस बात को ध्यान में रखते हुए मैं यह कोशिश करता था कि "कथा-लोक" के अलग-अलग कोनों में तरह-तरह की ऐसी चीज़ें रखी हों, जिनके बीच कोई वास्तविक या काल्पनिक संबंध स्थापित किया जा सके। मुझे यही चिंता थी कि बच्चे कल्पना करें, सृजन करें, नई-नई कहानियां रचें। एक कोने में एक टांग पर खड़े बगले के पास ही छोटा-सा, सहमा-सहमा-सा बिलौटा रखा हुआ था। बच्चों ने इन दोनों के बारे में कई कहानियां गढ़ीं। एक जगह छोटी-सी नाव रखी हुई थी और उसके पास ही मेंढक बैठा था – इन्हें तो देखते ही किसी कहानी में जोड़ने को मन होता था। एक छोटा-सा भालू मांद में से झांक रहा था और पास ही मच्छर और मक्खी थे, जो भालू की तुलना में बेहद बड़े थे (बाल-कथाओं में ऐसा संभव है), एक छोटा-सा सूअर और उसके पास साबुन और पानी की बाल्टी पड़ी हुई थी – यह सब देखकर बच्चे मुस्कराते ही नहीं थे, बल्कि यह उनकी कल्पना-शक्ति को जगाता था।

जब मैं अपने इस प्रयास में सफल रहता था कि ऐसा बच्चा, जिसके चिंतन में गंभीर कठिनाइयां थीं, वह कोई कहानी गढ़ ले, अपनी कल्पना में आस-पास की कुछ चीज़ों के बीच संबंध जोड़ ले, तब मैं पूरे विश्वास के साथ यह कह सकता था कि बच्चे ने सोचना सीख लिया है। मैं पहले भी इस बात का ज़िक्र कर चुका हूं कि वाल्या के चिंतन को सक्रिय बनाना

और स्मरण-शक्ति सुदृढ़ करना कितना कठिन कार्य था: उसके चिंतन को सक्रिय बनाने का एक साधन था – चारों ओर के संसार की वस्तुओं और परिघटनाओं के बीच संबंधों के सहसा दिखाई दे जाने पर बच्ची के मन में उठनेवाली विस्मय-विमुग्धता की भावना। एक दूसरा उतना ही महत्वपूर्ण साधन था – कथा-कहानियां। वाल्या बहुत देर तक कोई कहानी खुद नहीं सोच सकी थी और मैं इस बात पर परेशान था। पढ़ाई के तीसरे साल में कहीं वाल्या ने मेंढकी, नाव और मछली की कहानी बनाई। यह रही वह कहानी: "मेंढकी ने देखा नदी के किनारे नाव खड़ी है। नाव मछेरे-दादा की थी। वह उसे नदी के किनारे खड़ी करके गांव में रोटी लेने गए हुए थे। मेंढकी का नाव में सैर करने का मन हुआ। वह अपने डबरे में से निकल कर नाव में जा चढ़ी और चप्पू संभाल लिया। तभी नदी में से एक मछली बोली: 'मेंढकी री मेंढकी, यह तू क्या कर रही है? तू तो छिछले डबरे में रहती है, मगर नाव को गहरा पानी चाहिए।' मेंढकी ने मछली की बात नहीं सुनी और नाव को अपने डबरे की ओर बढ़ा दिया। नाव बोली: 'मेंढकी, मेंढकी, तू मुझे कहां ले जा रही है?' मेंढकी ने जवाब दिया: 'अपने डबरे में। आज सारे मेंढक देख लेंगे कैसे मैं नाव चलाती हूं।' नाव मुस्करा दी और मन ही मन सोचने लगी: 'अभी दादा आएंगे, तुझे नाव चलाना सिखा देंगे।' बड़ी मुश्किल से मेंढकी नाव को डबरे में घसीट लाई। नाव कीचड़ में फंस गई और आगे बढ़ती ही नहीं थी। मेंढकी ने बड़ा ज़ोर लगाया, पर नाव अपनी जगह से टस से मस न हुई। उधर सारे मेंढक-मेंढकियां डबरे में से निकल आए थे – मेंढकी ने डींग जो हांकी थी: 'देखो, मैं कैसे नाव चलाती हूं।' अब मेंढकी बहुत शर्मिंदा हुई, वह डबरे में कूद पड़ी और चारों ओर कीचड़ उछला। सारे मेंढक-मेंढकियां ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगे। तभी मछेरे-दादा आ गए। वह नाव डबरे से खींच ले गए। मेंढक-मेंढकियां डर के मारे हरी-हरी काई में जा छिपे। शाम को हिम्मत करके वे बाहर निकले और फिर खिल-खिलाकर हंसने लगे। तब से रोज़ रात को वे हंसते हैं – शाम से सुबह तक दलदल में मेंढकों की टर्र-टर्र होती रहती है। वे शेख़ीबाज़ मेंढकी पर हंसते हैं।"

कहानियां रचना बच्चों के लिए काव्यमय सृजन की एक सबसे रोचक विधा है। साथ यह बौद्धिक विकास का महत्वपूर्ण साधन है। अगर आप चाहते हैं कि बच्चे रचना करें, कलात्मक बिंबों का सृजन करें तो अपनी सृजन-ज्वाला की कम से कम एक चिनगारी ही बाल-चेतना में पहुंचा

दीजिए। अगर आप स्वयं सृजन नहीं कर सकते हैं या आप बच्चों की अभिरुचियों के संसार में उतरना व्यर्थ की बात समझते हैं, तो कुछ नहीं हो सकता।

"कथा-लोक" में तीना का अपना प्यारा गुड्डा था—ढलाई कारख़ाने का मज़दूर। उसके चेहरे पर पिघले लोहे की चमक थी। बच्ची को ढलाई कारख़ाने के मज़दूरों से हमारी भेंट याद रही थी और अब, तीन साल बाद उसने अग्निल नदी की कहानी रची थी:

"विशाल भट्ठी के सामने महाबली पुरुष खड़ा है। उसने लोहा गलाया है। लोहा उबल रहा है, उसमें बुलबुले उठ रहे हैं। महाबली पुरुष भट्ठी का पट खोलता है और अग्निल नदी बह निकलती है। वह बहती जाती है और कहती जाती है: 'लोगो, देर नहीं करो, जल्दी से तपा लोहा ले लो और उससे वे सब चीज़ें बना लो जो तुम्हें चाहिए।' सयाने मज़दूर अग्निल नदी के पास आते हैं, पिघला हुआ लोहा लेते हैं, उसे रेत में उंडेलते हैं और लोगों के लिए ज़रूरी चीज़ें बनाते हैं।"

फ़ासिज़्म के विरुद्ध युद्ध और सोवियत जनता की वीरतापूर्ण विजय ने हमारे जनगण के सारे आत्मिक जीवन पर, उसकी स्मृति में गहरी छाप छोड़ी है। मातृभूमि की रक्षा करनेवाले वीर बच्चों की कल्पना में परी-कथाओं के महाबली पुरुषों के समान हैं। बच्चे उनके बारे में बड़ी ज्वलंत और भावपूर्ण कहानियां रचते हैं। हमारे जनगण के महावीरों की जितनी भी कहानियां बच्चों ने बनाईं, उन सब में सोवियत लोगों के साहस, उदात्तता और अजेयता का विचार पिरोया गया था। दान्को की रची एक कहानी देखिए:

"मां बेटे को फ़ौज में विदा कर रही थी। उसने बेटे से कहा: 'बेटा, अपनी जन्मभूमि की मुट्ठी भर मिट्टी साथ ले लो। सदा याद रखना कि तुम्हें इसकी रक्षा करनी है!' बेटे ने अपनी जन्मभूमि की मुट्ठी भर मिट्टी रेशम की लाल गुत्थी में भर ली। वह इस गुत्थी को सदा सीने से लगाए रखता था। दुश्मनों ने हमारे देश पर हमला कर दिया। बेटे ने सीमा पर दुश्मनों का सामना किया, वह उन पर मशीनगन से गोलियां बरसा रहा था, दुश्मन नदी में गिर रहे थे। बेटा एक क़दम भी पीछे नहीं हटा। अचानक दुश्मन की गोली उसके सिर में आ लगी, आंखों में ख़ून भर गया, हाथ कमज़ोर पड़ गए। तभी उसे अपने घर की मिट्टी की याद आई। लाल गुत्थी को छूते ही उसके हाथों में असाधारण शक्ति आ गई।

महावीर फिर से गोलियां चलाने लगा, दुश्मन नदी में डूब गए। तभी सहायता भी आ गई–तेज़ विमान और शक्तिशाली टैंक।"

मेरे पास अनेक ऐसी कहानियां लिखी हुई हैं, जो बच्चों ने सांझ के झुटपुटे में रची थीं। मेरे लिए ये कहानियां विचारों की ज्वलंत शिखाओं के रूप में प्रिय हैं, जो मैं बाल-हृदयों में जगा सका था। अगर बच्चे कहानियां न रचते, यह सृजनात्मक कार्य न करते, तो अनेक बच्चों की वाणी में प्रवाह न होता, उनका चिंतन अव्यवस्थित होता। मैंने यह पाया कि बच्चों की सौंदर्यबोधात्मक भावनाओं और शब्द-भंडार के बीच सीधा संपर्क है। सौंदर्य अनुभूति शब्दों को भावनात्मक रंग प्रदान करती है। कहानी जितनी दिलचस्प होती है, कहानी सुनते समय बच्चों का परिवेश जितना अधिक असाधारण होता है, उनकी कल्पना की उड़ान उतनी ही सशक्त होती है और उनके रचे बिंब उतने ही अप्रत्याशित होते हैं। सांझ के झुटपुटे में मेरे छात्रों ने दसियों कहानियां रचीं, जिन्हें 'सांझ के झुटपुटे की कहानियां' शीर्षक हस्तलिखित संग्रह में बांधा गया है।

'सांझ के झुटपुटे की कहानियों' में पशु-पक्षियों और फूलों-पौधों के बारे में कई रोचक कहानियां हैं। फूलों की कहानियां रचने में बच्चों को भी और मुझे भी बड़ा आनंद मिला। मैं बच्चों को इन्सान के भावनात्मक जीवन के बारे में बताता था, यह बताता था कि कैसे लोग अपनी भावनाओं को फूलों के बारे में गीतों और किंवदंतियों में व्यक्त करते आए हैं। मैं कहानी की शुरुआत करता था और आगे बच्चे अपनी कल्पना से अनोखे, सजीव बिंबों का सृजन करते चले जाते थे।

हर दो-तीन महीने बाद हम "कथा-लोक" के हर कोने में नई सजावट करते थे–प्लाईवुड से नई आकृतियां, पेड़, झाड़ियां काटते थे, परी-कथाओं के महल और झोंपड़ियां बनाते थे। बच्चों ने पेपर-माशे से कहानियों के नायकों की आकृतियां बनाना सीख लिया। इससे कहानियों की दुनिया और भी समृद्ध हो गई। हमने उक्राइनी लोक-कथा 'भाई इवान', झुकोव्स्की की 'सोती रानी', अक्साकोव की 'लाल फूल', दाल की 'पैने दांतों वाली चुहिया और अमीर गौरैया', गार्शिन की 'मेंढकी की यात्रा', डेनमार्क के हांस एंडरसन की 'बर्फ़ की रानी', जर्मनी के जैकब ग्रीम और विल्हेल्म ग्रीम की 'ब्रेमन के गवैये', फ़्रांस के शार्ल पेर्रो की 'निद्रामग्न सुंदरी', रूसी लोक कथा 'सुंदरी मार्या और वान्या', स्वीडन की लोक-कथा 'घर की कील' तथा जापानी लोक-कथा 'कुबड़ी गौरैया' के लिए आकृतियां

बनाईं। जिस तरह हमें ख़ुशियां प्रदान करनेवाले प्रिय व्यक्ति की छवि हमारी चेतना में सदा के लिए अंकित हो जाती है, उसी तरह बच्चों के आत्मिक जीवन में इन कहानियों ने अपना स्थान बना लिया। बच्चों को जीवन भर के लिए इन कहानियों का एक-एक शब्द याद हो गया, जबकि उनसे कभी किसी ने इन्हें याद करने को नहीं कहा। जब शब्द अपने अद्वितीय सौंदर्य से, अपनी छटाओं से बाल-हृदय को उत्तेजित करते हैं, तो वे सदा के लिए याद हो जाते हैं। इससे स्मरण-शक्ति पर कोई ज़ोर नहीं पड़ता, उलटे वह इससे और भी तीव्र हो जाती है।

पहली बार किसी नई कहानी को कहना-सुनना बच्चों के जीवन में बहुत बड़ी घटना होती है। मैं कभी नहीं भूलूंगा कि कितने उत्साह, उमंग के साथ बच्चों ने एंडरसन की कहानी 'बर्फ़ की रानी' के लिए अपने "कथा-लोक" में सजावट की थी। तब बच्चे दूसरी कक्षा में पढ़ते थे। कहानी की घटनाएं ढलवां छतोंवाले मकानों, ऊंचे-ऊंचे टीलों के बीच बने बर्फ़ की रानी के महल में होती हैं। बर्फ़ीले मैदानों में हिम के ढेरों के बीच हिरन तेज़ी से दौड़ता जाता है। बच्चों ने यह सब अपने हाथों से बनाया। जाड़े की संध्या को सब बच्चे "कथा-लोक" में इकट्ठे हुए। मकानों की खिड़कियों में रोशनी हो गई, आसमान से बर्फ़ गिर रही थी, हमारे चारों ओर सांझ का झुटपुटा था। बच्चे सांस रोके कहानी सुन रहे थे... कहानी ख़त्म हो गई, पर बच्चों ने फिर से सुनाने का अनुरोध किया। जितनी बार बच्चों ने कहा, उतनी बार मैंने कहानी सुनाई। शब्दों के प्रति बच्चों का यह आकर्षण, यह विमुग्धता मेरे लिए अमूल्य उपहार थे। बच्चे बार-बार 'बर्फ़ की रानी' की कहानी सुनना चाहते थे, इसलिए नहीं कि उन्हें उसके शब्द याद करने थे, बल्कि इसलिए कि वे उनके लिए आश्चर्यजनक संगीत की तरह ध्वनित होते थे।

शिक्षक सदा यह सोचता रहता है: किस तरह बच्चों को अपनी मातृभाषा का गहन ज्ञान प्रदान किया जाए, मातृभाषा के शब्दों को किस तरह उसके आत्मिक जीवन का ऐसा अंश बनाया जाए कि वे तेज़ छेनी भी और विविधतापूर्ण रंग-पट्टिका भी और सत्य का ज्ञान पाने का सूक्ष्म उपकरण भी बन जाएं। भाषा चिंतन की, विचारों की भौतिक अभिव्यक्ति है और बच्चा उसे केवल तभी जान सकेगा, जबकि अर्थ के साथ-साथ वह उज्ज्वल भावनात्मक रंगत को भी, शब्दों में स्पंदित होते संगीत को भी ग्रहण करेगा। शब्द के सौंदर्य की अनुभूति के बिना बच्चे की बुद्धि उसके

अर्थ के गूढ़ पहलुओं को नहीं समझ पाएगी। सौंदर्य की अनुभूति तो कल्पना की उड़ान के बिना, उस सृजन में, जिसका नाम है बाल-कथाएं, बच्चे के भाग लिए बिना हो ही नहीं सकती। बाल-कथाएं सक्रिय सौंदर्यबोधात्मक सृजन हैं, जिसमें बच्चे के आत्मिक जीवन के सभी क्षेत्र भाग लेते हैं— उसकी बुद्धि, भावनाएं, कल्पना-शक्ति और इच्छाबल। कहानी कहने के साथ यह सृजन आरंभ होता है और इसका उच्चतम शिखर तब होता है, जब बच्चे कहानी को खेलते हैं।

हमारे "कथा-लोक" में ही कठपुतली थियेटर और नाटक मंडली का जन्म हुआ। यहां बच्चों ने पहली बार एक उक्राइनी लोक-कथा खेली, जिसमें एक दस्ताने में चूहा और दूसरे बहादुर जानवर मिलकर रहने लगते हैं। फिर बड़े जोश के साथ बच्चों ने राजकुमारी मेंढकी की कहानी और कुबड़ी गौरैया की जापानी लोक-कथा खेली। चौथी कक्षा में बच्चों ने मिलकर संगीतकार टिड्डी की कहानी बनाई और उसकी भूमिकाएं अदा कीं।

"कथा-लोक" में मैंने बच्चों को पहली बार राबिनसन क्रूज़ो की कहानी, 'म्यूनहाज़न के कारनामे', 'गलीवर की यात्राएं', 'ज़ार सल्तान की क़िस्सा' और 'यान्को संगीतकार' कहानी—ये सब पुस्तकें पढ़कर सुनाईं। बच्चे जीवन भर जाड़ों की उन संध्याओं को नहीं भूलेंगे, जब खिड़की के बाहर बर्फ़ीली आंधी चल रही होती थी और वे राबिनसन क्रूज़ो के साथ दुर्घटनाग्रस्त जहाज़ में से बचकर सूने द्वीप पर चढ़ते थे, उसके साथ मिलकर प्रकृति के साथ संघर्ष की सब कठिनाइयां सहते थे। "कथा-लोक" में हमने एंडरसन, तोलस्तोय, उशीन्स्की, ग्रीम बंधुओं और सोवियत लेखकों कोर्नेई चुकोव्स्की तथा समुईल मर्शाक की लिखी सारी बाल-कथाएं पढ़ डालीं। कथा-कहानियों में भलाई और बुराई, सच्चाई और झूठ, ईमानदारी और बेईमानी के जो नैतिक विचार निहित होते हैं, उन्हें इन्सान केवल तभी आत्मसात करता है, जबकि ये कथा-कहानियां बचपन में पढ़ी गई हों। कथा-कहानियां तो होती ही बच्चों के लिए हैं।

हमारा पठन-पाठन भी मौलिक ही था: यहां चर्चित बाल-कथाएं और कहानियां मुझे कंठस्थ थीं। किताब मैं केवल इसलिए हाथ में लेता था कि बच्चे उसमें बने चित्र देख सकें। कहानियां सुनने-सुनाने की ही भांति, पठन-पाठन भी बच्चों में नेक, मानवीय भावनाएं जगाने, उन्हें विवेकशील बनाने का सशक्त साधन था।

बचपन में पठन-पाठन सर्वप्रथम हृदय को संवारता है – यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है – उदात्त मानवीय विचार बाल-हृदय के अंतरंग तारों को स्पर्श करते हैं। उदात्त विचारों को उजागर करनेवाला शब्द बाल-हृदय में सदा के लिए मानवीयता के कण छोड़ जाता है, और ये मिलकर ही उसका ईमान, उसके अंतःकरण का स्वर बनते हैं।

"अजूबों का टापू" – एक नया "कथा-लोक"

असाधारण बातें – यात्राओं और कारनामों का रोमांच, प्रकृति की अंधशक्तियों के साथ संघर्ष – यह सब बच्चों को आकर्षित करता है। जब मैंने बच्चों को पहली बार राबिनसन क्रूज़ो की कहानी सुनाई, तो उनका मन हुआ कि वे यात्रियों का खेल खेलें, समुद्री लहरों का शोर और झरने का गर्जन सुनें। बच्चों ने अपना "अजूबों का टापू" बनाने का फ़ैसला किया – एक ऐसी रहस्यमयी जगह, जहां बच्चे खेलों की दुनिया में रह सकें। यह "टापू" हमने बबूल के और दूसरे झाड़ों के बीच बनाया। यहां हमने राबिनसन की झुग्गी बनाई, उसके चारों ओर जंगली जानवरों से रक्षा के लिए डंडों की बाड़ लगाई। कहानी में जैसे चूल्हे का ज़िक्र है, वैसा ही चूल्हा भी बनाया। झुग्गी में एक छोटी-सी खिड़की भी बना दी, जिसमें से हम "समुद्र" के असीम विस्तार को देखते थे, एक क्यारी खोदी और उसमें गेहूं और जौ के दस-बीस दाने बो दिए। कोल्या अपने घर से बकरे को भी यहां लाता था – राबिनसन के पास भी तो बकरियां थीं। बच्चे कहीं से लकड़ी का एक पुराना गोल पीपा, रस्सियां और ईंटें ले आए। पीपे के लोहे के छल्लों से चाकू बनाए, रस्सियों से मछली पकड़ने का जाल। आदिम युग के शिकारियों की तरह हम सूखी लकड़ी के दो टुकड़ों को रगड़-रगड़कर आग निकालते थे – क्या पता, राबिनसन के पास आग जलाने का और कोई साधन था या नहीं।

जिस गड्ढे में से हमने झुग्गी बनाने के लिए मिट्टी ली थी, उसमें बारिश का पानी भर गया और छोटा-सा पोखर बन गया। बच्चे पानी में उछलते-कूदते थे ; उनकी कल्पना में यह असीम महासागर था। अगर समुद्र है, तो जहाज़ भी होने चाहिए : बच्चों को कहीं पर लकड़ी का टुकड़ा मिल गया और वे उससे नाव बनाने में लग गए। यह काम आसान नहीं था,

लेकिन बच्चों ने उसे पूरा करके छोड़ा, नाव पर पाल लगाए गए और "जहाज़" यात्रा पर निकला।

एक छोटे-से टीले के पीछे, जो बच्चों की कल्पना में विशाल पर्वत बन गया, हमने लिलिप्यूशियनों का देश बनाया। प्लाईवुड और सरकंडों से इस देश की राजधानी बनाई, चिकनी मिट्टी से घोड़े, गायें और भेड़ें बनाईं, रूसी लोक कथाओं के महावीर इल्या मूरोमेत्स और उसके दुश्मन "सीटीमार लुटेरे" की आकृतियां बनाईं। ये आकृतियां झाड़ियों के बीच रख दीं, यहां बच्चों के लिए प्राचीन रूस का घना जंगल था। यहां हम गर्मियों की संध्याओं को आते थे, सब बच्चे निडर, साहसी महावीरों की कहानी सुनाना चाहते थे।

घनी झाड़ियों के पीछे, खड्ड की ढलान में हमें एक छोटा-सा गड्ढा दिखाई दिया—यह दुष्ट राक्षस की गुफा थी, वहां गुफा के अंधकार में सुंदरी राजकुमारी बंदी थी।

जब मौसम अच्छा होता था और हम छुट्टी के दिन कहीं दूर की यात्रा पर नहीं जाते थे, तब हम यहां "अजूबों के टापू" पर समय बिताते थे। राबिनसन की झुग्गी के पास ही हमने टहनियों और घास-पात की एक झोंपड़ी बनाई। वह बच्चों की प्यारी जगह थी, जहां से कल्पना के पंख उन्हें कथा-कहानियों की दुनिया में ले जाते थे। कथा-कहानियों के नायक हमारे पास ही थे, और जब धरती पर रात उतरती थी, तो हमें लगता था, मानो हम "सीटीमार" की कर्णभेदी सीटी, राक्षस की आहें-कराहें और बूट पहने बिल्ले के संभल-संभल कर चलने की आहट सुन रहे हों। यहां पर बच्चों की कल्पना की लौ ख़ूब तेज़ होती थी। यूरा, गाल्या, तीना, वीत्या ने यहां अनोखी कहानियां गढ़ीं। यहां का वातावरण ही कल्पना की उड़ान की प्रेरणा देता था। विचारों की धारा बिना रुके बहती चली जाती थी, बच्चे अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए बड़े सटीक, सजीव शब्द ढूंढ़ लेते थे। सेर्योझा ने सुनहरे इंद्रधनुष के बारे में यह कहानी बनाई थी :

"एक बार शाम के समय भीमकाय सुनार सूरज के पास आकर बोले : 'सूरज, सूरज, हमारे लोहे के हथौड़े टूट गए हैं, अब हम चांदी के तार कैसे कूटेंगे। हमें पृथ्वी पर जाने दो, हम वहां से नए औज़ारों के लिए लोहा ले आएंगे।' सूरज ने सुनारों को जाने की इजाज़त दे दी। भीमकाय सुनार लोगों की ओर चल दिए, पर काली घटाओं ने उनका

रास्ता रोक लिया। सुनारों ने घटाओं के पीछे से पृथ्वी को देखा, अरे बाप रे, वे तो बहुत ही ऊपर थे। अब नीचे कैसे उतरें? वापस सूरज के पास जाकर वे कहने लगे: 'सूरज, सूरज, हम धरती पर कैसे उतरें? कोई पुल बना दो।' सूरज ने अपनी किरणें काली घटाओं के आर-पार फैला दीं और आकाश में सुनहरा पुल चमकने लगा। धरती पर लोगों को इंद्रधनुष दिखाई दिया। सुनार इस पुल पर उतरकर लोगों के पास आए, उनसे लोहा लिया और फिर पुल पर चढ़कर वापस चले गए। सुनारों को लौटा देखते ही सूरज ने अपनी सुनहरी किरणें समेट लीं, इंद्रधनुष ख़त्म हो गया। तब से जब भी काली घटाएं छाती हैं, सूरज भीमकाय सुनारों को लोहा लेने पृथ्वी पर भेजता है। जाड़ों में सुनहरा इंद्रधनुष नहीं होता, क्योंकि दिन छोटे होते हैं और सुनार बहुत कम ही तार कूटते हैं।"

मैं इस बात पर बहुत ख़ुश था कि यहां सभी बच्चों ने अपनी-अपनी कहानी बनाई। ग्रीष्म ऋतु की एक शांत सुहावनी संध्या सदा के लिए मेरे स्मृति-पटल पर अंकित हो गई है। सूरज डूब गया था, आकाश भस्म-वर्ण-सा हो गया था। जब ग्रीष्म ऋतु अपनी भरपूर जवानी में होती है, उन दिनों हमारे यहां कुछ ऐसी संध्याएं होती हैं। लगता है, मानो आकाश स्वयं ही आलोकित हो रहा है। ऐसी संध्याओं में गोधूलि की वेला अधिक लंबी होती है, देर तक तारे नहीं निकलते... बच्चे प्राकृतिक सौंदर्य पर विमुग्ध हुए चुपचाप बैठे थे। ऐसे क्षणों में कल्पना की लौ विशेषतः प्रखर हो उठती है। सहसा नीना अपनी कहानी सुनाने लगी:

"सूरज अपने जादुई बाग़ में आराम करने चला गया। वह आराम करने लेटा, पर आंखें बंद करना भूल गया। भीमकाय सुनारों ने सोचा अभी दिन ही है। वे चांदी के तार कूटते ही जा रहे थे। तार बारीक धूल में बदल गए। यह रजत धूल आसमान में फैल गई, अब वह चमक रही है..."

यह आश्चर्यजनक कहानी सुनते हुए मेरा दिल अभिभूत हो उठा। कितनी ख़ुशी की बात है कि प्राकृतिक सौंदर्य पर विमुग्धता, कथा-कहानियों के रोमांचकारी बिंब—यह सब बाल-चेतना में विचारों को प्रस्फुटित करता है। मैं नहीं जानता कि इसका कारण क्या है, परंतु जून की सबसे लंबी संध्याओं में, जब धूसर आसमान रहस्यमयी चादर सा लगता है—ऐसे क्षणों में बच्चों की कल्पना-शक्ति विशेषतः सक्रिय हो उठती थी।

तीसरी कक्षा के बाद बच्चों ने "अजूबों के टापू" पर "छापामार टुकड़ी का हेडक्वार्टर" बनाना चाहा। जैसा कि होना भी चाहिए "हेड-क्वार्टर" ज़मीन में एक तहख़ाने में था। इसके लिए गड्ढा खोदने और उसे ठीक-ठाक करने में बड़ी कक्षाओं के छात्रों ने हमारी सहायता की। बच्चों का रोचक खेल शुरू हुआ, जो कई महीनों तक चला। बच्चे रात को खेलना चाहते थे। वे "शत्रु" की टोह लेने जाते थे, कुतुबनुमे का इस्तेमाल करना सीख गए। बच्चों ने लकड़ी की "मशीनगनें" और "सबमशीनगनें" बना लीं, सैनिक कार्रवाई पर निकलने से पहले बिल्कुल फ़ौजी ढंग से आदेश दिए जाते थे।

प्राथमिक विद्यालय के अंतिम वर्ष में बच्चे रूसी लेखक पावेल बाझोव की पुस्तक 'मैलाकाइट मंजूषिका' से बहुत प्रभावित हुए। जब मैं बच्चों को उराल पर्वत में पाए जानेवाले रत्नों की और उन गुफाओं की अनुपम छटा की कहानियां सुनाता था, जिनमें "ताम्र पर्वत की उदार रानी" के अथाह भंडार है, तो बच्चों की आखें हर्षोत्साह से चमकने लगती थीं। उन दिनों बच्चों का मन हो रहा था कि कोई सुंदर, रहस्यमयी और रोमांच-कारी काम करें। किसी को यह सूझा कि क्यों न "पाताल महल" बनाया जाए। हम कांच के लाल, पीले, नीले, हरे, बैंगनी, नारंगी, आसमानी टुकड़े इकट्ठे करने लगे। इन्हें हमने अपनी गुफा की दीवारों में लगा दिया। गुफा में जब छोटा-सा बल्ब जलता था और दीवारों पर चमकीला इंद्रधनुष खिल उठता था, उस वक़्त बच्चों में जो उल्लास, जो विस्मय-विमुग्धता की भावना संचारित होती थी, उसका शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। यहां नई-नई कहानियां बनीं, यहां एक बार फिर मैंने प्रत्यक्षतः यह देखा कि बौद्धिक शक्ति के विकास में, उसे सुदृढ़ बनाने में सौंदर्यबोधात्मक भावनाओं की भूमिका कितनी विशाल है। मेरे देखते-देखते वाल्या, पेत्रिक और नीना की चिंतन-शक्ति में नया निखार आया : बच्चों ने अपनी कहा-नियां बनाईं, जिनमें कल्पना की समृद्धता देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। यहीं पर ल्यूदा ने भी कहानी रची। मैं समझ गया कि इस बच्ची के चुप-चुप रहने का कारण उसका मंथर बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि उसका सपनों में खोए रहने, विचारमग्न रहने का स्वभाव है।

संगीत बच्चों को संसार का सौंदर्य दिखाता है

"ख़ुशियों के स्कूल" की ही भांति प्राथमिक कक्षाओं में हम प्रकृति का संगीत सुनते थे, जो शब्दों की भावनात्मक रंगत का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत है तथा धूनों के सौंदर्य को समझने और अनुभव कर पाने की कुंजी है। प्रकृति का संगीत सुनते हुए बच्चे समूह-गान के लिए भावनात्मक रूप से तैयार होते थे। मैं यह प्रयत्न करता था कि जो गीत हम गाएंगे उसके समस्वर संगीत बच्चे प्रकृति में पहचानें, सुनें।

स्कूल से थोड़ी ही दूर एक रमणीय स्थल है। संध्याकालीन गगन यहां सरोवर के दर्पण में प्रतिबिंबित होता है, चरागाह से पंछियों के गीत के स्वर आते हैं, टिड्डे गुंजायमान गीत से संध्या की शीतलता का स्वागत करते हैं। उक्राइनी संगीतकार स्तेपोवोई का गीत 'मेरी संध्या वेला' सीखने से पहले हमने कई बार यहां आकर प्रकृति का संगीत सुना। इस गीत में संध्या वेला के सौंदर्य की अनुभूति को अद्वितीय कौशल के साथ व्यक्त किया गया है। इसकी धुन में बच्चे उस संगीत को पहचानते थे, जिसने उन्हें ग्रीष्म की शांत संध्याओं में मोहित किया था। यहीं, इसी रमणीय जगह पर हमने यह गीत सीखा। बच्चे गाना चाहते थे। फिर कुछ सप्ताह पश्चात स्कूल के "संगीत-कक्ष" में बच्चों ने यही गीत गाया। बच्चों को संध्या वेला का मनोहारी दृश्य याद हो आया था, उनके चेहरे हर्ष से प्रदीप्त हो उठे।

जंगल में हम **धुपहली दुपहरी का संगीत** सुनते थे। ऊंचे-ऊंचे पेड़ों पर पत्तियों का मंद-मंद मर्मर होता है, फ़ाख़्ता गुटरगूं करती है, पेड़ पर कठफोड़वा ठक-ठक करता है, कोयल की कूक सुनाई देती है। इस संगीत से उत्पन्न भावनाओं के फलस्वरूप बच्चे रूसी संगीतकार आरेन्स्की के गीत 'कोयल' का सौंदर्य समझ सके।

बच्चे बड़े शौक़ से निम्न संगीत रचनाएं मिलकर गाते थे: आस्ट्रियाई संगीतकार मोज़र्ट की 'लोरी', चेक लोक गीत 'मैंगपाई', चाइकोव्स्की का 'बाल-गीत', श्पेयर का 'बकरी आई, बकरी आई', वसील्येव-बुगलाई का 'शरद गीत', पोलिश लोक गीत 'पंछियों का गीत,' लीसेन्को का 'लोमड़ी का गीत', इयोर्दान्स्की का 'टिटहरी का गाना', वेरीकोव्स्की

का 'वोलोद्या उल्यानोव का छविचित्र', रोझ्देस्तवेन्स्की के 'पायोनियरों का गीत', 'नन्हा ढोलची', 'लेनिन के बारे में गीत', फ़िलीप्पेन्को का 'मातृभूमि का गीत'। नियमतः बच्चे बिना किसी संगत के गाते थे। मुझे यह देखकर बड़ी ख़ुशी होती थी कि सभी बच्चों को गाने का शौक़ है। बच्चों को कुछ गीत ख़ास तौर पर पसंद थे: दुनायेव्स्की का 'उड़ो, कबूतरो, उड़ो', मोज़ार्त की 'लोरी', सांदलेर का 'मां का गीत', उक्राइनी लोक गीत 'वसंती जल फैला', 'टीले पर हो रही कटाई', 'उक्राइनी स्तेपी में बहें हवाएं', रूसी लोक गीत 'नन्ही गई कुंज में घूमने', 'खुली सड़क', 'बग़िया', बेलोरूसी लोक गीत 'दो कबूतर उड़ते गए', चेक लोक गीत 'गड़रिया', देश्किन का 'नीली रातों में भभकें अलाव', श्तोगारेन्को का 'चले जवान', क्रासेव का 'लेनिन का गीत', किश्को का 'हमें मातृभूमि प्यारी है', बोगुस्लाव्स्की का 'सीमा प्रहरी'।

बच्चों को अब अपने मन से ही इकट्ठे होकर गाने की ज़रूरत महसूस होने लगी। गीत उनके आत्मिक जीवन का एक अंश बनते जा रहे थे, वे उनके विचारों को भावनाओं से रंगते थे, उनमें मातृभूमि के प्रति तथा संसार के सौंदर्य के प्रति प्रेम जगाते थे।

उक्राइनी लोक गीत 'टीले पर हो रही कटाई' से बच्चे बहुत प्रभावित हुए। यह गीत सुनकर उनकी कल्पना में हमारे जनगण के अतीत के बारे में, शत्रुओं के विरुद्ध उसके वीरतापूर्ण संघर्ष के बारे में सजीव चित्र बनते थे। गीत की धुन बच्चों को मानो मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए संघर्ष के कठिन वातावरण में ले जाती थी, वे संसार को वैसे ही देखते थे जैसे कई सौ साल पहले हमारे पूर्वजों ने उसे देखा था। खेत में किसान फ़सल काट रहे हैं, रह-रहकर स्त्रियां-पुरुष क्षितिज की ओर चिंतित नज़रों से देखते हैं, उधर से किसी भी क्षण शत्रु आ सकता है और तब उन्हें हंसिया छोड़कर तलवारें उठानी होंगी, अपने घर की, उन नन्हे बच्चों की, जो वहां अनाज के पूलों की छाया में लेटे हुए हैं, रक्षा करनी होगी। गीत और उसकी मनोहारी धुन में ही मनोमस्तिष्क तक इन चित्रों को पहुंचाने की क्षमता है। केवल गीत ही जन-मानस के सौंदर्य को उजागर कर सकता है। अपने जनगण के गीत की धुन और शब्द ऐसी प्रबल शिक्षण शक्ति हैं, जो बच्चे को जनता के आदर्शों और आकांक्षाओं से परिचित कराती है।

मानव स्वभाव का एक गुण है – सूक्ष्मता और भावनात्मकता। यह गुण इस तरह व्यक्त होता है कि इर्द-गिर्द का संसार सुख-दुख भोगने की

योग्यता को बढ़ाता है। ऐसे स्वभाववाला आदमी दूसरे के दुख-दर्द और मुसीबतों को भुला नहीं सकता; उसकी अंतरात्मा उसे इस बात पर विवश करती है कि वह दूसरे की सहायता करे। संगीत यह गुण विकसित करता है।

स्वभाव की भावनात्मकता नैतिक और सौंदर्यबोधात्मक दृष्टि से शिक्षित व्यक्तियों में पाई जाती है। इस गुण के फलस्वरूप हृदय नेक शब्दों, सीख, नसीहत, परामर्श के प्रति ग्रहणशील हो जाता है। अगर आप चाहते हैं कि शब्द **जीना सीखाएं**, कि आपके शिष्य भलाई करना चाहें, तो उनके तरुण हृदयों में सूक्ष्मता, भावनात्मक संवेदनशीलता परवान चढ़ाइए। तरुण हृदय पर प्रभाव डालने के अनेक साधनों में संगीत को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। **संगीत और नैतिकता** – इस समस्या का गहन और विशद अध्ययन होना अभी शेष है।

गीत संसार की काव्यमय दृष्टि प्रदान करता है। मुझे याद है, एक बार हम एक लोक गीत गाने के बाद, जिसमें लोगों की गहन भावनाएं व्यक्त हुई हैं, हम स्तेपी में गए। हमारे सामने जहां तक नज़र जाती थी, गेहूं का सागर था, क्षितिज पर आसमानी धुंधलके में टीले सिर उठाए खड़े थे, सुनहरी खेतों के बीच एक तंग-सा रास्ता बल खाता चला गया था, नीले आकाश में भरत पंछी गा रहा था। बच्चे जड़वत खड़े हो गए, मानो वे पहली बार अपनी जन्मभूमि के इस कोने को देख रहे थे। "यह सब तो फ़सल काटते लोगों के गीत-सा है," संवेदनशील वार्या ने कहा। मैं महसूस कर रहा था: इस क्षण हर बच्चे के मन में अपने लोक गीत के शब्द गूंज रहे हैं। गीत मानो जन्मभूमि के सौंदर्य को नये रूप में दिखाता है, और यह सौंदर्य पहले से भी अधिक अपना, अधिक प्रिय हो जाता है।

लोक गीत मातृभाषा के शब्दों को जनता की अमूल्य आत्मिक संपदा के रूप में बच्चों के सम्मुख उजागर करता था। गीत की बदौलत बच्चे शब्द की ध्वनि की सूक्ष्म छटाओं को ग्रहण कर पाते थे।

आरंभ में हमारे पास वाद्य-संगीत की उन रचनाओं के काफ़ी रिकार्ड नहीं थे, जिन्हें सुनना मेरे विचार में तोलस्तोय, चेख़ोव, गोर्की, कोरोलेन्को, गाइदार, चुकोव्स्की, सेन्केविच तथा जैक लंडन की कहानियां, पुश्किन, शेव्चेन्को की कविताएं तथा एंडरसन और ग्रीम बंधुओं की परी-कथाएं पढ़ने के समान ही आवश्यक था। मैं यह मानता था कि संगीत के बिना मेरा शिक्षण-कार्य अधूरा होगा। मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकता

था कि बचपन में ही इन्सान की अपनी प्रिय धुनें न हों। हमारा "ख़ुशियों का स्कूल" खुलने के समय ही स्कूल के अध्यापकों ने कुछ संगीत रचनाओं के रिकार्ड और टेप इकट्ठे कर लिए। हम इसे अमूल्य निधि मानते थे और हमें इस बात का खेद था कि हमारी इस निधि से बच्चों को मानवजाति की आत्मिक संपदा का पूरा परिचय नहीं मिल सकता। मेरे छात्रों की शिक्षा के पहले वर्ष के अंत तक हमारे पास २७ संगीत रचनाएं थीं–इनमें ७ गीत थे और २० वाद्य-संगीत रचनाएं। हम हफ़्ते में दो बार अपने "संगीत-कक्ष" में जाकर संगीत सुनते थे। कुछ धुनों और गीतों से बच्चे परिचित थे, "ख़ुशियों के स्कूल" में ही इन्होंने बच्चों के आत्मिक जीवन में अपना स्थान बना लिया था। चाइकोव्स्की का 'भरत पंछी का गीत', 'वसंत का पहला फूल', मोज़र्ट की 'लोरी', शूमन का 'वीर घुड़सवार', ग्रीग का 'पहाड़ी राजा की गुफा में', लीसेन्को के बाल-आपेरा 'लड़ाकू बकरी' में से लोमड़ी, बकरी, नन्हे भेड़िए के गीत, उक्राइनी लोक गीत 'कैसा अनोखा है आसमान', 'द्नेप्र का चौड़ा पाट' तथा 'सूरज डूबा, टीलों पर अंधेरा छाया'–ये सब रचनाएं बच्चों ने अनेक बार सुनीं।

बच्चों के साथ कार्य के चार वर्षों के दौरान हमारे रिकार्डों और टेपों की गिनती दुगनी हो गई। यह बहुत अधिक नहीं था, लेकिन मुझे संख्या की नहीं, बल्कि इस बात की परवाह थी कि मानवजाति की संगीत-निधि की श्रेष्ठतम रचनाएं (सर्वप्रथम उक्राइनी और रूसी संगीत रचनाएं) बच्चों के आत्मिक जीवन में अपना स्थान बना लें, कि बच्चे एक ही रचना को बार-बार सुनते हुए उसका रसास्वादन कर सकें, कि संगीत उनके चिंतन पर और भावनात्मक जीवन पर अपनी छाप छोड़े।

बच्चा भले ही महीने में केवल एक नई संगीत धुन सुने, लेकिन ऐसे कि वह जीवनपर्यंत उसके लिए रसास्वादन का स्रोत रहे। मैं संगीत की अतितृप्ति से डरता था, नित नई संगीत रचना सुनने से बच्चों का मन-बहलाव भले ही होता, किंतु उनके हृदय पर उसकी कोई छाप न पड़ती।

उपरोक्त रचनाओं के अलावा बच्चों ने चार बरसों के दौरान निम्न रचनाएं भी सुनीं: ग्लीन्का के आपेरा 'रूसलान और ल्युद्मीला' की 'चेर्नोमोर का मार्च', गूनो के आपेरा 'फ़ाउस्ट' का मार्च, ग्रीग का 'नार्वे का नृत्य' और 'कोबोल्द', चाइकोव्स्की की धुनें–'हरी घास', 'नटक्रेकर'

बैले से 'गड़रियों का नाच', 'परी द्राजे का नाच', 'काठ के सिपाहियों का मार्च', 'प्राचीन फ़्रांसीसी गीत', 'बीमार गुड़िया', 'इतालवी गीत', 'बाल-गीत', 'कमारीन्स्काया' तथा 'राजहंस झील' बैले की 'नन्हे राजहंसों का नाच', रीम्स्की-कोर्साकोव के 'ज़ार सल्तान का क़िस्सा' ग्रापेरा में से 'भौंरे की उड़ान' तथा 'तीन चमत्कार'; शूमन – 'हंसमुख किसान'; ग्रीग – 'ऐल्फ़ों का नाच'; शूबर्ट – 'ऐकोसेज़'; दुनायेव्स्की – 'मैनाएं ग्रा गईं'; स्तेत्सेंको के ग्रापेरा 'लोमड़ी, बिल्ली तथा मुर्गा' का एक ग्रंश; लीसेन्को के ग्रापेरा 'जाड़ा ग्रौर वसन्त' का एक ग्रंश; बीथोवन – 'बा-बाक'; स्वीट्ज़रलैंड का लोक गीत 'कोयल'; पोलैंड का लोक गीत 'पंछियों का गीत'; उक्राइनी लोक गीत 'पड़ोसिन', 'टीले पर पटसन उगे', 'ऊंचा टीला', हंगरी का लोक गीत 'बुलबुल', रूसी लोक गीत 'खेत में खड़ा भोज वृक्ष'; कबालेव्स्की का गीत 'पायोनियर टोली', ग्रोस्त्रोव्स्की का 'पायोनियर', मुरादेली का 'पायोनियरों का ग्रलाव'; 'क़दम बढ़ाए चलो, साथियो' (एक पुराना क्रांति गीत, जिसका रूपांतरण लोबाच्योव ने किया है); 'ग़ुलामी का सताया' (लेनिन का प्रिय गीत)।

संगीत सुनने से पहले मैं बच्चों को उस वास्तविकता या काल्पनिक चित्रों के बारे में बताता था, जो संगीत बिंबों में प्रतिबिंबित हैं। इस कहानी को मैं बहुत महत्व देता था, वह एक तरह से बच्चों को संगीत रचना ग्रहण करने के लिए तैयार करती थी। उदाहरणतः, 'परी द्राजे का नाच' धुन सुनने से पहले मैंने बच्चों को जर्मन लेखक होफ़मान की लिखी वह बाल-कथा सुनाई, जिसके कथानक के ग्राधार पर चाइकोव्स्की ने बैले संगीत रचा। सुस्पष्ट, ज्वलंत शब्दों में मैंने बच्चों की कल्पना में हल्की-फुल्की, गरिमामयी उदार परी की तस्वीर खींचने की कोशिश की। मैंने बच्चों से कहा: "तुम छोटी-छोटी बिल्लौरी घंटियों की टनाटन सुनोगे। यह संगीत परी के चारों ग्रोर के संसार को चित्रित करता है। मैं एक ग्रद्भुत महल के हल्के-फुल्के सुघड़ स्तंभों की कल्पना करता हूं, जो उज्ज्वल प्रकाश में चमक रहे हैं।" बच्चों ने संगीत सुना ग्रौर फिर यह बताने लगे कि वे परी के महल की कल्पना कैसे करते हैं। उनकी कल्पना में सरोवरों, फ़व्वारों, छायादर कुंजों ग्रौर रहस्यमयी गुफाग्रों के चित्र उभरे थे। इन रोमांचक, कल्पनाजनित बिंबों के फलस्वरूप बच्चों को एक बार फिर संगीत सुनने की इच्छा हुई।

संगीत रचनाग्रों को, ख़ास तौर पर ऐसी रचनाग्रों को, जिनसे बच्चे

अपरिचित हों, समझाते हुए बड़ी सूझ-बूझ और कौशल से काम लेना चाहिए। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि संगीत की भाषा भावनाओं की भाषा है; सीधे-सादे, बिल्कुल साधारण से शब्दोंवाला लोक गीत भी धुन की बदौलत ही एक कलात्मक रचना लगता है। संगीत रचना के कलात्मक बिंबों का सार समझाने के लिए अध्यापक को यह ज्ञान होना चाहिए कि संगीतकार ने अपनी रचना में अभिव्यक्ति के किन साधनों का उपयोग किया है। अध्यापक की व्याख्या भी एक संपूर्ण कलात्मक कहानी ही होनी चाहिए। इस कहानी को सुनकर ही बच्चों में विभिन्न भावनाएं जागनी चाहिए, उनकी कल्पना में सजीव चित्र उभरने चाहिए।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि संगीत का सौंदर्य विचारों का सशक्त स्रोत है। संगीत के प्रभाव में बच्चे की कल्पना में बननेवाले ज्वलंत बिंब चिंतन को सजीव बनाते हैं, उसकी अनेक छोटी-छोटी धाराओं को एक सरित-प्रवाह में मिलाते हैं। बच्चों की कल्पना में जो चित्र बनता है, वे जो अनुभव करते हैं, उसे शब्दों में उतारने की कोशिश करते हैं। मंथर चिंतनवाले बच्चों के लिए तो संगीत सुनना सचमुच ही विचारों का सशक्त स्रोत था। मैं यह चेष्टा करता था कि संगीत सुनने के पश्चात बच्चे सहज भाव से अपनी छापों को अपने शब्दों में व्यक्त करें।

"संगीत-कक्ष" में हम बांसुरी बजाते थे, अपनी प्यारी धुनें बजाना सीखते थे। दूसरी कक्षा में हमारी बांसुरी मंडली में ६ मेरे छात्र थे और चार दूसरी कक्षाओं के छात्र। बच्चे खुद ही बांसुरियां बनाते थे। सेर्योझा, यूरा, तीना और लीदा ने बांसुरियां बनाने में दक्षता पा ली थी। वे उपवन में जाकर उपयुक्त टहनियां ढूंढ़ते थे, फिर कटी हुई टहनियों को छाया में सुखाते थे, बांसुरी की आवाज़ परखते थे, उसे साफ़ और सुरीली बनाने की कोशिश करते थे। तीसरी कक्षा में हमें दो अकार्डियन और तीन वायलिनें मिलीं। यूरा, सेर्योझा, फ़ेद्या, लीदा, कोल्या, तीना, लरीसा, सान्या और शूरा ने ये वाद्य बजाने सीखे।

प्राथमिक विद्यालय की शिक्षा पूरी करते समय १६ बच्चों के घर पर अकार्डियन या वायलिन थे। हां, बच्चों ने बांसुरी को भी नहीं भुलाया था। कुछ बच्चों में संगीत के प्रति विशेष रुझान था, लेकिन मैं कुछ प्रतिभाओं को संवारना, निखारना ही अपना प्रमुख ध्येय नहीं समझता था, बल्कि यह कि सभी छात्रों को संगीत से प्रेम हो, कि वह सभी के लिए मन की प्यास बन जाए।

बचपन में जो कमी रह जाए, उसे तरुणाई में या इन्सान के वयस्क हो जाने पर तो बिल्कुल भी पूरा नहीं किया जा सकता। यह नियम बच्चे के आत्मिक जीवन के सभी क्षेत्रों पर और विशेषतः सौंदर्यबोध शिक्षा पर लागू होता है। व्यक्तित्व के विकास के बाद के कालों की तुलना में बचपन में सौंदर्य के प्रति ग्रहणशीलता, संवेदनशीलता कहीं अधिक गहरी होती है। प्राथमिक विद्यालय के शिक्षक का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यभार है बच्चों में सौंदर्य-पिपासा विकसित करना, जो बहुत हद तक बच्चे का सारा आत्मिक जीवन और समुदाय में दूसरों के साथ उसके परस्पर संबंध भी निर्धारित करती है। सौंदर्य-पिपासा नैतिक सौंदर्य की पुष्टि करती है और वह सब कुछ जो भोंडा है, कुरूप है, उसके प्रति मनुष्य को असहनशील बनाती है।

"हाथ में वायलिन लेकर आदमी बुरा काम नहीं कर सकता"—एक प्राचीन उक्राइनी सूक्ति है, जो विलक्षण चिंतक ग्रीगोरी स्कोवोरोदा की कही बताई जाती है। बुराई और सच्चा सौंदर्य साथ-साथ नहीं रह सकते। शिक्षक का एक प्रमुख कार्यभार यह है कि वह, लाक्षणिक अर्थ में, हर बच्चे के हाथ में वायलिन पकड़ाए, ताकि हर कोई यह अनुभव कर ले कि संगीत का जन्म कैसे होता है। आजकल, जबकि संगीत के प्रसार के तकनीकी साधन इतने फैल गए हैं, यह शिक्षण कार्यभार विशेष अर्थ रखता है। युवा पीढ़ी को सौंदर्य का उपभोक्ता मात्र ही न हो जाने देना—यह न केवल सौंदर्यबोधात्मक शिक्षा की, बल्कि नैतिक शिक्षा की भी समस्या है।

बच्चे के आत्मिक जीवन में पुस्तक

पुस्तकें बच्चों के आत्मिक जीवन में बहुत बड़ी भूमिका अदा करती हैं, लेकिन केवल तभी, जबकि बच्चे अच्छी तरह पढ़ना जानते हों। "अच्छी तरह पढ़ने" का क्या अर्थ है? सर्वप्रथम इसका अर्थ यह है कि पढ़ने का बुनियादी तौर-तरीक़ा आना चाहिए। मेरी चेष्टा यह थी कि हर बच्चे के लिए स्वयं पढ़ना एक आत्मिक आवश्यकता बन जाए। पहली और दूसरी में हर छात्र पुस्तकालय से प्रत्येक सप्ताह—दो सप्ताह के लिए एक पुस्तक लेता था और उसे ऊंचे-ऊंचे पढ़ता था। इसके बिना धाराप्रवाह पढ़ने और पढ़ी हुई बात समझने की पक्की योग्यता नहीं विकसित की जा सकती।

दूसरी कक्षा में हर छात्र के पास अपनी एक डायरी—"शब्दों की

पिटारी" थी। इसमें बच्चे वे सब शब्द लिखते थे, जो पुस्तक में उन्हें रोचक लगे या जिनका अर्थ वे नहीं समझ पाए (बाद में मैं बच्चों को शब्दों के अर्थ या उनकी भावनात्मक रंगत समझाता था)। तीसरी और चौथी में शब्दों के अलावा छात्र अपनी पसंद के वाक्यांश, मुहावरे और पूरे वाक्य भी "शब्दों की पिटारी" में लिखते थे।

मनोमस्तिष्क को, आत्मा को समृद्ध करने के एक स्रोत के रूप में पठन-पाठन केवल पढ़ने की योग्यता तक ही सीमित नहीं है; इस योग्यता से तो यह प्रक्रिया केवल आरंभ होती है। प्रायः ऐसा होता है कि बच्चा बिना किसी ग़लती के धाराप्रवाह पढ़ सकता है, लेकिन पुस्तक उसके लिए वह पगडंडी नहीं बन पाई है, जो बौद्धिक, नैतिक और सौंदर्यबोधात्मक विकास के शिखर की ओर ले जाती है। पढ़ने की योग्यता का मतलब है शब्द के अर्थ और सौंदर्य के प्रति, उसकी सूक्ष्मतम छटाओं के प्रति संवेदनशील होना। केवल वही छात्र "पढ़ता" है, जिसकी चेतना में शब्द इर्द-गिर्द के संसार के रंगों से जगमगाता है, उसकी धुनों को प्रतिध्वनित करता है। पठन-पाठन वह खिड़की है, जिसके ज़रिए बच्चे संसार को और स्वयं अपने आपको देखते और समझते हैं। यह खिड़की बच्चे के सम्मुख केवल तभी खुलती है, जबकि पढ़ने के साथ-साथ, बल्कि नहीं, पहली बार पुस्तक खोलने से पहले ही ऐसे शब्दबोध का काम बड़े लगन से शुरू कर दिया जाए, जिसकी परिधि में बच्चों की गतिविधियों, उनके आत्मिक जीवन के सभी क्षेत्र – श्रम, खेल, प्रकृति से संसर्ग, संगीत और सृजनात्मक कार्य – आ जाएं। सौंदर्य की रचना करनेवाले सृजनात्मक श्रम के बिना, बाल-कथाओं और कल्पना की उड़ान के बिना, खेल और संगीत के बिना बच्चे के आत्मिक जीवन के एक क्षेत्र के रूप में पठन-पाठन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। विचारों के सजीव स्रोत की "यात्राएं", शब्दों की भावनात्मक-सौंदर्यबोधात्मक रंगत, जो वाणी के सौंदर्य को अनुभव कर सकने की क्षमता के फलस्वरूप समझ में आती है, तथा पुस्तकों में मूर्तित कलात्मक संपदा – यह सब ही वाणी और चिंतन के विकास का आधार है।

इससे पहले कि बच्चा पहला शब्द पढ़े, उसे माता, पिता, शिक्षक को पढ़ते सुनना चाहिए, कलात्मक बिंबों के सौंदर्य की अनुभूति होनी चाहिए। प्रकृति की "यात्राओं" को ऐसे नहीं समझना चाहिए, मानो यह पुस्तकों से बिल्कुल अलग ही कोई चीज़ हो। अगर बच्चे ने पुस्तक में पढ़े शब्द के सौंदर्य को अनुभव नहीं किया है, तो वह अपने इर्द-गिर्द के संसार

के सौंदर्य को नहीं देख पायेगा। बच्चे के हृदय और चेतना की ओर दो दिशाओं से रास्ता जाता है, जो पहली नज़र में एक दूसरे के विपरीत लगती हैं: पुस्तक से, पढ़े हुए शब्द से मौखिक वाणी की ओर तथा बच्चे के आत्मिक जगत में स्थान बना चुके सजीव शब्द से पुस्तक की ओर, पठन-पाठन और लेखन की ओर। पठन-पाठन और लेखन की भावनात्मक-सौंदर्य-बोधात्मक तैयारी इस बात का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पूर्वाधार है कि बच्चा पढ़ना-लिखना सीख जाए और वह भी अंक पाने के लिए नहीं, बल्कि इसलिए कि पठन-पाठन और लेखन आत्मिक जीवन के लिए आवश्यक हैं–पढ़ना और लिखना न आने से वह अनेक ख़ुशियों से वंचित हो जाएगा।

मेरे बच्चे "ख़ुशियों के स्कूल" में ही अपने चारों ओर के संसार के सौंदर्य के बारे में भावनाओं और विचारों को चित्रों और उनके अभि-व्यंजनात्मक शीर्षकों में व्यक्त करने लगे थे–यह पठन-पाठन और लेखन की भावनात्मक-सौंदर्यबोधात्मक तैयारी का ही परिणाम था। हमारी शिक्षा प्रणाली में प्रकृति की "यात्राएं" कोई अंतिम लक्ष्य नहीं हैं, बल्कि शब्द के ज़रिए बच्चे के बौद्धिक विकास का साधन हैं। यदि शब्द न होते, बौद्धिक शिक्षा न होती, शिक्षा के सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य–बच्चों को सोचना, वस्तुओं, परिघटनाओं के बीच परस्पर संबंध देख पाना, सामान्यीकरण करना, प्रकृति को, दृष्टव्य बिंबों और चित्रों को अमूर्त रूप में देख सकना सिखाना–इस लक्ष्य की प्रेरणा न होती, तो बच्चे प्रकृति के सौंदर्य, रंगों और ध्वनियों के खेल के प्रति जीवन की असीम विविधता के प्रति उदासीन होते।

मेरी चेष्टा यह थी कि पहली कक्षा में ही पठन-पाठन बच्चों के लिए आत्मिक आवश्यकता हो, कि वह बच्चों को एक ही नज़र में शब्द को पहचानना और पढ़ लेना सिखाने मात्र का अभ्यास न हो। केवल वही बात, वही चीज़ छात्र के आत्मिक जीवन का अंश बन सकती है, जो उसके बौद्धिक, भावनात्मक, सौंदर्यबोधात्मक विकास के स्तर के अनुकूल हो और साथ ही आगे भी विकास में सहायक हो। बच्चे क्या पढ़ें, यह सही-सही चुनना शिक्षक का बहुत बड़ा कार्यभार है। खेद की बात है कि पाठ्य-पुस्तकों में वे सब कलात्मक रचनाएं नहीं होतीं, जिन्हें बच्चे समझ सकते हैं। पढ़ाई शुरू होने के तीन महीने बाद ही हम ऐसी रोचक कहानियां और बाल-कथाएं पढ़ने लगे, जो पाठ्य-पुस्तकों में नहीं थीं।

मैं बच्चों को 'उक्राइनी और रूसी लोक-कथाएं' पुस्तक देता हूं। उन्हें

उक्राइनी लोक-कथा 'पुम्राल का बछड़ा' पढ़ने के लिए तैयार करता हूं– कहानी का सारांश बताता हूं और साथ में चित्र दिखाता हूं। बच्चे अपनी किताबें खोलते हैं। पहले एक छात्र, फिर दूसरा, तीसरा कहानी पढ़ता है। एक ही कहानी, बशर्ते वह बच्चों के लिए दिलचस्प हों, कितनी भी बार क्यों न पढ़ी जाए, उससे बच्चे ऊबते नहीं हैं, क्योंकि बार-बार पढ़ना बच्चों के लिए दोहराने का अभ्यास नहीं होता। कहानी के बिंब हर बार प्रत्येक बच्चे के मन में भावनाओं का आवेग लाते हैं। सभी बच्चे शब्दों को अपने-अपने ढंग से ग्रहण करते हैं। बच्चे बड़े ध्यान से दूसरों को पढ़ते हुए सुनते हैं, वैसे ही जैसे मानो वे एक के बाद एक किसी गीत को गा रहे हों, जिसके शब्द और संगीत उन्हें उद्वेलित करते हैं। हर कोई अपने ढंग से गाता है, हरेक के गान में शब्दों की अपनी रंगत होती है, जो उसकी अनुभूतियों, कल्पनाओं, प्रत्यक्षबोध को व्यक्त करती है। ऐसे पठन-पाठन में शब्द संगीत की भांति, धुन की भांति ध्वनित होते हैं।

व्यक्तिगत भावनात्मक पठन-पाठन की तैयारी में यह बात बहुत मानी रखती है कि बच्चा अनेक बार विचारों के स्रोत तक पहुंचा हो, उसे शब्दों के सौंदर्य की अनुभूति हुई हो। उदाहरणतः, छात्र पढ़ता है: "बछड़ा अंधेरे जंगल में गया, वहां उसे भूरा भेड़िया मिला"। "अंधेरे जंगल" शब्दों के साथ बच्चे की चेतना में अविस्मरणीय चित्र जुड़े हुए हैं: जंगल में सांझ का झुटपुटा, रात की रहस्यमयी सरसराहट, बिजली कड़कने से पहले पत्तियों की खड़खड़ाहट। यह सब उसके आत्मिक जीवन का एक अंश बन चुका है और जब वह "अंधेरा जंगल" शब्द सुनता है, तो प्रकृति के ये रंग और ध्वनियां सजीव हो उठते हैं। अगर बच्चा सजीव शब्दों और विचारों के स्रोत की पगडंडी से अपरिचित है, तो अध्यापक चाहे कितना भी समझाए कि वह कैसे पढ़े, कैसे उच्चारण करे, स्वर का उतार-चढ़ाव कैसा हो–यह सब बच्चे को भावनात्मक पठन-पाठन नहीं सिखा सकता।

स्कूल में अपने काम के पहले दिन से ही मैं इस बात का बहुत ख़याल रखता था कि बच्चों के हाथों में एक भी ख़राब किताब न पड़े, कि बच्चे ऐसी रोचक पुस्तकों के संसार में रहें, जो राष्ट्रीय और सारी मानवीय संस्कृति की स्वर्ण निधि हैं। यह अत्यंत महत्वपूर्ण कार्यभार है: मनुष्य अपने पूरे जीवन में २००० से अधिक पुस्तकें नहीं पढ़ सकता–अतः बचपन में और किशोरावस्था में बहुत सोच-समझकर बच्चों के लिए पाठन सामग्री

चुननी चाहिए। बच्चा भले ही थोड़ी-सी पुस्तकें पढ़े, परंतु हर पुस्तक की उसके मन और चेतना पर गहरी छाप पड़नी चाहिए, ताकि इन्सान बार-बार उसे पढ़ना चाहे और हर बार उसमें नई आत्मिक संपदा पाए। यहां यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि बच्चे को अभिव्यंजनात्मक पठन-पाठन से आनंद और संतोष प्राप्त हो। शब्द की शक्ति और उसका सौंदर्य उसकी ध्वनि में उजागर होते हैं, इसलिए यह बात बहुत मानी रखती है कि शब्द की भावनात्मक रंगत की अनुभूति श्रवण-बोध से, अभिव्यंजनात्मक पाठन के ज़रिए हो।

पहली कक्षा में ही हमारे यहां बाल-पुस्तकालय बनाया गया। इसमें चार विभाग थे। पहले भाग में ऐसी कहानियां थीं, जो, मेरे विचार में, बच्चों के नैतिक, बौद्धिक और सौंदर्यबोधात्मक विकास के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। (हर पुस्तक की हम १५ प्रतियां ख़रीदते थे, ताकि पाठ में हर डेस्क पर एक किताब हो।) यह भाग प्राथमिक विद्यालय में शिक्षा के चार वर्षों के लिए था। इसमें ऐसी कहानियां हैं, जिनमें बच्चों की समझ में आ सकनेवाले मानवीय विचार ज्वलंत बिंबों में मूर्तित हैं। ये कहानियां हैं: लेव तोलस्तोय – 'शार्क', 'छलांग', 'कोहकाफ़ का बंदी'; येर्शोव – 'कुबड़ा घोड़ा'; कोत्सूबीन्स्की – 'नव वर्ष वृक्ष'; झुकोव्स्की – 'सोती रानी', 'एक आंखवाले दैत्यों की गुफा में'; मामिन-सिबिर्याक – 'हिरनौटा', 'नदी के तट पर', 'सेठ और येर्योमका', 'गोद लिया बच्चा'; एंडरसन – 'कनक रानी', 'बदसूरत बत्तख़', 'राजा की नई पोशाक'; विक्टर ह्यूगो – 'कोज़ेट', 'हाव्रोश' ('अभागे' पुस्तक में से); ग्रीम बंधु – 'हेज़ल और ग्रेटेल', 'आलसी हांस', 'तीन ख़ुशक़िस्मत'; पुश्किन – 'ज़ार सल्तान का क़िस्सा', 'मृत रानी की कहानी', 'स्टेशन मास्टर', 'अंचार', 'बंदी', 'दाई', 'चिड़िया', 'शीत संध्या'; यानुश कोर्चाक – 'जब मैं फिर छोटा हो जाऊंगा'; कोरोलेन्को – 'तहख़ाने के बच्चे'; नेक्रासोव – 'किसान बच्चे', 'याकोव चाचा', 'मज़ाइ दादा और ख़रगोश'; तुर्गेनेव – 'बटेर'; ग्रीगोरोविच – 'रबड़ का लड़का'; गार्शिन – 'सिगनल'; कूप्रीन – 'मैनाएं'; चेख़ोव – 'लाख़ी', 'टीकरा', 'वान्का', 'भगोड़ा', 'लड़के', 'गिरगिट'; स्तान्युकोविच – 'मक्सीम्का', 'दाई', 'छुटकारा'; सेन्केविच – 'यान्को-संगीतकार'; जैक लंडन – 'कीश का क़िस्सा'; मार्क ट्वेन – 'टाम सायर की साहसिक यात्राएं'; मक्सीम गोर्की – 'पेपे', 'पार्मा के बच्चे', 'येव्सेइका', 'इल्या

का बचपन', 'सुबह'; गाइदार–'चुक और गेक', 'दूर-दराज़ के देश', 'तिमूर और उसकी टोली'; बोन्च-ब्रुयेविच–'लेनिन और बच्चे'; तेस्लेन्को–'स्कूल छात्र'; पनास मीर्नी–'मोरोज़ेन्को'; फ़ान्को–'ग्रीत्स का स्कूल', 'पेंसिल'; कोनोनोव– 'लेनिन के बारे में कहानियां'; कोस्मोदेम्यान्स्काया–'ज़ोया और शूरा की वीरगाथा'; 'वीर पायोनियरों की कहानियां'; बेदज़िक–'ओलेग कोशेवोई का बचपन'; कतायेव–'रेजीमेंट का बेटा'; गोलोव्को–'पिलीप्को', 'लाल रूमाल'।

इन रचनाओं को पढ़कर बच्चे न केवल संसार का ज्ञान पाते थे, बल्कि यह उनके लिए भावनात्मक-नैतिक शिक्षा भी थी। प्रत्येक पुस्तक बाल-आत्मा पर गहरी छाप छोड़ती थी। मामिन-सिबिर्याक की कहानी 'नदी के तट पर' पढ़कर बच्चे बहुत प्रभावित हुए। इसमें एक बूढ़े आदमी के बारे में बताया गया है, जिसकी इस दुनिया में किसी को परवाह नहीं है। वह घने ताइगा जंगल में नदी के तट पर अकेला रहता है। मैंने देखा कि ऐसी रचनाएं पढ़ने के पश्चात अपने इर्द-गिर्द के संसार के प्रति बच्चों की संवेदनशीलता बढ़ जाती है।

ये कहानियां हम पाठों में भी पढ़ते थे और पाठों के अलावा ख़ाली समय में भी। हमारे पुस्तकालय के इस भाग की तुलना संगीत-कक्ष के हमारे रिकार्डों और टेपों के संग्रह से की जा सकती है, जो सामूहिक तौर पर सुनने के लिए था।

हमारे पुस्तकालय के दूसरे भाग में आधुनिक रूसी और उक्राइनी लेखकों की हमारे समसामयिक जीवन, सोवियत लोगों के श्रम तथा शांति के लिए संघर्ष के बारे में, महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध में वीरों के पराक्रमों, नन्हे वीरों के बारे में रचनाएं थीं।

तीसरे भाग में कथाएं और कविताएं थीं। ये पुस्तकें केवल पाठ्येतर पठन-पाठन के लिए थीं। हर बच्चा वह पुस्तक लेता था जिसमें उसकी रुचि होती थी। और रुचि अच्छे चित्रों से या साथियों द्वारा पढ़ी पुस्तक के वर्णन से या अध्यापक के शब्दों से जागती थी।

पुस्तकालय के चौथे भाग में यूनानी पौराणिक कथाएं थीं। ये पुस्तकें हमने काफ़ी कठिनाई से ढूंढ़कर एकत्रित की थीं। इनमें प्राचीन कथाएं बच्चों के लिए सुबोध रूप में दी गई थीं। पौराणिक कथाएं बच्चों के बौद्धिक और सौंदर्यबोधात्मक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वे बच्चों को मानव संस्कृति के एक आश्चर्यजनक पृष्ठ से तो परिचित

कराती ही हैं, साथ ही उनकी कल्पना-शक्ति और बुद्धि का विकास करती हैं, उनमें अतीत के प्रति रुचि जगाती हैं।

पहले वर्ष के मध्य में हम सामूहिक पठन-पाठन आयोजित करने लगे। मैं बच्चों को एक पुस्तक की सभी प्रतियां बांट देता था, ताकि वे उसे घर पर पढ़ लें। यह सामूहिक पठन-पाठन की तैयारी होती थी। वह कहानी पढ़ने के लिए "कथा-लोक" में जाना, जिससे बच्चे पहले से ही परिचित हैं? बच्चों में ऐसी इच्छा कहां से आई, और इसकी क्या आवश्यकता है, क्या यह बेहतर नहीं होगा कि वे कोई नई पुस्तक पढ़ें?

बेशक, नई, अज्ञात पुस्तकें भी पढ़नी चाहिए और हम नई पुस्तकें पढ़ते थे। किंतु कोई रचना आत्मिक जीवन में केवल तभी अपना स्थान बनाती है, जबकि बच्चा अपने साथियों को वह चीज़ पढ़कर सुनाना चाहता है, जिसने उसकी भावनाओं को झकझोरा है, जबकि वह शब्दों में अपनी भावनाएं और अनुभूतियां व्यक्त करना चाहता है। हमारे पुस्तकालय के पहले भाग की प्रत्येक पुस्तक हम कम से कम १० बार ऊंचे-ऊंचे पढ़ते थे, और दुबारा पढ़ने से बच्चों की रुचि कम नहीं होती थी... २–३ सप्ताह पहले बच्चों ने कोई पुस्तक पढ़ी है, परंतु बच्चे उसे भूलते नहीं हैं, वे उसे फिर पढ़ना चाहते हैं और इसके लिए ही स्कूल आते हैं। ३–४ महीने बीतने पर बच्चे फिर वह पुस्तक पढ़ना चाहते हैं, जो उन्हें अच्छी लगी है – फिर सामूहिक पठन-पाठन होता है।

परंतु रचना की शक्ति और सौंदर्य मनोमस्तिष्क को केवल तभी छूते हैं, जबकि पढ़ना सीखने से पहले ही बच्चे ने शब्द की सूक्ष्मतम छटाओं को अनुभव कर लिया हो। जिस व्यक्ति को विचारों के सजीव स्रोत की "यात्राओं" के समय शब्द के मनोहारी सौंदर्य की अनुभूति नहीं हुई, वह कभी भी उसे ज्ञात कहानी को दूसरी, तीसरी, दसवीं बार नहीं सुनना चाहेगा।

हमारी कक्षा में कुछ पाठ प्यारी कहानी के होते थे। बच्चे बड़ी उमंग से पठन-पाठन की तैयारी करते थे। हर कोई अपनी मनपसंद कहानी पढ़ता था।

कविता पाठ का हमारे यहां विशेष स्थान था। मैं बच्चों को वे कविताएं सुनाता था, जो मानव संस्कृति की स्वर्ण निधि मानी जाती हैं। इनमें रूसी कवियों – पुश्किन, लेर्मोन्तोव, झुकोव्स्की, नेक्रासोव, फ़ेत, उक्राइनी कवियों – शेव्चेन्को और लेस्या उक्राईन्का, जर्मन कवि शील्लर

श्रौर हाइने, पोलैंड के मित्स्केविच, फ़्रांसीसी कवि बेरांजे तथा श्रन्य कवियों की रचनाएं थीं। बच्चों ने श्रपनी मनपसंद कविताएं याद करनी चाहीं। चार वर्षों में बच्चों ने श्रनेक कविताएं याद कर लीं। परंतु जब तक उन्हें काव्यमय शब्दों की श्रद्भुत ध्वनि का रोमांच न हो जाता, तब तक वे कविता याद नहीं करते थे।

श्रच्छी कविताश्रों में शब्दों, बिंबों श्रौर धुन – इन तीनों के सौंदर्य का समागम होता है। मेरी चेष्टा यह थी कि बच्चे छोटी उम्र में ही इन सौंदर्यबोधात्मक संपदाश्रों की एकता को श्रनुभव कर लें: मैं उन्हें रूसी श्रौर उक्राइनी कवियों की कविताएं सुनाता था। हमने पुश्किन की कविता 'श्रोलेग का गीत' श्रौर शेव्चेन्को का 'ग़रीबनी' काव्य कई बार पढ़े। लगभग सभी बच्चों को ये रचनाएं याद हो गईं, हालांकि इन्हें याद करने के लिए कोई ख़ास श्रभ्यास उन्होंने नहीं किया था। बच्चों ने कई ऐसी छोटी-छोटी सरस कविताएं भी याद कर लीं, जिनमें प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन है। धारा-वाहिक पठन-पाठन बच्चों को बहुत पसंद था। "स्वप्न-लोक" में हमने कई सप्ताह तक 'टाम सोयर की साहसिक यात्राएं' पुस्तक पढ़ी। बच्चों के चारों श्रोर जो वातावरण था, वह पुस्तक से पढ़नेवाली छापों को श्रधिक गहरा बनाता था। गोर्की का 'बचपन', कतायेव का 'एक श्रकेली नौका' श्रौर बाझोव का 'मैलाकाइट मंजूषिका' भी हमने थोड़ा-थोड़ा करके पढ़ लिए।

धीरे-धीरे हम स्कूल में श्रभिव्यंजनात्मक पठन-पाठन की संध्याएं श्रौर प्रातः सभाएं श्रायोजित करने लगे। जो कोई भी इसमें भाग लेना चाहता था, वह श्रपनी मनपसंद कहानी या कविता का पाठ करने की तैयारी करता था। दूसरी कक्षाश्रों के बहुत से बच्चे भी इन सभाश्रों में श्राते थे, धीरे-धीरे यह सारे स्कूल की सभाएं हो गईं।

साल में दो बार – पहली छमाही के बाद श्रौर शैक्षिक वर्ष के श्रंत में हम मातृभाषा का त्यौहार मनाते थे। इन त्यौहारों में कुछ रस्मों की परंपरा बनी। बच्चे गांव के वयोवृद्ध लोगों को इसमें श्रामंत्रित करते थे, जो यह फ़ैसला करते थे कि कौन कविता या कहानी का सबसे श्रच्छा पाठ करता है। यह एक तरह से सृजनात्मक प्रतियोगिता थी, जिसके विजेताश्रों को पुरस्कार में पुस्तकें मिलती थीं। फ़ार्म के वयोवृद्ध किसान – मातृभाषा के क़द्रदान – बच्चों को पुरस्कार देते थे। वे भी परी-कथाएं श्रौर कविताएं सुनाते थे। ऐसा भी होता था कि एक ही रचना का पाठ कोई छात्र भी करता था

ग्रौर वयोवृद्ध किसान भी। चौथे वर्ष के वसंत में कविताग्रों, कथा-कहानियों का पाठ करने के इच्छुकों की संख्या इतनी ग्रधिक थी कि यह त्यौहार दो दिन चला।

बड़ों – माता-पिता, दादा-दादी के साथ निरंतर संपर्क के फलस्वरूप एक ग्रौर रोचक परंपरा बनी। हमारे सर्वश्रेष्ठ वाचक घर पर माता-पिता को विभिन्न रचनाएं सुनाने लगे, बड़े लोग स्कूल में ग्राने लगे बच्चों का पाठ सुनने के लिए। मातृभाषा के क़द्रदानों की कुछ मंडलियां बन गईं, इनमें ग्रादरणीय वयस्क भी थे। बच्चे एक प्रकार से इन मंडलियों के ग्रायोजक थे, इस ग्रनुभूति से पुस्तकों ग्रौर पठन-पाठन में उनकी रुचि ग्रौर भी गहरी होती थी।

स्कूल में 'पुस्तक-समारोह" मनाने की भी परंपरा बन गई। पढ़ाई शुरू होने से एक दिन पहले, ३१ ग्रगस्त को बच्चे ग्रौर माता-पिता स्कूल ग्राते थे। उस दिन सब पुस्तकें उपहार में देते: बच्चे एक दूसरे को, माता-पिता बच्चों को। हमारे सामूहिक फ़ार्म के संचालक मंडल की ग्रोर से मातृभाषा मंडलियों के सर्वश्रेष्ठ ग्रायोजकों को पुस्तकें भेंट की जाती थीं।

मेरी कोशिश यह थी कि हर बच्चा धीरे-धीरे ग्रपना निजी पुस्तकालय बनाए, ताकि पुस्तकें पढ़ना उसके मन की प्यास बन जाए। पहले दो वर्षों में ही मेरे ग्राग्रह से सभी बच्चों के घर में ग्रपना-ग्रपना पुस्तकालय बन गया। कुछ परिवारों के पुस्तकालय में ५०० से ग्रधिक पुस्तकें थीं, कुछ के पास इससे कम, परंतु प्रत्येक परिवार में हर महीने यह पुस्तक भंडार बढ़ता जाता था। ग्रगर महीने भर के दौरान पारिवारिक पुस्तकालय में एक भी नई पुस्तक नहीं ग्राती थी, तो मैं इसे चिंताजनक बात समझता था।

पुस्तक से ही ग्रात्मशिक्षा ग्रौर व्यक्तिगत ग्रात्मिक जीवन का ग्रारंभ होता है। शिक्षण-प्रक्रिया में एक ऐसा क्षण ग्राता है, जब शिक्षक, जो ग्रब तक बड़े ध्यान से शिष्य का हाथ पकड़कर उसे चलाता लाया था, ग्रब यह समझता है कि वह उसका हाथ छोड़ सकता है ग्रौर कहता है: "जाग्रो, स्वयं ग्रागे बढ़ो, जीना सीखो"। ऐसा निर्णय करने के लिए गहरा शिक्षण विवेक होना चाहिए। इन्सान को स्वावलंबी जीवन के लिए ग्रात्मिक रूप से तैयार करने के वास्ते उसे पुस्तक जगत में प्रविष्ट कराना चाहिए। हर छात्र के लिए पुस्तक को मित्र ग्रौर विवेकी शिक्षक हो जाना चाहिए। मैं इसे ग्रपना एक बहुत बड़ा चरित्र-निर्माण कार्यभार समझता था कि प्राथ-

मिक विद्यालय की शिक्षा पूरी करते हुए प्रत्येक बालक, प्रत्येक बालिका कुछ क्षण पुस्तक के साथ एकांत पाना, सोचना, मनन करना चाहे। एकांत पाने की कामना अकेलापन नहीं है। यह तो विचारों, भावनाओं, आस्थाओं और दृष्टिकोण के आत्मशिक्षण का आरंभ है। यह केवल तभी संभव है, जबकि पुस्तक आत्मिक आवश्यकता के रूप में नन्हे इन्सान के जीवन में प्रवेश करती है। मैं अलग-अलग बच्चों से बातें करते हुए, उनसे यह पूछता था कि उन्हें कैसी किताबें अच्छी लगती हैं, पुस्तक में वे किन प्रश्नों का उत्तर ढूंढ़ते हैं—यह सब जानना मेरे लिए आवश्यक था, क्योंकि ऐसी हालत में ही मैं उन्हें सही सलाह दे सकता था, सही पुस्तक ढूंढ़ने में उनकी मदद कर सकता था।

स्कूल सच्चे अर्थों में संस्कृति का मंदिर केवल तभी बन पाता है, जबकि उसमें चार देवता प्रतिष्ठित हों: मातृभूमि, मनुष्य, पुस्तक और मातृभाषा।

अपने इन छात्रों के साथ काम शुरू करने से पहले ही मैंने किशोरों के साथ शिक्षण-कार्य की कठिनाइयों के बारे में बहुत कुछ सुना था। लोग मुझसे कहते थे: "छोटे बच्चों के साथ काम करना सबसे आसान है। लेकिन जैसे ही छोटा बच्चा किशोरावस्था में पहुंचेगा, वह एकदम बदल जाएगा, आप उसे पहचान ही नहीं सकेंगे। उसकी नेकी, संवेदनशीलता, लजीलापन—सब कुछ ग़ायब हो जाएगा, उसमें बदतमीज़ी, धृष्टता, उदासीनता आ जाएगी।" आगे चलकर मैं इस बात का क़ायल हुआ कि ये शब्द कितने ग़लत थे। किशोर में सभी अच्छे गुण "ग़ायब" हो जाएंगे, अगर उसमें उनकी जड़ नहीं बिठाई गई, अगर अध्यापक यह सोचता रहा कि बच्चे में अच्छे गुण जन्म से ही होते हैं। यदि बचपन से ही बच्चे में पुस्तक के प्रति प्रेम नहीं विकसित किया गया है, यदि पठन-पाठन उसके लिए जीवन भर की आत्मिक आवश्यकता नहीं बन गया है, तो किशोरावस्था में उसकी आत्मा ख़ाली होगी, और न जाने कहां से उसमें दुर्गुण निकलते आएंगे।

मातृभाषा

हम उक्राइनी लोगों की मातृभाषा उक्राइनी है। आजकल साढ़े तीन करोड़ से अधिक लोग यह भाषा बोलते हैं। हमारे जनगण की ऐतिहासिक नियति ऐसी रही है कि हम उक्राइनियों के लिए बंधु रूसी जनगण की भाषा भी बहुत प्रिय है। दो सजातीय भाषाएं अनेक सूत्रों से एक दूसरी से जुड़ी

होती हैं। इससे हमारे लिए अपनी मातृभाषा और रूसी भाषा सीखना आसान भी हो जाता है और साथ ही मुश्किल भी। सैंकड़ों ऐसे शब्द हैं, जो दोनों भाषाओं में एक ही तरह से ध्वनित होते हैं, पर उनके अर्थ भिन्न-भिन्न हैं। सैंकड़ों मामलों में एक ही शब्द की उक्राइनी भाषा में एक भावनात्मक छटा है और रूसी में दूसरी। एक भाषा में, जो मर्मस्पर्शी होता है, दूसरी में वही कभी-कभी व्यंग्यात्मक होता है। शब्दों की भावनात्मक-सौंदर्यबोधात्मक रंगत का, सूक्ष्मतम छटाओं का यह खेल उस आत्मिक संपदा का स्रोत है, जिसे युवा पीढ़ी को प्रदान करना हम शिक्षकों का कर्त्तव्य है।

भाषा जनगण की आत्मिक संपदा होती है। एक लोकोक्ति है: "जितनी भाषाएं मैं जानता हूं, उतनी ही बार मैं मनुष्य हूं"। परंतु अगर मनुष्य ने अपनी मातृभाषा पर अधिकार नहीं पाया है, उसके सौंदर्य की गहन अनुभूति उसे नहीं है, तो दूसरे जनगण की भाषाओं की संपदा भी उसकी पहुंच के बाहर रहती है। मनुष्य अपनी मातृभाषा की बारीकियों को जितनी अधिक गहराई से जाने-समझेगा, मातृभाषा के शब्दों की छटाओं के खेल के प्रति उसकी संवेदनशीलता जितनी तीव्र होगी, उतनी ही अधिक उसकी बुद्धि दूसरी भाषाओं पर अधिकार पाने में सक्षम होगी, उसका हृदय शब्दों के सौंदर्य को उतनी ही अधिक तीव्रता से ग्रहण करेगा।

मैंने यह लक्ष्य रखा था कि मातृभाषा की संपदा का यह जीवनदायी स्रोत स्कूली जीवन के पहले ही क़दमों से बच्चों के सम्मुख खुल जाए। विचारों और शब्दों के सजीव स्रोतों की "यात्राएं" करते हुए मेरे छात्र अपनी भाषा के और रूसी के शब्दों की भावनात्मक, सौंदर्यबोधात्मक और अर्थ-छटाओं का बोध पाते थे। मैं यह चेष्टा करता था कि वे भाषा के सौंदर्य को अनुभव करें, शब्दों के प्रति उनके मन में अनुराग हो, वे उनकी शुद्धता का ध्यान रखें।

मनुष्य की वाणी उसकी आत्मा का दर्पण होती है। बच्चे पर प्रभाव डालने, उसकी भावनाओं, आत्मा, विचारों और अनुभूतियों को उदात्त बनाने का सबसे महत्वपूर्ण साधन है मातृभाषा का सौंदर्य और भव्यता, शक्ति और अभिव्यंजनात्मकता। प्राथमिक विद्यालय में, जहां अपने इर्द-गिर्द के संसार की नई परिघटनाओं से हर भेंट बाल-हृदयों में विस्मय-विमुग्धता की भावना जगाती है, इस साधन की भूमिका का अतिमूल्यांकन नहीं किया जा सकता।

हम जब प्रकृति की गोद में—जंगल, बाग़ में, खेत, चरागाह में, नदी के तट पर जाते, तो शब्द मेरे हाथों में वह उपकरण बन जाते, जिसकी सहायता से मैं बच्चों को चारों ओर के संसार की विविधता के दर्शन कराता था। बच्चे जो देखते और सुनते थे उसके सौंदर्य को अनुभव करते हुए शब्दों की सूक्ष्मतम छटाओं को हृदयंगम करते थे और शब्दों के माध्यम से सौंदर्य उनकी आत्मा में पैठता था। प्रकृति की "यात्राएं" सृजनात्मक कार्य के लिए पहला प्रेरणा-आवेग थीं। बच्चों के मन में यह इच्छा जागी कि वे अपनी भावनाओं और अनुभूतियों को शब्दों में व्यक्त करें, सौंदर्य के बारे में बताएं। बच्चे प्रकृति के बारे में छोटी-छोटी रचनाएं बनाते थे। ये रचनाएं वाणी और विचारों के विकास-कार्य का अत्यंत महत्व-पूर्ण रूप हैं। हर बच्चा अपनी रचना बनाता था और फिर उसे क्लास में लिखता था। उदाहरण के तौर पर मैं यहां कुछ लघु रचनाएं उद्धृत कर रहा हूं, जो बच्चों ने पहली कक्षा में मौखिक रूप में रचीं और बाद में उन्हें "हमारी मातृभाषा" की कापी में या अपनी-अपनी कापी में लिखा।

भरत पंछी का गीत (लरीसा)

नीले आकाश में भूरा जीव फड़फड़ा रहा है। यह भरत पंछी है। मैं उसका अनोखा गीत सुनती हूं, सुनती जाती हूं, सुनती जाती हूं, पर मन नहीं भरता। लगता है वह चांदी के पतले-पतले तारों को झनझना रहा है। भरत पंछी सुनहरे गेहूं से सूरज तक तार खींचता है। गेहूं की बालियां कान लगाकर उसका गीत सुनती हैं।

सूरज डूब गया (सेर्योझा)

सूरज डूब गया है। खड्ड में से झुटपुटा निकलकर खेतों-मैदानों में बढ़ रहा है। नदी की तरह बहता जा रहा है। पेड़ के शिखर पर सुनहरी चिनगारियां चमक उठी हैं। चमकती हैं और बुझ जाती हैं। यह तो सूरज इन खेतों-मैदानों से विदाई ले रहा है। अलविदा, सूरज!

मधुमक्खियां पानी पीती हैं (गाल्या)

मैंने मधुमक्खियों को पानी पीते देखा है। पानी की बूंदें पतले-से सरकंडे पर ढुरकती हुई बेदमजनूं के चिकने खुत्थे पर गिरती जाती

हैं। खुत्था गीला हो जाता है। मधुमक्खियों को बेदमजनूं की गंध अच्छी लगती है। वे खुत्थे पर पानी पीने उड़ आती हैं, सुनहरे पंख फड़फड़ाती हैं। मधुमक्खियो, थोड़ा आराम कर लो, तुम्हें तो बड़ी दूर जाना है, न!

कूटू का खेत खिला (वार्या)

कूटू के फूल खिले, खेत में जैसे किसी ने सफ़ेद क़ालीन बिछा दिया। पर यह क़ालीन जीता-जागता है और इसकी सुगंध कितनी प्यारी है। हर फूल पर मधुमक्खी मंडराती है। क़ालीन गूंजता है—मधुमक्खियां भिनभिना रही हैं। बड़ा-सा रोयेंदार भौंरा फूल पर आ बैठा। डंठल हिलने लगा, झुक गया। भौंरे से टिका नहीं गया, वह गिर पड़ा और ग़ुस्से में भिनभिनाने लगा।

कम्बाइन (यूरा)

मेरे मामा कम्बाइन चलाते हैं। कम्बाइन बहुत बड़ी है। वह अपने तेज़ फलकों से गेहूं काटती चलती है और कटे डंठलों को पीछे के हिस्से में मांड़ने के लिए डालती जाती है। वहां से दानों की पतली-सी धार बंकर में गिरती जाती है। ट्रक आता है और अनाज लादकर खलियान में ले जाता है। अनाज से सब के लिए रोटी बनेगी।

हमारी मंड़ाई मशीन (वान्या)

हमारे स्कूल में एक छोटी-सी मंड़ाई मशीन है, इतनी-सी... छात्रों ने स्कूल के खेत में गेहूं उगाया था। गेहूं कटा, तो उसके पांच पूले बने। छोटी-सी मशीन घरघर करती चलने लगी, उसने गेहूं मांड़ दिया। हमने गेहूं को बोरी में भर दिया। अब हम इसे बोएंगे।

सेब के फूल खिले (पाव्लो)

वाह, कितना सुंदर लगता है बाग़, जब सेबों के फूल खिलते हैं। सफ़ेद फूल धूप में पंखुड़ियां खोलते हैं। हवा फूलों को झुलाती है और वे गूंजती हैं—चांदी की घंटियों की तरह। सारा बाग़ गूंजता है, धूप में चमकता है। और जब हवा रुकती है, तो मधुमक्खियों का गुंजन सुनाई देता है। वे पेड़ों के ऊपर उड़ती हैं, देखती हैं:

ये कौनसी घंटियां टनटना रही हैं? और बाग़ गूंजता है, जैसे हज़ारों तार झंकार कर रहे हों। मधुमक्खी घंटी पर बैठ जाती है, अपने पंजों को हिलाती है, पंख फड़फड़ाती है और घंटी से सुनहरे पराग का बादल उठता है।

दाशा मौसी (कोल्या)

हम दाशा मौसी के काम पर—गोशाला में—गए थे। वह तीस गायें दोहती हैं। बड़े-बड़े डोलों में दूध भरा जाता है। डोलों को गाड़ी पर रखकर डेरी ले जाया जाता है। वहां दूध से मक्खन निकालते हैं।

सारस उड़ आए (तीना)

सूरज पहाड़ी के पीछे छिप गया। नीले आसमान में सारस उड़ रहे थे। वे कह रहे थे: "नमस्ते, हरे-भरे मैदानो, हम गरम देश से आए हैं।" पेड़ों की टहनियां कंपकंपाईं। घास की हरी पत्तियां सरसराईं। तालाब गूंज उठा—"नमस्ते, सारसो, क्या देखा तुमने गरम देशों में?"

स्नेही झुटपुटा-दादा (सान्या)

आसमान में तारे चमके। खड्ड में से स्नेही झुटपुटा-दादा निकले—लंबे-लंबे बालोंवाले, झबरीले बूढ़े दादा। लाठी का सहारा लिए गांव को चल दिए। वह घरों में जाते हैं, अपने नरम-नरम हाथों में बच्चों को उठाते हैं। बच्चों को नींद आ जाती है। वे मीठे सपने देखते हैं।

("ख़ुशियों के स्कूल" में ही सान्या ने झुटपुटे की कहानी सोची थी। अब उसकी स्मृति में वह फिर सजीव हो उठी थी।)

कुज़्मा चचा (फ़ेद्या)

हम कुज़्मा चचा के पास गए थे। वह राजगीर हैं। ईंटों को चीन-चीनकर दीवार खड़ी करते हैं। आजकल वह दुकान बना रहे हैं। कुज़्मा चचा पचास मकान बना चुके हैं। इन मकानों में बहुत सारे लोग रहते हैं। कुज़्मा चचा कहते हैं: "मेरे मकान दो सौ साल तक बने रहेंगे। बहुत सारे लोग याद करेंगे: कैसा राजगीर था कुज़्मा चचा!"

वसंत का फूल (कात्या)

सूरज ने जंगल को जगा दिया। चीड़ के शिखर पर पड़े हिम कण को पिघला दिया। गरम बूंद हिम के ढूह पर गिरी। ढूह को और उसके नीचे दबी सूखी पत्तियों को चीरती हुई वह धरती तक जा पहुंची। जहां गरम बूंद धरती पर पड़ी, वहां हरा अंकुर फूटा और फिर उस पर नीला-नीला फूल खिला। फूल ने चारों ओर पड़े हिम को देखा और हैरान हुआ: "क्या मैं जल्दी तो नहीं जाग गया?"— "नहीं, नहीं, जागने का समय आ गया," चिड़ियां चहचहाने लगीं, और वसंत आ गया।

सूरज और घटा (तोल्या)

सुनहरी खेत लहलहा रहा है। हर बाली में सूरज की किरणें खेल रही हैं। खेत, खेत, तू कितना सुंदर है। पर लो, घटा आ गई। उसने सूरज को छिपा दिया। बालियों में चमकती सुनहरी चिनगारियां बुझ गईं। खेत मटमैला हो गया, मानो किसी ने धरती पर मटमैली चादर बिछा दी हो। सूरज, सूरज, जल्दी से घटा के पीछे से निकल आ। बालियां तेरा इंतज़ार कर रही हैं। हम भी तेरी राह देख रहे हैं, सूरज!

आसमान से तारे गिरते हैं (ल्यूबा)

अगस्त में आसमान से तारे गिरते हैं। अंधेरे जंगल में एक बड़ा मैदान है। आसमान से तारा मैदान में गिरा। वहां लाल सुर्ख़ फूल खिल उठा।

हमारी क्लास में ठंड नहीं होती (साशा)

बाहर चाहे कितना भी पाला पड़े, हमारी क्लास में ठंड नहीं होती। लोहे के पाइपों में गरम पानी बहता है। तहख़ाने में बायलर है। बड़ी-सी भट्ठी में कोयला जलता है—बायलर में पानी को गरम करता है। कोयला खनिकों ने ज़मीन में से निकाला है। मालगाड़ी में भरकर उसे हमारे यहां लाया गया। मालगाड़ी से उसे ज़मीन पर उतारा गया। फिर ट्रकों में लादकर हमारे स्कूल में लाया गया।

खानों में और रेलवे पर लोग काम करते हैं, तभी हम ठंड से बचते हैं।

जाड़ों में मैनाएं (मीशा)

पिछले जाड़ों में मैनाएं गरम देशों को नहीं उड़ गईं। उन्हें कैसे पता चल गया कि इस बार तेज़ पाला नहीं पड़ेगा? मैंने देखा था कैसे शाम को चिड़ियां झुंड बनाकर एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर उड़ रही थीं, वे देख रही थीं, कहां ज़्यादा गरमाहट है, और बेचैन-सी चिंचिया रही थीं। जब हिमानी आंधी चली, तो वे हमारे बाड़े में उड़ आईं। चारों ओर बैठ गईं, कुछ मैनाएं तो गाय की पीठ पर भी बैठ गईं। जब धूप निकलती थी, तो मैनाएं हिम में नहाती थीं। मैना हिम के नरम ढूह पर पत्थर की तरह गिरती है, हिम में धंस जाती है, फिर ढूह से बाहर निकल आती है और ख़ुशी से चह-चहाती है।

नया साल (दान्को)

नया साल आ रहा था। मां के साथ मिलकर हमने मेज़ पर नये साल का पेड़ सजाया। उसके नीचे हिम-बाबा को खड़ा किया। रात हो गई। आंगन में चांदनी फैली हुई थी। मेरा मन हुआ, देखूं हिम-बाबा क्या करेंगे। उन्होंने अपनी छड़ी उठाई और मेज़ पर चलने लगे। चलते-चलते कांख रहे थे। टहनियों पर लटकते हिम-कण फुसफुस करते आपस में बातें कर रहे थे। एक टहनी पर ख़रगोश छिपकर बैठा हुआ था। अचानक वह कूदा और हिम-बाबा के झोले में घुस गया। अब हिम-बाबा नए साल का उपहार लाएंगे।

मेरा नाना (ल्यूदा)

मेरे नाना जंगल लगाते और उनकी देखभाल करते हैं। वह पच्चीस बरस से हमारे सामूहिक फ़ार्म में काम कर रहे हैं। गांव के बाहर बलूत कुंज है। ये नाना के बलूत हैं, उन्होंने ये पेड़ लगाए थे। नाना कहते हैं मेरे पेड़ तीन सौ साल जीएंगे। मैं भी बलूत का पेड़ लगाऊंगी।

दुष्ट मकड़ी (कोस्त्या)

कोठरी के अंधेरे कोने में मकड़ी दीवार पर दुबककर बैठ गई और अपने पंजे हिलाने लगी, मानो जाल को हिला रही हो। मक्खी उड़ती, भिनभिनाती उधर आई। मकड़ी उसकी ओर मुड़ी, कान लगाकर सुनने लगी। मक्खी जाले से टकराई और उसमें फंस गई। वह बेचैन होकर ज़ोर-ज़ोर से भिनभिनाने लगी। उधर मकड़ी जल्दी-जल्दी मक्खी की ओर बढ़ रही थी। नहीं, दुष्ट मकड़ी, तू मक्खी को नहीं मार पाएगी। मैंने जाल को तोड़ दिया और मक्खी को छुड़ा दिया। उड़ जा मक्खी, फिर कभी दुष्ट मकड़ी के जाल में मत फंसना।

टमाटर (स्लावा)

हरे-हरे पौधों पर लाल-लाल टमाटर लगे हैं। सुबह टमाटरों पर ओस पड़ी होती है। ओस की हर बूंद में सूरज की सुनहरी किरण खेलती है। सफ़ेद तितली लाल टमाटर पर बैठ गई। मधुमक्खी भिनभिनाती आई। उसने सोचा, यह बड़ा-सा लाल फूल है। थोड़ी देर तक फूल पर मंडराती रही और फिर उड़ गई।

बच्चों की रचनाएं विशाल कार्य का परिणाम हैं। बच्चों के साथ विचारों और शब्दों के सजीव स्रोत पर जाना चाहिए, यह चेष्टा करनी चाहिए कि चारों ओर के संसार की वस्तुओं, परिघटनाओं के चित्र शब्दों के माध्यम से बच्चों की चेतना में ही न बनें, बल्कि उनके हृदय में भी उतर जाएं। शब्दों की भावनात्मक-सौंदर्यबोधात्मक रंगत, उसकी सूक्ष्मतम छटाएं—यही है बच्चों के लिए सृजनात्मक कार्यों का जीवनदायी स्रोत। मेरे बच्चों की चेतना में शब्द ज्वलंत बिंबों से जुड़े हुए थे, इसलिए कक्षा में अपनी रचनाएं लिखते समय वे साथ में चित्र भी बनाते थे।

यह आशा करना तो भोलापन ही होगा कि अपने आस-पास के सौंदर्य के प्रभाव मे बच्चा तुरंत ही कोई रचना रच लेगा। बच्चे किसी सहज अंतःप्रेरणा से ही सृजन नहीं करते। बच्चा केवल तभी रचना बनाएगा, जबकि वह अध्यापक के मुंह से प्रकृति का वर्णन सुनेगा। मैंने बच्चों को जो पहली रचना सुनाई वह संध्या की शांत घड़ी में तालाब के तट पर रची गई थी। मैं बच्चों को यह दिखाना चाहता था कि किस प्रकार उनकी

ग्रांखों के सामने जो जीती-जागती तस्वीर है उसे शब्दों में उतारा जा सकता है। पहले तो बच्चे मेरी बनाई रचनाएं दोहराते रहे ग्रौर फिर शनैः-शनैः वे स्वयं ग्रपने शब्दों में उन प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन करने लगे, जिनसे उन्हें रोमांच होता था—इस प्रकार बच्चों के व्यक्तिगत सृजन की प्रक्रिया ग्रारंभ हुई। इस कार्य में शब्दों की भावनात्मक-सौंदर्यबोधात्मक छटाग्रों की ग्रनुभूति बहुत मानी रखती है। बच्चा केवल तभी रचनाएं लिखना सीखेगा, जबकि उसके लिए हर शब्द एक ईंट की भांति हो, जिसका स्थान पहले से निर्धारित है। बच्चे वही एकमात्र ईंट चुनते हैं, जो इस मामले में ठीक बैठती हो। वे सबसे पहले दिमाग़ में जो शब्द ग्राया उसे ही नहीं बिठा सकते। उनकी भावनात्मक-सौंदर्यबोधात्मक संवेदनशीलता उन्हें ऐसा नहीं करने देती।

रचनाएं रचना मेरे बच्चों का मनपसंद काम हो गया। वे जो कुछ भी देखते, ग्रनुभव करते, उसे शब्दों में व्यक्त करने की कोशिश करते। शब्द बच्चों के लिए ग्रपने चारों ग्रोर के संसार के प्रति ग्रपना रुख़ व्यक्त करने का साधन होते हैं। दूसरी, तीसरी, चौथी कक्षाग्रों में बच्चे ग्रपने बड़ों—फ़ार्म के किसानों ग्रौर मज़दूरों—के बारे में, सोवियत लोगों के श्रम के बारे में, सेब के पेड़ों की फूटती कोंपलों ग्रौर मुरझाते फूल के बारे में, शरद के ग्रंतिम सुहावने दिनों में खेतों-मैदानों में उड़ते रजत तारों ग्रौर बाग़ में सेब की फ़सल बटोरने के बारे में रचनाएं रचने लगे। चार बरसों, प्रत्येक छात्र ने ४०-५० लघु रचनाएं रचीं। लीजिए, देखिए कुछ रचनाएं, जो बच्चों ने दूसरी, तीसरी ग्रौर चौथी कक्षाग्रों में लिखीं।

खिड़कियों पर बर्फ़ीले फूल कैसे बनते हैं

(तान्या, चौथी कक्षा)

मैंने मां से पूछा: "खिड़की के शीशों पर बर्फ़ के फूल कैसे बनते हैं?" मां ने कहा: "हिम-बाबा का छोटा-सा पोता ये फूल बनाता है। वह रात को हिम-बाबा के साथ घूमता है ग्रौर खिड़कियों पर फूल बनाता है..." मेरा मन हुग्रा, देखूं कैसे वह फूल बनाता है। रात हुई, तो मैं सोने के लिए बिस्तर में लेट गई, पर ग्रांखें बंद नहीं कीं। सब सो गए। खिड़की के बाहर पेड़ चरमराया। एक छोटा-सा लड़का खिड़की के पास ग्राया। वह खिड़की पर चांदी

की पेंसिल चलाता जा रहा था और गुनगुनाता जा रहा था। देखती क्या हूं कि बड़ा ही अनोखा फूल बन गया – चौड़ी-चौड़ी पत्तियां और छोटी-छोटी पंखुड़ियां। सुबह धूप निकली और फूल जी उठा। पता नहीं, मुझे सपना आया था या मैंने सचमुच ही यह देखा था।

पाले में फूलों की बहार

(गाल्या, तीसरी कक्षा)

शरद ऋतु में तापघर के पास गुलदाउदी के फूल खिले। वे ठंडे कोहरे से नहीं डरते। पर उत्तर से पाला आया। बाल्टी में पानी जम गया। अब फूलों को ठंड से बचाना चाहिए। हमने उन्हें गमलों में लगाकर तापघर में रख दिया। उनकी पत्तियां काट दीं। थोड़े दिनों बाद पौधे फिर हरे-भरे हो गए और फिर उनमें फूल भी आ गए। सुबह मैं जागी, देखा बाहर हिम ही हिम था। हिम और धूप। मैं जल्दी-जल्दी तापघर में गई। वहां गुलदाउदी के सफ़ेद, नीले, आसमानी फूल खिल रहे थे। और बाहर पाला पड़ रहा था। फूल उजली धूप देखकर ख़ुश हो रहे थे।

जब हम चरागाह से लौट रहे थे

(पाव्लो, दूसरी कक्षा)

गर्मियों में हम चरागाह से घास लेने गए थे। मां ने गाड़ी पर ढेर सारी घास लाद दी और उसे रस्सी से बांध दिया। घोड़े धीरे-धीरे चल रहे थे। हम घास पर बहुत ऊंचे बैठे हुए थे। सूरज डूब गया, तारे चमकने लगे। मैं घास पर लेट गया और आकाश को निहारने लगा। हमारी गाड़ी गाड़ी नहीं रही, वह बड़ी नाव हो गई। वह समुद्र में बढ़ रही थी। हमारे ऊपर तारे थे, बिल्कुल पास ही। बस हाथ उठाओ और तारों को छू लो। दूर कहीं हरे-भरे किनारे थे। वहां बटेर गा रहा था, टिड्डे वायलिन बजा रहे थे। हमारी नाव रुक गई, पर तारे डोल रहे थे। नाव किनारे लग गई। मां उठ खड़ी हुई, पर मेरा जी करता था और थोड़ी देर लेटा रहूं।

शरद का उदास दिन

(शूरा, तीसरी कक्षा)

दिन छोटे हो गए हैं और रातें लंबी। सुबह नदी के ऊपर कोहरा बहता है। कहां गया सूरज? क्यों नहीं वह कोहरे के फाहों को छांट देता? आसमान से शरद ऋतु की वर्षा की छोटी-छोटी बूंदें गिर रही हैं। पेड़ टहनियां झुकाए खड़े हैं। पत्तियां झड़ रही हैं। टहनियों पर मोटी-मोटी बूंदें लटक रही हैं। कोहरे में से कहीं किसी पंछी की लंबी चीख़ आती है। शायद वह गरम देशों को नहीं जा सकता है और लोगों से शिकायत कर रहा है। जंगल में नीरवता छाई हुई है। कठफोड़वे ने कुछ बार ठक-ठक की और फिर ख़ामोश हो गया। बलूत के सुनहरे फल पत्तियों पर गिर रहे हैं। सारी दुनिया दूधिया कोहरे की चादर ओढ़े हुए है।

जब शरद ऋतु आती है

(सेर्योझा, चौथी कक्षा)

सुबह को अबाबीलें हैरान-परेशान-सी गांव के ऊपर उड़ रही थीं। फिर उन्होंने एक बड़ा-सा झुंड बना लिया। टेलीफ़ोन के तारों पर पास-पास बैठ गईं और धीमी-धीमी आवाज़ में चिचियाने लगीं। वे सोच-विचार कर रही थीं कि कब गरम देशों को जाया जाए। अगले दिन अबाबीलें नहीं रहीं। कहां उड़ गईं वे? कैसे उन्हें पता चल जाता है कि शरद ऋतु आ रही है? दिन तो अभी गरम ही हैं। गुलाबी धूप खिलती है। मुझे शरद की उजली संध्याएं बड़ी प्यारी लगती हैं। बड़ी देर तक आसमान में डूबते सूरज की लाली छाई रहती है। पेड़ों की पत्तियां भी लाल लगती हैं। यह डूबते सूरज की ललिमा की छाया है। शांत तालाब के जल में भी लाली है। हां, शाम को तालाब पर बड़ा कोलाहल होता है: गरम देशों को जा रहे पक्षी यहां रात काटते हैं। सुबह होते-होते तालाब पर कोहरे की चादर बिछ जाती है। घास पर ओस पड़ी होती है। ओस सन-सी सफ़ेद होती है, वैसी नहीं, जैसी गर्मियों में होती है। यह शरद आने की निशानी है।

जीवन में सबसे आवश्यक क्या है

(वार्या, चौथी कक्षा)

जीवन में सबसे आवश्यक क्या है? खनिक कहता है: सबसे आवश्यक है—कोयला। अगर कोयला न हो, तो मशीनें रुक जाएं, लोहा न बने, लोग ठंड से अकड़ जाएं।

धातुकर्मी कहता है: सबसे आवश्यक है—धातु। धातु के बिना न कोई मशीन बन सकती है, न कोयला निकाला जा सकता है, न अनाज उगाया जा सकता है, न ही कपड़ा बनाया जा सकता है।

किसान कहता है: सबसे आवश्यक है—रोटी। रोटी के बिना न खनिक काम कर सकता है, न धातुकर्मी, न पायलट और न सीमा प्रहरी ही।

किसकी बात सच है? जीवन में सबसे आवश्यक क्या है? सबसे आवश्यक है—श्रम। श्रम के बिना न कोयला मिल सकता है, न धातु और न रोटी ही।

घोड़ा

(सान्या, चौथी कक्षा)

मां ने मुझे यह घटना सुनाई। बहुत पहले की बात है, जब हमारे गांव में सामूहिक फ़ार्म बन ही रहे थे। फ़ार्मवालों ने एक घोड़ा ख़रीदा। वह किसी को हाथ ही नहीं लगाने देता था। बहादुर से बहादुर लोग भी उसके पास जाते हुए डरते थे। वह सुमों से ज़मीन खोदता था, दांत मारता था।

एक दिन यूर्को नाम का नौजवान उस पर सवार हो ही गया। घोड़ा ज़ोरों से हिनहिनाया, उसने अगली टांगें ऊपर उठाईं, फिर दौड़ चला, सड़क पर उसने यूर्को को अपनी पीठ से गिरा दिया। कुछ देर तक वह दौड़ता गया, आख़िर गांव के पास रुका। सड़क पर दो छोटे बच्चे खेल रहे थे। वे भागकर घोड़े के पास गए और उसकी अगली टांगों से चिपक गए। मां की डर के मारे जान सूख गई। वह सोच रही थी: अभी यह घोड़ा बच्चों को कुचल देगा। पर घोड़ा बिल्कुल शांत खड़ा था। वह टांग को ज़रा सा हिलाता और फिर खड़ा हो जाता था। तिरछी नज़रों से बच्चों को देख रहा था, मानो डरता हो कि उन्हें चोट न पहुंचा दे। बच्चे थे कि खेलते

जा रहे थे। फिर घोड़ा धीरे-धीरे बड़ी सावधानी से बच्चों के पास से हट गया और गांव में से होता हुआ दौड़ चला। लोगों ने उसे पकड़कर घुड़साल में खड़ा कर दिया।

साहियां

(फ़ेद्या, चौथी कक्षा)

हमारे घर के ओसारे के नीचे साहियां रहती हैं। शाम को छोटे-से छेद में से उनका सारा परिवार निकलता है और तालाब की ओर जाता है। आगे-आगे बूढ़ी पापा साही होती है, उसके पीछे पांच छोटे-छोटे बच्चे और सबसे पीछे मां साही। क्या करते हैं ये वहां? मैं चुपके-चुपके देखने लगा, पता चला: वे पानी पीते हैं और नहाते हैं। फिर मां और पापा साही अपने छोटे-छोटे पंजों से ज़मीन खोदते हैं और वहां से कोई जड़ें निकाल-निकालकर खाते जाते हैं। साही बच्चे उधर खेलने में मस्त होते हैं। साहियों ने एक एकांत जगह ढूंढ़ ली है, वहां कोई नहीं जाता।

एक दिन न जाने कहां से एक कुत्ता उधर आ निकला। वह बूढ़ी साही के पास गया। बूढ़ी साही ने अपने कांटे खड़े कर लिए और गोल-मटोल हो गई। दूसरी साहियों ने भी ऐसा ही किया। कुत्ते ने बूढ़ी साही को अपने दांतों में दबोचा और तालाब की ओर ले चला। उसे पानी में फेंक दिया। साही किनारे की ओर तैरने लगी। कुत्ता बड़े मज़े से उसे देख रहा था। फिर वह उसके साथ खेलने लगा। मैंने कुत्ते को भगा दिया।

अगले साल वसंत में ओसारे के नीचे अकेली बूढ़ी साही ही रह गई। बाक़ी साहियां कहां गईं? शायद, दूसरी जगह जा बसी थीं। और बूढ़ी साही ने अपनी पुरानी जगह नहीं छोड़नी चाही। मैंने ओसारे के पास तश्तरी में दूध रखा। साही ने दूध पी लिया। अब वह मुझसे नहीं डरती थी। एक दिन मैं उसे पुचकारता-पुचकारता कमरे में ले आया। मैंने बत्ती जलाई। साही बत्ती की ओर टकटकी लगाकर देखने लगी। मैंने फ़र्श पर पुराना अख़बार रखा। साही उससे खेलने लगी। रात बिताने वह ओसारे के नीचे अपने बिल में चली गई।

आर्त्योम मिख़ाइलोविच

(दान्को, चौथी कक्षा)

हमारी पायोनियर रैली में आर्त्योम मिख़ाइलोविच आए थे। वह सब्जियां उगानेवाली टोली में काम करते हैं। हम तो सोचते थे कि वह बस दादा जी ही हैं। पता चला वह तो गृहयुद्ध के वीर हैं। उन्होंने बताया कैसे वह दुश्मन की टोह लेने जाते थे, कैसे प्रतिक्रांतिकारियों पर हमला करते थे। एक बार वह घायल हो गए और उन्हें बंदी बना लिया गया। उन्हें गोली मारने का हुक्म दिया गया। पर गोली नहीं मारी गई, बस दुबारा बुरी तरह से घायल कर दिया गया। रात को वह रेंग-रेंगकर वहां से दूर चले गए। एक किसान से उन्होंने शरण मांगी। किसान ने उन्हें अपने घर की दुछत्ती पर छिपाकर रखा, उनका इलाज किया। ठीक होने पर वह फिर सफ़ेद गार्डों से लड़ने चले, ऐसे हैं हमारे दादा आर्त्योम मिख़ाइलोविच। मैं भी ऐसा बनना चाहता हूं।

विजय दिवस

(वोलोद्या, तीसरी कक्षा)

विजय दिवस आया। इस दिन लड़ाई ख़त्म हुई थी। हमारी सोवियत सेना ने फ़ासिस्टों पर विजय पाई थी। बम और गोले फटने बंद हो गए थे। अब हर साल लोग विजय दिवस मनाते हैं, शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। व्लादीमिर इल्यीच लेनिन ने हमारी कम्युनिस्ट पार्टी बनाई थी और सब लोगों से कहा था: "उक्राइनी, रूसी, बेलोरूसी, जार्जियाई, मोल्दावियाई – सब लोग मिल-जुलकर रहो, तब तुम्हें कोई नहीं जीत सकेगा।"

हम सब मिलकर भी रचनाएं रचते थे। एक बार शरद में बच्चे "स्वप्न-लोक" में अलाव के पास बैठे थे। बाहर सारा दिन बादल छाए रहे थे, बारिश हो रही थी। मैं बच्चों को उष्णकटिबंधीय द्वीपों के बारे में बता रहा था। बच्चों को गर्मियां, नदी का किनारा, पालेज़ पर बिताए दिन याद हो आए। बच्चों की इन यादों से एक रचना बनी, जिसे बाद में उन्होंने "हमारी मातृभाषा" की कापी में लिखा।

पालेज़ पर बिताए दिन

तपी ज़मीन पर बड़े-बड़े तरबूज़ उग रहे थे – कोई हरा, कोई गहरा हरा, कोई नीलापन लिए हरा। सुबह उन पर ग्रोस पड़ी होती थी, ठंडी-ठंडी ग्रोस। घास पर भी ग्रोस होती ग्रौर हमारे टह-नियों ग्रौर घास-पात के झोंपड़े पर भी ग्रोस की ग्रनगिनत बूंदें होतीं। एक दिन दान्को सुबह तड़के उठ गया ग्रौर एक ख़ूब बड़ा तरबूज़ झोंपड़े में ले ग्राया। उसको काट लिया। जो-जो उठता जाता उसको ठंडा तरबूज़ मिलता जाता। "जो सबसे बाद में उठेगा, उसे तरबूज़ का सबसे मज़ेदार बिचला हिस्सा – 'बाबा' – मिलेगा।" सब उठ गए, ग्रकेला साश्को ही सोया हुग्रा था। हम बैठे इंतज़ार कर रहे थे कि कब वह उठे। ग्राख़िर हम इंतज़ार करते-करते थक गए ग्रौर हमने ख़ुद ही "बाबा" खा लिया। फिर हम एक ग्रौर तरबूज़ ले ग्राए। इसका "बाबा" साश्को को मिला।

कोहरे भरी शांत सुबह थी। कोहरा खड्ड से ग्राया था ग्रौर सारे पालेज़ पर फैल गया था। बादलों के पीछे से सूरज झांका, तरबूज़ चमक उठे। लगा, वह तरबूज़ नहीं, हरे, नीले, भूरे कांच के गोले हैं, जो सफ़ेद नदी में तैर रहे हैं।

दिन को पालेज़ पर गरम हवा चलती थी। नीले ग्राकाश में भरत पंछी गाते थे। वे पालेज़ पर क्यों नहीं उतरते? भरत पंछी गेहूं, जौ, बाजरे के खेत में ही क्यों घोंसला बनाते हैं, ग्रंडे देते हैं? कूटू के खेत में भरत पंछी के सबसे ज़्यादा घोंसले होते हैं।

पालेज़ से थोड़ी दूर खड्ड के पास हमें एक बांबी मिली। दादा ने देखा कि चींटियां जल्दी-जल्दी कहीं ग्रा-जा रही हैं। उन्होंने कहा: पास ही कहीं बड़ी बांबी है, ग्रभी चींटियां हमें ख़ुद ही बता देंगी कि वह कहां है। दादा ने तरबूज़ के कुछ टुकड़े चींटियों के रास्ते के पास रख दिए। चींटियां तुरंत मीठे तरबूज़ पर टूट पड़ीं। हमने देखा कैसे वे छोटे-छोटे टुकड़े उठाकर एक ही दिशा में ले जा रही हैं। उनके पीछे चलते-चलते हम बांबी तक पहुंच गए। झाड़ी के नीचे मटमैला ढूह जीता-जागता-सा लगता था। चींटियां बांबी के ग्रंदर कहीं तरबूज़ के टुकड़े ले जा रही थीं ग्रौर फिर पालेज़ पर लौट रही थीं। दादा ने हमें बताया कि चींटियां जंगल को ग्रौर लोगों को कितना लाभ पहुंचाती हैं। एक बांबी कई हैक्टर जंगल को हानिकारक कीड़ों से

बचाती है। हम चींटियों की रक्षा करने लगे। दादा ने हमें नई बांबियां बनाना भी सिखाया।

जब हम पालेज़ से घर लौट रहे थे, तो दादा ने सबको एक-एक बड़ा तरबूज़ दिया। तरबूज़ कई दिनों तक हमारे घरों में रखे रहे। वे हमें गरम हवा की, स्तेपी के खुले मैदानों की, भरत पंछी और दादा की और हमारे झोंपड़े के पास ही आ बसे झींगुर के गीत की याद दिलाते थे। कहां है अब वह झींगुर?

कविता में ही शब्दों का सौंदर्य सबसे अधिक उज्ज्वल रूप में मूर्तिमान होता है। कविता या गीत पर विमुग्ध होते हुए बच्चे शब्दों का संगीत सुनते हैं। श्रेष्ठ कविताओं में शब्द मातृभाषा की सूक्ष्मतम भावनात्मक छटाओं को उजागर करते हैं। इसीलिए बच्चे कविता को याद करना चाहते हैं। बच्चे के मन में जो शब्द पैठ गए हैं, उन्हें दोहराते हुए उसे सच्चा आनंद प्राप्त होता है।

मैं यह चेष्टा करता था कि बच्चे काव्यमय शब्दों के संगीत को अनुभव करें। प्रकृति के आंचल में, उन क्षणों में, जब बच्चे अपने चारों ओर के सौंदर्य पर मंत्र-मुग्ध होते थे, मैं उन्हें कविताएं सुनाता था। एक बार हम खेत में गए; हमारे सामने तालाब का मनोहारी दृश्य था, उसकी पारदर्शी गहराई में बेदमजनूं की परछाइयां कंपायमान हो रही थीं। मैंने बच्चों को तरास शेव्चेन्को की ये पंक्तियां सुनाईं:

मंद-मंद बहता था समीर,
घाटियां थीं ऊंघतीं।
तालाबों-झीलों के तटों पर
हरियाली थी डोलती...

बच्चे ये पंक्तियां दोहरा रहे थे। वे यह अनुभव कर रहे थे कि सजीव बिंब की सृष्टि करनेवाले इन शब्दों का मेल उन्हें संगीतमय बना देता है और इस तरह शब्दों में न केवल नई भावनात्मक छटा आती है, बल्कि वे चारों ओर के संसार में भी नए सौंदर्य को उजागर करते हैं। संसार के श्रेष्ठतम कवियों की रचनाओं के प्रभाव में बच्चों के मन में यह इच्छा जाग रही थी कि वे भी शब्दों में संगीत लाएं। वसंती दिन के सौंदर्य का रसपान करते हुए बच्चे अपने भाव ऐसे शब्दों में व्यक्त करने का प्रयत्न

करते थे कि उनमें संगीत ध्वनित हो। बाल-हृदयों में काव्य प्रेरणा का आवेग उठता था: वे कविताएं रचते थे।

लरीसा दूर-दूर तक फैले खेतों को देखती है, उसकी आंखें चमकती हैं, वह हौले से कुछ शब्द कहती है, उनकी ध्वनि को सुनती है:

"गेहूं के पीले सागर में लहरें उठ रही हैं।"

"तपी हवा में नीले टीले थरथरा रहे हैं," सेर्योझा उसके विचार में अपनी कड़ी जोड़ता है।

सबमें हर्षमय उत्तेजना आती है, सभी शब्दों की अपनी लय ढूंढ़ना चाहते हैं। ऐसे क्षणों में, जब बाल-हृदय में काव्य-प्रेरणा का संचार होता है, शब्द – भरे-पूरे, सजीव शब्द, जिनमें इंद्रधनुष के सभी रंग चमकते हैं, खेतों-मैदानों की सुरभि है – बच्चों के आत्मिक जीवन में अपना स्थान बनाते हैं; बच्चे उनमें अपनी भावनाओं, विचारों और अनुभूतियों को व्यक्त करने का साधन खोजते और पाते हैं। बाल-हृदय में काव्य प्रेरणा जगाने का अर्थ है विचारों का एक और जीवनदायी स्रोत खोलना। इस स्रोत की शक्ति इस बात में है कि शब्द केवल उन वस्तुओं और परिघटनाओं को ही नहीं व्यक्त करते हैं, जिनको वे मानव-वाणी में निर्दिष्ट करते हैं, अपितु वे भावनाओं और अनुभूतियों के गूढ़तः व्यक्तिगत बोध को भी व्यक्त करते हैं।

काव्य-सृजन की शिक्षा कवियों की पौध उगाने के लिए नहीं, बल्कि तरुण हृदयों को उदात्त बनाने के लिए आवश्यक है। बाल-हृदयों में काव्य प्रेरणा संचारित करने के लिए प्रत्येक अवसर का मैं लाभ उठाता था, ताकि हर बच्चे की आत्मा में शब्दों की अपनी काव्यमय ध्वनि हो।

जाड़ों की शांत प्रभात वेला है। वृक्ष तुषारमंडित हैं। सुइयों जैसे बारीक तुषार कणों से ढकी टहनियां चांदी की बनी लगती हैं। हम स्कूल के बाग़ में जाते हैं, कोशिश करते हैं कि कहीं अनजाने में कोई टहनी न हिल जाए और इस अद्वितीय सौंदर्य का आकर्षण विलुप्त न हो जाए। हम खड़े हो जाते हैं। मैं बच्चों को शीत-सौंदर्य पर पुश्किन और हाइने की कविताएं सुनाता हूं। कविता और सौंदर्य के प्रभाव में बच्चे वे शब्द ढूंढ़ते हैं, जिनकी सहायता से तुषारमंडित वृक्ष को चित्रित किया जा सकता है और कविता बनाते हैं। सब मिलकर कविता बनाते हैं – हम कई बार तुषारमंडित बाग़ में आते हैं। कविता में वे बिंब भी सजीव हो उठते हैं, जो बच्चों ने पहले कहानियों में बनाए थे:

जादूगर सुनार आया,
सुनहरी भट्ठी लाया;
चांदी उसमें ली गला
और पेड़ों पर दी डाल।
रात भर वह रहा कूटता,
हथौड़ा रहा गूंजता...
बाग़ ने ओढ़ी रुपहली चादर।
रजत सुइयां टकरातीं,
बाग़ में झंकार गूंज जाती।
कहां है जादूगर सुनार?
सुनहरे पंखों पर उड़कर
गया वह सूरज के पास।
लेकर और चांदी,
डालकर उसे झोले में,
लौटेगा वह धरती पर।
फिर गलेगी चांदी
और गूंज उठेगा बाग़...
सूरज देख रहा राह सुनार की,
कहां गए तुम सुनार मेरे?
क्यों गलाते हो बाग़ में,
चांदी मेरी इतनी?
भूल गए क्या सुनार मेरे
मुकुट तुम्हें है बनाना?
और लाल किरण लगी झांकने
रुपहले बाग़ में हमारे।
विस्मित रह गया सूरज,
कैसा अनुपम है यह सौंदर्य!

बचपन में हर बच्चा कवि होता है। बेशक, यह उम्मीद करना भोलापन होगा कि बच्चे को किसी दैवी चमत्कार से काव्य-प्रेरणा मिलेगी। मैं जन्मजात प्रतिभा पर मुग्ध होनेवालों में नहीं हूं, मैं यह नहीं मानता कि हर बच्चा अपनी प्रकृति से ही कवि होता है। सौंदर्य की मानवीय

भावना की गहरी और तीव्र अनुभूति ही मनुष्य को कवि बनाती है। इस भावना का अगर विकास नहीं किया गया है, तो बच्चा प्रकृति और शब्दों के सौंदर्य के प्रति उदासीन रहेगा, उसके लिए पानी में कंकड़ फेंकना और गाती बुलबुल पर पत्थर दे मारना एक ही बात होगी। बच्चे को काव्य-प्रेरणा की सुखद अनुभूति प्रदान करना, उसके हृदय में काव्य सृजन का सजीव स्रोत जगाना—यह बच्चे को पढ़ना और सवाल हल करना सिखाने जितना ही महत्त्वपूर्ण कार्य है। कुछ बच्चों में यह स्रोत ज़ोरों से फूटता है, कुछ में धीरे-धीरे बहता है। मैंने देखा कि कुछ बच्चों के लिए काव्य-प्रेरणा कोई क्षणिक आवेग नहीं है, लौ की भभक नहीं है, बल्कि यह तो उनकी आत्मा की स्थायी आवश्यकता है।

काव्य-सृजन वाक्-संस्कृति का सर्वोच्च शिखर है और वाक्-संस्कृति मानव-संस्कृति के सार को ही व्यक्त करती है। काव्य-सृजन किन्हीं असाधारण प्रतिभाशाली लोगों का विशेषाधिकार नहीं है। काव्य रचना हर कोई कर सकता है। काव्य-सृजन मनुष्य को ऊंचा उठाता है। यह बात बहुत महत्व-पूर्ण है कि सृजन का यह सबसे अधिक सूक्ष्म क्षेत्र हर बच्चे का बिल्कुल निजी, आत्मिक मामला हो।

तीसरी कक्षा में ही लरीसा, सान्या, सेर्योझा, कात्या, वार्या, कोल्या, तान्या, लीदा चुपके-चुपके मुझे अपनी कविताएं सुनाने लगे, जो उन्होंने एकांत में रची थीं। मैं जानता था कि दूसरे बच्चे भी कविताएं लिखते हैं, किंतु अपने शौक़ की बात करते हुए शर्माते हैं। यह बहुत ही अच्छी बात थी।

मैं इसे कोई असाधारण बात नहीं समझता था कि बच्चे कविताएं लिखते हैं; यह तो उनकी आत्मिक शक्तियों का सामान्य खेल है, साधारण सृजन लौ है, जिसके बिना भरे-पूरे बचपन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पर हां, मुझे इस बात पर बहुत ख़ुशी थी कि बच्चों का आत्मिक जीवन इतना समृद्ध है, ऐसे सजीव स्रोत-सा बह रहा है।

ख़ास तौर पर मैं यह देखकर ख़ुश होता था कि काव्य-सृजन कोल्या के हृदय को उदार, उदात्त बना रहा था। हमारी मैत्री दिनोंदिन बढ़ रही थी। स्कूल के बाग़ में एक जगह थी, जहां मुझे एकांत में बैठना अच्छा लगता था। अच्छा मौसम होने पर मैं यहां विश्राम करता था, वायलिन बजाता था। संयोगवश कोल्या भी मेरे इस कोने में आ पहुंचा। शायद वह स्वयं भी एकांत खोज रहा था। मुझे देखकर कोल्या सकपका गया, वह

वहां से चला जाना चाहता था, पर मैंने उससे अनुरोध किया कि वह वहीं रह जाए। मैं वायलिन बजा रहा था: ग्रीष्म संध्या के सौंदर्य को संगीत में व्यक्त करने का मन हो रहा था। कोल्या ध्यान से धुन सुन रहा था। फिर मैं वायलिन बजाने में इतना लीन हो गया कि मैंने नहीं देखा कब कोल्या मेरे पास आकर बैठ गया। मैंने उसे वायलिन थमा दी। मैं जो धुन बजा रहा था, कोल्या ने उसे दोहराने की कोशिश की, लेकिन नहीं कर पाया। उसने वायलिन बजाना बंद कर दिया। हम दोनों चुपचाप बैठे डूबते सूरज को निहार रहे थे, संध्या की नीरवता पर कान लगाए थे। शायद इसलिए कि हमें अपने चारों ओर के संसार के सौंदर्य की एक-सी अनुभूति हो रही थी, कोल्या ने अपनी एक कविता सुनाई। कविता यह थी:

हरी-हरी पत्तियों में नीले-नीले फूल,
मंडराता है भौंरा फूलों पर।
शाम ढली, बुलबुल उड़ आई,
छेड़ दिया गीत उसने।
सुबह हुई, बादल गरजे,
फूलों को नहलाया बरखा ने।
बाग़ पर मंडराए काली घटा,
और फूल खिलें जैसे नीले गगन।

उस दिन शाम को हम दोनों काफ़ी देर तक बाग़ में बैठे रहे। कोल्या अक्सर यहां आने लगा, अब वह प्राय: हर बार एक छोटी-सी कविता सुनाता था। देखिए एक और कविता। यह मेरे स्मृति-पटल पर इतनी अच्छी तरह अंकित हो गई थी कि मैंने इसे सुनने के साल भर बाद कापी में लिखा:

छिप गया सूरज टीले पीछे,
लाल हो उठा आसमान:
कल बहेगी तेज़ हवा।
चीखता-चिल्लाता कौवों का झुंड
उड़ गया आसमान में,
बढ़ चला पश्चिम को,
काले जंगल की ओर।

ऊंचे पेड़ पर होती
पत्तियों की सरसराहट...
लो, छा गया सन्नाटा।
दूर कहीं चली जाती
गाड़ी घड़घड़ाती।
काला पड़ गया लाल आसमान,
तपी धरती ने ओढ़ी धूसर चादर।
टिमटिमाया तारा आकाश पर
उतर रही है रात।

मुझे पता चला कि कोल्या अपनी कविताएं कापी में लिखता नहीं है, वे उसे याद रहती हैं। कविताएं उसके हृदय, उसकी स्मृति में जीती थीं। मेरे छात्रों में शायद ही कोई ऐसा रहा हो, जो काग़ज़-पेंसिल लेकर कविता सोचने बैठता हो। कविताएं कापी में लिखने के लिए नहीं रची जाती थीं। बच्चे तो कविता के बिना रह नहीं सकते थे, ऐसे ही जैसे कि वे चित्रकारी के बिना नहीं रह सकते थे।

शूरा ने भी आत्मिक निकटता के क्षणों में मुझे अपना रहस्य बताया। जाड़ों में एक दिन हम स्कीइंग करने जंगल गए हुए थे। लाल सूरज क्षितिज की ओर झुक रहा था। डूबते सूरज की किरणों में चीड़ के तने ऐसे लगते थे, मानो लोहा कूटकर बनाए गए हों। हम जंगल के सिरे पर खड़े इस मनोहर छटा का रसपान कर रहे थे। और तब शूरा ने मुझे कठफोड़वे के बारे में अपनी कविता सुनाई:

चीड़ की छाल तले छिपे हैं हज़ार तार,
जा बैठता है कठफोड़वा चीड़ शिखर पर,
चोंच मारता है ऊपरी तार पर,
मंद-मंद होती है झंकार।
पतला है तार शिखर के पास
और धरती के निकट यह नहीं तार;
यहां तो गूंजता है घंटा,
लाल छाल तले कांसे का घंटा।
फुदकता है कठफोड़वा, खोजता है तार,

चोंच जो मारता, बज उठता है तार...
जंगल भी लगा गाने,
और कठफोड़वा ढूंढ़ता नया तार।

वार्या ने बचपन में दसियों कविताएं रचीं। इस बच्ची का हृदय अत्यंत संवेदनशील था। एक बार मैंने देखा, कैसे वार्या ग्रीष्म संध्या के सौंदर्य से मंत्र-मुग्ध हुई तालाब के किनारे खड़ी थी और पानी पर टहनियां लटकाए बेदमजनूं के पेड़ों और तालाब के दर्पण को, जिसमें नीला आकाश प्रतिबिंबित हो रहा था, निहार रही थी। कुछ दिनों बाद बच्ची ने मुझे इस संध्या के बारे में कविता सुनाई:

नीला गगन, हरे वृक्ष, सफ़ेद मकान—
झिलमिलाते हैं सब जल में।
नीले दर्पण के सामने खड़ी हूं मैं,
और फैला है सामने असीम संसार।
वहां है सूर्यास्त लाल,
और तैरता बादल का टुकड़ा सफ़ेद।
वहां टिमटिमाता है तारा, और लंबी राह पर
उड़ चली है चिड़िया—लेती सूरज से विदाई।
है संगीत अपना इस अनोखी दुनिया में।
सुनो: छुआ किसी ने मोटा तार
    और गा उठा नीला गगनमंडल, गाते हैं वृक्ष
    और मकान गाते हैं।
सांझ ढले, झील के तट पर
    सुनती हूं मैं यह संगीत,
जब सूरज आग लगाता
    दूर कहीं समुद्र के पार।
जब उतावले कबूतर उड़ते जाते
    रैन-बसेरे को,
और दिन भर की थकी हवा जा छिपती है
अंधेरे खड्ड में
विश्राम करने को।

हर साल शरद के आगमन पर बच्चे गर्मियों से विदाई लेना चाहते थे। हम अपने बलूत वृक्ष के पास जाते थे और बीती गर्मियों, सारसों और शरद के गुलाबी दिनों के बारे में कविताएं रचते थे।

सबसे अधिक ध्यान देने योग्य और प्रशंसनीय बात यह थी कि बच्चों की कल्पना में कितने सजीव, ज्वलंत बिंब बनते हैं। मैं यह चेष्टा करता था कि जिन बच्चों के लिए काव्य-प्रेरणा आत्मिक आवश्यकता बन गई है, वे संसार के श्रेष्ठतम कवियों की रचनाएं पढ़ें। हमने इन रचनाओं का एक संग्रह बनाया। इसकी आवश्यकता विशेषतः उन बच्चों के लिए थी, जिनके लिए काव्य-सृजन अभी आत्मा की मांग नहीं बनी थी, जिनमें अभी काव्यमय शब्दों के प्रति अनुराग विकसित करना था। एक बार फिर मैं यह दोहराता हूं कि काव्य-सृजन को किसी असाधारण प्रतिभा का लक्षण नहीं समझना चाहिए। यह वैसी ही नियमबद्ध बात है, जैसे कि चित्रकारी : आख़िर चित्र तो सभी बच्चे बनाते हैं, हर बच्चा इस चरण से गुजरता है। लेकिन काव्य-सृजन केवल तभी बच्चों के आत्मिक जीवन में एक आम बात हो जाता है, जब शिक्षक बच्चों के सम्मुख संसार के और शब्दों के सौंदर्य को उजागर करता है। जिस प्रकार संगीत के बिना संगीत के प्रति प्रेम नहीं विकसित किया जा सकता, उसी प्रकार काव्य-सृजन के प्रति प्रेम सृजन के बिना नहीं जगाया जा सकता।

वह मनुष्य, जिसे पुश्किन और हाइने, शेव्चेन्को और लेस्या उक्राईन्का की कृतियों से अनुराग है, वह मनुष्य, जो अपने चारों ओर के **सौंदर्य के बारे में सुंदर शब्दों में कहना** चाहता है, वह मनुष्य, जिसके लिए सही शब्द की खोज वैसी ही आवश्यकता है, जैसे कि सौंदर्य को निहारने की आवश्यकता, वह मनुष्य, जिसके लिए मानव-सौंदर्य की अवधारणा सर्वप्रथम मानव-गरिमा के प्रति आदर में, लोगों के बीच सर्वाधिक न्यायपूर्ण – कम्युनिस्ट – संबंधों की पुष्टि में ही व्यक्त होती है, ऐसा मनुष्य कभी भी अशिष्ट और मानवद्वेषी नहीं हो सकता।

हमारा सौंदर्य विहार

पहली कक्षा की पढ़ाई ख़त्म होने से कुछ समय पहले, वसंत में हम अपना सौंदर्य विहार बनाने लगे। बच्चे काफ़ी पहले से ही इसका सपना देख रहे

थे। हम इसकी कल्पना एक शांत, एकांत जगह के रूप में करते थे, जहां मानव हाथों से बना सौंदर्य प्रकृति के नैसर्गिक सौंदर्य को निखारेगा। हम भविष्य के सपने देखते थे कि कैसे वर्ष-प्रति-वर्ष हमारी यह जगह अधिकाधिक हरी-भरी होती जाएगी। यहां हम आराम करेंगे और श्रम करेंगे, वसंत का स्वागत करेंगे और गर्मियों से विदाई लेंगे।

स्कूल से थोड़ी दूर झाड़ियों के झुरमुट के पास बच्चों को एक छोटा-सा मैदान मिला, जिसके एक सिरे पर खड्ड था। खड्ड की ढलान पर घनी घास उग रही थी। बारिशों के दिनों में यहां काफ़ी नमी जमा हो जाती थी। हमने यहां उग रहे झाड़-झंखाड़ को उखाड़ा। इसे हरा-भरा मैदान बनाने में लग गए।

"यहां हरियाली का राज होगा। खड्ड की ढलान पर हम बेलें उगा देंगे। उनमें बुलबुलें और पीलक पंछी रहेंगे। यह हमारा सौंदर्य विहार होगा," मैंने बच्चों से कहा।

इस सपने से बच्चों को प्रेरणा मिली। इस झाड़-झंखाड़वाले ज़मीन के टुकड़े को हरा-भरा मैदान बनाने के लिए काफ़ी मेहनत करनी पड़ी। घास की थिगलियां लाकर हमने यहां बिछाईं, घास को पानी दिया। बच्चे बड़ी अधीरता से बारिश का इंतज़ार करते थे, ताकि वह हरी घास को सींचे। जंगल में हमने बेलों की क़लमें काटीं और उन्हें खड्ड की ढलान पर लगाया। ख़ुशक़िस्मती से उस साल गर्मियों में काफ़ी बारिशें हुईं, सो सभी पौधों ने अच्छी तरह जड़ पकड़ ली। जंगल में तरह-तरह के फूलों के पौधों को खोदकर उन्हें मैदान के एक कोने में लगाया। जंगली गुलाब की तीन झाड़ियां लगाईं–उनमें गुलाब की "आंखें" लगाएंगे। मैदान के चारों ओर जंगली हेज़लनट की झाड़ियां लगाईं। बच्चे चाहते थे कि हमारे मैदान में खेतों-मैदानों में उगनेवाले फूल भी उगें। गुलदाउदी के कुछ पौधे तापघर से लाकर यहां लगा दिए–शरद के अंत तक वे यहां खिलेंगे।

वार्या ने सूरजमुखी बोए। मैदान के दूर के कोने में बच्चों ने मुट्ठी भर कूटू के बीज बो दिए। नीना और साशा के पिता जी ने बौनी क़िस्म के सेब के दो पेड़ दिए। वीत्या ने बताया कि उसकी नानी ट्यूलिप उगाती हैं। हमने ट्यूलिप की गांठों समेत कुछ पौधे लगाए। गर्मियों में एक दिन जंगल में बच्चों ने एक बड़ा लिंडन वृक्ष देखा, जिस पर छोटे-छोटे फूल खिल रहे थे। पेड़ की टहनियों में हज़ारों मधुमक्खियां गुंजार कर रही थीं, लगता था जैसा जंगल हार्प के मधुर स्वर से ध्वनित हो रहा हो। बच्चों

का मन हुआ कि हम भी अपने सौंदर्य विहार में लिंडन वृक्ष लगाएं। शरद ऋतु में हम जंगल से लिंडन के कुछ पौधे ले आए और उनकी वीथिका बना दी। "जब पेड़ बड़े हो जाएंगे, तो इनके शिखर मिल जाएंगे और यहां छायादार गलियारा बन जाएगा," बच्चे सपने देखते थे।

शायद ही कोई दूसरी ऐसी इच्छा हो, जिससे श्रम करने की इतनी प्रेरणा मिलती हो, जितनी की सौंदर्य रचना की अभिलाषा से मिलती है। इस अभिलाषा ने हमारे सारे समुदाय को प्रेरित किया। एक भी ऐसा बच्चा नहीं था, जो पौधों की देखभाल में हाथ न बंटाता हो। पहली गर्मियों में प्रकृति ने हमारे श्रम को पुरस्कृत नहीं किया, परंतु बच्चों को अपने सपनों के सच होने का पूरा विश्वास था। अगले साल जब वसंत ऋतु आई, तो हमारा मैदान हरे कालीन सा लगता था, वहां जंगली फूल खिल उठे। तीसरी गर्मियों में यह सचमुच सौंदर्य विहार बन गया, यहां हरियाली और फूलों का राज था। बच्चे अक्सर यहां इकट्ठे होते थे, पढ़ते और कहानियां सुनाते थे।

सभी कक्षाएं अपना सौंदर्य विहार बनाने लगीं और सभी यह कोशिश करते थे कि उनका सौंदर्य विहार दूसरों से भिन्न हो। १९५५ के शरद में सारे स्कूल का सौंदर्य विहार बनाया जाने लगा। स्कूल की इमारत के पास ही हमने गुलाब वाटिका लगाई। जंगली गुलाब की झाड़ियों में कई क़िस्मों के गुलाबों की "आंखें" लगाकर उगाई दसियों कलमें हमने यहां लगाईं। वर्ष-प्रति-वर्ष यह वाटिका अधिक रमणीय होती जा रही है। वसंत और गर्मियों में तो यहां गुलाबों का समुद्र हिलोरें लेता है। सब लोग यहां सौंदर्य का रसपान करने और सौंदर्य-सृजन हेतु श्रम करने आते हैं।

अब यह गुलाब वाटिका सारे स्कूल के संरक्षण में है। जिस कक्षा को सामाजिक दृष्टि से उपयोगी श्रम में सबसे सफल माना जाता है, उसे वाटिका की देखभाल का अधिकार मिलता है। प्रायः यह अधिकार छोटी और बिचली कक्षाओं के छात्रों को दिया जाता है। उन्हें प्रति दिन दस-बीस गुलाब चुनने की इजाज़त होती है। फूलों को बच्चे कक्षाओं में ले जाते हैं, शिक्षकों, माताओं और गांव के सर्वश्रेष्ठ कर्मियों को भेंट करते हैं। फ़सल कटाई के उत्सव पर गुलाबों का बड़ा गुलदस्ता बनाकर समाजवादी प्रतियोगिता के विजेताओं को दिया जाता है।

सौंदर्य-सृजन के लिए किया गया श्रम बाल-हृदयों को उदात्त बनाता है, उन्हें उदासीनता के जंग से बचाता है। धरती को सुंदर बनाते हुए

स्वयं बच्चों की उदारता, उनके हृदय की निर्मलता और सौंदर्य में भी निखार आता है।

जीवन-आदर्श के स्रोत

मैं अपनी कल्पना में हर छात्र को वयस्क व्यक्ति के रूप में देखने का प्रयत्न करता था। मुझे ये विचार व्यथित करते थे: नन्हे-मुन्ने, तुम कैसे नागरिक, कैसे मनुष्य बनोगे? तुम समाज को क्या दोगे, तुम्हारी ख़ुशी किस बात में होगी, क्या चीज़ तुम्हें विमुग्ध करेगी और क्या तुम्हारे मन में आक्रोश जगाएगी, धरती पर तुम कैसा चिह्न छोड़ जाओगे?

शिक्षक और चरित्र-निर्माता के नाते मेरी चेष्टा यह थी कि युग-युग के दौरान मानवजाति ने जिन नैतिक मूल्यों का सृजन किया है, जो उसकी उपलब्धि हैं, उन्हें बाल-हृदयों में उतारा जाए। ये नैतिक मूल्य हैं—मातृभूमि से प्रेम, मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को कभी स्वीकार न करना तथा उच्च आदर्शों—लोगों के सुख और स्वाधीनता—के लिए अपने प्राण तक न्योछावर करने की तत्परता। यहां यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि बच्चों की चेतना में मातृभूमि और उच्च आदर्शों के बारे में शब्द आडंबरपूर्ण और अर्थहीन शब्द न बन जाएं, फीके न पड़ जाएं, बार-बार दोहराए जाने से घिस न जाएं। बेहतर हो कि बच्चे उच्च आदर्शों के बारे में कम ही बोलें, परंतु उनके हृदय की उमंग में, उनकी गतिविधियों में, प्रेम और घृणा में, निष्ठा और असहनशीलता में ये आदर्श जिएं।

बच्चों के मुंह से वे शब्द तो क़तई नहीं कहलवाने चाहिए, जिनका अर्थ अभी वे नहीं समझते हैं। इसका नतीजा यह हो सकता है कि जन-मानस के लिए जो पावन है, वह बच्चों के लिए कोरे शब्द हो जाएगा।

जिस प्रकार माली बड़े ध्यान से छोटे पौधे की जड़ें मज़बूत करता है, जिन पर कई दशकों तक वृक्ष का जीवन निर्भर होगा, उसी प्रकार शिक्षक को भी यह चिंता करनी चाहिए कि उसके छात्रों के मन में मातृभूमि के प्रति अगाध प्रेम, मेहनतकश जनता से गहरी अनुरक्ति और कम्युनिज़्म के उच्च आदर्शों के प्रति निष्ठा जागे। इन गुणों का विकास उसी समय शुरू होता है, जब बच्चा अपने चारों ओर के संसार को देखने, जानने-समझने और उसका मूल्यांकन करने लगता है।

यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण है कि बड़ी पीढ़ियों ने मातृभूमि की मुक्ति

ग्रौर स्वाधीनता के लिए मेहनतकशों के सुखी जीवन के लिए संघर्ष में जो कुछ जीता है, पाया है, जिसका उन्होंने सृजन किया है, वह सब बच्चों के लिए प्राणों से भी प्यारा हो। रोटी का टुकड़ा ग्रौर गेहूं का खेत, जंगल ग्रौर नीला ग्रासमान, सिरहाने बैठी मां की कहानियां ग्रौर लोरियां – बाल-मस्तिष्क में मातृभूमि की यही पहली छवियां बनती हैं। बचपन के सुनहरे दिनों में, जबकि बच्चे शब्दों, बिंबों ग्रौर दूसरों के ग्रात्मिक जीवन के प्रति विशेषत: संवेदनशील होते हैं, तभी बाल-हृदयों को उस सब की ग्रनुभूति करानी चाहिए, जिस पर बड़ी पीढ़ियों को गर्व है, उन्हें यह बताना चाहिए कि बिना किसी शोषण के श्रम करने का सुख पाने के लिए हमारे दादाग्रों-परदादाग्रों ने क्या क़ीमत ग्रदा की है। मैं यह प्रयत्न करता था कि बच्चे निश्चिंत होकर जीवन के सुखों का भोग ही न करते जाएं। ग्रपने इर्द-गिर्द के संसार का ग्रौर स्वयं ग्रपना संज्ञान एकतरफ़ा नहीं होना चाहिए। संसार का ग्रौर स्वयं ग्रपना संज्ञान पाते हुए बच्चों को धीरे-धीरे यह ग्राभास भी होना चाहिए कि वे बड़ी पीढ़ियों द्वारा निर्मित भौतिक ग्रौर ग्रात्मिक संपदाग्रों के लिए उत्तरदायी हैं।

हम खेतों-मैदानों ग्रौर जंगल में, नदी के तट पर ग्रौर ग्रास-पास के गांवों में हमारे इलाक़े के "ग्रतीत की यात्राग्रों" पर जाते थे। इन "यात्राग्रों" के दौरान मैं बच्चों को यह दिखाने की कोशिश करता था कि हमारे जनगण के ग्रात्मिक जीवन में वे कौन-से सूत्र हैं, जो ग्रतीत ग्रौर वर्तमान को जोड़ते हैं। उदाहरणत:, मैं बच्चों से कहता हूं:

"तुम्हारे सामने यह लहलहाता खेत है, गेहूं की बालियां भर रही हैं। इसी खेत में, वहां जंगल के पास गृहयुद्ध के दिनों में सफ़ेद गार्डों ने लाल छापामार को गोली मार दी थी। महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के पहले कठिन वर्ष की गर्मियों में यहां हमारे मुट्ठी भर सैनिकों ग्रौर फ़ासिस्टों की कम्पनी के बीच लड़ाई हुई थी। यहां हमारे वीर शहीद हुए। बच्चो, दूर-दूर तक फैले इन खेतों को देखो। बीच-बीच में जो टीले तुम देख रहे हो, ये ग्रनाम क़ब्रें हैं; धरती ने इन वीरों को ग्रपने ग्रांचल में समेट रखा है। हज़ारों टीले – हज़ारों ग्रनाम क़ब्रें हैं, धरती इन वीरों के रक्त से सिंची हुई है ग्रौर जन-मानस इनके पराक्रमों की स्मृति संजोए हुए है। यदि इन्होंने मातृभूमि की रक्षा के लिए ग्रपने प्राणों की बलि न दी होती, तो ग्राज तुम ग्रपनी मातृभूमि के सौंदर्य का रसपान न कर रहे होते, फ़ासिस्ट तुम्हें ग़ुलाम बना देते।"

बच्चे को अपनी जन्मभूमि की नियति के बारे में सोचने दीजिए, उसके हृदय को इसके भविष्य के लिए उद्विग्न होने दीजिए। उसे यह देखने दीजिए कि अतीत की घटनाएं वर्तमान का स्रोत हैं।

बचपन, जिसे हम खुशियों, खेलकूद और कथा-कहानियों की उम्र मानते हैं – इसी में ही जीवन आदर्श के स्रोत निहित हैं। इसी आयु में ही नागरिक चेतना की नींव पड़ती है। बचपन में बच्चे ने अपने चारों ओर के संसार में क्या देखा है, किन बातों पर वह विस्मय-विमुग्ध हुआ है, किन बातों पर उसका रोष जागा है और उसके आंसू बहे हैं – अपने साथ हुए दुर्व्यवहार के कारण नहीं, बल्कि दूसरों के भाग्य की चिंता के कारण – इसी बात पर यह निर्भर होता है कि हमारा छात्र कैसा नागरिक बनेगा। बच्चों के सामने बहुमुखी संसार होता है, जिसमें वे अंतर्विरोध और जटिलताएं, सौंदर्य और कुरूपता, सुख और दुख देखते हैं। चारों ओर के संसार में जो कुछ भी होता है, अतीत और वर्तमान में, जो कुछ लोगों के जीवन का आधार है, उसे बच्चा भलाई और बुराई में बांटता है। बचपन में ही मानवीयता और नागरिक चेतना की नींव डालने के लिए बच्चे को **भलाई और बुराई की सही दृष्टि** प्रदान करनी चाहिए।

इन शब्दों का अर्थ मैं यह समझता हूं: बच्चे अपने चारों ओर के संसार में जो कुछ भी जानते हैं, सभी सामाजिक परिघटनाएं, अतीत और वर्तमान में लोगों के कार्य – इस सबसे उनके हृदयों में गहरी नैतिक भावनाएं जागनी चाहिए। भलाई और बुराई को समझने की सही दृष्टि से अभिप्राय यह है कि बच्चा जो कुछ भी जानता-समझता है, उस सबको अपने दिल से लगाता है। भलाई से उसके हृदय में हर्षमय उत्तेजना और प्रशंसा का भाव उठता है, वह नैतिक सौंदर्य का अनुसरण करना चाहता है; बुराई देखकर उसका हृदय आक्रोश से भर उठता है, वह उसे सह नहीं सकता, उसमें सच्चाई और न्याय के हेतु संघर्ष करने के लिए आत्मिक शक्ति का संचार होता है। बाल-आत्मा को सत्यों का भंडार मात्र नहीं होना चाहिए। मैं एक बहुत बड़े दोष से बच्चों को बचाने की कोशिश करता था, और वह है – उदासीनता, आवेशहीनता। वह नन्हा इन्सान जिसके हृदय में कोई जोश नहीं है, भविष्य में कूपमंडूक ही होगा। बचपन में ही हर इन्सान के दिल में नागरिक आवेश की तथा उस सब के प्रति असहनशीलता की, जो बुराई है या बुराई में सहायक है चिनगारी जला देनी चाहिए।

बच्चों की चेतना में इस बात की पुष्टि करना कठिन नहीं है कि मनुष्य

द्वारा मनुष्य का उत्पीड़न बहुत बड़ी बुराई है। बच्चे शिक्षक के इस प्रश्न का उत्तर तो सही ही देते हैं कि बुराई किस बात में है। परंतु अगर बच्चे इन्सान द्वारा इन्सान को दास बनाए जाने के ज्वलंत चित्र पर अवाक् नहीं रह गए हैं, उससे स्तंभित नहीं हुए हैं, अगर उनके हृदयों में इस बुराई के दोषियों के प्रति घृणा नहीं जागी है, तो वे सच्चे नागरिक और उच्च आदर्शोंवाले व्यक्ति नहीं बनेंगे।

मानवीय उदासीनता ख़तरनाक और घिनौनी होती है, परंतु बच्चों की उदासीनता तो भयावह होती है। मैं यह चेष्टा करता था कि मेरे हर छात्र का मन दूसरे लोगों के सुख-दुख से बेचैन हो–जो चाहे संसार के दूसरे कोने में रहते हों, या जो १०० वर्ष पहले इस संसार में रहते थे। बेचैनी की यह भावना ही उदासीनता से बचने का विश्वसनीय साधन है, कूपमंडूकता के बीज–हृदय की आवेशहीनता–की दवा है।

मैं बच्चों को ऐसी घटनाओं के बारे में बताता था, पुस्तकें पढ़कर सुनाता था, जिनमें मानव-गरिमा के लिए इन्सान द्वारा इन्सान के शोषण को कभी न सहने का विचार ज्वलंत रूप में व्यक्त होता है। बच्चों ने कई बार पोलिश लेखक सेन्केविच की कहानी 'यान्को गवैया' सुनी। पहली बार यह कहानी सुनकर बच्चे स्तंभित रह गए। जिस ज़मींदार ने असहाय बच्चे की सारी ज़िंदगी ही ख़राब कर डाली थी, वह उन्हें ख़ूनी जल्लाद लगा। गुस्से से उनकी मुट्ठियां भिंच गईं और आंखों से अंगारे बरसने लगे। यान्को गवैया सदा के लिए मेरे छात्रों के आत्मिक जीवन का एक अंश बन गया। बाद में हमने कई बार यह कहानी पढ़ी और कुछ बच्चों को तो वह शब्दशः याद हो गई। बच्चे यान्को गवैये के बारे में बार-बार क्यों सुनना चाहते थे? मेरे ख़याल में इसका कारण यह है कि आक्रोश से आत्मिक शक्तियों का आवेग उठता है। बच्चे यह अनुभव करते हैं कि वे बुराई के अनम्य विरोधी हैं और यह अनुभूति उन्हें अधिक शक्तिशाली बनाती है। बच्चे नैतिक शक्ति की पूर्णता अनुभव करना चाहते हैं, मन ही मन आश्वस्त होना चाहते हैं कि वे सत्य के लिए संघर्ष करने को तत्पर हैं। जिस हृदय में यह भावना विकसित होती है, वह चारों ओर की भलाई और बुराई के प्रति संवेदनशील हो जाता है।

जाने-माने उक्राइनी लेखक आर्खीप तेस्लेन्को की ग़रीब किसानों के बच्चों की मुश्किलों भरी ज़िंदगी की कहानियों की बच्चों के मन पर गहरी छाप पड़ी। मैंने उन्हें एक बहुत ही प्रतिभाशाली किसान लड़की की कहानी

सुनाई, जिसे ज़मींदारों और ज़ारशाही अफ़सरों ने इतना सताया कि उसने तंग आकर आत्म-हत्या कर ली। यह कहानी सुनते हुए बच्चों की आंखों में क्रोध भरा हुआ था।

तीसरी और चौथी में हमने दो बार बिचर-स्टो का उपन्यास 'अंकल टोम की झोंपड़ी' पढ़ा। ग़ुलामों के जीवन का वर्णन सुनकर बच्चों को बहुत दुख हुआ। उनके लिए यह कल्पना करना ही कठिन था कि लोगों को भी जानवरों की तरह ख़रीदा-बेचा जा सकता है। धीरे-धीरे बच्चों की चेतना में इस बात का एक सुस्पष्ट चित्र बनता गया कि आजकल भी भलाई और बुराई के बीच कैसा संघर्ष चल रहा है: पूंजीवादी देशों में करोड़ों लोग अपने लिए नहीं, बल्कि ज़मींदारों और पूंजीपतियों के लिए काम करते हैं, वहां बच्चों से उनका बचपन छिना हुआ है, अपनी मातृभूमि की मुक्ति और स्वाधीनता के लिए संघर्ष करनेवाले सपूतों को फांसी पर चढ़ाया जाता है, उन्हें बेड़ियों में जकड़ा जाता है।

यूनानी जन-नायक नीकोस बेलोयानिस का दुखद अंत बच्चों के स्मृति-पटल पर सदा के लिए अंकित हो गया। यूनान पर फ़ासिस्ट क़ब्ज़े के दिनों में बेलोयानिस ने क़ब्ज़ावरों के ख़िलाफ़ संघर्ष किया; और जब देश को हिटलरी दरिंदों से मुक्त करा लिया गया, तब बुर्जुआ अदालत ने इस देशभक्त पर देशद्रोह का आरोप लगाकर उसे फांसी की सज़ा दे दी। कार्नेशियन का लाल फूल हाथ में लेकर नीकोस बेलोयानिस ने मृत्यु का आलिंगन किया और उसी दिन उसके बेटे का जन्म हुआ। उसकी पत्नी को भी मृत्यु-दंड सुनाया गया था और वह तब जेल में थी। मेरे छात्र जेल में जन्मे और वहीं रह रहे बच्चे की दुर्दशा के बारे में सुनकर विचलित हो उठे, वे मुझसे पूछने लगे: हम कैसे उसकी सहायता करें। उदात्त भावनाएं बच्चों को कुछ करने की प्रेरणा देती हैं। छात्रों ने छोटे नीकोस की माता के नाम पत्र लिखा और एक उपहार तैयार किया – सफ़ेद रेशम पर कढ़ा कार्नेशियन का लाल फूल। पत्र और उपहार उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय रेड-क्रास के ज़रिए यूनान भेजा। और फिर हर साल वे यूनानी जन-नायक की पत्नी को पत्र और उसके बेटे को जन्मदिन पर अपना उपहार – सफ़ेद रेशम पर कढ़ा गुलाब, लाला या लिलक का फूल भेजने लगे। पहली नज़र में साधारण-सा लगनेवाला यह काम बाल-हृदयों में गहरी छाप छोड़ता है, क्योंकि इस तरह वे बुराई की निंदा करते हैं, अन्याय से जूझते हैं।

बच्चों को सामाजिक जीवन से परिचित कराते हुए मैं उनके मन में

यह बात बिठाने की कोशिश करता था कि मानव-इतिहास के सबसे अंध-कारमय कालों में भी, जब लगता था कि चारों ओर बुराई का राज है और जब लाखों-करोड़ों लोग उत्पीड़ित होते थे, उन कालों में भी ऐसे लोग हुए हैं, जिन्होंने अन्याय से टक्कर ली। इन लोगों के नाम, उनका जीवन और उनके पराक्रम युवा पीढ़ियों के लिए ध्रुव तारा रहे हैं। मैं यह चेष्टा करता था कि मानवजाति के सर्वश्रेष्ठ सपूतों – जिन्होंने अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए, शोषण से छुटकारा दिलाने और मानव-गरिमा की पुष्टि करने के हेतु अपने प्राणों की आहुति दी – उनकी धीरता, उनके दृढ़ संकल्प और साहस तथा अपनी धारणाओं के प्रति उनकी निष्ठा बच्चों के मन में प्रशंसा का भाव जगाए।

मेरा प्रयत्न यह था कि मानवजाति ने अतीत में जिन नैतिक मूल्यों का सृजन किया है, जो उसकी उपलब्धि हैं और जो अब समाजवादी समाज में निखरे हैं, वे हर बच्चे की आत्मिक संपदा बन जाएं, बाल-हृदयों को उद्विग्न करें, उन्हें संसार भर में सत्य की विजय के लिए सक्रिय कार्य करने की प्रेरणा दें। अन्तोनियो ग्राम्शी ने कहा था : सत्य सदा क्रांतिकारी होता है। मैं यह चेष्टा करता था कि बिना किसी शब्दाडंबर के बच्चों को नैतिक सत्यों से, उनके सारे सौंदर्य सहित, परिचित कराऊं। मानवजाति के नैतिक मूल्यों का सौंदर्य केवल तभी बच्चों की आत्मिक संपदा हो जाता है, जबकि हृदय को उद्विग्न करनेवाले ज्वलंत उदाहरणों में बच्चों के सम्मुख उसका क्रांतिकारी सार उजागर हुआ हो। एक लैटिन कहावत है : शिक्षा शब्दों से मिलती है, परंतु प्रेरणा उदाहरणों से ही मिलती है। मानवजाति के सुख के लिए संघर्ष को अर्पित जीवन का उदाहरण वह प्रकाश है, जो बच्चे के जीवन को प्रदीप्त करता है। किंतु उदाहरण भी केवल तभी जीना सिखाते हैं, जबकि वे मानवीय, प्रगतिशील और क्रांति-कारी विचारों का मूर्तरूप हों। जो कोई भी विचारों से दूर हटता है, वह अंततः मात्र अनुभूतियों का ही बंदी होकर रह जाता है, महान जर्मन कवि गेटे ने कहा था।

मैंने बच्चों को ऐसे कई लोगों के जीवन के ज्वलंत उदाहरण दिए, जिनके नाम अनेक पीढ़ियों के लिए ध्रुव तारे के समान रहे हैं। निस्संदेह बच्चों को सब कुछ नहीं बताया जा सकता। नन्हे बच्चे पर चित्रों और बिंबों की बौछार नहीं की जानी चाहिए, उसके हृदय को निरंतर झकझोरा नहीं जाना चाहिए। बच्चे को थोड़ी-सी ही बात बताइए, लेकिन इस तरह

कि वह इसमें नैतिक मूल्यों का सौंदर्य देख ले। बच्चों के मनोमस्तिष्क में विचारों और भावनाओं का जो बवंडर उठा है, उन्हें उस पर सोचने दीजिए, बच्चों के मन में बात उतर जाने दीजिए। चार बरसों के दौरान मैंने अपने छात्रों को विभिन्न युगों में मानवजाति के उच्च आदर्शों के लिए संघर्ष करनेवालों के पराक्रमों की कहानियां सुनाईं। स्पार्टकस और कम्पा-नेल्ला, इवान सुसानिन और स्तेपान ख़ल्तूरिन, सोफ़िया पेरोव्स्काया और निकोलाई किबाल्चिच, तरास शेव्चेन्को, टामस म्यूनज़र, ख्रीस्तो बोतेव और यानुश कोर्चाक जैसे महापुरुषों के उदाहरण मैंने दिये। महान लेनिन और कम्युनिस्ट वीरों–इवान बाबुश्किन, सेर्गेई लाज़ो, कामो, याकोव स्वेर्दलोव, फ़ेलिक्स द्ज़ेर्झीन्स्की, जूलियस फ़ूचिक, ऐर्नस्ट थेल्मान के बारे में, महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के वीरों निकोलाई गस्तेल्लो और अलेक्सान्द्र मत्रोसोव के बारे में, मध्य युग के महान वैज्ञानिक और सत्य-सेनानी जोर्दानो ब्रूनो तथा महान यात्री और मानव-सेवक मिक्लूख़ो-मक्लाई के बारे में मैंने बच्चों को बताया।

बाल-आत्मा पर ऐसे उदाहरणों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है, जिनमें उदात्त विचार मनुष्य के मनोवेग, उसके कार्यों और पराक्रमों में मूर्तित होता है। बच्चों को यह समझाने की ज़रूरत नहीं होती कि मनुष्य के किसी कार्य का क्या अर्थ समझना चाहिए; जब विचार और बिंब एकीकार होते हैं, तो बच्चा ख़ूब अच्छी तरह से विचार को समझता है। मैंने अपने छात्रों को जिन वीर पुरुषों के बारे में बताया, उन्होंने अपनी सारी शक्ति, सारा जीवन लोगों के सुख के लिए संघर्ष में लगाया था। यह उनके चरित्र का विशेष लक्षण था, जो नैतिक सौंदर्य के सार को व्यक्त करता है। यह लक्षण ही बाल-हृदयों में प्रशंसा भाव जगाता है, उन्हें दूसरों के बारे में सोचने को प्रेरित करता है। मानवजाति की सेवा में ही जिन लोगों ने परम सुख पाया है, वे बच्चों के लिए नैतिक आदर्श होते हैं।

चहुंमुखी नैतिक शिक्षा की मैं इस बात के बिना कल्पना भी नहीं कर सकता कि बच्चा आधी रात तक महान कार्यों के बारे में पुस्तक न पढ़ता रहे, कि उसका हृदय हर्षोत्साह से स्पंदित न होने लगे। नैतिक आदर्श तभी बनता है, जब इन्सान मानो अपने मन में झांककर देखता है, अपनी तुल-ना उससे करता है, जो उसके लिए नैतिक सौंदर्य–धारणाओं के प्रति निष्ठा, साहस, धीरता और कठिनाइयों के सम्मुख अडिगता–का उदाहरण हो।

शिक्षक को काफ़ी सोच-समझकर इस तरह कहानियां चुननी चाहिए, ताकि उनकी सहायता से बच्चे नैतिक ग्रादर्श के स्रोतों को देख पाएं। यहां वे तथ्य ग्रौर घटनाएं ही सबसे महत्वपूर्ण हैं, जिन्हें लेकर वैचारिक ग्रंतर्य बनता है। जो लोग युवा पीढ़ी के लिए ग्रादर्श हैं, उनके जीवन में यह दिखाना चाहिए कि किस प्रकार उनकी व्यक्तिगत नियति मानवजाति की नियति से जुड़ी रही है।

व्लादीमिर इल्यीच लेनिन के जीवन ग्रौर संघर्ष के बारे में बच्चों को बताते हुए मैं उन तथ्यों पर विशेषतः विस्तारपूर्वक प्रकाश डालता था, जिनसे यह पता चलता है कि लेनिन को मेहनतकश जनता के जीवन की कितनी चिंता थी। महान नेता जो कुछ भी करते थे, उसका लक्ष्य जनता का सुख ही था। गृहयुद्ध ग्रौर ग्रार्थिक तबाही के कठिन दिनों में भी लेनिन ग्रनाथ बच्चों का कितना ध्यान रखते थे, यह सुनकर बच्चों का हृदय हर्षोद्वेग से भरपूर हो उठता था। मैं यह प्रयत्न करता था कि लेनिन की यह मानवीयता बाल-हृदयों में महान नैतिक मूल्य के रूप में स्थान बना ले, कि वे नैतिक सौंदर्य ग्रौर सत्य के इस शिखर से ग्रपने चारों ग्रोर के संसार को तथा स्वयं ग्रपने ग्राप को देख लें।

पोलैंड के जन-नायक यानुश कोर्चाक के बारे में कहानियों की बाल-हृदय पर गहरी छाप पड़ी। यानुश कोर्चाक को ग्रपने बच्चों से इतना ग्रनुराग था कि उन्होंने उनके साथ मरना स्वीकार किया – यह सुनकर बाल-हृदयों का एक-एक तार झंकृत हो उठा। वह चाहते, तो ग्रपनी जान बचा सकते थे, लेकिन जब फ़ासिस्ट जल्लाद हज़ारों निर्दोष बच्चों को मौत के घाट उतार रहे थे, तो ऐसा करना उनके लिए ग्रपना ईमान बेचने के समान था। यानुश कोर्चाक बच्चों के लिए सच्ची मानवीयता के प्रतीक बन गए।

'नरोद्नाया वोल्या' (जन-संकल्प) संगठन के वीरों – स्तेपान ख़ल्तूरिन, सोफ़िया पेरोव्स्काया, निकोलाई किबाल्चिच के बारे में कहानियां सुनकर बच्चों के मन उनके प्रति श्रद्धा से भर उठे। वीर कम्युनिस्टों जूलियस फ़ूचिक ग्रौर कामो की धीरता, साहस ग्रौर ग्रपनी धारणाग्रों के प्रति निष्ठा की कहानियां सुनते हुए बच्चों के मन में मनुष्य पर गर्व की भावना जागती थी, वे कहते थे: "हमें भी ऐसा ही बनना चाहिए। ये सच्चे वीर हैं।"

वीर पायोनियरों वाल्या कोतिक, वीत्या कोरोब्कोव, ल्योन्या गोलिकोव,

वोलोद्या दुबीनिन, वास्या शिश्कोव्स्की के पराक्रमों के बारे में मैंने बच्चों को बहुत कुछ बताया। इन किशोरों ने अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति दी थी। मेरी कोशिश यह थी कि कम्युनिस्ट नैतिकता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण – समाजवाद, शांति, स्वाधीनता और जनवाद के शत्रुओं के प्रति अनम्य रुख़, विचारधारात्मक दृढ़ता और साहस – बच्चों के सम्मुख उजागर होने लगे। बच्चों में अपनी धारणाओं की अपने आत्म-सम्मान की भांति रक्षा करने की क्षमता विकसित करना चरित्र-निर्माण का एक महत्वपूर्ण कार्यभार है और इसे केवल तभी पूरा किया जा सकता है, जबकि छोटी उम्र में ही इन्सान के मन में भलाई और बुराई का ज्वलंत चित्र बनने लगे। परंतु चित्र बनना ही काफ़ी नहीं। व्यक्तिगत भावनात्मक मूल्यांकन भी अनिवार्य है। नैतिक परिघटनाओं को स्पष्टतः दो वर्गों में विभाजित होना चाहिए, एक वे बातें जो बच्चे को जान से भी प्यारी हैं, दूसरी वे, जिन्हें वह कभी भी सहन करने को तैयार नहीं होगा। छोटी उम्र में नैतिक शिक्षा का अर्थ है – नैतिक सौंदर्य से प्रेरणा दिलाना, जिससे लोगों को ख़ुशियां प्रदान करने, अपनी मानव-गरिमा की रक्षा करने तथा कम्युनिज़्म के नैतिक सिद्धांतों की रक्षा की अभिलाषा जागती है।

नैतिक आदर्शों के स्रोत छोटी उम्र में इन्सान के समीप ही होते हैं। हम शिक्षकों को चाहिए कि प्रत्येक छात्र को नैतिक पराक्रम के सौंदर्य से परिचित कराएं, उसके मन में कम्युनिस्ट धारणाओं के प्रति निष्ठा बिठाएं, ताकि प्राथमिक विद्यालय के छात्र भी यह समझने लगें कि वे उसका, जो शाश्वत है, अनश्वर है, अर्थात मेहनतकश जनगण का, एक अंश हैं।

कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति प्रेम

हमारे स्कूलों का एक सबसे बड़ा कार्यभार है बच्चों में हमारे देश की कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति प्रेम, उसके आदर्शों में निष्ठा और कम्युनिज़्म के विचारों के लिए संघर्ष करने की तत्परता विकसित करना। "**कम्युनिस्ट**" शब्द बच्चे प्रायः सुनते हैं। मेरा प्रयत्न यह था कि बच्चों की चेतना में यह शब्द और अवधारणा उन लोगों के नामों से जुड़े हों, जिन्होंने हमारे जनगण को शोषकों से मुक्ति दिलाने, समाजवाद की स्थापना करने, फ़ा-

सिज़्म पर विजय पाने तथा समाज का कम्युनिस्ट पुनर्गठन करने के लिए तन-मन से संघर्ष किया। मैंने यह लक्ष्य रखा था कि हमारे बच्चे, जो अपने पिताओं और दादाओं के कम्युनिस्ट आदर्शों के उत्तराधिकारी हैं, उन पर गर्व करें, अपने देश के सच्चे स्वामी तथा कम्युनिज़्म के निर्माता हों।

कम्युनिस्टों के बारे में वार्ताओं को ही मैं सर्वप्रथम इस लक्ष्य की प्राप्ति का साधन समझता था। मैं बच्चों को हमारे देश के विलक्षण कम्युनिस्टों के बारे में बताता था। ज़ारशाही के विरुद्ध और समाजवादी क्रांति के लिए संघर्ष में जिन कम्युनिस्टों ने अपना सारा जीवन लगाया, उनके बारे में सुनते हुए बच्चे इस बात के क़ायल हुए कि कम्युनिस्ट के लिए जनता के सुख हेतु संघर्ष, जनता के प्रति निष्ठा ही परम सुख है।

हमारे "ख़ुशियों के स्कूल" के पहले दिनों से लेकर उस दिन तक जब मेरे छात्रों ने माध्यमिक विद्यालय की शिक्षा समाप्त करके स्वावलंबी जीवन मार्ग पर पदार्पण किया या उच्च शिक्षा पाने गए, मैं उनके लिए "लेनिनीय पाठ" आयोजित करता रहा। पहले तो मैंने उन्हें लेनिन के बचपन और किशोरावस्था के बारे में ज्वलंत कहानियां सुनाईं। धीरे-धीरे इन "पाठों" में मैं इतिहास, कम्युनिस्ट विचारधारा तथा जनगण के उज्ज्वल भविष्य के लिए हमारी पार्टी के संघर्ष के प्रश्नों पर प्रकाश डालने लगा। बच्चों के मन में यह विश्वास बैठ गया कि देश के सर्वश्रेष्ठ सपूत और सुपुत्रियां ही कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य हैं।

कम्युनिस्टों के साथ हमारी भेंटें शुरू हुईं। कम्युनिस्ट अपने जीवन और संघर्ष के बारे में जो बताते थे, वह बच्चों के लिए कम्युनिस्ट पार्टी के इतिहास का एक अंश था। बच्चे वयोवृद्ध कम्युनिस्टों बेस्कोरोवाइनी, राद्ज़ीविल्ल और गाइचूक के साथ अपनी भेंटें कभी नहीं भूलेंगे। बच्चे यह सुनकर बहुत प्रभावित हुए थे कि उनके गांव के लोगों ने सोवियत सत्ता की स्थापना के लिए, मज़दूरों और किसानों की विजय के लिए अपना ख़ून बहाया था। बच्चों को यह यक़ीन हो गया कि कम्युनिस्ट दृढ़ धारणाओं-वाले लोग होते हैं। और साथ ही सीधे-सादे श्रमिक भी, जो अपनी ढलती उम्र में भी कम्युनिज़्म के निर्माण में अपनी सारी शक्ति और सारा ज्ञान लगाते हैं। राद्ज़ीविल्ल फ़ार्म के सर्वश्रेष्ठ सब्ज़ी-उत्पादक हैं और बेस्कोरोवाइनी एक सबसे अच्छे कम्बाइन-चालक हैं। उन्होंने बच्चों को यह बताया कि किस तरह गांव में सामूहिक फ़ार्म बनाया गया था, किस तरह कम्यु-

निस्टों ने पहला ट्रैक्टर पाकर उसे चलाना सीखा और फिर पहली जुताई की।

बेस्कोरोवाइनी के साथ हमारी कई वार्ताएं हुईं। उन्होंने बच्चों को यह बताया कि किस प्रकार पार्टी सोवियत जनता के उज्ज्वल भविष्य के लिए काम करती है। उन्होंने यह भी बताया कि फ़ार्म के पार्टी संगठन के सम्मुख क्या कार्यभार हैं। बच्चों ने यह जाना कि फ़ार्म के कम्युनिस्टों को फ़सल बढ़ाने की चिंता है और इस बात की कि डेरी फ़ार्म से अधिक दूध, मक्खन, गोश्त मिले।

महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध को समर्पित "लेनिनीय पाठ" विशेषतः दिलचस्प थे। बच्चे हमारे गांव के बहुत से लोगों से मिले, जो हमारी मातृभूमि को फ़ासिस्टों से मुक्त कराने के लिए जान हथेली पर रखकर लड़े थे। बच्चों के मन में यह विश्वास गहरा पैठता गया कि लेनिन ने जो महान कार्य आरंभ किया था, जिस सत्य के लिए संघर्ष को उन्होंने अपना जीवन समर्पित किया था, वह आज भी सोवियत लोगों के, कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यों और संघर्ष में जीवित है।

दूसरों के लिए व्यग्रता से भरपूर जीवन

हमारा जीवन-अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि अगर बच्चा जीवन की ख़ुशियों का केवल "उपभोग" ही करता है, इन ख़ुशियों को अपने श्रम से, अपनी आत्मिक शक्ति पर जोर लगाकर नहीं पाता, तो उसका हृदय निष्ठुर और उदासीन हो सकता है।

लोगों के लिए भलाई करना ऐसी प्रबल नैतिक शक्ति है, जो बाल-हृदयों को उदात्त बनाती है। सोवियत स्कूलों का एक कार्यभार बच्चे को अपने हृदय से यह अनुभव करना सिखाना है कि उसके चारों ओर ऐसे लोग हैं, जिन्हें उसकी सहायता, उसकी सहृदयता, उसके स्नेह और चिंता की आवश्यकता है। सबसे बड़ी बात यह है कि बच्चों का अंतःकरण उन्हें ऐसे लोगों के पास से न गुजरने दे, कि बच्चा दूसरों की नजरों में अच्छा बनने के लिए इन्सान का भला न करे, बल्कि निस्स्वार्थ भावना से ऐसा करे।

बच्चा जब ऐसे लोगों की भावनाओं को समझने लगता है, जिनके मन पर दुख का बोझ पड़ा हो, तभी उसका अंतःकरण जागता है, वह दूसरों का भला करने को तत्पर होता है। मनुष्य के आत्मिक जगत के प्रति संवेदनशीलता, पराये दुख को बांटने की क्षमता से ही सर्वोच्च मानवीय आनंद प्राप्त होता है, जिसके बिना नैतिक सौंदर्य नहीं हो सकता। "ख़ुशियों के स्कूल" में ही मेरे छात्रों ने नैतिक सौंदर्य के शिखर की ओर पहले क़दम बढ़ाए: उन्होंने मानवीयता के पहले पाठ पढ़े, दैनंदिन जीवन में जिन लोगों से उनका मिलना होता था, उनकी आंखों में वे दुख, उदासी, दर्द, बेचैनी देखना सीखने लगे। यह क्षमता वयस्क मनुष्य के आत्मिक जीवन का एक अभिन्न अंश केवल तभी हो पाती है, जबकि बचपन में उसका एक-एक दिन लोगों के लिए व्यग्रता से भरपूर रहा हो।

मैं सदा अपने छात्रों को यह सिखाता था कि वे दूसरों की भावनाओं को अनुभव करें, यह चेष्टा करता था कि बच्चे स्वयं को उस व्यक्ति के स्थान पर रखकर देखें, जिसे सहायता की, सहानुभूति की ज़रूरत है। दूसरे इन्सान का दुख-दर्द बच्चे का दुख-दर्द हो जाना चाहिए, उसे इस सोच में पड़ना चाहिए कि वह ज़रूरतमंद आदमी की मदद कैसे करे। मानवीयता के विकास में दो लोगों का आत्मिक संपर्क, उनके व्यक्तिगत परस्पर संबंध बहुत अधिक महत्व रखते हैं। मानवजाति से प्रेम अपने पड़ोसी से प्रेम करने की अपेक्षा बहुत आसान है। ठोस मानव व्यक्तित्व को जाने बिना लोगों को नहीं जाना जा सकता। अगर बच्चा अपने मित्र की पीड़ा से कातर आंखों में गहरा दुख नहीं देख सकता, तो मानव दुख कभी उसके हृदय को स्पर्श नहीं करेगा। जिस बच्चे ने मानव जीवन के सभी पहलुओं – सुख और दुख दोनों को नहीं देखा है, नहीं जाना है, वह कभी भी संवेदनशील नहीं होगा, उसके मन में दूसरों के लिए सहानुभूति नहीं जागेगी।

दुख देखने के लिए हमें दूर जाने की ज़रूरत नहीं थी, हमारी क्लास में ही इसकी कमी न थी। बच्चों की हंसी गूंजती थी, बच्चे खेलते-कूदते, चुस्त नज़र आते थे, लेकिन कुछ बच्चों की आंखों में विषाद भरा होता था। वाल्या जब तीसरी कक्षा में थी, तो उसके पिता की हालत बहुत बिगड़ गई। बच्ची गुम-सुम रहने लगी। नीना और साशा की मां सख़्त बीमार थीं, वे अक्सर गृहस्थी के काम में पिता का हाथ बंटाने घर पर रह जाती थीं। साश्को की नानी बीमार हो गईं। कई बार उन्हें अस्पताल में

रहना पड़ा, कभी हफ़्ते, दो हफ़्ते और कभी महीने भर। लड़के के लिए यह बड़ा भारी दुख था। नानी के बीमार होने पर साश्को चाची की देख-भाल में रहता था। वह उसका बहुत ख़याल रखती थी, लेकिन फिर भी बच्चे को नानी से जुदाई से बड़ा कष्ट पहुंचता था। शरद के एक ठंडे दिन वह चाची को बताए बिना नानी से मिलने अस्पताल चल दिया। रास्ते में बारिश में भीग गया, उसे ठंड लग गई। कुछ दिन बाद साश्को को भी उसी अस्पताल में भरती कर दिया गया, जहां उसकी नानी थीं।

वोलोद्या के परिवार में दुर्घटना हुई। उसकी मां राजगीर थीं। वह रोज़ाना बस में काम पर जाती थीं। वसंत में एक दिन सुबह सड़क पर बर्फ़ जम गई, बस की ट्रक से टक्कर हो गई। वोलोद्या की मां को सख़्त चोट लगी। डाक्टरों का कहना था कि वह सारी उम्र के लिए अपाहिज हो जाएंगी। इसी बीच वोलोद्या के दादा बीमार पड़ गए और चल बसे। दादा ने वोलोद्या को जीवन में सही रास्ते पर चलाने के लिए बहुत कुछ किया था।

कोल्या के परिवार पर एक और ही तरह की मुसीबत आई। उसके पिता को चोरी की चीज़ें छिपाकर रखने के अपराध में दो साल की क़ैद की सज़ा दी गई। परिवार का नैतिक वातावरण साफ़ हो गया, लेकिन इस घटना ने बालक को तो झकझोरा ही था।

रोज़ाना बच्चों से मिलने पर मैं बड़े ग़ौर से उनके चेहरों को देखता था। बच्चे की दुख भरी आंखें देखना—यह चरित्र-निर्माण की जटिल प्रक्रिया की राह में सबसे अधिक कठिन बात थी। अगर बाल-हृदय में दुख बैठा है, तो बच्चा नाममात्र को ही कक्षा में उपस्थित होता है। वह कसकर खिंचे तार के समान होता है: असावधानी से किया गया स्पर्श उसे पीड़ा पहुंचा सकता है। हर बच्चा अपने ही ढंग से दुखी होता है: एक को दुला-रो, तो उसे राहत मिलती है, दूसरे को लाड़-प्यार से और अधिक कष्ट होता है। शिक्षक का कौशल ऐसे मामलों में यह साधारण मानवीय बुद्धिमत्ता याद रखने में ही निहित है: बच्चे की भावनाओं पर रहम करो, छात्र को और अधिक तकलीफ़ मत पहुंचाओ, उसके दिल के ज़ख़्मों को मत कुरेदो। दुख का मारा छात्र वैसे नहीं पढ़ सकता, जैसे वह पहले पढ़ता था: उसके चिंतन पर दुख की छाप पड़ती है। शिक्षक के लिए सबसे बड़ी बात यह है कि वह बच्चे के दुख-दर्द को, उसके शोक, उसके कष्टों को

देखें। बाल-आत्मा को देखना और अनुभव करना – यही शिक्षक की बुद्धिमत्ता है। शिक्षक का बच्चे के दुख के प्रति क्या रवैया है, किस हद तक वह बाल-आत्मा को समझ सकता है और अनुभव कर सकता है – इसी में शिक्षक के कौशल का आधार निहित है।

बच्चा जब अपने दुख से पीड़ित हो, तो उससे कक्षा में सवाल नहीं पूछा जा सकता, उससे यह मांग नहीं की जा सकती कि वह टिककर, लगन से पढ़े। उससे यह नहीं पूछना चाहिए कि क्या हुआ – बच्चे के लिए यह बताना आसान नहीं होता। अगर बच्चों को शिक्षक पर भरोसा है, अगर वह उनका मित्र है, तो बच्चा स्वयं ही, जो बात बताई जा सकती है, वह बता देगा। अगर बच्चा चुप है, तो उसके दुखी हृदय को मत छेड़िए।... चरित्र-निर्माण में सबसे कठिन काम है – बच्चों में अनुभव करने की शक्ति जगाना। बच्चा जितना बड़ा होता है, शिक्षक के लिए मानव-हृदय के सूक्ष्मतम तारों को स्पर्श करना उतना ही कठिन होता है; इन तारों की ध्वनियों से ही उदात्त भावनाएं बनती हैं।

बच्चे को अनुभव करना सिखाने, दूसरों की आंखों में उनकी आत्मा की झलक देखना सिखाने के लिए शिक्षक को बच्चों की भावनाओं, सर्वप्रथम दुखद भावनाओं पर दया करनी आनी चाहिए। बड़ों और बच्चों के बीच भावनात्मक-नैतिक संबंधों में सबसे भोंडी बात तब होती है, जब बड़े बच्चों को यह कह कर कि – अरे, तुम अभी छोटे हो, तुम्हें काहे की परवाह है, उनके मन पर छाए दुखद भावनाओं के बादलों को छांटने की कोशिश करते हैं।

सर्वप्रथम बाल-हृदय की हलचल को समझना चाहिए। यह समझ किन्हीं विशेष विधियों से नहीं हासिल की जा सकती। इस समझ का स्रोत तो शिक्षक का उच्च भावनात्मक-नैतिक स्तर ही है। बच्चों के दुख का कारण चाहे कुछ भी हो, इस दुख का आभास सदा बच्चे की आंखों से हो जाता है, जिनमें गहरा विषाद और अकेलापन छाया होता है। यह देखकर तो आदमी हक्का-बक्का रह जाता है कि बच्चों की आंखों का भाव क़तई बाल-सुलभ नहीं होता। बच्चा जब अपने दुख में डूबा होता है, तो साथियों के हंसी-मज़ाक़ और खेलकूद का उससे कोई वास्ता नहीं होता, ऐसी कोई बात नहीं होती, जो दुखद विचारों की ओर से उसका ध्यान हटा सके। नन्हे इन्सान की सबसे अधिक सद्भावनापूर्ण सहायता यह हो सकती है कि उसके दिल की गहराइयों में जो बात है उसे छेड़े बिना ही,

उसका दुख बांटा जाए। भोंडा हस्तक्षेप बच्चे के मन में कटुता ही जगाता है और ऐसे परामर्शों को कि हिम्मत मत हारो, मन को क़ाबू में रखो, निराश मत होम्रो, यदि इनके पीछे सच्ची मानवीय भावनाएं नहीं हैं, बच्चा निरर्थक बातें ही समझता है।

बच्चों को अनुभव करना सिखाने का अर्थ सर्वप्रथम यह है कि उन्हें अपने भावनात्मक-नैतिक स्तर तक ऊपर उठाया जाए। मनुष्य की आत्मा की स्थिति की गहरी समझ के बिना भावनाओं का उच्च स्तर नहीं बन सकता। और यह समझ बच्चे को तभी आती है, जबकि वह विचारों में स्वयं को उस व्यक्ति के स्थान पर रखकर देखता है, जो किसी बात पर परेशान है या दुखी है।

जब साश्को की नानी बीमार पड़ीं, तो वह उदास और खोया-खोया-सा रहने लगा, साथ ही उसकी स्थिति कसकर तने तार जैसी थी – कुछ पूछते ही वह कांप उठता, मानो किसी ने उसके घाव को छेड़ दिया हो। एक दिन मैंने देखा कि उसकी बड़ी-बड़ी काली आंखें भर आईं। बच्चों ने मुझसे कहा: "साश्को रो रहा है"। यह उम्मीद करना भोलापन है कि बच्चे को इसीलिए अपने साथी से या बड़ों से सह-अनुभूति हो जाती है कि वह बच्चा है। सह-अनुभूति करना भी वैसे ही बड़े ध्यान से, सोच-समझकर सिखाना चाहिए, जैसे कि बच्चे को पहले क़दम भरना सिखाया जाता है। सह-अनुभूति संज्ञान का, हृदय और मस्तिष्क से संज्ञान का एक सबसे सूक्ष्म क्षेत्र है। अनुभवी शिक्षक के पास सह-अनुभूति की शिक्षा देने का सशक्त साधन होना चाहिए, और यह साधन है – शब्द।

मैंने ऐसा क्षण चुना, जब साश्को कक्षा में नहीं था और बच्चों से कहा: "अगर कोई आदमी दुखी हो, तो इस पर हैरान नहीं होना चाहिए। साश्को आजकल बहुत दुखी है। मां की उसे याद नहीं, नानी बीमार पड़ी हैं। शायद उन्हें अस्पताल ले जाया जाए – तब साश्को किसके साथ रहेगा? अपने को उसकी जगह रखकर देखो, तब तुम समझ जाओगे कि दुख क्या होता है। याद है, हमने सड़क के पास एक बूढ़े आदमी को देखा था? उसकी आंखों में कितनी गहरी व्यथा थी? तब तुमने यह महसूस किया था कि वह बूढ़ा दुखी है। तो तुम अपने साथी की आंखों में दुख की छाया क्यों नहीं देख रहे हो? तुमने ख़याल नहीं किया कि इधर कई दिनों से साश्को गुम-सुम रहता है। बैठा तो वह क्लास में होता है और विचार उसके नानी के पास होते हैं। अगर वह कुछ दिन तक घर पर रहेगा,

तो उससे यह पूछने मत दौड़ना कि वह स्कूल क्यों नहीं आया। आदमी के लिए अपने दुख की बात करना आसान नहीं होता। अगर तुम देखो कि किसी को कोई दुख है, तकलीफ़ है, तो कौतूहल मत दिखाओ, बल्कि उसकी मदद करो। किसी के दिल के घावों को कुरेदना नहीं चाहिए। अगर तुम जानते हो कि तुम्हारे किसी साथी पर कोई मुसीबत आ पड़ी है, तो सब कुछ ऐसे करो कि तुम्हारा एक भी शब्द, एक भी हरकत उसका दुख न बढ़ाए। और यह भी सोचो कि तुम साश्को और उसकी नानी की मदद कैसे कर सकते हो। पर तुम्हारी मदद डींग भरी नहीं होनी चाहिए: देखो जी, हम कितने अच्छे हैं, हम अपने साथी की मदद कर रहे हैं। अपनी भलाई का दिखावा करना तो बिल्कुल ही बेकार बात है। अगर तुम्हारा मन यह नहीं कहता कि तुम्हें अपने दोस्त की मदद करनी चाहिए, तो दिखावे की भलाई, तुम्हें भला और सहृदय नहीं बना देगी।"

साश्को क्लास में आ गया, मैंने उसके बारे में एक शब्द भी और नहीं कहा, बच्चे भी यह समझ गए कि मैंने क्यों बात पलट दी है। आधी छुट्टी में बच्चे आपस में सलाह-मशविरा करने लगे कि वे कैसे साश्को और उसकी नानी की मदद करें। बच्चे अपने साथी के लिए सेब और मछली लाए—यह सब उन्होंने सच्चे मन से किया। जब नानी अस्पताल चली गई और साश्को चाची के पास रहने लगा, तो बच्चे अक्सर उससे मिलने जाते थे। यह जानकर कि साश्को बारिश में भीग गया और अब अस्पताल में है, बच्चों को दुख हुआ। छुट्टी के दिन हम सब साश्को को देखने गए। बच्चे आपने साथी के लिए सेब और बिस्कुट ले गए। शूरा एक चाकलेट ले आया, जो उसके पिता ने उसे दी थी। आधे दिन तक बच्चे एक-एक दो-दो करके साश्को के कमरे में उससे मिलने जाते रहे।

मैं इस बात पर ख़ुश भी था और कुछ परेशान भी। बात यह थी कि यह सामूहिक उत्साह का परिणाम था। ऐसे भी बच्चे थे, जो अपने साथी के लिए सिर्फ़ इसीलिए कुछ करना चाहते थे, ताकि दूसरे उनका यह भला काम देखें। वोलोद्या ने मुझसे कहा कि वह साश्को के लिए अपने नये स्केट ले जाएगा, जो पापा ने उसके लिए ख़रीदे हैं।

"तुमने पिता जी से पूछ लिया है?" मैंने पूछा।

"हां, पूछ लिया है।"

"तो फिर अस्पताल ले जाने की कोई ज़रूरत नहीं। साश्को तो अभी

स्केटिंग कर नहीं सकता। जब वह ठीक हो जाएगा, तो उसे घर ले जाकर दे देना।"

वोलोद्या ने अपने साथी को स्केट भेंट नहीं किए। उसका मनोवेग क्षणिक सिद्ध हुआ। यह देखकर मैं एक बार फिर इस सोच में पड़ा कि किस तरह बच्चों में उदारता, सहृदयता और संवेदनशीलता जैसे गुण विकसित किए जाएं। बहुत ही पेचीदगी और बारीकी की बातें हैं ये। कैसे यह किया जाए कि नन्हा इन्सान प्रशंसा और पुरस्कार की ख़ातिर नहीं, बल्कि भलाई करने की आत्मिक आवश्यकता से प्रेरित होकर अच्छा काम करे? भलाई करने की आवश्यकता क्या है, कहां से आती है यह? निस्संदेह, संवेदनशीलता के विकास में सामूहिक मनोवेग का भी काफ़ी महत्व है। परंतु फिर भी सह-अनुभूति का जन्म हर बच्चे के हृदय की गहराइयों में ही होना चाहिए।

मेरी चेष्टा यह थी कि मेरे सभी छात्र अपने साथियों की या दूसरे लोगों की सहायता का उदात्त कार्य अपने अंतःकरण की मांग पर करें और इससे उन्हें गहरा संतोष प्राप्त हो। नैतिक शिक्षा में यह शायद एक सबसे कठिन बात है: बच्चों को भलाई करना भी सिखाना और साथ ही ऐसे सीधे परामर्शों से भी बचना कि यह काम ऐसे करो। व्यवहार में इस समस्या को कैसे सुलझाया जाए? प्रत्यक्षतः, सबसे बड़ी बात यह है कि बच्चों में ऐसी आंतरिक शक्ति का विकास किया जाए, जिसके फलस्वरूप वे भलाई किए बिना न रह सकें, दूसरे शब्दों में उन्हें दूसरों के दुख-सुख को अनुभव करना, सह-अनुभूति करना सिखाया जाए। लेकिन यह कैसे किया जाए? कैसे यह किया जाए कि बच्चे दूसरे का दुख देख कर अपने को उसकी जगह रखें, कि सुस्पष्ट, ज्वलंत विचार उज्ज्वल भावनाओं को जन्म दें, कि नन्हे बच्चे का व्यक्तित्व उस मनुष्य के व्यक्तित्व के साथ एकीकार हो जाए, जिसके जीवन में तकलीफ़ें हैं, कि दुखी व्यक्ति में बच्चा स्वयं अपने को देखे और अनुभव करे?

हम शिक्षक बच्चों के आत्मिक जीवन और परस्पर संबंधों के कठिनतम और जटिलतम क्षेत्रों से संबंधित प्रश्नों पर मिलकर विचार-विमर्श करने लगे, धीरे-धीरे इन्होंने मनोवैज्ञानिक गोष्ठियों का रूप ले लिया। इनमें न केवल प्राथमिक कक्षाओं के, बल्कि सभी कक्षाओं के अध्यापक भाग लेते थे। हमारी चिंता का विषय था **मनुष्य** – बच्चा, किशोर, तरुण। इन गोष्ठियों में हम किसी एक छात्र के आत्मिक जीवन, उसके बौद्धिक, नैतिक, भाव-

नात्मक, शारीरिक, सौंदर्यबोधात्मक विकास के स्रोतों तथा उस परिवेश के बारे में रिपोर्ट पेश करते थे, जिसमें स्कूल आने से पहले और अब स्कूल में पढ़ते हुए बच्चे के विवेक, चिंतन, भावनाओं, संकल्प, चरित्र और धारणाओं का गठन हुआ और हो रहा है। प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापक अपनी इन रिपोर्टों द्वारा एक तरह से माध्यमिक और उच्चतर कक्षाओं के अध्यापकों को किशोरों, युवक-युवतियों पर शैक्षणिक प्रभाव डालने के लिए तैयार करते थे। हमारा यह सामूहिक विश्वास अधिक गहरा होता जा रहा था: जिस छात्र को हम शिक्षा दे रहे हैं, जिसका चरित्र-निर्माण कर रहे हैं, उस पर स्कूल के सारे अध्यापक समुदाय का प्रभाव हो, इसके लिए यह अनिवार्य है कि हर अध्यापक हर छात्र के व्यक्तित्व को बड़ी गहराई से उसकी बारीकियों तक जानता हो।

कुछ बच्चों के आत्मिक जीवन के जटिलतम क्षेत्रों में गहराई से पैठने के लिए हमें २-३ घण्टे भी कम पड़ते थे। कोल्या के व्यक्तित्व के बारे में मेरी रिपोर्ट के बाद कुछ दूसरे अध्यापकों ने अपनी ओर से बहुत महत्वपूर्ण ब्योरे जोड़े: बच्चा स्कूल में जो कुछ देखता है, वह उसके भावना-जगत में कैसे उतरता है, दूसरे शब्दों में वह लोगों के बीच संबंधों तथा दूसरे लोगों के साथ अपने संबंधों को कैसे भावनात्मक रंग में देखता है, कैसे उन्हें अनुभव करता है। बच्चा किस तरह दूसरों की भलाई करने की कामना के वशीभूत होता है—इस बारे में तथा भलाई करने की आंतरिक प्रेरणा के बारे में हम रोचक निष्कर्ष पर पहुंचे, जो सभी अध्यापकों के मत में नया भी था।

बच्चे दुख से पीड़ित अपने साथियों की ओर जितना अधिक ध्यान देते थे, उतने ही अधिक उनके हृदय संवेदनशील होते जा रहे थे। फ़रवरी की बात है (तब बच्चे तीसरी में पढ़ते थे), मीशा, कोल्या और लरीसा भागे-भागे मेरे पास आए। वे किसी बात पर परेशान थे।

"वान्या का भाई लेओनीद मर गया। उसके पिता जी को तार मिला है। वह कज़ाख़स्तान जा रहे हैं। अब हम क्या करें?"

बच्चों की आंखों में निवेदन था: हमें बताइए, हम कैसे अपने साथी की मदद करें?

उसी दिन यह पता चल गया कि यह दुर्घटना कैसे हुई। १८ वर्षीय ट्रैक्टर-चालक लेओनीद पशु-फ़ार्म के लिए सूखी घास ले जा रहा था। रास्ते में हिमानी तूफ़ान आ गया। लेओनीद ट्रैक्टर को वहीं छोड़कर गांव चला

जा सकता था, जो सड़क से थोड़ी ही दूर था। लेकिन लेग्रोनीद ने ऐसा नहीं किया, उसे उम्मीद थी कि तूफ़ान जल्दी ही ख़त्म हो जाएगा और वह ठीक समय पर घास पशु-फ़ार्म में पहुंचा देगा। लेकिन तूफ़ान तेज़ हो गया और साथ ही तेज़ पाला पड़ने लगा। लेग्रोनीद ट्रैक्टर के केबिन में ठंड से अकड़ गया... कुछ दिनों तक वान्या स्कूल नहीं आया। बच्चे दुखी थे, उनकी चहक अब सुनाई नहीं देती थी। सब पूछते थे: कैसे अपने दोस्त का दुख हल्का करें? किसी ने यह सुझाव रखा कि हम वान्या के घर चलें। मैंने उन्हें ऐसा न करने की सलाह दी: "वान्या, उसके माता-पिता और भाई-बहन पर दुख का पहाड़ टूटा है। हम उनके घर जाएंगे, तो मां को हमें देखकर यह याद हो आएगा कि कैसे लेग्रोनीद स्कूल जाता था। तब वह और भी ज़्यादा दुखी होगी। हम कुछ दिन बाद उनके घर जाएंगे, जब मातृ-हृदय की पीड़ा इतनी तीव्र नहीं रहेगी। जब वान्या स्कूल आए, तो उससे यह मत पूछना कि उसका भाई कैसे मरा, इसके बारे में सोचना और बोलना बहुत दर्दनाक होता है। वान्या का ध्यान रखना, किसी भी तरह उसका दिल न दुखाना।"

वान्या के पिता ने कज़ाख़स्तान से लौटकर बताया कि जिस राजकीय फ़ार्म में लेग्रोनीद काम करने गया था, उसकी बस्ती में एक सड़क का नाम उनके बेटे के नाम पर रखा गया है। मैंने बच्चों को यह बताया। उन दिनों हमारी कक्षा के बच्चे पायोनियर बनने की तैयारी कर रहे थे। बच्चे यह सोच रहे थे कि उनकी कक्षा की पायोनियर टोली और उसकी तीन टुकड़ियों को किसके नाम दिए जाएं। अब उन्होंने ख़ुद ही वह बात कही जिसकी मुझे उनसे उम्मीद थी: जिस टुकड़ी में वान्या होगा, उसे उसके भाई – लेग्रोनीद – का नाम प्रदान किया जाए, जिसने अंतिम क्षण तक अपना कर्त्तव्य निभाया था। वान्या ने यह ख़बर मां को दी। मैंने बच्चों को सलाह दी: एक ड्राइंग की कापी लेकर उसमें हर कोई स्कूल के बारे में चित्र बनाए। स्वाभाविक ही था कि बच्चे लेग्रोनीद के स्कूली जीवन से संबंधित चित्र बनाना चाहते थे। बड़ी कक्षाओं के छात्रों ने हमें एक सेब का पेड़ दिखाया, जो लेग्रोनीद ने तीसरी कक्षा में पढ़ते समय लगाया था। भौतिक विज्ञान के कक्ष में एक क्रेन का मॉडल रखा हुआ था, जो लेग्रोनीद और उसके साथियों ने बनाया था। लेग्रोनीद को पक्षियों से बड़ा प्रेम था और उसने कबूतरों के लिए एक दरबा बनाया था। इस सबके बारे में बच्चों ने चित्र बनाए। मैंने लेग्रोनीद का छविचित्र बनाया। यह एल्बम

हमने मां को भेंट की। उनके लिए यह अमूल्य उपहार था : उन्हें यह देखकर ख़ुशी हुई कि स्कूल में उनके बेटे की स्मृति जीवित है। ऐसी ही एक एल्बम हमने उस पायोनियर टुकड़ी के लिए बनाई, जिसे लेग्रोनीद का नाम प्राप्त होगा।

इस बात का बहुत ध्यान रखना चाहिए कि नेक भावनाएं और नेक कर्म दिखावे के काम न हो जाएं। किसी ने जो नेक काम किया है, उसके बारे में कम से कम बोला जाए और भलाई के लिए तारीफ़ों के पुल न बांधे जाएं – चरित्र-निर्माण कार्य में इस सिद्धांत पर चलना नितांत आवश्यक है। सबसे ख़तरनाक बात यह है कि मामूली इन्सानियत दिखाते हुए भी बच्चा यह सोचने लगता है कि वह न जाने कितना बड़ा काम कर रहा है। और यह सर्वप्रथम स्कूल का ही दोष है। किसी छात्र को दस कोपेक गिरे मिल गए, उसने लाकर क्लास में दे दिए और बस, सारे स्कूल को इसकी ख़बर हो जाती है। मुझे एक दिलचस्प घटना याद आती है, जो पड़ोस के एक स्कूल में हुई। एक बच्ची को पांच कोपेक मिले, उसने लाकर अध्यापिका को दे दिए, अध्यापिका ने उसकी ख़ूब प्रशंसा की। अगली आधी छुट्टी में तीन लड़कियां और एक लड़का अध्यापिका के पास दौड़े आए – सबको साथियों के खोए पैसे मिले थे, किसी को एक कोपेक और किसी को दो। बच्चों को उम्मीद थी कि उनकी तारीफ़ होगी; अध्यापिका ने देखा कि दाल में कुछ काला है और उनपर बरस पड़ीं। बस ऐसे ही बच्चों को पुरस्कार की आशा में भलाई करना सिखाया जाता है और अगर उनकी तारीफ़ नहीं होती, तो वे सोचते हैं कि उनके साथ बड़ा अन्याय हुआ है।

भलाई भी इन्सान के लिए ऐसी ही स्वाभाविक बात होनी चाहिए, जैसे कि सोचना, चिंतन करना। इसकी तो आदत ही पड़ जानी चाहिए। हम सब अध्यापक यह चेष्टा करते थे कि नेक, सहृदय, उदार कार्यों से बाल-हृदयों को गहरा संतोष प्राप्त हो। बचपन में दूसरे व्यक्ति के आत्मिक जगत के प्रति हार्दिक संवेदनशीलता शिक्षक के शब्दों के प्रभाव में भी और स्कूल के वातावरण के प्रभाव में भी जागती है। यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि सभी बच्चों में दूसरों का दुख बांटने, नेक काम करने की तत्परता विकसित की जाए। लेकिन यह मनोवेग हृदय को केवल तभी उदार बनाता है, जबकि वह व्यक्तिगत कार्यों का, गतिविधि का रूप धारण करता है।

मेरे छात्रों ने अपने बूढ़े मित्र आन्द्रेई दादा को नहीं भुलाया था। जाड़ों में मधुमक्खियों के छत्तों को जिस इमारत में रखा जाता था, उस जगह से

थोड़ी दूर ही एक छोटे-से मकान में वह रहते थे। बच्चे उनसे मिलने जाते थे, उनके लिए सेब, बिस्कुट ले जाते थे, चित्र बनाते थे। दादा उनकी प्यार भरी बातें सुनकर ख़ुश होते थे। बच्चे यह महसूस करते थे कि अकेले रहना बहुत मुश्किल है और जहां तक उनसे बन पड़ता था, दादा की मदद करते थे।

मार्च में एक दिन बच्चे आन्द्रेई दादा के पास जाने की जल्दी में थे: आज उन्हें छत्तों को बाहर निकालकर रखने में दादा की मदद करनी थी। यह दिन सब के लिए उत्सव के समान था: बच्चों का मन यह देखकर आह्लादित होता था कि कैसे सुनहरे पंखोंवाली मधुमक्खियां पहली उड़ान भरती हैं—यह वसंत के आने का सुसमाचार था। रास्ते में हम एक वृद्धा के घर पानी पीने को रुके। उन्होंने हमें अपने हाथ के बनाए बिस्कुट दिए और हमसे आते रहने को कहा।

युद्ध ने इस स्त्री—ओल्गा फ़्योदोरोव्ना—से उसके सभी संबंधियों को छीन लिया था: दो बेटे, पति और भाई मोर्चे पर शहीद हुए। बेटी को फ़ासिस्ट जर्मनी खदेड़ ले गए, जहां वह कोयले की खान में कमरतोड़ काम करती हुई मर गई। मैंने बच्चों को ओल्गा फ़्योदोरोव्ना के कठिन जीवन के बारे में बताया। बाल-हृदयों में ओल्गा दादी से मैत्री करने की इच्छा जागी। बच्चे अक्सर उनसे मिलने जाने लगे। ओल्गा फ़्योदोरोव्ना ने हमें वे पदक दिखाए, जो उनके पति और बेटों को वीरता के लिए मिले थे। बच्चों के हृदय में यह अभिलाषा जागी कि वे ओल्गा दादी को ख़ुशियां बांटें। जब फलों के पेड़ लगाने का समय आया, तो हमने उनके आंगन में सेब, नाशपाती और चैरी के पांच-पांच पेड़ और अंगूर की इतनी ही बेलें लगाईं— उनके पति, भाई, बेटों और बेटी की याद में। ओल्गा दादी के नाम के भी वृक्ष लगाए। ओल्गा फ़्योदोरोव्ना के मन में कृतज्ञता के जो भाव उभरे, उन्हें शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। गर्मियों के तपते दिनों में बच्चे पौधों को पानी देने आते थे, हालांकि ओल्गा फ़्योदोरोव्ना स्वयं भी इतना कर लेती थीं। गर्मियों की छुट्टियों में बच्चे सारा-सारा दिन ओल्गा दादी के आंगन में खेलते रहते थे।

ओल्गा दादी बच्चों की मित्र हो गईं। उनके बिना वे एक भी त्यौहार नहीं मनाते थे। जब फल पकने लगते तो वे तुरंत ही उनके यहां जाते। दादी के बाग़ में से पहले पके फलों को तोड़ कर बच्चे दादी को देते थे। जब बच्चे सातवीं कक्षा में थे, तो ओल्गा दादी बीमार पड़ गईं। गर्मियों

की छुट्टियां शुरू होने के एक सप्ताह बाद उनका देहांत हो गया। बच्चों के लिए यह बड़ा भारी दुख था। कुछ समय बाद हमें पता चला कि ग्रोल्गा फ़्योदोरोव्ना ग्रपना मकान ग्रौर बाग़ बच्चों के नाम कर गई हैं। ग्रब यह समस्या उठी कि बच्चे इसका क्या करेंगे। ख़ैर, यह तय हुग्रा कि बच्चे यहां ग्रपने नेक काम करें। बच्चों ने सुझाया कि ग्रान्द्रेई दादा को इस मकान में रहने को कहा जाए—मकान मधु-वाटिका से ज़्यादा दूर नहीं था। ग्रान्द्रेई दादा सहर्ष तैयार हो गए।

जिस मां का बेटा मातृभूमि की स्वाधीनता की रक्षा करते हुए वीर-गति को प्राप्त हुग्रा हो, उसका दुख ग्रथाह होता है। बच्चों को यह दुख महसूस करने दीजिए, इसे बांटने दीजिए। उन हज़ारों-हज़ार माताग्रों को जिनके सपूत वोल्गा से एल्बा तक ग्रौर भूमध्यसागर से उत्तरध्रुवीय महा-सागर तक ग्रनाम क़ब्रों में चिरनिद्रा में सोए हुए हैं, उन्हें बच्चों का मित्र बनाइए। जब तक बाल-हृदय ने हमारी मातृभूमि के ग्रपार दुख को ग्रनुभव नहीं किया है, तब तक हम उसे उदात्त नहीं बना सकते। यह दुख है — युद्ध में मारे गए २ करोड़ लोगों का दुख, विभीषण यातनाग्रों, कष्टों ग्रौर विनाश का दुख, उस सब का दुख, जिसे हमारी जनता न कभी भुला सकती है, न फ़ासिस्टों को क्षमा कर सकती है।

बच्चा शहीद की मां के दुख को जितनी ग्रधिक ग्रच्छी तरह समझ लेगा, जितनी गहराई से महसूस करेगा, उतनी ही उसकी नागरिक धार-णाएं सुदृढ़ होंगी, मातृभूमि के भविष्य के लिए उत्तरदायित्व की भावना बाल-हृदय में उतनी ही प्रबल होगी। इसलिए शहीद की माता को स्कूल में निमंत्रित करने जैसे ग्रायोजनों में बड़ी समझदारी ग्रौर सतर्कता से काम लेना चाहिए। बच्चों के लिए यह स्कूली जीवन की एक ग्राम घटना-सी नहीं होनी चाहिए। जिस व्यक्ति का निजी दुख, सारी जनता के दुख की ग्रभिव्यक्ति है, उसके साथ भेंट की बाल-हृदयों पर गहरी छाप पड़नी चाहिए।

बच्चों को सुयोग्य नागरिक बनाना यह न केवल शिक्षा-सिद्धांत की, बल्कि व्यवहार की भी एक जटिलतम समस्या है। इस क्षेत्र में सबसे ग्रधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि ज्ञान बच्चे के हृदय में उतरे, उसके ग्रपने ग्रात्मिक जगत में प्रतिबिंबित हो। मातृभूमि के बारे में ग्रौर सोवियत जनता के लिए जो पावन है, ग्रमूल्य है, उसके बारे में ज्ञान कोई ऐसी जानकारी नहीं है, जिसे एक बार याद करके रोज़मर्रा के जीवन में इस्तेमाल किया

जा सकता है। ये तो वे सत्य हैं, जिनसे प्रत्येक छात्र का व्यक्तिगत जीवन प्रभावित होना चाहिए। ये सत्य बच्चे के लिए केवल तभी पावन होते हैं, जबकि मातृभूमि की महानता को उसने मनुष्य की महानता के ज़रिए जाना-समझा हो।

"जनता की स्मृति एक विराट पुस्तक है, जिसमें सब कुछ लिखा हुआ है," हमारे विलक्षण लेखक लेओनीद लेओनोव का कहना है। इस पुस्तक को पढ़े बिना, उसके हर शब्द, हर अक्षर को गहराई से समझे और हृदयंगम किए बिना तो नागरिक भावना के विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जिसे हम स्कूल का जीवन के साथ संबंध कहते हैं—उसे मैं सर्वप्रथम इस रूप में समझता हूं कि हमारे लिए जो पुनीत है, उसे जन-मानस में से बाल-हृदय और बाल-चेतना में उतारा जाए। हमारी ये पुनीत, पावन भावनाएं हैं—मातृभूमि के प्रति प्रेम तथा उसके शत्रुओं, आक्रामकों के प्रति घृणा, जिन्होंने जनता को अकथनीय यातनाएं और कष्ट पहुंचाए। जन-स्मृति की महान पुस्तक को जब भी पढ़ा जाता है, तो यह मानव-व्यक्तित्व के गठन में सबसे जटिल और सबसे अधिक उत्तर-दायित्वपूर्ण कार्य होता है।

उदात्त भावनाओं से प्रेरित श्रम

श्रम एक महान चरित्र-निर्माता होता है, बशर्ते वह हमारे छात्रों के आत्मिक जीवन में स्थान बना पाए, मैत्री और भाईचारे का हर्ष प्रदान करे, जिज्ञासा और कौतूहल बढ़ाए, कठिनाइयों पर विजय पाने की हर्षमय भावना जगाए, चारों ओर के संसार में नित नया सौंदर्य दिखाए, पहली नागरिक भावना—भौतिक संपदा के, जिसके बिना मानव-जीवन असंभव है, निर्माता की भावना—को जन्म दे।

श्रम करने का हर्ष एक प्रबल शैक्षिक शक्ति है। बचपन में हर मनुष्य को इस उदात्त भावना की गहरी अनुभूति होनी चाहिए।

हमारे स्कूली जीवन का पहला शरद। बड़ी कक्षाओं के छात्र स्कूल के खेत में से हमारे लिए एक टुकड़ा काट देते हैं। हम ज़मीन की गुड़ाई करते हैं—ग्रामीण बच्चे ऐसे श्रम के आदी होते हैं। मैं बच्चों से कहता हूं: "यहां हम वसंती फ़सल का गेहूं बोएंगे, फ़सल काटकर उसे मांड़ेंगे। यह हमारी पहली रोटी होगी।" बच्चे अच्छी तरह जानते हैं कि रोटी क्या

है और वे अपने माता-पिताओं की भांति श्रम करने की चेष्टा करते हैं। साथ ही हमारे इस काम में रोमांच का, खेल का तत्व भी है।

अपने श्रम की रोटी का सपना बच्चों को प्रेरित करता है, कठिनाइयां लांघने के लिए धीरज और साहस प्रदान करता है। कठिनाइयां बहुत हैं: बच्चे कम्पोस्ट उठाकर लाते हैं, उसे मिट्टी में मिलाते हैं, गेहूं के लिए क्यारियां खोदते हैं, एक-एक दाना करके बीज चुनते हैं। बुआई का दिन तो मानो उत्सव का दिन ही होता है। सभी बच्चों के हृदयों में श्रम का उत्साह है। खेत बोया जा चुका है, लेकिन कोई घर नहीं जाना चाहता। बच्चे भविष्य की कल्पना करना चाहते हैं, हम पेड़ तले जा बैठते हैं और मैं गेहूं के सुनहरी दाने की कहानी सुनाता हूं। मैं कहानी के बारे में और इस बारे में सोचता हूं कि मेरे छात्रों के लिए बचपन में श्रम केवल बाल-सुलभ हर्ष ही नहीं, बल्कि अपना नागरिक कर्त्तव्य निभाने का पहला हर्ष भी हो, कि श्रम के रास्ते, मानो एक खुली पगडंडी पर बढ़ते हुए बच्चे सामाजिक जीवन में प्रवेश करें, लोगों को और स्वयं अपने आपको जानें-समझें, उनके हृदय में नागरिक गर्व की भावना जागे। मैं यह कभी नहीं भूलता कि श्रम कोई आसान बात नहीं होनी चाहिए। बच्चों की शारीरिक और आत्मिक शक्ति पर कितना ज़ोर पड़ता है, इसी से वह अत्यंत महत्व-पूर्ण प्रक्रिया निर्धारित होती है, जिसे वयस्कता कहते हैं। श्रम की बदौलत बच्चा वयस्क होता है। कठिनाई की यह माप हमें ढूंढ़नी चाहिए, इसे इस तरह निर्धारित करना चाहिए कि श्रम ऐसा हो, जिसे बच्चे कर सकें और साथ ही इस श्रम की बदौलत धीरे-धीरे बच्चा बच्चा न रहे। कई वर्षों के अनुभव से मैंने देखा कि यह लक्ष्य केवल तभी प्राप्त किया जा सकता है, जबकि बच्चों के श्रम में बड़ों के उत्पादन-कार्य का सबसे महत्वपूर्ण तत्व होता है: श्रम का भौतिक परिणाम प्राप्त होता है और वह बाल-समुदाय के सदस्यों के संबंधों के सूत्र में बंधा होता है।

जब तक अंकुर नहीं फूटे, बच्चों के मन में यह चिंता रही कि कब हमारा खेत हरा होगा। और जब अंकुर निकल आए, तो बच्चे रोज़ सुबह दौड़े-दौड़े देखने जाते थे: अंकुर ठीक बढ़ रहे हैं कि नहीं। जाड़ों में हमने उन्हें हिम से ढक दिया, ताकि उन्हें पाला न लगने पाए। वसंत आया और बच्चे यह देखकर ख़ुशी से झूम उठे कि कैसे खेत पर हरा-हरा कालीन बिछ गया है। वे देखते थे कि कैसे पौधे बढ़ रहे हैं, उनमें बालियां आ रही हैं। बच्चे हर बाली का ध्यान रखते थे।

फ़सल की कटाई तो बुआई से भी अधिक हर्षमय त्यौहार थी। बच्चे सुंदर कपड़े पहनकर स्कूल आए। हर छात्र ने बड़े ध्यान से गेहूं काटा, उसे छोटे-छोटे पूलों में बांधा। फिर नया श्रम-उत्सव आया— मंड़ाई का दिन। एक-एक दाना इकट्ठा करके बोरी में डाला। आन्द्रेई दादा ने गेहूं पीस दिया, सफ़ेद-सफ़ेद आटा लाए। हमने तीना की मां से अनुरोध किया कि वह इस आटे की रोटियां बना दें। बच्चों ने उनकी मदद की: लड़के पानी भर कर लाए, लड़कियां उन्हें लकड़ियां पकड़ाती थीं। और लीजिए, चार बड़ी-बड़ी, गोल-गोल, मोटी-मोटी डबलरोटियां तैयार हो गईं—यह हमारे श्रम, हमारी चिंताओं और उद्विग्नता का परिणाम था। बाल-हृदय गर्व से भरपूर हो उठे।

चिर प्रतीक्षित दिन—पहली रोटी का उत्सव—आया। बच्चों ने आन्द्रेई दादा को और सब माता-पिताओं को निमंत्रित किया। कढ़ाईदार सफ़ेद मेज़पोश बिछाया गया, बच्चों ने रोटी के महकते टुकड़े चारों ओर रख दिए, आन्द्रेई दादा शहद से भरी रकाबियां लाए। माता-पिता शहद के साथ रोटी खा और बच्चों की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे, उन्हें श्रम के लिए धन्यवाद कह रहे थे।

यह दिन जीवन भर के लिए बच्चों के स्मृति-पटल पर अंकित हो गया। इस उत्सव पर किसी ने श्रम और मानव-गरिमा का महत्व नहीं बखाना। बच्चों के लिए सबसे बड़ी बात यह थी कि उन्हें अपने पर गर्व हो रहा था: हमने अनाज उगाया, रोटी बनाई, हमने माता-पिता को यह ख़ुशी का दिन दिखाया है। अपने श्रम के लिए गर्व की यह भावना ही नैतिक शुद्धता और उदात्तता का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है।

पहली रोटी के हमारे उत्सव की ओर दूसरी कक्षाओं का भी ध्यान आकर्षित हुआ। सभी कक्षाओं के छात्र अपने हाथों अन्न उगाना चाहते थे। बच्चे अपनी कक्षा के अध्यापक के पीछे पड़ गए: दूसरे बच्चे रोटी का त्यौहार मनाते हैं, हम क्यों नहीं मनाते?

इस घटना पर हम अध्यापकों ने काफ़ी सोच-विचार किया। सबने यह देखा कि गुड़ाई करने और खाद देने जैसे साधारण काम करने की भी बच्चों को इतनी ही इच्छा हो सकती है, जितनी जंगल की सैर पर जाने या रोचक पुस्तक पढ़ने की। अध्यापक बताते थे कि बिल्कुल गए-गुज़रे आलसी भी, जिन्हें लगता था, कभी किसी काम में कोई रुचि नहीं हो सकती, वे भी बिल्कुल बदल गए। वे काम करना चाहते थे। "बात क्या है?"

हम सोचते थे। ग्रौर सब इस फ़ैसले पर पहुंचे कि बात भावनाग्रों की, उदात्त लक्ष्य की प्रेरणा की है। श्रम की लगन, ग्रध्यवसाय सर्वप्रथम बच्चों के भावनात्मक जीवन का क्षेत्र है। बच्चा केवल तभी काम करना चाहता है, जबकि श्रम से उसे हर्ष प्राप्त हो। श्रम का हर्ष जितना गहरा होता है, उतना ग्रधिक बच्चे ग्रपने मान का ख़याल रखते हैं, उतनी ही ग्रधिक स्पष्टता के साथ बच्चे ग्रपनी गतिविधियों में ग्रपने को, ग्रपने प्रयासों, ग्रपने नाम को देखते हैं। श्रम का हर्ष एक प्रबल शैक्षिक शक्ति है, जिसकी बदौलत बच्चा यह समझता है कि वह भी समाज का एक सदस्य है। इसका ग्रर्थ यह नहीं है कि श्रम मनोरंजन बन जाता है। उसके लिए लगन की, ग्रध्यवसाय की ग्रावश्यकता होती है। परंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारा वास्ता बच्चों से है, जो ग्रभी संसार में ग्रपने पहले क़दम रख रहे हैं।

यह फ़ैसला हुग्रा कि पहली रोटी का उत्सव हर साल मनाया जाए। ग्रगले शरद में बच्चों ने खेत के नए टुकड़े पर गेहूं उगाया। इस बार फिर उन्होंने माता-पिता को ग्रौर ग्रपने नन्हे-मुन्ने मित्रों – उन बच्चों को, जो ग्रभी स्कूल नहीं जाते थे, बुलाया। मेरे छात्र जब बड़े हो गए, तब भी वे बड़े उत्साह ग्रौर उद्विग्नता के साथ स्कूल के छोटे-से खेत से ग्रनाज काटते ग्रौर मांड़ते थे, उसे पीसकर रोटियां पकाते थे – इस सब में रोमांच था, खेल था। श्रम से प्राप्त हर्ष की तुलना ग्रौर किसी भी तरह के हर्ष से नहीं की जा सकती। सौंदर्य की ग्रनुभूति के बिना इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती, परंतु यहां सौंदर्य केवल वह नहीं है, जो बच्चे को प्राप्त होता है, बल्कि सर्वप्रथम वह है, जिसका वह सृजन करता है। श्रम का ग्रानंद जीवन का सौंदर्य है। इस सौंदर्य का संज्ञान पाते हुए बाल-हृदय में ग्रात्मसम्मान की ग्रौर इस बात पर गर्व की भावना जागती है कि कठिनाइयों पर विजय पा ली गई है।

ख़ुशी केवल वही ग्रादमी महसूस कर सकता है, जो घोर परिश्रम करना जानता है, जिसे यह पता है कि पसीना ग्रौर थकावट क्या हैं। बचपन निरा ख़ुशियों का मेला नहीं होना चाहिए – ग्रगर बच्चे यथाशक्ति परिश्रम नहीं करते, तो वे यह भी कभी नहीं जान पाएंगे कि श्रम की ख़ुशी क्या है। श्रम-शिक्षा में सबसे बड़ी बात यह है कि बच्चों में श्रम के प्रति ऐसा रुख़ पैदा किया जाए, जैसा मेहनतकश लोगों का होता है। मेहनतकश जनता के लिए श्रम एक ऐसी ग्रावश्यकता ही नहीं है, जिसके

बिना मानव-अस्तित्व असंभव है, बल्कि यह व्यक्तित्व की आत्मिक संपदा, आत्मिक जीवन की बहुविध अभिव्यक्ति का भी क्षेत्र है। श्रम में ही मानव-संबंध उजागर होते हैं। अगर बच्चे को इन संबंधों के सौंदर्य की अनुभूति नहीं हुई है, तो उसके मन में श्रम के प्रति प्रेम नहीं जगाया जा सकता। श्रम-गतिविधियां ही मेहनतकश जनगण के लिए आत्म-अभिव्यक्ति और आत्म-पुष्टि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन हैं। एक जन-सूक्ति है: श्रम के बिना मनुष्य शून्य के समान हो जाता है। शिक्षा का एक महत्वपूर्ण कार्यभार यह है कि प्रत्येक छात्र में आत्म-सम्मान और आत्म-गौरव की भावना श्रम के क्षेत्र में प्राप्त सफलता पर आधारित हो।

अपने स्कूली जीवन के पहले वसंत में सभी बच्चों ने "मां की बग़िया" लगाई: एक-एक सेब का पेड़ और एक-एक अंगूर की बेल। मैंने उनसे कहा: "बच्चो, यह हमारी माताओं के लिए बाग़ होगा। तीन साल बाद इन पेड़ों और बेलों पर पहले फल लगेंगे। पहले सेब और अंगूर के पहले गुच्छे माताओं को हमारा उपहार होंगे। उन्हें हम यह ख़ुशी प्रदान करेंगे। याद रखो, तुम्हारी माताओं के सिर पर बड़ी चिंताएं हैं। आओ, हम उन्हें इन चिंताओं के बदले ख़ुशियां लुटाएं।"

"मां की बग़िया" में श्रम इस स्वप्न से प्रेरित था कि यह बड़ों के लिए, माता-पिता के लिए हर्ष की बात होगी। कुछ बच्चे अभी इस उदात्त मानवीय भावना – मां के प्रति प्रेम – को पूरी गहराई से नहीं जानते थे। मेरी चेष्टा यह थी कि हर बच्चे के मन में यह भावना जागे। गाल्या ने अपनी सौतेली मां के लिए पेड़ लगाया, साश्को ने नानी के लिए, वीत्या ने मौसी के लिए। कोई भी यहां उदासीन मन से काम नहीं करता था। वसंत और गर्मियों में बच्चे पौधों को पानी देते थे, हानिकारक कीड़ों को नष्ट करते थे। तीसरी साल में पेड़ों पर पहले फूल आए, फल लगे। हर कोई चाहता था कि उसके पेड़ पर फल पहले पक जाएं।

मेरे लिए यह परम हर्ष की बात थी कि तोल्या, तीना और कोल्या के मन में उमंग थी: उनके पेड़ों पर मोटे-मोटे सेब पक रहे थे, बेलों पर अंगूर के भारी-भारी गुच्छे लटक रहे थे। पके फल तोड़कर बच्चे अपनी मां के लिए ले जाते थे। बच्चों के जीवन में ये अविस्मरणीय दिन थे। मुझे याद है जब कोल्या ने मां के लिए पेड़ से सेब तोड़े, तो उसकी आंखों में कितना स्नेह छलक रहा था।

दूसरी कक्षा में पढ़ते हुए बच्चों ने अपने-अपने घर के अहाते में माता-पिता, नाना-नानी, दादा-दादी के लिए फलों के पेड़ लगाए। इन्हें देखकर उन्हें गर्व होता था। साश्को ने अपनी माता और पिता की याद में पेड़ लगाए; गाल्या और कोस्त्या अपनी माताओं की याद में पेड़ उगा रहे थे, अपनी सौतेली माताओं को भी वे नहीं भूले थे। उनके लिए भी उन्होंने सेब का पेड़ लगाया।

इन पेड़ों की देखभाल बच्चे जितने स्नेह से करते थे, वैसे शायद और कोई काम वे नहीं करते थे। सब बड़ी उत्सुकता से उस दिन का इंतज़ार करते थे, जब पेड़ों पर फूल खिलेंगे। पेड़ों पर पहले सेब लगने की प्रतीक्षा करना, उन्हें तोड़ना, मां को देना – यह सब साधारण कार्य नहीं हैं, जो बच्चा एक के बाद एक करता है। यह नैतिक विकास की सीढ़ियां हैं, जिन पर चढ़ते हुए बच्चे अपने काम के सौंदर्य को अनुभव करते हैं।

मानव जीवन में सबसे पावन और सुंदर है मां। यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि बच्चे उस श्रम के नैतिक सौंदर्य को अनुभव करें, जिससे मां को ख़ुशी मिलती है। धीरे-धीरे हमारे स्कूल में एक अनुपम परंपरा बनी – मां का शरद उत्सव। इस दिन हर बच्चा मां को वह भेंट करता था, जो उसने अपने श्रम से पाया, जिसका वह सारी गर्मियां या कई बरसों तक ही सपना देखता रहा था: सेब, फूल, गेहूं की बालियां, जिन्हें बच्चे घर पर कुछ क्यारियों में उगाते थे। बच्चों को इस उत्सव के लिए तैयार करते हुए हम उनके मन में यह बात बिठाते थे – "अपनी माताओं का ध्यान रखो!" बच्चा मां के लिए श्रम में जितनी अधिक आत्मिक शक्ति लगाता है, उतनी ही अधिक उसके हृदय में मानवीयता होती है।

हम मां का वसंती उत्सव भी मनाने लगे। जंगल में हमें घने पेड़ों के बीच एक छोटा-सा मैदान मिला, यहां गर्मियों में ढेर सारी स्ट्राबेरियां होती थीं। यहां बिताए क्षण बच्चों के लिए अत्यंत हर्षमय होते थे। उनके मन में यह इच्छा जागी कि वे अपनी यह ख़ुशी माताओं के साथ बांटें। उन्होंने यह तय किया कि वसंत में धरती पर उगनेवाला पहला फूल मां को भेंट किया जाए। इस तरह मां का वसंती उत्सव मनाया जाने लगा। बच्चे इस दिन वसंत के पहले कोमल जंगली फूल ही नहीं, तापघर में उगाए फूल भी भेंट करते थे। माताओं को समर्पित उत्सवों में कोई आडंबर, कोई दिखावा नहीं होना चाहिए। हमारी चेष्टा यह थी कि मां का सम्मान

करना एक पारिवारिक, आत्मीय उत्सव हो। यहां भारी-भरकम शब्द नहीं, गहरी भावना महत्व रखती है।

मां के लिए भलाई करने की अपेक्षा मानवजाति से प्रेम करना कहीं अधिक आसान है। अगर मन में अपने सगों से लगाव नहीं है, तो इन्सानियत कहां से आएगी? लोगों से प्रेम के शब्द प्रेम नहीं हैं। परिवार में ही बच्चा आत्मीयता, हार्दिकता और संवेदनशीलता का सच्चा पाठ पढ़ता है; माता-पिता, दादा-दादी, भाई-बहन के प्रति रुख़ मानवीयता की कसौटी है।

बच्चों का श्रम सौंदर्य का सृजन होना चाहिए–यह नैतिक और सौंदर्य-बोधात्मक शिक्षा के बीच सामंजस्य की मांग है। स्कूली जीवन के पहले शरद में स्कूल के बाग़ के एक कोने में हमने जंगली गुलाब बोए। पौधे जब कुछ बड़े हो गए, तो उनमें सफ़ेद, गुलाबी, लाल और पीले गुलाब की कोंपलों की आंखें लगाईं। इस तरह हमने अपनी "गुलाब-वाटिका" बनाई। पहले फूल खिले, तो बच्चे ख़ुशी से फूले न समाए। बच्चे पौधों को हाथ लगाते डरते थे कि उन्हें कोई नुक़सान न पहुंचा दें। मैंने बच्चों को बताया कि अगर पौधों की ठीक तरह से कटाई की जाए तो सारी गर्मियां फूल खिलेंगे। हर कोई अपनी माता को गुलाब भेंट करना चाहता था। बच्चे इस बात पर बहुत ख़ुश थे कि शरद उत्सव पर वे सेबों के साथ मां को गुलाब के फूल भी दे सकते थे।

पहले वसंत में हमने बहुत सारे फूल उगाए। उनकी निरंतर देख-रेख करने की ज़रूरत थी। सिंचाई का काम सबसे कठिन था। बड़ी कक्षाओं के छात्रों ने उन्हीं दिनों पानी की टंकी बनाई। फूलों की क्यारियों के पास ही नल लगा दिया, इससे बच्चों का काम आसान हो गया। अब नन्हा दान्को भी आधे घंटे तक में सारे फूलों को पानी दे लेता था।

मैं चाहता था कि हर बच्चे के मन में फूल उगाने का शौक़ जागे। मेरे विचार में गुलाबों की देख-रेख से बढ़कर ऐसा और कोई भी श्रम नहीं है, जो बाल-हृदय को इतना उदात्त बनाता हो, जिसमें सौंदर्य, सृजन और मानवीयता का ऐसा सुमेल हो। धीरे-धीरे सभी बच्चे अपने घर पर गुलाब उगाने लगे।

अपने जीवन अनुभव से मेरा यह विश्वास बना है कि अगर बच्चे ने सौंदर्य का रसपान करने के लिए गुलाब उगाया है, अगर उसके श्रम का एकमात्र पुरस्कार सौंदर्य पर विमुग्धता और दूसरों के हर्ष और सुख के लिए सौंदर्य का सृजन ही है, तो ऐसे बच्चे में दुष्टता, नीचता, निष्ठुरता कभी

नहीं होगी। यह नैतिक शिक्षा का एक अत्यंत जटिल प्रश्न है। सौंदर्य में कोई जादुई शक्ति नहीं होती, जो मनुष्य को उदार, सहृदय बनाए, उसमें आत्मिक उदात्तता विकसित करे। सौंदर्य केवल तभी नैतिक शुद्धता और मानवीयता के गुण विकसित करता है, जबकि उस श्रम में, जो सौंदर्य का सृजन करता है, उच्च नैतिक आदर्श साकार होते हों, वह मनुष्य के प्रति आदर की भावना से ओत-प्रोत हो। लोगों के लिए सौंदर्य का सृजन करनेवाले श्रम में ये आदर्श जितनी अधिक अच्छी तरह मूर्तिमान हुए हैं, उतना ही अधिक मनुष्य में आत्म-सम्मान होता है, कोई भी अनैतिक कार्य उसके लिए उतना ही अधिक असहनीय होता है।

हम अध्यापकों ने मिलकर नैतिक शिक्षा में सौंदर्य की भूमिका पर विचार-विमर्श किया। हम छात्रों के आत्मिक जगत पर प्रभाव डालने के एक साधन के रूप में सौंदर्य को बहुत महत्वपूर्ण समझते थे, लेकिन साथ ही हमें यह आशंका भी थी कि कहीं हम इस प्रभाव की भूमिका का अतिमूल्यांकन न करें। किन परिस्थितियों में सौंदर्य **शैक्षिक** प्रभाव हो जाता है? मनोवैज्ञानिक गोष्ठी में हमने इस प्रश्न पर विचार किया। इसका उत्तर हमें शिक्षण प्रक्रिया की नियमसंगतियों के सामान्य अनुभव से प्राप्त हुआ। अपने अनुभव से परिचित कराते हुए तथा प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर कक्षाओं के छात्रों के आत्मिक जगत पर शिक्षक के प्रभाव की विधियों और साधनों का विश्लेषण करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कोई ऐसी एकमात्र, सर्वशक्तिशाली विधि नहीं हो सकती, जिससे सफलतापूर्वक बच्चों का चरित्र-निर्माण किया जा सके और साथ ही, जो शैक्षिक प्रभाव के दूसरे क्षेत्रों की कमियों को भी पूरा करे।

ऐसा हो सकता है कि सौंदर्यबोधात्मक शिक्षा तो बहुत अच्छी तरह दी जा रही है, परंतु अगर छात्र के कम्युनिस्ट चरित्र-निर्माण के दूसरे तत्वों और अंशों में कमियां हैं, तो सौंदर्य का शैक्षिक प्रभाव क्षीण पड़ जाएगा, यहां तक कि नहीं के बराबर रह जाएगा। बच्चे के आत्मिक जगत पर प्रत्येक प्रभाव केवल तभी शिक्षण की दृष्टि से कारगर होता है, जबकि उसके साथ-साथ और भी ऐसे ही महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ रहे हों। निश्चित परिस्थितियों में यह भी संभव है कि कोई व्यक्ति बड़े प्रेम से फूल उगाता है, उनके सौंदर्य पर विमुग्ध होता है, किंतु, दूसरी ओर, वह लोगों के प्रति उदासीन और निष्ठुर है। यह सब इस बात पर निर्भर होता है कि

मानव व्यक्तित्व पर जिस प्रभाव को हम शिक्षक निर्णायक समझते हैं, उसके साथ उस पर और कौन-से प्रभाव पड़ रहे हैं।

ये सत्य शनैः-शनैः हमारे शिक्षक समुदाय की आस्थाओं का रूप ग्रहण करते जा रहे थे। निश्चित छात्रों के जीवन-मार्ग पर विचार-विमर्श करते हुए हमारे सामने **शैक्षिक प्रभावों के समन्वय** की समस्या खड़ी हुई। मेरे विचार में यह बाल-शिक्षा की, चरित्र-निर्माण की एक मूलभूत नियम-संगति है। मैं यह कदापि नहीं कहना चाहता कि हमारे स्कूल के व्यावहारिक कार्य में इस समस्या को सुलझा लिया गया है, पर हां, इसका गहन अनुसंधान करने तथा इसे हल करने के लिए काफ़ी कुछ किया गया है। शिक्षण प्रक्रिया की एक आधारभूत नियमबद्धता के सार को व्यक्त करनेवाली इस समस्या को इन शब्दों में सूत्रबद्ध किया जा सकता है: व्यक्तित्व पर प्रभाव डालने का हर साधन शिक्षण की दृष्टि से कितना कारगर रहेगा, यह इस बात पर निर्भर है कि प्रभाव के दूसरे साधन कितनी अच्छी तरह सोच-समझकर निर्धारित किए गए हैं और वे कितने कारगर हैं। शिक्षण साधन के रूप में सौंदर्य की शक्ति इस बात पर निर्भर होती है कि कितनी अधिक दक्षता के साथ बच्चों को श्रम की शक्ति दिखायी जाती है, कि उनकी बुद्धि और भावनाओं का विकास कितनी गहराई से और कितनी सूझ-बूझ के साथ किया जाता है। शिक्षक के शब्दों का बाल-हृदय पर केवल तभी प्रभाव पड़ता है, जबकि वे बड़ों के उदाहरण से प्रभावित हो रहे हों, जबकि शैक्षिक प्रभाव के सभी दूसरे साधन नैतिक शुद्धता और उदात्तता से ओत-प्रोत हों।

शैक्षिक प्रभाव हज़ारों रूपों में एक दूसरे से संबंधित होते हैं, परस्पर निर्भर होते हैं। शिक्षण की, चरित्र-निर्माण की कारगरता अंततोगत्वा इस बात पर निर्भर होती है कि इन संबंधों का कितना ध्यान रखा जाता है, या यह कहना अधिक उचित होगा कि किस तरह व्यावहारिक कार्य में ये साकार होते हैं। मेरे विचार में शिक्षाशास्त्र पर यह आरोप, जिसे सुनते-सुनते सब तंग आ गए हैं, कि वह जीवन से पिछड़ा हुआ है, यह आरोप इस तथ्य को नज़रंदाज़ करने का ही नतीजा है कि व्यक्तित्व पर कोई भी प्रभाव तब तक नाकाम होता है, जबकि सैकड़ों दूसरे प्रभाव न पड़ रहे हों। शिक्षाशास्त्र उसी हद तक पिछड़ा हुआ है, जिस हद तक उसमें व्यक्तित्व पर प्रभाव डालने के साधनों के बीच दसियों और सैकड़ों परस्पर संबंधों, अन्योन्याश्रयों का अध्ययन नहीं किया जाता। शिक्षाशास्त्र तब तक एक यथातथ्य

विज्ञान, सच्चा विज्ञान नहीं बन पाएगा, जब तक कि उसमें शैक्षिक परि-घटनाओं के बीच सूक्ष्मतम और जटिलतम परस्पर संबंधों, अन्योन्याश्रयों का अध्ययन नहीं किया जाएगा, उनको समझाया नहीं जाएगा।

...हम फूलों के त्यौहार मनाने लगे। पहला त्यौहार वसंती फूलों का था। उस दिन बच्चे अपने स्कूल के बाग़ में ट्यूलिप के और लिलक के कुछ फूल तोड़ते थे। लिलक की झाड़ियां बच्चों ने पहली कक्षा में लगाई थीं। हर बच्चा एक छोटा-सा गुलदस्ता बनाता था और हर कोई रंगों का अद्वितीय मेल ढूंढ़ने की कोशिश करता था। ये गुलदस्ते बच्चे अपनी माताओं को, आन्द्रेई दादा और ओल्गा दादी को देते थे। बच्चे अपने नन्हे-मुन्ने मित्रों को भी त्यौहार में भाग लेने के लिए बुलाते थे, उनके लिए गुलदस्ते बनाते थे।

दूसरा गुलाबों का त्यौहार था। इस दिन बच्चे स्कूल की "गुलाब-वाटिका" से और अपने घर से गुलाब लेकर गुलदस्ते बनाते थे। सबसे सुंदर गुलदस्ते हम आन्द्रेई दादा और ओल्गा दादी को देते थे।

तीसरा त्यौहार खेतों-मैदानों और चरागाहों में उगनेवाले जंगली फूलों का था। यह बच्चों के लिए सबसे हर्षमय उत्सव था। हम सुबह तड़के फूल लेने निकलते थे – सुबह के वक़्त फूलों का सौंदर्य अपने पूरे निखार पर होता है। जंगली फूलों का सुंदर गुलदस्ता बना पाना भी एक कला है। गुलदस्ते बनाकर हम स्कूल लाते थे, यहां आराम करते थे। बच्चे चाहते थे कि स्कूल के आस-पास भी जंगली फूल उगें। हम उन जगहों को याद रखते, जहां सबसे सुंदर फूल खिलते होते और फिर शरद ऋतु में वहां बीज इकट्ठे करते, जड़ें खोदते और स्कूल के आस-पास लगाते थे। इस तरह वहां सफ़ेद, नीले, पीले फूल खिलने लगे।

शरद ऋतु में गुलदाउदी का त्यौहार होता था। यह गर्मियों से विदाई का उदासी भरा दिन होता था। उसे जहां तक हो सके देर से मनाने के लिए बच्चे बड़ी मेहनत करते थे। वे गुलदाउदी के पौधों को ठंडी हवाओं से बचाते थे। शरद ऋतु में रातों को हल्का-हल्का पाला पड़ने लगता है, उससे बचाने के लिए पौधों को काग़ज़ के "टोपों" से ढकते थे। शरद के त्यौहार के बाद गुलदाउदी के पौधों को तापघर में ले जाकर रखते थे।

बच्चे तीसरी कक्षा में थे, जब हमने पहले वसंती फूलों – स्नोड्राप – का पर्व मनाया। जंगल में अभी भी कहीं-कहीं हिम पड़ा हुआ था, पर

धरती शीत निद्रा से जाग रही थी। मैदानों में स्नोड्राप के सफ़ेद और नीले-बैंगनी घंटीनुमा फूल खिल आए थे। इनके छोटे-छोटे गुलदस्ते बच्चों ने अपनी माताओं को दिए।

मैं चाहता था कि बच्चे श्रम में आत्मिक हर्ष का स्रोत देख पाएं। वे समझ लें कि इन्सान रोटी, कपड़ा पाने, घर बनाने के लिए ही श्रम नहीं करता, बल्कि इसलिए भी कि उसके घर के पास सदा फूल खिलें, जो उसे भी और दूसरे लोगों को भी ख़ुशियां लुटाते हैं। बच्चों को छोटी उम्र से ही ख़ुशी के लिए श्रम करना सिखाना चाहिए।

सभी बच्चे अपने घर पर फूल उगाने लगे थे। गुलाब तो प्रायः सभी के घर में थे। इसके अलावा हर बच्चे के अपने प्यारे फूल थे। वार्या, लीदा, पाव्लो, सेर्योझा, कात्या, लरीसा और कोस्त्या को गुलदाउदी के फूल पसंद थे। सान्या, ज़ीना, ल्यूबा, ल्यूदा और साश्को कार्नेशियन और ट्यूलिप उगाते थे। वान्या, वीत्या और पेत्रिक ने लिलक की कुछ झाड़ियां लगाईं। मैं बच्चों को यह बताता था कि फूलों की देख-रेख कैसे करनी चाहिए, कैसे पौध बनानी चाहिए और फूलों के लिए सही जगह चुननी चाहिए।

फूलों से प्रेम कोल्या और उसकी मां के बीच झगड़े का कारण बना। कोल्या को तापघर में काम करना अच्छा लगता था। मैंने उसे गुलदाउदी के तीन पौधे दिए और यह बताया कि वह उन्हें कैसे लगाए। उन्हीं दिनों हम बच्चों में टमाटर की अच्छी क़िस्मों की पौध भी बांट रहे थे। गुल-दाउदी के साथ कोल्या टमाटर के दसेक पौधे घर ले गया। मां ने टमाटर लगाए और बेटे ने फूल। लगभग दो सप्ताह बाद मां की नज़र गुलदाउदी के पौधों पर पड़ गई, उन्होंने अच्छी तरह जड़ पकड़ ली थी। मां ने पौधे उखाड़ कर फेंक दिए। उखड़े हुए पौधे देखकर कोल्या को रुलाई आ गई, वह भागा-भागा मां के पास पहुंचा। वह हंस पड़ी: "अरे, वाह, फूल न हुए, बड़ी सौग़ात हो गई! क्या करना है हमें फूलों का? आज तक तो कभी हमारे घर में किसी ने उगाए नहीं, अब तुझे ही उगाने की पड़ी है।" कोल्या ने चुपके से घर के पीछे एक कोने में पौधे लगा दिए।

कुछ समय बाद वह आसमानी फूलों का छोटा-सा गुलदस्ता लेकर मां के पास आया, बोला: "मां देखो, कितने सुंदर फूल हैं"। इन शब्दों के पीछे बच्चे के मन के न जाने कितने जटिल भाव छिपे हुए थे। शायद वह

कहना चाहता था: "मां, मैं चाहता हूं कि हमारे परिवार का जीवन भी इन फूलों जैसा सुंदर हो।"

"चिड़ियों के ग्रस्पताल" में बच्चे बड़ी सहृदयता के साथ काम करते थे।

ग्रांधी-पानी के बाद हम जंगल में जाते थे ग्रौर वहां सदा घोंसलों में से गिर पड़े नन्हे पंछियों को पाते थे। "चिड़ियों के ग्रस्पताल" में काफ़ी देर तक बच्चों की ग्रावाज़ें सुनाई देती रहती थीं। जाड़ों में जब तेज़ पाला पड़ता होता, तो बच्चे खिड़की के बाहर चिड़ियों के लिए कद्दू के बीज डालते थे। ढेर सारे टोमटिट पंछी यहां उड़ ग्राते थे। ग्रगर दाना कम पड़ जाता, तो चिड़ियां चिचियाती थीं। बच्चे कमरे में खिड़की के पास मेज़ पर दाना डालते थे, टोमटिट खिड़की के एक कोने में खुले हुए छोटे-से दरवाज़े में से ग्रंदर उड़ ग्राते थे ग्रौर दाना चुगते थे। धीरे-धीरे वे बच्चों के ग्रादी हो गए, ज़्यादा देर तक कमरे में रहने लगे, रात को ग्रगर बहुत तेज़ पाला पड़ रहा होता, तो वे कमरे में ही रह जाते थे। चिड़ियां चहचहाती थीं, बच्चों के कंधों, हाथों ग्रौर सिर पर बैठ जाती थीं। जब धूप निकली होती, तो चिड़ियां दाना चुगने ग्रातीं ग्रौर तुरंत ही उड़ जातीं। बच्चों का मन होता था कि चिड़ियां ज़्यादा देर तक उनके पास रहें। लगता था मानो चिड़ियां यह समझती हों: उनकी चीं-चीं में बच्चों को यह ग्रनुरोध सुनाई देता था: माफ़ करना, ग्राज हम ज़्यादा देर नहीं ठहर सकतीं।

कोल्या, यूरा, साश्को, कोस्त्या, पाव्लो कई-कई घंटे "चिड़ियों के ग्रस्पताल" में काम करते रहते थे। मैंने बच्चों को सलाह दी कि वे ग्रपने-ग्रपने घर पर भी चिड़ियों को दाना डालें। जाड़ों में खिड़की के पास बच्चों ने लकड़ी की छोटी-छोटी तख़्तियां लगा दीं ग्रौर उन पर वे दाना डालते थे। पाव्लो ने तो चिड़ियों के लिए छोटा-सा घर ही बना दिया।

पहली नज़र में ये सब बातें मामूली-सी लग सकती हैं, जिनका चरित्र-निर्माण प्रक्रिया के साथ कोई संबंध नहीं है। परंतु वास्तव में नन्हे जीवों की चिंता ही सहृदयता, संवेदनशीलता जैसे गुणों के विकास का साधन है।

तीसरी कक्षा से भरत पंछी का त्यौहार, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है, श्रम ग्रौर कलात्मक सृजन का त्यौहार भी हो गया। बालिकाएं मैदा गूंध कर उससे भरत पंछी बनाती थीं। हर बच्ची ग्रपनी इस सरल-सी कृति में भरत पंछी की तेज़ उड़ान को मूर्तित करने का प्रयास करती

थी। यह अपने ढंग का अनोखा कलात्मक सृजन था। बच्चियां एक दूसरे को अपने बनाए भरत पंछी दिखाती थीं, वे उनमें गति ही नहीं, गीत भी देखती थीं। "तेरा पंछी तो चुप है, मेरा गा रहा है," इन दिनों ऐसी बातें सुनी जा सकती थीं।

बच्चे जब बड़े हो जाएंगे, तो वे खेतों में, डेरी फ़ार्म में काम करेंगे। कोई हल चलाएगा, कोई फल-सब्ज़ियां उगाएगा और कोई गाएं दोहेगा। यह नितांत आवश्यक है कि छोटी उम्र में ही बच्चे धरती पर इस साधारण श्रम के सौंदर्य को अनुभव कर लें, कि खेती के ये आम काम बच्चों को ख़ुशियां प्रदान करें। ऐसा तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि उनके श्रम में खेल का तत्व न हो, उनमें श्रम की सामूहिक प्रेरणा न जागे, बाल-समुदाय में मैत्री और परस्पर सहायता के संबंध न हों। मेरे सभी छात्र साझे काम में गहरी दिलचस्पी लेते थे, उसके परिणाम के बारे में सोचते थे।

वसंत के आरंभ में हम पशुपालन फ़ार्म में गए, जहां तान्या के पिता काम करते थे। पशुशाला में हमें एक कोना दिया गया, यहां चार मेमने रखे गए—तान्या के पिता ने सबसे कमज़ोर मेमने चुने। "बच्चो, हम इन नन्ही जानों की देखभाल करेंगे। हम इन्हें दूध और घास का 'शोरबा' पिलाएंगे, जब तक ये मेमने हट्टे-कट्टे नहीं हो जाते, हम रोज़ इनकी टहल करेंगे," मैंने बच्चों से कहा।

प्रायः ऐसा सुनने में आता है: कई बच्चे तो ऐसे आलसी होते हैं कि किसी भी चीज़ में उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं होती; ऐसे निष्ठुर हृदय होते हैं कि उन पर किसी बात का कोई असर ही नहीं पड़ता। यह ठीक नहीं है। छोटे बच्चों को (किशोरों को नहीं; ११-१२ साल की उम्र में कुछ नहीं किया जा सकता) मेमनों की देखभाल जैसे किसी श्रम की प्रेरणा दीजिए, उनके साथ महीना-दो महीना काम कीजिए, और आप देखेंगे कि उदासीन से उदासीन बच्चों में भी काम के प्रति रुचि जाग उठेगी। बच्चे जब सामूहिक तौर पर श्रम के सौंदर्य से प्रोत्साहित होते हैं, तो यह उन्हें मेहनती बनाता है। हमारी कक्षा में एक भी बच्चा उदासीन या आलसी नहीं था और यह बच्चों को साधारण श्रम से प्राप्त प्रेरणा का परिणाम था।

हमने अच्छी-सी सूखी घास ढूंढ़ी, उसे बारीक-बारीक कूटकर मेमनों के लिए "शोरबा" उबाला। हम उन्हें दूध पिलाते थे। जब मेमने हरी

घास खाने लगे, तो बच्चे उनके लिए तापघर से जौ और जई की हरी चरी लाने लगे। जब मैदानों में घास उगने लगी, तो मेमनों के लिए हरी-हरी नरम-नरम घास के ढेर लग गए। तान्या के पापा ने पशुशाला के बाहर एक छोटा-सा बाड़ा बना दिया। यहां मेमने सारा दिन घास चरते थे। यह हमारा "भेड़ फ़ार्म" था।

स्कूली जीवन के तीसरे साल में बच्चों ने बछड़ों की देखभाल करनी चाही। यह अधिक गंभीर काम था। हमें गोशाला में एक कोना मिल गया। जाड़ों भर बच्चों ने तापघर में चरी के लिए जौ और जई उगाए। गर्मियों में वे घास सुखाते थे, जो जाड़ों में कुट्टी के काम आती थी। कई लड़के-लड़कियां प्रायः हर दिन गोशाला जाते थे।

वसंत जब अपने पूरे निखार पर आ गया, तो भेड़ों-मेमनों को दूर की चरागाह में रखा गया। बच्चे अपने नन्हे जीवों के बिना उदास होने लगे। उनका मन होता कि कम से कम एक दिन वे भी चरागाह में रहें। रविवार को हम चरागाह जाते थे, भेड़ों और मेमनों को चराते थे, गड़रियों द्वारा काटी घास के ढेर लगाते थे, वसंत की पहली घास तो मेमनों के लिए जीवनदायी चारा होती है। गर्मियों में, स्कूल की पढ़ाई ख़त्म होने पर बच्चे रोज़ाना ही चरागाह में जाते थे। जीवन-अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि इन्सान अगर बचपन में दैनंदिन कार्य के सौंदर्य से प्रोत्सा-हित नहीं हुआ, तो उसे खेती का साधारण श्रम कभी भी पसंद नहीं आएगा।

स्कूल के प्रायोगिक खेत में भी बच्चों का काम रोमांच का पुट लिए हुए था। पहली कक्षा में ही हमें ०.१ हैक्टर ज़मीन का टुकड़ा दे दिया गया था। बड़ी कक्षाओं के छात्रों के साथ मिलकर बच्चों ने यहां एक मकान बनाया – ईंट की दीवारें, खपड़े का छाजन, लकड़ी का फ़र्श, छोटी-सी अंगीठी, पानी का नल और बिजली। सब कुछ असली मकान जैसा ही था, फ़र्क़ इतना था कि यहां सब कुछ छोटा था। बच्चों ने इस इमारत का नाम रखा "हरा घर"। यहां पर वे प्रकृति के बारे में कहानियां पढ़ते और सुनते थे। बाद में, जब बच्चे तीसरी में थे, तो हम यहां बीजों के साथ प्रयोग करने लगे।

छोटे-से घर का निर्माण बच्चों के लिए खेल भी था और श्रम भी। जब काम पूरा हो गया, तो बच्चे अपने हाथों बनाई इस इमारत की बड़ी देखभाल करते थे। वे भली-भांति समझते थे कि यह उनके अपने श्रम

का परिणाम है। स्वयं अपने जीवन के अनुभव से उनके मन में जो यह बात बैठी थी, वह किन्हीं भी लंबे-चौड़े व्याख्यानों से नहीं बिठाई जा सकती।

बच्चा सामाजिक श्रम की रक्षा करे, संभाल करे, इसके लिए उसे सामाजिक निर्माण का पहला अनुभव प्राप्त होना चाहिए, भले ही वह आरंभ में मामूली-सा हो। मनुष्य भौतिक मूल्यों के सार को केवल तभी समझता है, जबकि वह सामाजिक वस्तु की भी अपनी व्यक्तिगत वस्तु की भांति क़द्र करता है। यह गुण बचपन में ही विकसित किया जाना चाहिए। अध्यापकों के मुंह से प्रायः यह शिकायत सुनने को मिलती है कि किशोर सामाजिक संपत्ति के प्रति लापरवाही बरतते हैं। इसका क्या कारण है? अगर आप चाहते हैं कि किशोरावस्था और यौवन के आरंभ में इन्सान में आत्मानुशासन की भावना हो, कि सामाजिक हितों के बारे में उसकी चिंता दिखावे की न हो, बल्कि उसके मन में सचमुच ही सामाजिक वस्तुओं की संभाल करने की इच्छा हो, तो कुछ ऐसा कीजिए कि बचपन में सामाजिक हित का कार्य बच्चे के लिए उसके अपने सुख, अपनी ख़ुशियों के साथ जुड़ जाए।

"हरे घर" के पास ही एक छोटा-सा खेत था, जहां हम गेहूं, जौ, बाजरा, मकई, सूरजमुखी उगाते थे। "हरे घर" में बच्चे बीज चुनते थे, फ़सल रखते थे और खाद तैयार करते थे। बच्चों के लिए यह श्रम कुछ नया जान पाने के रोमांच के साथ जुड़ा हुआ था। बच्चे सोचते हुए काम करते थे और काम करते हुए सोचते थे। उनके सम्मुख प्रकृति के रहस्य और नियम खुल रहे थे। मेरी चेष्टा यह थी कि बच्चे स्वयं अपने अनुभव से यह देख लें कि ज्ञान मनुष्य के लिए प्राकृतिक शक्तियों के उपयोग में सहायक होता है और वह केवल श्रम की प्रक्रिया में ही प्राप्त होता है। मैंने बच्चों को गेहूं के दाने की कहानी सुनाई, यह बताया कि किस तरह मनुष्य का श्रम उसके जीवन को संचालित करता है। बच्चों के सम्मुख मिट्टी का आश्चर्यजनक जीवन सजीव हो उठा। हम खेत में खाद डालते थे और देखते थे कि मिट्टी अधिक उपजाऊ हो रही है। बच्चों ने गेहूं के सौ-सौ दाने बोए और बड़ी दिलचस्पी से यह देखा कि पौधे कैसे उगते हैं। बच्चे खेत की मिट्टी को ऐसे "पोषित" करना चाहते थे, ताकि बालियों में मोटे-मोटे दाने भर जाएं। हर बच्चे की यह इच्छा थी कि वह अपने पौधों को ख़ूब अच्छी खाद दे। यह सचमुच ही सृजनात्मक कार्य था, जो बच्चों के मन में उमंगें भरता था और उन्हें सभी मामूली काम करने की

प्रेरणा देता था। बड़े ध्यान से बालियां काटकर बच्चों ने दाने गिने, उन्हें तौला: जिसकी फ़सल ज़्यादा थी, वह गर्व से फूला न समाता था, दूसरे अधिक अच्छी तरह काम करने की चेष्टा करते थे।

मुझे यह देखकर बड़ी ख़ुशी होती थी कि बच्चों को पौधों से गहरा लगाव होता जा रहा है, वे मिट्टी के जीवन को अनुभव करते हैं। तीसरी और चौथी में बच्चों ने जो गेहूं के दाने उगाए, वे आम तौर पर खेतों में उगाए जानेवाले दानों से दुगने बड़े थे।

"हरे घर" और तापघर में हम पोषक घोलों की सहायता से खीरे और टमाटर उगाते थे। जाड़ों में ही बच्चे कम्पोस्ट और काली मिट्टी मिलाने लगते थे, वसंत आने पर यह खाद खेत में डालते थे और शरद ऋतु में यहां आलू और टमाटर की ख़ूब अच्छी फ़सल बटोरते थे।

कुछ बच्चे "हरी प्रयोगशाला" में भी काम करते थे, वैसे तो यह विचली कक्षाओं के छात्रों के लिए थी। यहां बच्चे अपने बड़े साथियों की देख-रेख में वनस्पति विज्ञान के रोचक प्रयोग करते थे। यहां मैंने बच्चों को यह बताया कि किस तरह फलों के जंगली पेड़ों पर अच्छी क़िस्मों की क़लमें लगाई जाती हैं। दूसरी कक्षा में ही सब बच्चे यह बारीकी का काम सीख गए। उन्होंने प्रत्यक्षत: यह देखा कि प्रकृति पर ज्ञान की कितनी बड़ी सत्ता है, सिद्धांत और व्यवहार में कैसी एकता है।

बच्चे बड़ी अधीरता से वसंत आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब उनकी क़लमों में से कोंपलें फूटीं, तो उनकी ख़ुशी का ठिकाना न रहा। हमने तय किया कि हम अपनी नर्सरी बनाएंगे और वहां हर साल पौध तैयार किया करेंगे। बच्चों के लिए यह काम की एक और मनपसंद जगह हो गई। तीसरी कक्षा के बाद गर्मियों की छुट्टियों में जंगल में घूमते हुए बच्चों को आलूबुख़ारे का एक जंगली पौधा दिखा। हम उसे नर्सरी में लाए। सब बच्चों ने इस पर क़लमें लगाई—किसी ने आलूबुख़ारे की, किसी ने ख़ूबानी की और किसी ने आड़ू की। सब क़लमें लग भी गईं। बच्चे आश्चर्यचकित हो एक ही तने पर तरह-तरह के फलों की शाखाओं को बढ़ते देखते थे। २ साल बाद यहां फल लगे।

पहले भी कहा जा चुका है कि प्रकृति चिंतन का, सृजनात्मक बुद्धि का समृद्ध स्रोत है। प्रकृति की नियमसंगतियों को जानते-समझते हुए बच्चा इन्सान बनता है, क्योंकि धीरे-धीरे वह समझने लगता है कि वह प्रकृति के विकास की लंबी सीढ़ी के शिखर पर स्थित है। परंतु प्रकृति में ऐसी

कोई चमत्कारी शक्ति नहीं है कि वह आप से आप ही बच्चे की नैसर्गिक शक्तियों और उसकी बुद्धि का विकास करे, उसके चिंतन को समृद्ध बनाए। सक्रिय प्रयासों के बिना, परिश्रम किए बिना प्रकृति के रहस्यों को नहीं खोला और समझा जा सकता। जब मनुष्य सचेत रूप से प्राकृतिक शक्तियों का उपयोग करने के लिए पहला क़दम उठाता है, केवल तभी प्रकृति उसे पुरस्कृत करती है – आरंभ में तो थोड़ा-सा ही, परंतु ज्यों-ज्यों मनुष्य प्रकृति को जानने-समझने और साथ ही सृजन करने के लिए अधिकाधिक प्रयास करता जाता है, त्यों-त्यों वह उसे अधिक उदारतापूर्वक पुरस्कृत करती है। बच्चे जितना अधिक परिश्रम करते हैं, प्रकृति के उतने ही अधिक रहस्य उनकी चेतना के सम्मुख खुलते जाते हैं और उतनी ही अधिक नई तथा समझ में न आनेवाली बातें वे अपने चारों ओर देखते हैं। परंतु जितनी अधिक ऐसी अबोध्य बातें होती हैं, उतनी ही सक्रियता से दिमाग़ काम करता है; इन्सान को आश्चर्यचकित कर देना, उसके चिंतन को "भड़काने" का सबसे सीधा रास्ता है। गेहूं के बीजों को भुरभुरी ज़मीन में बोने से लेकर फ़सल की कटाई तक बच्चों के दिमाग़ में दो सौ से अधिक सवाल उठे: क्यों? कैसे? प्रकृति से संबंधित कार्यों का शायद ही ऐसा दूसरा कोई क्षेत्र होगा, जो इस तरह विचारों को जगाता हो, चिंतन की प्रेरणा देता हो, जैसे कि पेड़-पौधे, अनाज आदि उगाने का काम।

मैं यह चेष्टा करता था कि बच्चों के श्रम में विविधता हो, वह उनकी रुचियों और रुझानों को मुखरित करने में सहायक हो। स्कूल की वर्कशाप के बग़ल में ही हमने बच्चों के लिए एक कमरा बनाया। यहां मेज़ें रखीं, उन पर शिकंजे लगाए। बड़ी कक्षाओं के छात्रों ने दो छोटी-छोटी खरादें और एक बरमा मशीन लगाई। अलमारी में छोटे-छोटे रंदे, आरियां और धातु की वस्तुएं बनाने के लिए औज़ार तथा धातु की पतरियां और तारें आदि रखे हुए थे – यह सब मॉडल और डिज़ाइन बनाने के लिए चाहिए। कई लड़के-लड़कियों को यहां काम करना अच्छा लगता था, धीरे-धीरे उनकी एक मंडली बन गई।

दोपहर के खाने के बाद हम यहां आते थे और कई चीज़ों के मॉडल बनाते थे – जैसे कि पवन-बिजलीघर, मंड़ाई और गाहने की मशीनें, सचमुच के घर जैसा एक छोटा-सा घर भी यहां हमने बनाया। एक मेज़ और छोटे-छोटे औज़ारों के लिए अलमारी बनाई। सब बच्चे मिल-जुलकर लकड़ी तथा लोहे के पुर्ज़े बनाते थे। मॉडल जितना छोटा होता, उसे असली चीज़

जैसा बनाना जितना अधिक कठिन होता, उतनी ही अधिक दिलचस्पी से बच्चे काम करते थे।

बच्चों को इस काम में लगाने का मेरा सबसे बड़ा उद्देश्य यह था कि बच्चों की क्षमताएं और प्रवृत्तियां विकसित हों, उन्हें सृजन की ख़ुशी प्राप्त हो, वे ऐसे काम करने की योग्यता और अभ्यास पा लें, जिनकी उन्हें भविष्य में आवश्यकता पड़ सकती है। मैं अपने उदाहरण से बच्चों में शौक़ जगाने की कोशिश करता था: उन्हें दिखाता था कि कैसे औज़ारों से काम लेना चाहिए, लकड़ी और धातु की चीजें बनानी चाहिए। शिक्षक का कौशल वह चिनगारी है, जो बच्चों में किसी काम के प्रति रुझान की ज्वाला भड़काती है, उन्हें प्रेरणा देती है। इस कार्यशाला में सबसे पहले मैंने बच्चों को गुड़िया के लिए एक पलंग बनाकर दिखाया। ज्यों-ज्यों पलंग सचमुच के पलंग जैसा होता जा रहा था, त्यों-त्यों बच्चों की आंखों में चमक बढ़ती जा रही थी: वे इस काम में हिस्सा लेना चाहते थे। कई बच्चे मेरी मदद करने लगे: वे पलंग के अलग-अलग हिस्सों को रंदने और चिकना करने लगे। जब हम पवन-बिजलीघर का मॉडल बनाने लगे, तब तक कई बच्चे केवल मेरी सहायता ही नहीं करते थे, बल्कि स्वयं बहुत कुछ बनाने लगे थे। यूरा, वीत्या और मीशा ने काफ़ी जल्दी ही औज़ारों से काम लेना सीख लिया। सभी काम करना चाहते थे, इसलिए हम एक-साथ कई चीज़ों के मॉडल बनाने लगे।

यहां मैं एक बात की ओर पाठकों का ध्यान दिलाना चाहूंगा। बच्चों की क्षमताओं और प्रतिभा का स्रोत उनकी उंगलियों के सिरों पर होता है। कहा जा सकता है कि उंगलियों के सिरों से ऐसी सूक्ष्म धाराएं निकलती हैं, जो सृजनशील विचार के स्रोत को पोषित करती हैं।

बच्चे के हाथों में जितना हुनर होता है, उतना ही वह बुद्धिमान होता है। लेकिन यह हुनर किसी अंतःप्रेरणा से नहीं आ जाता। वह बच्चे की बौद्धिक और शारीरिक शक्ति पर निर्भर होता है। ज्यों-ज्यों हुनर निखरता जाता है, त्यों-त्यों बौद्धिक शक्ति बढ़ती है। उधर हुनर भी दिमाग़ से ही निखरता है। मैं यह कोशिश करता था कि बच्चों के लिए अपने चारों ओर के संसार का संज्ञान उनके हाथों और परिवेश की सक्रिय अन्योन्यक्रिया हो, कि वे केवल आंखों से ही नहीं, बल्कि हाथों से भी प्रेक्षण करें, कि वे केवल प्रश्नों द्वारा ही नहीं, बल्कि श्रम द्वारा भी अपनी जिज्ञासा व्यक्त और विकसित करें।

"ख़ुशियों के स्कूल" के पहले दिनों से ही मेरे छात्र तरह-तरह के पेड़-पौधों के बीजों और लकड़ी के नमूने इकट्ठे करने लगे। बच्चे विभिन्न वस्तुओं का प्रेक्षण करते हुए तो उनके गुणों का अध्ययन करते ही थे, साथ ही हाथ में हथौड़ी, चाकू, कैंची और छेनी जैसे सीधे-सादे औज़ार लेकर वे तरह-तरह की सामग्री के साथ काम करते हुए भी उसके गुणों का ज्ञान पाते थे। पहली और दूसरी कक्षा में बच्चों ने छोटे-से चाकू से काम लेना सीखा। वे अलग-अलग क़िस्म की लकड़ी (एश, बलूत, चीड़, नाशपाती, चैरी, पाप्लर आदि) की पतली-पतली पतरियां काटते थे, उन्हें घिस-घिसकर चिकना करते थे और काग़ज़ पर चिपकाते या सीते थे। बच्चे इन पतरियों की मज़बूती तथा दूसरे गुणों की दृष्टि से तुलना करते थे। एश वृक्ष के तनों पर होनेवाली अपवृद्धि से, जो एक बहुत लचीला पदार्थ है, बच्चे अक्षर तथा पशु-पक्षियों की आकृतियां बनाते थे। हमारे गांव से थोड़ी दूर एक ग्रेनाइट की गुफा है। हम यहां तरह-तरह के पत्थरों के नमूने लेने आते थे। बच्चे अपनी छोटी-छोटी हथौड़ियों से अबरक के टुकड़े तोड़ते थे, रंग-बिरंगे पत्थर इकट्ठे करते थे। चिकनी मिट्टी से बच्चे छोटी-छोटी ईंटें बनाकर उन्हें धूप में सुखाते थे और फिर उनसे खिलौनों के घर बनाते थे। गर्मियों में फ़सल की कटाई के समय हम रई और गेहूं के तीर जैसे सीधे डंठल काटकर उनसे टोपियां और दूसरी चीज़ें बुनते थे।

इस सब का उद्देश्य बच्चों को तकनीकी काम करना सिखाना ही नहीं था। बच्चों के हाथों का हुनर बढ़ाते हुए मैं उनकी बुद्धि विकसित करता था। जब हम पवन-बिजलीघर का मॉडल बना रहे थे, तो बच्चों ने यह सुझाया कि इसके लिए पंख लोहे की पतरी की जगह लकड़ी के क्यों न बनाए जाएं। सेर्योझा ने कहा: "बहुत हल्की और मज़बूत लकड़ी भी तो है। उससे ऐसे पंख बनाए जा सकते हैं, जो ज़रा-सी हवा से घूमने लगेंगे..."

प्राथमिक विद्यालय में चार साल तक पढ़ते हुए बच्चों ने ३० क्रियाशील मॉडल बनाए, इनकी संरचना प्रायः उतनी ही जटिल थी, जितनी पवन-बिजलीघर के मॉडल की थी, जो एक छोटे-से जेनरेटर को चलाता था। वर्ष-प्रति-वर्ष बच्चों के रुझान और प्रवृत्तियां मुखरित होते जा रहे थे। शूरा, वीत्या, मीशा, सेर्योझा और यूरा तो लोहे और मशीनों पर लट्टू थे। वे घंटों ख़राद और शिकंजों के पास खड़े काम करते रह सकते थे। कितना वक़्त बीत गया इसकी तो उन्हें कोई ख़बर ही नहीं रहती थी और कई बार

तो बड़ी मुश्किल से उन्हें घर भेजना पड़ता था। लड़कों को शिकंजों और ख़रादों पर लकड़ी और धातु के छोटे-छोटे पुर्ज़े बनाते देखकर मुझे याद आया कि कैसे "ख़ुशियों के स्कूल" और पहली कक्षा में ही बच्चों ने लकड़ी के अक्षर काटने सीखे थे। लड़कों के इन शौक़ों में उनके भावी व्यवसाय के कोई पूर्वलक्षण देखना भोलापन होगा। जीवन अनुभव यह दिखाता है कि हुनर में, कौशल में अनेक जटिल रूपांतरण होते हैं। विरले ही ऐसा होता है कि बड़ा होने पर आदमी वही बने, जिसका वह बचपन में सपना देखा करता था।

शारीरिक श्रम बौद्धिक विकास के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा होता है। हस्त-कौशल, हाथों का हुनर जिज्ञासु बुद्धि, समझ और सृजन-कल्पना का मूर्त रूप होता है। यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि बचपन में हर बच्चा अपने मन में सोची किसी बात को हाथों से पूरा करे।

चौथी कक्षा में पढ़ते हुए बच्चों ने अपने लिए कुछ औज़ार बनाए— छोटे-छोटे पतले और मोटे रंदे। लड़के सबसे सीधे-सादे उपकरण के बारे में भी नहीं भूले: चाकू से वे अपने गुड़ियों के और छाया थियेटर के लिए तरह-तरह के पशु-पक्षियों, चुड़ैल और राक्षस की आकृतियां बनाते थे। सेर्योझा और मीशा ने दो मछलीघर बनाए—एक कक्षा में और दूसरा "कथा-लोक" में रखने के लिए।

एक और दिलचस्प काम बच्चों के लिए बहुत हर्षप्रद रहा: हमने आंतरिक दहन के इंजन से चलनेवाला एक छोटा-सा बिजलीघर बनाया। बिजलीघर में अल्प वोल्टता की बिजली बनती थी, जिससे बच्चों को कोई ख़तरा नहीं था।

तीसरी और चौथी में हर हफ़्ते बच्चों के अपने मनपसंद काम के दो पीरियड होते थे। कुछ बच्चे "हरे घर" में जाते और कुछ कार्यशाला में, कुछ तापघर में और कुछ प्रायोगिक खेत में या बाग़ में काम करते। जिन्हें मेमनों और बछड़ों से प्रेम था, वे पशु-फ़ार्म में जाते थे। हर छात्र इन पीरियडों में वह काम करता था, जो उसे सबसे ज़्यादा पसंद था। मैं एक दिन एक जगह बच्चों के पास जाता और दूसरे दिन दूसरी जगह। हर ग्रुप में कुछ बच्चे ऐसे थे, जिनमें निश्चित कार्य के प्रति रुझान विशेष तीव्रता के साथ मुखरित हुआ था। वे अपने ग्रुप के नेता, संगठनकर्त्ता हो जाते थे, अपने उदाहरण से साथियों को प्रेरित करते थे। कार्यशाला में यूरा नेता था, खेती के शौक़ीनों में वान्या सबसे आगे था, बाग़बानी में वार्या

और पशुपालन में साझा। मुझे यह देखकर बहुत ख़ुशी होती थी कि ये बच्चे बहुत कुछ करना जानते हैं और इनका ज्ञान अपने हमउम्रों की अपेक्षा कहीं अधिक है। दूसरे बच्चे भी उनके जैसे बनने की कोशिश करते थे और इस तरह बच्चों का श्रम सृजन-क्षमता की प्रतियोगिता का रूप ले लेता था।

मेरे छात्रों के लिए श्रम शारीरिक और बौद्धिक शक्तियों का खेल था, आत्म-सम्मान की पुष्टि का साधन था, और इसी रूप में उसने उनके आत्मिक जीवन में अपना स्थान बनाया। यह बात बहुत मानी रखती है कि बचपन में हर इन्सान अपने मनपसंद काम में उल्लेखनीय सफलता पा ले, कि वह अपनी सृजन क्षमताओं को मूर्तित होते हुए देखे, अपने मनपसंद काम में हुनर हासिल कर ले—बेशक, यह हुनर बच्चों के लिए संभव स्तर तक ही हो सकता है। स्कूल में पढ़ते हुए कोई एक काम उसे बहुत अच्छी तरह और ख़ूबसूरती से करना आ जाना चाहिए। अपने मन-पसंद काम में प्राप्त सफलता से बाल-हृदय में जो गर्व की भावना उठती है वह आत्मचेतना का पहला स्रोत होती है, ऐसी पहली चिनगारी होती है, जो बाल-आत्मा में सृजन-प्रेरणा की ज्वाला जलाती है। इस प्रेरणा के बिना, हर्षमय उत्तेजना और जीवन की पूर्णता की अनुभूति के बिना तो मनुष्य मनुष्य नहीं हो सकता, यह विश्वास नहीं हो सकता कि वह जीवन में अपना उचित स्थान पा लेगा। मैं यह प्रयत्न करता था कि स्कूल में एक भी बच्चा ऐसा न हो, जिसने श्रम में अपने व्यक्तित्व को मुखरित न किया हो।

अपने हर छात्र के बचपन को याद करते हुए मैं उसकी हर्षमय आंखें देखता हूं, जिनमें श्रम में प्राप्त सफलता पर गर्व की चमक है।

मेरे स्मृति-पटल पर कुछ ऐसे चित्र उभरते हैं: हाथ में छोटा-सा रेडियो लिए सेर्योझा खड़ा है। चौथी कक्षा में उसने यह रेडियो बनाया था: ३ महीने के अथक परिश्रम के पुरस्कारस्वरूप उसे यह अपार हर्ष मिला। फ़ेद्या आड़ू के खिलते पेड़ के पास खड़ा है—उसने आलूबुख़ारे के जंगली पौधे पर आड़ू की क़लम लगाई थी। उसके यत्नों से इस पेड़ पर फूल खिले और फल लगे। वाल्या मेरी स्मृति में उस क्षण अंकित हुई, जब वह गोद में नन्हे मेमने को उठाए पशु-फ़ार्म में से निकली थी। बच्ची ने मरियल-से मेमने की देख-रेख करके उसे हृष्ट-पुष्ट बनाया था। तीना नीले गगन तले धूप में खिलते गुलाब के फूलों को देखकर मुस्कराती है—उसने जंगली

गुलाब में लाल गुलाब की आंखें लगाईं और उनसे गुलाब का अतिसुंदर पौधा उगा। जब कोई साश्को का नाम लेता है, तो मुझे काली आंखोंवाला बालक दिखता है, जो हाथों में गेहूं का पूला उठाए है; तीन वर्ग मीटर ज़मीन पर उसने जो गेहूं उगाया था, उसे तौलकर हमने देखा कि इतने बड़े दानों से एक हैक्टर पर अस्सी क्विंटल फ़सल होती। स्कूल के कुएं के पास सेब का एक छतनारा पेड़ है। हर साल वसंत में जब उस पर फूल आते हैं, तो मैं मंत्रमुग्ध-सा उनकी अनुपम गुलाबी छटा को देखता हूं और मुझे लगता है अभी एक छोटी-सी बच्ची, बालों में सफ़ेद रिबन बांधे भागी-भागी आएगी और मुस्कराकर कहेगी: "यह तो मेरा पेड़ है"। पहली बार जब इस पेड़ पर फूल खिले थे, तब कात्या ने यही कहा था। कोस्त्या उदास खड़ा है, नन्ही-सी बछिया को वह छाती से लगाए है, पर बछिया उसके लाड़-प्यार का जवाब नहीं देती – वह बीमार है।

इस तरह मुझे सब बच्चे याद आते हैं – सभी बच्चों के मन में किसी न किसी काम की लगन है। परंतु मैं ऐसा कदापि नहीं सोचता कि यह लगन बच्चों के भावी जीवन मार्ग को किसी हद तक पूर्वनिर्धारित करती है। अगर बच्चा सजीव प्रकृति के जीवन पर मुग्ध है, अगर बाग़ में या खेत में काम उसे ख़ुशियां प्रदान करता है, तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह ज़रूर ही बाग़बान या कृषिविशेषज्ञ बनेगा। बच्चों की क्षमताएं, रुचियां, रुझान गुलाब के पौधे की भांति होते हैं: एक फूल खिलकर झड़ रहा है और उधर दूसरी कली की पंखुड़ियां खुल रही हैं। हर बच्चे के कुछेक शौक़ थे, इसके बिना तो उनके समृद्ध आत्मिक जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पर हां, किसी एक काम में उनकी योग्यता विशेषतः मुखरित होती थी। जब तक बच्चा किसी एक काम में महत्वपूर्ण सफलता नहीं पा लेता था, तब तक वह एक व्यक्तित्व के रूप में स्मृति-पटल पर अंकित नहीं होता था। परंतु जैसे ही श्रम से बच्चे को गहरा व्यक्तिगत हर्ष प्राप्त होने लगता, उसी क्षण से एक मानव व्यक्तित्व प्रकट होने लगता।

वह श्रम, जिसमें इन्सान उच्च कौशल पा लेता है, वह व्यक्तित्व की पुष्टि करता है और चरित्र-निर्माण का सशक्त स्रोत होता है। अपने को सृजनकर्त्ता अनुभव करते हुए मनुष्य जैसा वह है, उससे भी अधिक अच्छा बनने का यत्न करता है। निस्संदेह, यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण है कि बचपन में ही, किशोरावस्था की दहलीज़ पर मनुष्य अपनी सृजन क्षमता और

शक्ति की चेतना पा लेता है। इस चेतना में ही व्यक्तित्व के गठन का सार निहित है।

यहां पर एक बार फिर मैं शैक्षिक प्रभावों में सामंजस्य की उस समस्या की ओर ध्यान दिलाना चाहूंगा, जिसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है। लक्ष्यबद्ध शैक्षिक प्रभाव के रूप में श्रम अनेक अन्योन्याश्रयों और संबंधों द्वारा दूसरे शैक्षिक प्रभावों से जुड़ा होता है और अगर इन संबंधों को कार्यान्वित नहीं किया जाता, तो श्रम सिर पर थोपी गई निरर्थक जिम्मेवारी बनकर रह जाता है, उससे न मस्तिष्क को कुछ मिलता है और न मन को ही कोई संतुष्टि होती है। हम अपनी मनोवैज्ञानिक गोष्ठी में श्रम तथा दूसरे शैक्षिक प्रभावों के बीच सामंजस्य की समस्या पर विशेष ध्यान देते थे। बौद्धिक विकास में हाथों की भूमिका पर हुआ विचार-विमर्श अत्यंत रोचक रहा। हमारे शिक्षक समुदाय में श्रम और दूसरे शैक्षिक प्रभावों के बीच अन्योन्याश्रयों और परस्पर संबंध की समस्या का अध्ययन अभी तक जारी है।

तुम देश के भावी स्वामी हो

पहली कक्षा में ही मुझे एक सहायिका मिल गई, यह छठी कक्षा की बारह वर्षीया छात्रा ओल्या थी। उसने स्कूल के पायोनियर दल की समिति से अनुरोध किया कि उसे नन्हे-मुन्नों को पायोनियर संगठन में शामिल होने के लिए तैयार करने का काम सौंपा जाए। ओल्या को बच्चों से बड़ा प्रेम था और यही सबसे बड़ी बात थी। (हमारे स्कूल में पायोनियर लीडर नियुक्त नहीं किए जाते; बच्चों के साथ वही काम करता है, जिसके मन में इसकी चाह हो और जिसे बच्चों से गहरा लगाव हो।) ओल्या कई कामों में मेरी सहायता करती थी: वह बच्चों के साथ तरह-तरह के खेल खेलती थी, उन्हें जंगल और खेतों-मैदानों में घुमाने ले जाती थी, उन्हें वीर पायोनियरों के बारे में, महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध में सोवियत लोगों के पराक्रम के बारे में बताती थी।

ओल्या ने स्कूल में वह काम आरंभ किया, जो अब पिछले पंद्रह साल से जारी है और बच्चों की विचारधारात्मक शिक्षा में बहुत बड़ी भूमिका अदा करता है। मेरे परामर्श पर उसने महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध

के वीरों की बच्चों के साथ भेंटें आयोजित कीं। वीरों की कहानियां इतनी रोचक थीं कि ओल्या ने उन्हें लिख लिया। धीरे-धीरे इन कहानियों की एक डायरी बन गई, जिसका नाम बच्चों ने रखा: 'वीरों की कहानियां'। ओल्या ने और फिर दूसरे पायोनियरों ने इसमें सौ से अधिक कहानियां लिखीं। डायरी में वीरों के छविचित्र भी लगाए गए। अब इस डायरी में ६०० से अधिक कहानियां हैं। यह मातृभूमि के प्रति प्रेम की भावना जगाने का ज्वलंत, अमूल्य स्रोत है।

ओल्या के लिए हमेशा बच्चों के साथ रहना कोई उस पर थोपा गया कर्त्तव्य नहीं था, बल्कि यह तो उसकी आत्मा की चाह थी। इस चाह को मैं एक विलक्षण प्रतिभा समझता हूं – मानवीयता की प्रतिभा। जिस व्यक्ति में यह गुण होता है, वह सच्चा शिक्षक बनता है और अपने श्रम से परम आनंद पाता है। स्कूल में बच्चों को अगर आप ध्यान से देखें, तो बहुत-से ऐसे लड़के-लड़कियों को पाएंगे, जो अपने नन्हे मित्रों के लिए कुछ किए बिना नहीं रह सकते। लड़कों में यह चाह अक्सर शरारतें, नटखटी और चालाकी भरी चालों के रूप में व्यक्त होती है। बालक सरदार बनना चाहता है, वह अपने साथियों की रहनुमाई करना चाहता है, लेकिन उसे यह नहीं पता होता कि अपनी शक्ति किस काम में लगाए। अध्यापकों को मेरा परामर्श है: बच्चों के जोश को ठंडा मत कीजिए। चंचल, नटखट लड़के आपके सहायक हो सकते हैं। आप उन्हें अपने निकट लाइए और उनकी शक्ति, उनके जोश को आवश्यक दिशा प्रदान कीजिए।

मेरी कोशिश यह थी कि पायोनियर संगठन में शामिल होने की तैयारी तथा बाद में पायोनियर दल का जीवन भी ऐसा हो कि उससे बच्चों के मन में हमारी पवित्र धरती के प्रति प्रगाढ़ प्रेम की भावना जागे, उस धरती के प्रति, जो मुक्ति और स्वतंत्रता के सेनानियों के ख़ून से रंगी हुई है। बच्चा अपने चारों ओर के जिस सौंदर्य पर विमुग्ध होता है, जिसका वह रसपान करता है, जो उसकी आत्मा का एक अंश बन जाता है, वही मातृभूमि के प्रति प्रेम का पहला अंकुर है। ओल्या और मैं यह जतन करते थे कि बच्चे अपने आस-पास की प्रकृति के तथा उस सब के सौंदर्य को देखें, जो सोवियत मानव के हाथों निर्मित हुआ है।

हम स्तेपी में टीले पर जा बैठते थे, दूर-दूर तक लहलहाते गेहूं के खेतों को निहारते थे, फूलों से लदे बाग़ों को मंत्र-मुग्ध हो देखते थे, सुघड़ पाप्लर वृक्षों, नीले गगन और भरत पंछी के गीत का रसास्वादन करते थे।

उस धरती के सौंदर्य पर मोहित होना, जहां हमारे दादा और परदादा रहते थे, जहां हमें भी अपना जीवन बिताना, अपनी संतान में जीवन को आगे बढ़ाना और जिस मिट्टी ने हमें जन्म दिया, उसी में मिल जाना बदा है—यह मातृभूमि के प्रति प्रेम का एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत है। संसार में ऐसे देश भी हैं, जहां की प्रकृति हमारे खेतों-मैदानों से अधिक रंग-बिरंगी और विविधतापूर्ण है, परंतु अपनी जन्मभूमि का सौंदर्य हमारे बच्चों के लिए सबसे अधिक प्रिय होना चाहिए। बच्चे मात्र यह देखें ही नहीं कि कैसे वसंत में वृक्ष फूलों का श्वेत परिधान ओढ़ लेते हैं, कैसे उन पर मधुमक्खियां मंडराती हैं, कैसे सेबों में रस भरता है और टमाटर लाल होते हैं—इस सब से उनके मन में हर्ष की, अपने आत्मिक जीवन की पूर्णता की अनुभूति होनी चाहिए। अच्छा है कि उन्हें बचपन ज्वलंत बिंबों के रूप में याद आए: फूलों का श्वेत परिधान ओढ़े बाग़, कूटू के खेत पर मधुमक्खियों का अनुपम गुंजन, शरद के गहरे नीले आकाश में क्षितिज पर उड़ते सारसों की डारें, तपी हवा में दूर कहीं थरथराते नीले टीले, लोहित सूर्यास्त, तालाब के दर्पण पर टहनियां झुकाए खड़े वृक्ष, सड़क के किनारे सुघड़ पाप्लर—अच्छा है कि बचपन में जीवन के सौंदर्य के रूप में, जी-जान से भी प्यारी यादों के रूप में इस सब की छाप हृदय में बनी रहे।

परंतु इस सौंदर्य के साथ-साथ इस विचार को भी बाल-हृदय में स्थान बनाने दीजिए कि अगर जाड़ों की एक सुबह को १६ वर्षीय जवान अलेक्सान्द्र मत्रोसोव ने दुश्मन की मशीनगन पर गिरकर अपनी छाती से अपने साथियों के रास्ते को गोलियों की बौछार से न बचाया होता, अगर निकोलाई गस्तेल्लो ने अपना आग की लपटों से घिरा विमान दुश्मन के टैंकों पर न गिराया होता, अगर वोल्गा से एल्बा तक हज़ारों-हज़ार वीरों ने अपना ख़ून न बहाया होता, तो यह खिलता बाग़, यह मधुमक्खियों का गुंजन, मां की लोरी और सुबह तड़के के मीठे सपने, जब मां बड़े स्नेह से तुम्हारे पैरों पर रज़ाई ओढ़ती है—यह सब कुछ न होता। यही विचार हम बच्चों की चेतना में उस क्षण बिठाते हैं, जबकि वे अपने चारों ओर के संसार और स्वयं अपने होने की, अर्थात् अपने अस्तित्व की ख़ुशी अनुभव कर रहे होते हैं। मैं बच्चों को यह बताता हूं कि किस प्रकार यहां हमारे गांव में, इन खेतों में, इन पेड़ों तले सोवियत सैनिक हमारी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए लड़े थे।

अस्तित्व की ख़ुशी – व्यक्तित्व की आत्मचेतना की एक सबसे ज्वलंत अभिव्यक्ति मात्र ही नहीं है, बल्कि बच्चा अपने इर्द-गिर्द जो देखता है, उसके प्रति उसका सक्रिय रुख़ और उसके द्वारा संसार का मूल्यांकन भी है। समाजवादी समाज का जीवन-तर्क ऐसा है कि चारों ओर के संसार के सौंदर्य को हमारे छात्रों के लिए बचपन की ख़ुशियों का, अस्तित्व की ख़ुशी का एक सबसे महत्वपूर्ण स्रोत होना चाहिए। इसलिए शिक्षक को यह कोशिश करनी चाहिए कि हर फूल, हर घास-पात बच्चे को ख़ुश करे। परंतु क्या बच्चों को उनके चारों ओर के संसार से केवल इसीलिए अनुराग हो जाएगा कि वह सुंदर है? आख़िर अस्तित्व की ख़ुशी तो कुछ ऐसे आनंद मात्र ही हैं, जो बच्चों को बड़ी पीढ़ियों से मिलते हैं। नन्हे इन्सान को अपने इर्द-गिर्द के संसार से तभी अनुराग होता है, जबकि वह मातृभूमि की स्वतंत्रता और मुक्ति के लिए दादाओं और परदादाओं द्वारा बहाए गए ख़ून, पसीने और आंसुओं को देखता और अनुभव करता है। लिथुआनियाई कवि मार्तिंक्याविचुस ने अपनी कविता 'ख़ून और राख़' में अस्तित्व की ख़ुशी और नागरिक भावनाओं के सामंजस्य को बड़ी अच्छी तरह व्यक्त किया है:

देशप्रेम का वरदान दें, माताएं,
बच्चों को अपने,
उदात्त ये भावनाएं, बनाएं
साहसी और पावन हृदयों को उनके।
कान में फूंक दो उनके यह बात
अर्द्धरात्रि की ताराप्रभा में गगन हमारा
हो न चाहे अधिक ऊंचा, अधिक सुंदर
पर न है वह औरों जैसा।
भावनाएं जिनमें ये हैं संचारित,
होंगे वे सभी बच्चों को प्रिय।

जिन लोगों ने सौंदर्य की रक्षा की है, उनके सम्मुख उत्तरदायित्व की भावना जब अस्तित्व की ख़ुशी में मिल जाती है, तभी मातृभूमि जी-जान से भी प्यारी होती है। इस मिलन में ही युवा पीढ़ी की नैतिक और सौंदर्यबोधात्मक शिक्षा का सामंजस्य व्यक्त होता है। अस्तित्व की ख़ुशी ऐसी नहीं होनी चाहिए कि बच्चा कुछ सोचे-विचारे ही नहीं, उसे कोई

चिंता ही न हो। कुछ अध्यापकों का यह सोचना बिल्कुल ग़लत है कि समाजवादी समाज का स्वाधीन नागरिक होने के सुख के लिए झेले गए दुखों, यातनाओं के बारे में, बाप-दादाओं के बलिदानों के बारे में कहानियां सुनाना बचपन की ख़ुशियों में कड़ुवाहट घोलना है।

शरद के आरंभ का धुपहला दिन है, सेबों से लदी टहनियां झुकी जाती हैं, अंगूर के बड़े-बड़े गुच्छे लटक रहे हैं, फ़ार्म में गेहूं के ढेर लगे हुए हैं, पारदर्शी वायु में रुपहले तार तैरते हैं। ओल्या के साथ हम बच्चों को गांव के बाहर ले जाते हैं। यहां एक ऊंची टीला है, जहां से अत्यंत रमणीय दृश्य दिखाई देता है: नीचे खेत में हरे-हरे तरबूज़, खेत के आगे बाग़ और बाग़ के पीछे सुघड़ पाप्लरों की क़तारें, उनके आगे स्तेपी में पतझड़ में बोए हुए गेहूं के लहलहाते खेत और क्षितिज पर नीले झुटपुटे में खड़े टीले। बच्चों के लिए ये अविस्मरणीय क्षण हैं। वे अनुभव करते हैं कि इस अनुपम छटा में उनके सुखी बचपन का एक अंश है: इन दूर-दूर तक फैले खेतों से शाम को माता-पिता लौटते हैं, उनकी आंखों में स्नेह भरा होता है। हम टीले पर बैठ जाते हैं, मैं बच्चों को एक कहानी सुनाता हूं, जिसमें भलाई और बुराई का संघर्ष है, भलाई की विजय पर बच्चे ख़ुश होते हैं।

एक हफ़्ते बाद हम फिर यहां आते हैं, प्रकृति के इस मनोहर दृश्य में बच्चे बहुत कुछ नया देखते हैं: शरद ऋतु ने अपनी कूंची से लाल, पीला, कत्थई रंग भर दिया है, सेब और पाप्लर वृक्षों की पत्तियां सुनहरी हो गई हैं, पतझड़ में बोए हुए गेहूं के खेतों की हरियाली और भी चमकीली हो उठी है, आकाश की नीलिमा और भी गहरी हो गई है। इस प्रकार हम हर सप्ताह एक ही समय पर अपने इस स्थान पर आते हैं, प्रकृति के सौंदर्य को निहारते हैं, लोक कथाओं में भलाई और बुराई के संघर्ष पर उत्तेजित होते हैं, शरद स्तेपी का संगीत सुनते हैं, निर्मल स्वच्छ वायु में सांस लेते हैं और ये सपने देखते हैं कि कैसे हम वसंत में यहां भरत पंछी का गीत सुनेंगे। स्तेपी का यह कोना बच्चों के आत्मिक जीवन में अपना स्थान बना लेता है, उन्हें इससे लगाव हो जाता है। यह मातृभूमि का पहला ज्वलंत बिंब है, जो बाल-हृदय में सदा के लिए अंकित हो जाता है।

जब तक बच्चे ने अपने चारों ओर के संसार के सौंदर्य को ग्रहण नहीं किया है, उसे उसकी गहरी अनुभूति नहीं हुई है, तब तक उसके हृदय में मातृभूमि की भावना भी नहीं बिठाई जा सकती। बच्चों को यह बताने

से पहले कि बड़ी पीढ़ियों ने उनके सुखी बचपन के लिए क्या कुर्बानियां दी हैं, उन्हें अपने जन्म-स्थल की प्रकृति का सौंदर्य देखना चाहिए। अच्छा है कि बच्चे के हृदय में जीवन भर के लिए बचपन के एक कोने की यादें समा जाएं, कि इस कोने के साथ उसके लिए महान मातृभूमि का बिंब जुड़ा हो।

शरद के एक सुहावने दिन को मैं बच्चों को टीले के शिखर पर एक गड्ढे का निशान दिखाता हूं, कहता हूं :

"बच्चो, यह गड्ढा देख रहे हो न। वक़्त ने इसे प्रायः भर ही दिया है, इसमें घास उग आई है।... आज के जैसा ही एक धुपहला दिन था। इस रास्ते पर हमारी फ़ौजें द्नेप्र के पार हट रही थीं। एक बिल्कुल नौजवान सैनिक अपनी मशीनगन लिए इस टीले पर आया। उसे दुश्मन को यहीं रोके रखना था, द्नेप्र की ओर नहीं बढ़ने देना था। सड़क पर दुश्मन के मोटरसाइकिल सवार सैनिक दिखाई दिए। जवान ने उनका ख़ात्मा कर दिया। फ़ासिस्ट तोपें टीले पर गोले बरसाने लगीं। देखो, दक्षिण की ओर से टीला खुदा हुआ-सा लगता है। यहां की मिट्टी में जानलेवा लोहा भरा हुआ है। धमाके बंद हुए, सड़क पर फिर मोटर-साइकिल सवार फ़ासिस्ट बढ़े, और टीला फिर से जी उठा – सोवियत सैनिक की गोलियां दुश्मन को छेद-छेद कर रही थीं। फ़ासिस्टों ने टीले की ओर एक टैंक भेजा। वहां, उन पेड़ों के पास खड़ा होकर वह टीले पर आग बरसाने लगा। टैंक शांत हुआ और सड़क पर फिर दुश्मन के सिपाही बढ़े और फिर से टीला जी उठा। नौजवान बुरी तरह से घायल हो गया था, उसकी बांह, सिर और छाती से ख़ून बह रहा था, पर वह दुश्मन से जूझे जा रहा था। उसकी आंखों में ख़ून भर रहा था, वह जानता था कि वह आख़िरी बार अपनी मातृभूमि के ऊपर यह नीला आकाश देख रहा है। मशीनगन के पास ही जब एक गोला आकर फटा, तभी उस नौजवान के दिल की धड़कन बंद हुई। शाम को गांव के लोग यहां आए, एक गड्ढा खोदकर उसमें उन्होंने ख़ून से लथपथ देह को दफ़ना दिया। जब तक सोवियत सेना ने हमारे गांव को दुश्मन से आज़ाद नहीं कराया, तब तक उस वीर की अस्थियां यहीं रहीं। नौजवान के सैनिक मित्र टीले पर आए, उन्होंने उसकी अस्थियां निकालीं और उन्हें गांव में ले जाकर आदर-सम्मान के साथ शहीदों की साझी क़ब्र में दफ़नाया। हम उस वीर

का नाम नहीं जानते, न उसकी मां ही जानती है कि उसका बेटा कहां दफ़नाया गया है।"

बच्चों के हृदय में टीस उठती है। बच्चों के लिए जीवन का, अपनी जन्मस्थली के इस कोने का सौंदर्य और भी अधिक प्रिय हो जाता है। बच्चे संसार को वीर की नज़रों से देखते हैं। उस नौजवान ने अपने प्राणों की आहुति दी, ताकि वे आज निश्चिंत, सुखी रह सकें, ताकि आकाश में तारे टिमटिमाएं, धरती पर फूलों और सेबों की सुरभि फैले, स्तेपी पर टिड्डियों का मधुर गीत गूंजे, ताकि नववर्ष की रात को मां हिम-बाबा का उपहार सिरहाने तले रख दे।... बच्चे चुपचाप खड़े हो जाते हैं, रक्त-सिंचित धरती को देखते हैं। वे यहां के हर ढेले को, हर घास-पात को सहलाना चाहते हैं।

उस शाम को शायद मेरे कई छात्र देर तक सो नहीं सके होंगे। उनकी आंखों के सामने स्तेपी रही होगी – कभी धूप में चमकती और कभी लड़ाई के धुएं से भरी। दिल में टीस उठी होगी : वह वीर कभी उस सौंदर्य को नहीं देख पाएगा, जो उन्होंने आज देखा था, कल भी देखेंगे और साल भर बाद भी देखेंगे। और इस विचार से फिर आंखें भर आई होंगी, और नींद में मां के हाथ ने उन्हें सहलाया होगा।

अगले दिन सुबह पढ़ाई शुरू होने से पहले ही वार्या स्कूल आती है। वह अपनी कविता सुनाती है, जो उसने पिछली शाम को लिखी थी :

असीम स्तेपी में बढ़ती है राह।
राह किनारे खड़ा है टीला।
चलती हैं हवाएं,
चमकता है सूरज,
छाता है कोहरा
बरसों से यहां।
धरती पर हमारी क्रूर शत्रु ने
किया आक्रमण।
नौजवान एक, मां का लाल,
जा खड़ा हुआ टीले पर –
दुश्मन का रास्ता रोक।
इस प्राचीन टीले पर शहीद हुआ वीर।

फटी छाती गोले से
धरती पर छटपटाता था
ख़ून से लथपथ दिल।
नीले आकाश पर छा गया अंधेरा,
मुंह छिपा लिया सूरज ने
काले बादल में।
नहीं, हम नहीं भूलेंगे तुम्हें कभी,
प्राणों की दी आहुति तुमने
जीवन-दान दिया हमें।
गिरा जहां था हृदय तुम्हारा
लगाया है हमने बलूत वृक्ष वहीं।

एक हफ़्ते बाद हम फिर टीले पर जाते हैं। बच्चे जानना चाहते हैं कि वह वीर कौन था? उसका जन्म कहां हुआ? कहां वह पढ़ा? क्या उसकी मां जीवित हैं? बच्चे जो कुछ देखते और सुनते हैं, उसे वे मातृ-भूमि के लिए प्राण न्योछावर करनेवाले वीर की नज़रों से ग्रहण करते हैं। बच्चे अपनी भावनाएं व्यक्त करने के लिए कुछ करना चाहते हैं। जब पेड़ों से पत्तियां झड़ गईं, तो हम एक छोटा-सा बलूत वृक्ष टीले पर लाए। बाल-हृदयों में जब नेक भावनाएं हिलोरें ले रही हों, तो कुछ भी कहने की ज़रूरत नहीं। बच्चे जो काम कर रहे हैं, उसमें उनकी भावनाएं गुंथी हुई हैं: हम कोई पेड़ ही नहीं लगा रहे, ताकि टीले के शिखर पर हरियाली हो, हम तो वीर का सजीव स्मारक स्थापित कर रहे हैं।

टीले पर बलूत उगाना बहुत मुश्किल होता है, बच्चे यह जानते हैं, परंतु वे मुश्किलों से नहीं डरते। जाड़ों में हम ठंडी हवाओं से अपने वृक्ष की रक्षा करते हैं, उस पर ढेर सारा हिम डालते हैं। वसंत में जब टीले पर हरी-हरी घास उग आती है, तो बच्चे रोज़ाना वहां देखने जाते हैं—कोंपलें फूटीं कि नहीं। यह केवल पेड़ की चिंता ही नहीं है, बल्कि वीर सैनिक से भेंट है। बलूत का छोटा-सा पेड़ हरा-भरा हो गया, उसकी हर पत्ती बच्चों को उस भयानक दिन की याद दिलाती है। गांव के जिन बड़े-बूढ़ों ने सैनिक को दफ़नाया था, उनसे हम यह पता लगाते हैं कि वह किस दिन शहीद हुआ। यह दिन हमारे लिए पावन स्मृति, शोक और वीरों के यश का दिन बन जाता है। बच्चे सुबह तड़के स्कूल आते हैं,

सब के हाथों में फूल हैं। जिस स्थान पर अनाम रक्षक ने वीरगति पाई थी, वहां वे फूल चढ़ाते हैं।

टीले के शिखर पर धरती का छोटा-सा टुकड़ा बच्चों के लिए बड़ी पीढ़ियों की वीरता का प्रतीक बन गया, इन पीढ़ियों ने ही देश की स्वतंत्रता की रक्षा की थी। मैं बच्चों के मन में यह विचार बिठाता हूं: "तुम बड़ी पीढ़ियों के ख़ून से सिंची धरती के स्वामी हो। तुम्हें इस बात की चिंता करनी चाहिए कि हमारी मातृभूमि शक्तिशाली और समृद्ध हो।"

एक दिन ओल्या और मैं बच्चों को "वीरों के उपवन" में ले गए। इस स्थान पर युद्ध से पहले हमारे सामूहिक फ़ार्म का फलों का बाग़ था। १९४१ में फ़ासिस्टों का क़ब्ज़ा हो जाने पर उन्होंने बाग़ को काटकर यहां युद्ध-बंदियों का शिविर बना दिया। फ़ासिस्टों ने सोवियत सेना के ६ हज़ार भूखे, नंगे, घायल युद्ध-बंदियों को कंटीले तारों के पीछे खुले आसमान तले मौत का ग्रास बनाने के लिए रख छोड़ा। बंदियों को पीने के लिए पानी तक नसीब न था। ठंडी रातों में ज़मीन पर जम जानेवाले तुषार से वे अपनी प्यास और घास से भूख मिटाते थे। रोज़ाना दसियों युद्ध-बंदी दम तोड़ रहे थे। फ़ासिस्ट पाशविक निर्ममता के साथ उस दिन का इंतज़ार कर रहे थे, जब सब मर जाएंगे, ताकि वे शिविर के पास हवाई बमों के भंडार में विस्फोट करके सोवियत सेना पर आरोप लगा सकें कि उसने अपने ही लोगों पर बम गिराकर उन्हें मार डाला।

सोवियत देशभक्तों ने शिविर में अपना गुप्त संगठन बनाया और बड़ी संख्या में बंदियों को भगाने की तैयारी करने लगे। और फिर एक रात को, जब हज़ारों लोग हवा और पानी के थपेड़े खाते ठंड से ठिठुर रहे थे, २० स्थानों पर सोवियत सेना के बंदी सैनिक और अफ़सर रेंगते हुए कंटीले तारों की ओर बढ़ने लगे। वे मौत का आलिंगन करने जा रहे थे: वे वीर तारों पर जाकर लेट गये और उनके शरीरों पर से होकर अनेक युद्ध-बंदी स्तेपी में भाग निकले। उस रात को आस-पास के किसानों ने ४ हज़ार से अधिक लोगों को छिपाया, न गेस्टापो के जल्लाद और न ही फ़ासिस्टों की पुलिस बन बैठे देशद्रोही उनका कोई पता लगा सके। ४०० वीरों ने उस रात को अपने प्राणों की बलि दी, ताकि ४ हज़ार सोवियत सैनिक और अफ़सर फ़ासिस्टों की मौत की गिरफ़्त से छूटकर फिर से हथियार उठा लें और अपनी मातृभूमि की रक्षा करें।

गांव को जब फ़ासिस्टों से आज़ाद करा लिया गया, तब स्कूल के

छात्रों ने फ़ैसला किया : यह पावन स्थली एक फलता-फूलता स्थल, वीरों का सजीव स्मारक होगी। उन्होंने इस उजाड़ पड़ी धरती को साफ़ किया, गड्ढे भरे और ४०० बलूत लगाए—उन वीरों के ४०० सजीव स्मारक, जिन्होंने अपने साथियों की ख़ातिर मौत को गले लगाया। बलूत के पेड़ बड़े हो गए, स्कूल में आनेवाले सभी नए बच्चों को यह सच्ची वीर-गाथा सुनाई जाती थी। कुछ वर्ष पश्चात् छात्रों की नई पीढ़ी ने पायोनियर बनते हुए इस बलूत उपवन के पास ही अपनी ओर से भी बलूत लगाए। उस स्थान पर, जहां कंटीले तारों पर वीरों का ख़ून जमा, जहां हृदयों की भस्म मिट्टी में मिली, वहां सबसे दीर्घजीवी वृक्ष उगे। हर पायोनियर ने अपना पेड़ लगाया। फिर यह परंपरा बन गई : पायोनियर बनते हुए हर छात्र "वीरों के उपवन" में बलूत लगाता है।

हम भी अपने बच्चों के साथ यहां आए। ओल्या ने बच्चों को वीरों के पराक्रम की कहानी सुनाई, अपना बलूत वृक्ष दिखाया। बच्चे बड़ी उत्सुकता से यह प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब उनके भी पायोनियर बनने का समय आयेगा।

वसंत आ गया। २२ अप्रैल को लेनिन के जन्मदिन पर, जो उनके स्मृति दिवस के तौर पर मनाया जाता है, हमारे स्कूल के पायोनियर दल की रैली होती है, जिसमें नये बच्चे पायोनियर संगठन के सदस्य बनते हैं। इस उत्सव से कुछ दिन पहले हम फिर वीरों के उपवन में गए, हर बच्चा बलूत का पौधा, बेलचा और टोकरी भर कम्पोस्ट लाया था। हमने पेड़ लगाए, उन्हें सींचा। यहां, इस पावन स्थल पर २२ अप्रैल को बड़े साथियों ने बच्चों के गले में पायोनियरों का रूमाल बांधा। यहां किशोर पायोनियरों ने शपथ ग्रहण की कि वे अपनी समाजवादी मातृभूमि के सच्चे देशभक्त होंगे।

हम साल में कई बार "वीरों के उपवन" में जाते थे। वसंत के आरंभ में पेड़ों से सूखी टहनियां काटते थे, पाला खा गए पेड़ों की जगह नए पेड़ लगाते थे। शरद के उस दिन, जब वीरों ने यहां अपने प्राणों की आहुति दी थी, हम यहां अपने पायोनियर दस्ते की रैली करते थे। कंटीले तारों की दीवार की जगह अब सुघड़ बलूत वृक्ष उग रहे हैं। मौन धारण किए बच्चे वृक्षों की क़तार की ओर बढ़ते हैं, पेड़ों तले फूल रखते हैं—उस स्थान पर जहां उस रात को धरती ख़ून से लाल हो गई थी, अब लाल-लाल फूल रखे हुए हैं।

ख़ुशी के मौक़ों पर – गर्मियों की छुट्टियां होने से पहले, लंबी पद-यात्रा पर जाने से पहले भी हम इस उपवन में जाते थे। इस पावन स्थल पर सदा ख़ामोशी छाई होती है। यहां कोई भागता-दौड़ता नहीं, शोर नहीं मचाता, यहां तो बस प्राकृतिक सौंदर्य का रसपान किया जा सकता है, चुपचाप आराम किया जा सकता है। यहां वे लड़के-लड़कियां आते हैं, जिनके पिता महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध में शहीद हुए। यहां बेटा अपने पिता की क़ब्र के सामने सिर झुकाता है, जो कहीं दूर – उत्तरध्रुवीय महासागर के तट पर या कार्पेथियाई पर्वतों में है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी उन वीरों की यशगाथा सुनाई जाती है, जिन्होंने अपने बलिदान से सोवियत जनता के लिए सूरज, फूल और स्वाधीन श्रम की रक्षा की।

टीले पर बलूत वृक्ष ऊंचा ही ऊंचा होता जा रहा है। नीले आकाश की ओर टहनियां बढ़ाए इस गर्वीले वृक्ष को कोई वयस्क देखता है और उसके हृदय की धड़कन तेज़ हो जाती है, जन्मभूमि उसके लिए और भी अधिक प्रिय हो जाती है।

दशाब्दियां बीतेंगी, इतिहास के इस अभूतपूर्व युद्ध में भाग लेनेवाले नहीं रहेंगे, नई-नई पीढ़ियां विस्मय और कृतज्ञता के साथ उन लोगों को याद करेंगी, जिन्होंने मानवजाति को फ़ासिस्ट दासता से बचाया।

युद्ध की अनगिनत मुसीबतें और विभीषिकाएं, आगों की लपटें, बमों के फटने से मौत का शिकार बन रहे लोगों की कराहें, फ़ासिस्ट जर्मनी में बेगार के लिए खदेड़ कर ले जाए जा रहे लोगों का रुदन, मोर्चे पर जा रहे पिताओं का आलिंगन, पति, पिता की वीरगति का समाचार पानेवाली स्त्रियों का क्रंदन – यह सब हमें कभी नहीं भूलना चाहिए।... युवा पीढ़ी को शहीद वीरों की स्मृति को अमर बनाना चाहिए। इस स्कूल में, जहां हम पढ़ते हैं, यहां पर फ़ासिस्टों ने जर्मनी खदेड़ कर ले जाए जा रहे सोवियत युवक-युवतियों को रखने के लिए जेल बनाई थी। बच्चो, यह बात तुम्हें कभी भी नहीं भूलनी चाहिए। तुम बड़े हो जाओगे, तुम्हारे भी बच्चे होंगे – उनके मन में भी मातृभूमि के शत्रुओं के प्रति तीव्र घृणा की पावन भावना जगाना।

युद्ध से पहले हमारे गांव में ५१०० लोग रहते थे। हमारे ८३७ गांव-वासी, जिनमें ७८५ पुरुष और ५२ स्त्रियां थीं, मोर्चों पर शहीद हुए। इनके अलावा हमारे गांव के ६६ निवासी फ़ासिस्टों के मृत्यु-शिविरों में मारे गए – उन्हें भूखा रखकर, अमानवीय यातनाएं पहुंचाकर, सता-सताकर

मार डाला गया और फिर भट्ठियों में जला दिया गया। फ़ासिस्ट हत्यारे इन्हीं की राख का सौदा करते थे, तुम्हारे भाइयों और बहनों, पिताओं और माताओं की राख ही फ़ासिस्ट शिविर बुख़ेन्वाल्द से थोड़ी दूर स्थित वेइमार के आस-पास की ज़मीन में खाद की तरह डाली जाती थी। बच्चो, हमारे भाइयों और बहनों, पिताओं और दादाओं की यह राख तुम्हारे अंतःकरण की आवाज़ बने, तुम्हारे बच्चों और नाती-पोतों के अंतःकरण की आवाज़ बने! कभी मत भूलना कि हमारे गांव के २७६ किशोर-किशोरियों को फ़ासिस्ट जर्मनी खदेड़ ले गए थे, उनमें से १६४ मारे गए—भूख से, कमरतोड़ मेहनत से, कुछ को तो जीते जी भट्ठियों में जला डाला गया। पाव्लो के भाई को फ़ासिस्ट बोहुम नगर में ले गए थे, वहां तोड़-फोड़ के लिए तपी सलाख़ों से उसकी आंखें फोड़ दीं, और फिर उसे जीते जी कीलों से खंभे पर लटका दिया। तान्या की बहन को नाज़ियों ने ज़िंदा ही ज़मीन में गाड़ दिया, क्योंकि वह कम्युनिज़्म के उच्च आदर्शों की बातें करती थी। कोस्त्या के मामा को लोहे के पिंजड़े में बंद कर दिया गया, जहां वह भूखे-नंगे कई दिन तड़प-तड़प कर मर गए। यूरा के मौसेरे भाई ने भागने की कोशिश की थी, उसे पकड़कर जीते जी ही शिकारी कुत्तों के सामने डाल दिया गया। वाल्या की चचेरी बहन के गोद के बच्चे को फ़ासिस्ट अफ़सर ने छीन लिया और मां की आंखों के सामने ही उसका सिर पत्थर पर दे पटका। ल्यूस्या की २६ वर्षीया बुआ को फ़ासिस्टों ने उसके दो बच्चों—४ साल की बेटी और ३ साल के बेटे—के साथ ओस्वेन्त्सीम मृत्यु-शिविर में भेज दिया। वहां बच्चों को उससे छीन लिया गया। जब मां ने विनती की: "ये बीमार हैं, इन्हें मेरे साथ रहने दीजिए," तो फ़ासिस्ट चिल्लाया: "अच्छा, ये बीमार हैं, तो अभी हम इनका इलाज कर देते हैं..." और बौखलाई मां की आंखों के सामने ही नंगे बच्चों को पत्थरों पर फेंक दिया और उन्हें अपने ऊंचे नालदार बूटों से रौंद डाला।...

"हमें यह सब कभी नहीं भुलाना है, हमें ख़ुद ही इसे याद नहीं रखना, बल्कि सभी आनेवाली पीढ़ियों तक भी मानव अंतःकरण की यह आवाज़ पहुंचानी है," मैं बच्चों को कहता था। हमने यह निश्चय किया कि हम अपनी सोवियत मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए शहीद हुए वीरों के छविचित्रों को एक कमरे में सजाएंगे। तीसरी कक्षा के अंत और चौथी के आरंभ में बच्चे गांव के सभी घरों में गए।

माताओं ने हमें शहीदों के और फ़ासिस्ट मृत्यु-शिविरों में मौत का

ग्रास बने संबंधियों के फ़ोटो दिए। इन फ़ोटो के ग्राधार पर हमने छविचित्र बनाए ग्रौर उन्हें "यश एवं शोक कक्ष" में रखा। इस तरह हमने शहीदों का एक स्मारक बनाना ग्रारंभ किया, जिसे स्कूल छात्रों की भावी पीढ़ियों को पूरा करना था। मैंने बच्चों से कहा: यह हमारा कर्त्तव्य है, हमें इसे निभाना है, ताकि धरती पर फिर कभी भी युद्ध न हो, ताकि जनगण भाई-भाई बनकर रहें, ताकि बच्चों का जन्म शांति ग्रौर सुख के लिए हो, न कि युद्ध में मौत का ग्रास बनने के लिए। यह सारे संसार के जनगण के सम्मुख हमारा कर्त्तव्य है—हमें कुछ भी भुलाना नहीं, माफ़ नहीं करना है, ताकि फिर कभी भी फ़ासिज़्म की विभीषिका संसार को न देखनी पड़े।

ग्रपनी एक पद-यात्रा के समय हमने द्नेप्र नदी के ऊंचे तट पर रात बिताई। बच्चे कई बार नीचे खड्ड में चश्मे का पानी लेने गए, हर बार उन्हें चक्कर लगाना पड़ता था, क्योंकि पगडंडी पर एक बड़ा पत्थर पड़ा हुग्रा था।

"यह पत्थर यहां क्यों पड़ा हुग्रा है? लोग इसका चक्कर लगाकर क्यों जाते हैं? इसे झाड़ियों में हटा क्यों नहीं देते?" बच्चे हैरान हो रहे थे। उन्होंने पत्थर को एक ग्रोर ढकेलकर रास्ता साफ़ कर दिया। ग्रगले दिन सुबह एक बूढ़ा मछेरा हमारे पास ग्राया। उसने पूछा कि पत्थर कहां है। बच्चों को ग्राशा थी कि वह उन्हें शाबाशी देगा, लेकिन बूढ़े बाबा ने सिर हिलाकर कहा: "बरसों से यह पत्थर यहां पड़ा हुग्रा है, यहीं इसकी जगह है..." ग्रौर फिर उन्होंने हमें तीन सोवियत गुप्तचरों के पराक्रम की कहानी सुनाई। द्नेप्र पर घमासान लड़ाई हो रही थी; तीन सोवियत सैनिक गुप्तचरों ने ग्रपनी सबमशीनगनों के साथ नदी पार की ग्रौर यहां पत्थर के पीछे छिपकर चौबीस घंटों तक फ़ासिस्टों से जूझते रहे। फ़ासिस्ट तोपों ग्रौर मोटरगनों से उनपर गोले बरसाने लगे, कई घंटों तक गोलाबारी होती रही, लेकिन यह चट्टान तो मानो ग्रभेद्य दुर्ग ही बन गई थी। रात को ग्रौर सोवियत सैनिक नदी पार करके इस ग्रोर ग्रा गए। तीनों सैनिक पत्थर के पीछे गोलियों ग्रौर गोलों के टुकड़ों से घायल, ख़ून से लथपथ पड़े हुए थे, लेकिन उन्होंने हिम्मत नहीं हारी थी। घायलों को नदी पार ग्रस्पताल में भेज दिया गया, कोई उन वीरों का नाम नहीं जानता, बस ग्रेनाइट की यह विशाल शिला ही उनके पराक्रम की याद दिलाती है। बच्चे पत्थर के पास गए, देर तक वे उसके सामने खड़े रहे, उसे ढकेलकर झाड़ियों से बाहर निकाला ग्रौर जहां वह पहले पड़ा हुग्रा था, वहीं रख

दिया। अब उन्होंने देखा कि इस पत्थर पर गोलियों और गोलों के टुकड़ों के निशान हैं। आस-पास ज़मीन में बच्चों को पत्थर के कई छोटे-छोटे टुकड़े मिले, हर बच्चे ने याददाश्त के तौर पर एक टुकड़ा ले लिया।

तब से किशोर पद-यात्री सदा उस पत्थर के पास से होकर जाने लगे। टीले के ऊपर लगे बलूत के पेड़ और "वीरों के उपवन" की ही भांति यह ग्रेनाइट की शिला भी उस पराक्रम के सौंदर्य का प्रतीक बन गई, जो बाल-हृदयों में देशभक्ति की पवित्र भावनाएं जगाता है।

बचपन में पिताओं-दादाओं के पराक्रमों के प्रति इन्सान का क्या रवैया होता है, इसी पर उसका नैतिक स्वरूप, सामाजिक हितों के प्रति, मातृ-भूमि के हित में श्रम के प्रति उसका रुख़ निर्भर होता है। मेरी चेष्टा यह थी कि इस विचार से बच्चे के हृदय की धड़कन तेज़ हो जाए कि आज धरती के जिस टुकड़े पर हम काम कर रहे हैं, यहां पर वीरों ने अपना ख़ून बहाया है। ऐसा होने पर भावनाएं इस विश्वास की पुष्टि करती हैं: जन्मभूमि पर देश के हित में श्रम परम सुख है, जिसके लिए लोग रणक्षेत्र में कूदे। बाल-हृदय में अंतःकरण का स्वर उठता है: तुम स्वच्छ नीले गगन तले चल रहे हो, खिली धूप को देख रहे हो केवल इसीलिए कि धरती की गोद में वे वीर चिरनिद्रा में सोए हुए हैं, जिन्होंने तुम्हारे लिए प्रकाश और जीवन की रक्षा की। यह स्वर बच्चों को यह याद दिलाता है कि वे अपनी मातृभूमि के भावी स्वामी हैं। बड़ी पीढ़ियों द्वारा निर्मित भौतिक और आत्मिक सम्पदाओं का स्वामी होने की भावना में ही नागरिक परिपक्वता की जड़ निहित है।

ओल्या और मैं यह सोचते थे कि कैसे बच्चों को शहीदों के प्रति कर्त्तव्य के नाम पर काम करने की प्रेरणा दी जाए। एक दिन बच्चे अपने खेत पर आए: हमें एक बंजर टुकड़े पर कुछ क्विंटल कम्पोस्ट डालना था, ताकि उस जमीन पर जहां पहले कुछ भी नहीं उगता था, वहां अब गेहूं का खेत लहलहाने लगे। यह काफ़ी कठिन और नीरस काम था। काम शुरू करने से पहले ओल्या ने बच्चों को १६४३ में स्तालिनग्राद के भयानक लड़ाई में उक्राइनी युवक मिख़ाईल पनिकाको के पराक्रम के बारे में बताया।

१६ वर्षीय नौजवान शत्रु के टैंकों के मार्ग में बनी खंदक में खड़ा था। फ़ासिस्ट टैंक खंदक की ओर बढ़ता आ रहा था। सैनिक ने आगलगाऊ घोलवाली बोतल टैंक पर फेंकने के लिए हाथ ऊपर उठाया ही था कि एक गोली से बोतल टूट गई। घोल जल उठा और आग की लपट कपड़ों पर

होती हुई सैनिक के मुंह की ओर बढ़ने लगी। अपने पीछे आग और धुएं की पूंछ छोड़ती हुई जीती-जागती मशाल खंदक से बाहर निकली और टैंक के पास पहुंच गई। मिखाईल के दूसरे हाथ में आख़िरी बोतल थी। वह टैंक पर चढ़ गया और उसके ऊपर बोतल तोड़ डाली – टैंक में आग लग गई, वह उसी जगह चक्कर खाने लगा। टैंक के फटने से क्षण भर पहले मिख़ाईल तनकर खड़ा हो गया, लपटों में घिरे हाथ को ऊपर उठाकर वह चिल्लाया। सैनिकों ने हमले का आह्वान सुना और अपनी खंदकों में से निकलकर उन्होंने दुश्मन का सफ़ाया कर दिया – सड़क अब उनके हाथों में थी।

कहानी सुनकर बच्चे अवाक खड़े रह गए। इस क्षण वह अमर शहीद मानो उनके पास ही खड़ा था और कह रहा था: "हमारी पावन धरती के ऐसे ही एक टुकड़े के लिए मैंने अपने प्राणों की बलि दी। क्या इस बात की ओर से उदासीन रहा जा सकता है कि इस पर क्या उगेगा – झाड़-झंखाड़ या गेहूं?" बच्चों का अंतःकरण कह उठता है: नहीं, हम उदासीन नहीं रह सकते।

मेरे कहने का अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि हर बार कोई काम करने से पहले बच्चों को वीरतापूर्ण कहानी सुनानी चाहिए। बच्चों के मन में यह बात नहीं बिठानी चाहिए: अगर तुमने कोई काम करने में आलस दिखाया है, काम ठीक तरह से नहीं किया, तो तुम मातृभूमि के सम्मुख अपने कर्त्तव्य को उचित रूप से नहीं निभा रहे हो। कर्त्तव्य की भावना एक पावन भावना है और बच्चे को उसे अपने हृदय में संजोकर रखना चाहिए। साथ ही यह बात भी बहुत मानी रखती है कि वीरों के पराक्रम बच्चों को जीना सिखाएं, उनकी चेतना में पहले नागरिक विश्वासों, आस्थाओं को जन्म दें। मैंने ओल्या को मिख़ाईल पनिकाको के पराक्रम के बारे में बच्चों को सुनाने को कहा था और यह परामर्श दिया था कि इस कहानी का, बच्चे जो काम करने जा रहे हैं, उससे कोई संबंध न जोड़े, कहानी को उपदेश न बनाए, कहानी सुनकर बच्चे स्वयं ही अपनी मातृभूमि के इस टुकड़े को एक नागरिक की दृष्टि से देखेंगे।

पायोनियर संगठन

१९५५ के वसंत में, तीसरी कक्षा समाप्त करने से कुछ समय पहले बच्चे लेनिन पायोनियर संगठन में शामिल हुए। स्कूल की कोम्सोमोल समिति

ने ओल्या को हमारी कक्षा के पायोनियर दस्ते का पायोनियर लीडर चुना। वह आठवीं में पढ़ती थी।

स्कूल के पायोनियर दल की रैली परंपरा के अनुसार ही लेनिन स्मृति दिवस – २२ अप्रैल – को हुई। इससे कई दिन पहले ओल्या अपने साथियों के साथ बच्चों को पायोनियर बनने के लिए तैयार करने लगी। आठवीं के छात्र-छात्राओं ने हमारे देश की कम्युनिस्ट पार्टी, कोम्सोमोल और पायोनियर संगठनों के वीरतापूर्ण इतिहास के बारे में बताया।

"तुम अपने दस्ते का नाम उस व्यक्ति के नाम पर रखो, जिसका पराक्रम तुम्हें सबसे अधिक प्रेरित करता है," ओल्या ने बच्चों से कहा। बच्चों ने एकमत से फ़ैसला किया – उनके दस्ते का नाम होगा मिख़ाईल पनिकाको दस्ता। दस्ते का आदर्श-वाक्य होगा: "लेनिन की भांति संघर्ष करना और विजयी होना", चिह्न होगा: बलूत की पत्तियां और फल, जो प्रकृति की रक्षा के लिए हमारे संघर्ष का प्रतीक होगा।

पायोनियर रैली में केवल छात्र ही नहीं आए, बल्कि उनके माता-पिता, दादा-दादी भी आए। कई लोग ऐसे थे, जिन्होंने महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति और गृहयुद्ध में भाग लिया था, छापामार रहे थे, जिन्होंने १६१६ में गांव में युवा कम्युनिस्टों का संगठन – कोम्सोमोल – बनाया था, उसके पहले सदस्य थे।

रैली एक बड़े, हरे-भरे मैदान में हुई। आठवीं कक्षा का पायोनियर दस्ता और तीसरी कक्षा के छात्र – भावी पायोनियर एक दूसरे के सामने खड़े थे। आठवीं कक्षा के दस्ते के पायोनियर लीडर ने कहा कि उनके दस्ते का कार्यभार अब तीसरी कक्षा के पायोनियरों को सौंपा जाता है।

हमारे स्कूल की परंपरा के अनुसार आठवीं कक्षा का पायोनियर दस्ता नये पायोनियर सदस्यों को अपने लाल रूमाल देता है। लड़के-लड़कियां अपने लाल रूमाल उतारकर छोटे बच्चों के गले में बांध रहे थे। हर छात्र ने अपना रूमाल उस बच्चे को दिया, जिससे उसकी दोस्ती हो गई थी। आठवीं और तीसरी के छात्रों में भाई-बहन भी थे – एक सबसे प्रिय पारिवारिक स्मृति-चिह्न के रूप में बड़े छोटों को अपना रूमाल दे रहे थे। लाल रूमाल पाकर बच्चों ने पायोनियरों की शपथ ग्रहण की। उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि वे मिख़ाईल पनिकाको की भांति ही निडर और साहसी देशभक्त होंगे, "लेनिन की भांति संघर्ष करने और विजयी होने" के अपने आदर्श-

वाक्य को पूरा करेंगे। पायोनियर बनने की स्मृति में हर बच्चे को उपहार मिला–महान सेनानी के जीवन और संघर्ष के बारे में पुस्तक।

इस रैली की मेरे छात्रों के हृदयों पर जीवन भर के लिए अमिट छाप पड़ी। पायोनियर बनने के समारोह में सबसे बड़ी बात यह है कि पायोनियर का लाल रूमाल एक पीढ़ी से दूसरी को मिलता है। क्रांतिकारी संघर्ष के प्रतीक लाल रूमाल को बच्चे संभालकर रखते हैं। उसे हर रोज़ नहीं, केवल उत्सवों, समारोहों और पायोनियर रैलियों में ही पहना जाता है–यह हमारे पायोनियर दस्ते की परंपरा है।

लेनिन की भांति संघर्ष करना और विजयी होना

लेनिन ने हमें सिखाया है: कम्युनिज़्म के लिए संघर्ष हर दैनंदिन कार्य में, रोज़मर्रा के साधारण श्रम में ही है। ओल्या और मैं यह सोचा करते थे कि हम क्या करें ताकि बच्चों के चारों ओर जो कुछ घटता है उसके प्रति वे उदासीन न रहें, कि बच्चे जनता की भौतिक संपदा के बारे में चिंता करें। ओल्या ने पायोनियर दस्ते में किशोर प्रकृति रक्षकों की एक टुकड़ी बनाई। बच्चों ने खेतों की रक्षा के लिए स्कूल से थोड़ी दूर लगी जंगल पट्टी को अपने संरक्षण में लेने का निश्चय किया। पेड़ों को देखते हुए बच्चों ने पाया कि कुछ पेड़ों पर जड़ के पास छाल कटी हुई है। प्रत्यक्षत:, कोई चाहता था कि पेड़ सूख जाएं, तब वह उन्हें काट सकेगा; सूखे पेड़ क्यों लगे रहें? बच्चों को ग़ुस्सा आ रहा था: यह क्या बात हुई–हम तो पेड़ लगाते हैं और कोई उन्हें काट ले जाता है? पता लगाना चाहिए कि किसने यह काम किया।

उस दिन से किशोर प्रकृति रक्षक सक्रिय हो गए। शाम को बच्चे जंगल पट्टी में जाकर बिन बुलाए मेहमानों का इंतज़ार करते थे। कुछ दिनों बाद दोषी लोगों को रंगे हाथ पकड़ लिया गया–दो किसान आरी लेकर पेड़ काटने आए थे। पेड़ों को नष्ट करनेवाले लोगों की सूचना फ़ार्म के संचालक बोर्ड को दी गई। अपराधियों से एक नष्ट हुए पेड़ की जगह दस नए पेड़ लगवाए गए। बच्चे ख़ुश थे–सच्चाई की जीत हुई थी। नैतिक शिक्षा की

यह अनिवार्य शर्त है। कम्युनिस्ट आदर्शों का संघर्ष तभी उदात्त भावनाओं का स्रोत बनता है, जबकि किशोर न्याय की जीत देखते हैं। विजय प्रोत्साहित करती है, नई कठिनाइयों को पार करने के लिए नए बल का संचार करती है।

किशोर प्रकृति रक्षकों को एक खेल बहुत अच्छा लगा, जो सौंदर्य और उद्यम के लिए संघर्ष पर आधारित था। बच्चों ने देखा कि कुछ लोगों के घरों के अहातों में झाड़-झंखाड़ उग रहे हैं। बच्चों ने इन लोगों को सेब के पौधे लाकर दिए और कहा कि वे झाड़-झंखाड़ साफ़ करके फलों के पेड़ लगाएं। तीन लोग ऐसे निकले, जिन्हें यह करने में भी आलस लगा। तब बच्चों ने इन लोगों के नाम "किशोर प्रकृति रक्षकों के चेतावनी पत्र" लिखे, जिनमें कहा गया था: "हम, किशोर प्रकृति रक्षकों को यह देखकर दुख होता है कि आपका अहाता झाड़-झंखाड़ का पौधघर बना हुआ है। इस झाड़-झंखाड़ में तो जल्दी ही भेड़िए आ बसेंगे। आप इस 'जंगल' में कैसे रहते हैं? हमारा अनुरोध है: झाड़-झंखाड़ साफ़ करके यहां सेब और अंगूर लगाइए, फूल उगाइए। हम आपके घर के पास सेब के पांच पौधे और अंगूर की तीन बेलें छोड़े जा रहे हैं। कल सुबह पेड़ लगा दीजिए। पेड़ लगाइए और उन्हें अच्छी तरह पानी दीजिए। अगर आपको यह करने का आलस है, तो हम ख़ुद आकर झाड़-झंखाड़ साफ़ कर देंगे और पेड़ लगा देंगे। अहाते में बाग़ होगा, पर वह आपका नहीं, हम पायोनियरों का होगा।"

"चेतावनी पत्र" खिड़कियों में से चुपके से मेज़ पर रख दिए गए और शाम को अंधेरे में ताकि कोई देखने न पाए, इन घरों के आगे पौधे गाढ़ दिए। बच्चे बड़ी उत्सुकता से अगले दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे: ये आलसी लोग क्या करेंगे? अगले दिन पाठों के बाद उन्होंने गांव का चक्कर लगाया, अहातों का कायाकल्प हो गया था—जहां पहले झाड़-झंखाड़ उग रहा था, वहां अब पेड़ लगे हुए थे।... हमारी प्रकृति रक्षक टोली के बारे में शीघ्र ही सारे स्कूल को पता चल गया। स्कूल के पायोनियर दल की ओर से भी प्रकृति रक्षक टोलियां बनाई गईं। फ़ार्म के संचालक मंडल ने बड़े पायोनियरों से अनुरोध किया कि वे शहतूत के पेड़ों को अपने संरक्षण में ले लें: कुछ लोग बड़ी बेरहमी से टहनियां तोड़ ले जाते थे। पायोनियरों की कुछ गश्तों के बाद टहनियों का तोड़ना बंद हो गया।

गर्मियों में हमारे पायोनियर दस्ते ने नई क़िस्में परखने के प्रायोगिक खेत के लिए गेहूं के २० किलोग्राम चुनिंदा बीज तैयार करने का वचन दिया। बच्चों ने सबसे अच्छी बालियां चुनीं, स्कूल की इमारत में एक सूखी जगह ढूंढ़कर उन्हें जाड़ों भर के लिए वहां रख दिया, वसंत आने पर बालियों की मंड़ाई करके दाने फ़ार्म के कृषि विशेषज्ञ को सौंप दिए। इस श्रम से बच्चों की इतनी चिंताएं और उद्विग्नताएं जुड़ी हुई थीं कि जब बुआई शुरू हुई, तो वे खेत पर गए—यह देखने कि उनके बीज कैसे बोए जाएंगे। बच्चे तब चौथी में पढ़ते थे। खेत जब लहलहाए, तो बच्चों ने फिर अपनी मेहनत का फल देखना चाहा। कटाई के दिनों में उन्होंने फ़सल बटोरने में बड़ी कक्षाओं के छात्रों का हाथ बंटाया। मुझे यह देखकर ख़ुशी हो रही थी कि किस तरह बच्चे अपने चारों ओर जो कुछ होता है, उसके प्रति अधिक संवेदनशील हो गए थे। एक दिन हम खेत से लौट रहे थे, बच्चे बहुत ख़ुश थे, उनके बोए बीज अच्छी तरह उग रहे थे। फ़ार्म के बाग़ के पास से गुज़रते हुए हमने देखा: सेब के एक छोटे-से पेड़ पर सूंड़ियां थीं। बच्चे चिंतित हो उठे। इस वक़्त उनके मन में समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य की बात नहीं आई थी, वे तो बस इस बात की ओर से उदासीन नहीं रह सकते थे कि पेड़ को ख़तरा था। बच्चों ने बाग़ में जाकर सूंड़ियां नष्ट कर दीं, सेब के पेड़ की रक्षा की और फिर आस-पास के पेड़ों को ध्यान से देखा कि उन पर कोई हानिकारक कीट तो नहीं हैं।

अपनी जन्मभूमि के स्वामी की भावना सबसे महती देशभक्तिपूर्ण भावना है, जिसे हमें बच्चों के दिलों में जगाना चाहिए। सच्चा देशभक्त वही होगा, जिसे बचपन, किशोरावस्था और यौवन के दिनों में सार्वजनिक खेत की हर बाली, सामाजिक बाग़ के हर पेड़, सामूहिक फ़ार्म के अन्न भंडार में अनाज के हर दाने की उतनी ही चिंता होती है, जितनी अपने खिलौनों, अपनी प्यारी किताबों की। जो सामाजिक है, वह बच्चे के लिए केवल तभी व्यक्तिगत हो जाएगा, जबकि वह अपना मन उस श्रम में लगाएगा, जिससे लोगों के लिए कुछ बनता है, जबकि उसके अपने हाथों से निर्मित भौतिक संपदा से उसे गहन व्यक्तिगत हर्ष की अनुभूति हो, जबकि इस हर्ष के मार्ग में चिंताएं, उद्विग्नताएं, असफलताएं रही हों। मैं सदा यह देखता था कि बच्चे को जो अनुभूतियां होती हैं उनके स्रोत क्या हैं। उसके मन को क्या उद्वेलित करता है: केवल वही बातें, जो उसकी अपनी ख़ुशी, अपने कल्याण से संबंधित हैं, या वह सब भी, जिसका

अन्य लोगों के हितों से वास्ता है? इस प्रश्न का उत्तर मेरे लिए सदा बच्चों के नैतिक गुणों का मापदंड रहा है। मुझे यह देखकर बड़ी ख़ुशी हुई थी कि कोल्या और वाल्या स्कूल के प्रायोगिक खेत पर बारिश से गेहूं के डंठलों को झुके देखकर दुखी हो रहे हैं। जब तक बच्चे के मन में यह दुख, यह पीड़ा नहीं जागी है, तब तक शिक्षक निश्चिंत नहीं रह सकता, क्योंकि उसका छात्र एक उदासीन प्रेक्षक के रूप में जीवन में प्रवेश कर सकता है।

स्वार्थी वही बनता है, जिसने बचपन दूसरों की चिंता के बिना जिया हो, जो केवल ख़ुशियों का उपभोग ही करता रहा हो। मैं यह देखकर परेशान था कि वोलोद्या और स्लावा के लिए इस बात का बहुत बड़ा ख़तरा है। इनके परिवारों में इन्हें जी भरकर ख़ुशियों का "भोग" कराने के लिए सब कुछ किया जाता था। बच्चों को सिर्फ़ इसी बात का अफ़सोस होता था कि मां-बाप ने उन्हें कोई नई, अच्छी चीज़ नहीं ख़रीद दी। उनके इन स्वार्थपरक दुखों के मुक़ाबले दूसरी क़िस्म के दुख और परेशानियां – लोगों के लिए भौतिक और आत्मिक संपदाओं की चिंता – रखने की आवश्यकता थी।

गर्मियों के उमस भरे दिनों में मैंने देखा कि "ख़ुशियों के स्कूल" के दिनों में हमने जो लिंडन वृक्ष लगाया था वह सूख रहा है। मैं वोलोद्या और स्लावा को बाग़ में ले गया यह कहकर कि उन्हें एक दिलचस्प चीज़ दिखाऊंगा और गरमी से सूखते पेड़ की ओर उनका ध्यान दिलाया। मैंने कहा: "लिंडन को हमारी मदद चाहिए, और अगर हम चाहें तो उसकी मदद कर भी सकते हैं। इस क़िस्म के पेड़ों को, ख़ास तौर पर छोटे पेड़ों को नम हवा, नमी और ठंडी छाया की ज़रूरत होती है। आओ, हम अपने इस मित्र की सहायता करें। वहां थोड़ी दूर पर जो नल है न, उससे हम एक पतला पाइप यहां तक ले आएंगे, उसे पेड़ की ओर लगाकर बारिश करेंगे, पेड़ को हमेशा ठंडक मिलती रहेगी।" पहले तो लड़के अनमने-से मेरी बातें सुनते रहे, लेकिन जब मैंने कहा कि हम बारिश करेंगे, तो उनकी आंखों में कौतूहल की चमक आई। यह श्रम बच्चों को दिलचस्प खेल लगा, और भला कौन ऐसा बच्चा है, जो खेलना न चाहता हो? और दोनों लड़के खेलने लगे। हम पेड़ तक पाइप ले आए, उसके सिरे पर फौहारा लगा दिया, और बस पेड़ के ऊपर छोटी-छोटी बूंदों का बादल-सा बन गया। तपती दुपहरी में बच्चे बारिश चालू करते थे और दिन ढले बंद कर देते

थे। धीरे-धीरे बच्चों के मन में पेड़ के भाग्य की चिंता जागी : बारिश तले पेड़ को कैसे लगता है? यह देखकर बच्चे ख़ुश हुए कि पेड़ की टहनियां सीधी हो गई हैं और उन पर नई-नई कोमल पत्तियां निकल आई हैं। इस तरह बच्चों के जीवन में एक ऐसी रुचि जागी जो उनके अपने व्यक्तिगत सुख से संबंधित नहीं थी।

लेकिन यह तो शुरुआत ही थी। जिस तरह जौहरी हीरे को तराशते हुए यह देखता है कि और किधर से उसे तराशा जाए, ताकि हीरा जगमगा उठे, वैसे ही शिक्षक को भी यह सोचना पड़ता है कि किस तरह बाल-हृदय की अंतरंग गहराइयों तक पहुंचा जाए। वोलोद्या को साथ लेकर मैं कई बार जंगल गया। वहां हमने जंगली गुलाब के सबसे बड़े फल ढूंढ़कर बटोरे, फिर उनमें से बीज निकालकर बोए, हरे अंकुरों को सींचा। जब क़लमें लगाने का समय आया, तो हमने सफ़ेद गुलाब की कोंपलें ढूंढ़ीं और जंगली गुलाब के पौधों में उनकी आंख लगाई। यह मात्र श्रम ही नहीं था, बल्कि बाल-हृदय का सतर्कता से किया गया स्पर्श भी था। धीरे-धीरे मैं इस बात में सफल हो गया कि वोलोद्या के लिए उसकी अपनी रुचियां ही नहीं, बल्कि चारों ओर का संसार ख़ुशियों और निराशाओं का स्रोत बन गया।

स्लावा की ओर भी बहुत ध्यान देना पड़ा। ओल्या के साथ उसने एक बीमार बछिया की देख-रेख की, उसे भला-चंगा कर दिया। पहले तो नन्हे जीव की चिंता बच्चों का एक खेल थी और फिर धीरे-धीरे इसने काम की लगन का रूप ले लिया। मुझे जाड़ों का वह दिन कभी नहीं भूलेगा, जब स्लावा आंखों में आंसू भरे मेरे पास आया। लड़के को यह शिकायत थी कि उसकी प्यारी बछिया को जई की हरी-हरी चरी अच्छी लगती है, पर तापघर में केवल जौ उगाया जाता है। अब वह क्या मुंह लेकर अपनी बछिया के पास जाए? तब तापघर में जई भी उगाई जाने लगी।

जो बातें अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं से संबंधित नहीं हैं, उनकी चिंता बच्चों की स्वार्थपरकता का सबसे अच्छा उपचार है। अगर बच्चे में ऐसी व्यक्तिगत रुचि जाग उठती है, जो सामाजिक हित की चिंता से संबंधित है, तो उसके हृदय में वह अवगुण कभी जड़ नहीं पकड़ेगा, जिसे अपने पर तरस कहा जा सकता है। यह स्वार्थमय भावना उन्हीं बच्चों में होती है, जिनके जीवन में ख़ुशियां और दुख बस अपने अहं पर ही केंद्रित रहे हैं।

निडर और साहसी

मेरे छात्रों के शारीरिक और आत्मिक विकास का वह काल आ गया, जब उनमें जो शक्ति हिलोरें ले रही थी, वह अब रुकी नहीं रह सकती थी, बाहर निकलना चाहती थी, ऐसी अजीब हरकतों का रूप ले रही थी, जो पहली नज़र में समझ में नहीं आतीं। मेरे देखते-देखते ही तेज़ परिवर्तन हो रहा था: भीरु बच्चे दुस्साहसी हो रहे थे, शर्मीले—साहसी और दृढ़निश्चयवाले।

एक दिन हम खेत में यह देखने गए कि कैसे किसान और बड़ी कक्षाओं के छात्र पुआल के बड़े-बड़े गांज लगा रहे हैं। बच्चों को यह बड़ा दिलचस्प लगा कि ट्रैक्टर के पीछे लोहे का मोटा तार बांधकर उससे पुआल के बड़े ढेर को गांज के ऊपर ले जाया जाता है। तार कस जाता है और कोई पंद्रह मीटर ऊंचा उठ जाता है। गांज से हम कम्बाइन की ओर चल दिए। दूर से मैंने देखा: एक लड़का तार पर लटका हुआ ऊपर ही ऊपर उठता जा रहा है। अपने आस-पास नज़र दौड़ाई—शूरा ग़ायब था। अच्छा, तो यह शूरा १५ मीटर की ऊंचाई पर लटक रहा है। बच्चों ने शूरा को देख लिया और गांज की ओर दौड़ चले। वे ख़ुशी से चिल्ला रहे थे, शायद हर कोई इतना ऊंचा उठने का आनंद पाना चाहता था। गांज के ऊपर से फिसलता हुआ शूरा आख़िर नीचे पहुंच गया। मैं नहीं जानता था कि क्या करूं—इस अनोखी "यात्रा" के सफल अंत पर ख़ुश होऊं या बच्चों को जल्दी से जल्दी यहां से दूर ले चलूं।

बड़ी मुश्किल से मैंने दूसरे बच्चों को ऐसी "यात्रा" करने से रोका। लेकिन मैं देख रहा था कि बच्चों को मेरी यह सावधानी बिल्कुल भी अच्छी नहीं लग रही। मेरे मन ने कहा: बच्चों की यात्रा को सुरक्षित बनाना चाहिए, उन्हें मना नहीं करना चाहिए। तार के तले हमने पुआल बिछा दिया और फिर एक-एक करके सभी बच्चों ने—पहले लड़कों ने और फिर लड़कियों ने यह यात्रा की।

उस ज़माने में हमारे गांव में बिजली का स्थाई स्रोत नहीं था, एक्यु-मुलेटरों को चार्ज करने के लिए बड़ी कक्षाओं के छात्रों ने पवन-बिजलीघर बनाया। इसकी मोटर १२ मीटर ऊंची मीनार पर लगी हुई थी। मीनार के ऊपर लकड़ी का चबूतरा था, उसके बीचोंबीच एक छेद बना हुआ था, जिसके नीचे से मैकेनिक मोटर तक पहुंचता था। एक दिन बच्चे पतंग उड़ा

रहे थे। हर कोई चाहता था कि उसकी पतंग सबसे ऊपर उड़े। वान्या ने कहा: "मेरी पतंग सबसे ऊपर होगी।" वह मीनार के ऊपर चबूतरे पर चढ़ गया और उसकी बाड़ पर झुककर डोर छोड़ने लगा। यह देखकर मेरे प्राण सूख गए कि चबूतरे के छेद का ढकना, जिसे वान्या ने ऊपर चढ़ते हुए हटा दिया था, चबूतरे के सिरे पर खिसक आया और नीचे गिर गया। बच्चा खुले छेद के इर्द-गिर्द दौड़ रहा था, पैरों तले क्या है, इसकी उसे कोई होश ही नहीं थी—उसकी आंखें तो पतंग पर लगी हुई थीं। संयोग ही समझिए कि उस दिन कोई दुर्घटना नहीं हुई।

ऊंचाई का आकर्षण बच्चों के लिए अदमनीय होता है। ऊंचाई की मधुर अनुभूति से बच्चों को ख़ुशी मिलती है और हम शिक्षकों को बच्चों के ये आवेग कितना बेचैन करते हैं। बच्चों की प्रायः सभी हरकतें जिनसे मैं परेशान हुआ, ऊंचाई के आकर्षण से संबंधित थीं।

स्कूल से थोड़ी दूर एक पुराना गिरजा था। उसके २० मीटर ऊंचे घंटाघर के ऊपर एक गोल गुम्बद था। वसंत के एक धुपहले दिन मेरी नज़र यों ही गुम्बद पर पड़ी, तो वहां सलीब के पास ३ बच्चे दिखे। यह सेर्योझा, कोल्या और शूरा थे। मेरा तो कलेजा ही मुंह को आ गया। बच्चों ने मुझे देख लिया और गुम्बद के एक सिरे से दूसरे को भागते हुए छिपने की कोशिश करने लगे। बच्चों को बुलाने में कोई तुक नहीं थी। इससे उलटे नुकसान ही हो सकता था। मैंने स्कूल जाकर अध्यापकों से कहा कि वे सभी बच्चों को चुपके से बाहर ले जाएं—किसी कक्षा को जंगल में घुमाने, किसी को खेत में, बड़ों की छुट्टी कर दें, संक्षेप में, ऐसे करें कि गुम्बद पर चढ़े बच्चों की ओर किसी का ध्यान न जाए और कोई खलबली न मचा दे। ख़ुद मैं वर्कशाप में चला गया, जहां से घंटाघर अच्छी तरह दिखाई देता था और सिर थामकर बैठ गया। शायद पुआल के गांज के पास उस खेल से मैंने बच्चों में ऊंचाई के आनंद की अनुभूति पाने की कामना जगा दी थी? थोड़ी देर बाद मैंने देखा कैसे बच्चे लोहे के जंग लगे पाइपों के सहारे, जो कहीं-कहीं तो मुश्किल से अटके हुए थे, गुम्बद पर से नीचे उतरे।

गर्मियों में एक दिन तेज़ बारिश हुई। तालाब पर बने पुल के नीचे झरना बन गया। एक बूढ़ी औरत हांफती हुई स्कूल आई और बोली: जाओ, देखो तुम्हारे बच्चे तालाब पर क्या कर रहे हैं। मैं वहां गया। पुल पर कोई भी नहीं था, पुल के नीचे से बच्चों की किलकारियां सुनाई

दीं। तोल्या और वीत्या ने पुल की रेलिंग पर लंबे रस्से बांधकर झूला बना लिया था, तेज़ झरने के ऊपर झूलते हुए वे ख़ुशी से किलकारियां भर रहे थे।

पेत्रिक, वीत्या और कोल्या तालाब के ऊंचे कगार पर कहीं से लकड़ी का एक छोटा ड्रम ले आए थे, जिसका आधा तला टूटा हुआ था। बारी-बारी से—कोई भी अपनी बारी छोड़ना नहीं चाहता था—एक लड़का ड्रम में घुस जाता था और बाक़ी दो उसे धीरे-से ढलान पर लुढ़का देते थे। ड्रम तालाब की ओर लुढ़कता जाता था और पानी से कुछ मीटर दूर ही रुकता था। आज तक मेरी समझ में नहीं आता है कि कैसे कोई दुर्घटना नहीं हो गई। ऐसे मामलों में सुखद अंत शायद बच्चों के साथ ही होता है।

एक बार जंगल में घूमते हुए हमने लकड़हारों को काम करते देखा, जो सामूहिक फ़ार्म में निर्माण कार्य के लिए ऊंचे-ऊंचे पेड़ काट रहे थे। बच्चे कटे हुए पेड़ों को नीचे गिरते देख रहे थे और उनसे नजर नहीं हटा पा रहे थे। घर लौटते हुए बच्चों ने ख़याल नहीं किया कि शूरा और दान्को पीछे रह गए। हम मैदान में बैठे आराम कर रहे थे, जब एक बूढ़ा लकड़हारा दोनों लड़कों को पकड़कर लाया। उसने बताया कि शूरा और दान्को एक पेड़ पर चढ़ने की कोशिश कर रहे थे, ताकि जब वह नीचे गिरे, तो वे भी उसकी टहनियों पर नीचे उड़ आएं।

ये सब घटनाएं तीसरी-चौथी में कोई छह महीनों के अंदर-अंदर घटीं। मैं यह महसूस कर रहा था कि बच्चों को ऐसी हरकतें न करने देना, यह ख़याल रखना कि कहीं कोई दुर्घटना न हो जाए, यही सही रास्ता नहीं है। बच्चों में हिलोरें लेती शक्ति को केवल सक्रिय कार्यकलापों की ही आवश्यकता नहीं होती। बच्चा ख़तरे के सम्मुख अपनी निडरता सिद्ध करना चाहता है। साहसी कार्यों की यह अदमनीय इच्छा इस बात की साक्षी थी कि साहस का रोमांच बच्चों के जीवन द्वार पर दस्तक दे रहा था। मैं समझ रहा था कि मुझे बच्चों की शक्ति को सही दिशा प्रदान करनी चाहिए।

पाठकों का ध्यान इस बात की ओर गया होगा कि ये दुस्साहसपूर्ण हरकतें मुख्यतः लड़के ही करते थे। एक भी लड़का ऐसा नहीं था, जिसने मुझे सोच में न डाला हो। यहां तक कि वह दान्को, जिसे मैं सबसे ढुलमुल और डरपोक समझता था, उसने भी १९५५ के शरद में मुझे हैरत

में डाल दिया। तालाब पर अभी बर्फ़ की काफ़ी पतली परत ही जमी थी, उसी पर उसने तालाब पार कर लिया। बर्फ़ के टूटने के ख़तरे को कम करने के लिए उसने अपना बस्ता आगे रख दिया और उसे आगे खिसकाता हुआ बढ़ता जाता था। बर्फ़ चरमराई, नीचे दबी, सबसे गहरी जगह पर तो उसके ऊपर पानी भी आ गया, पर इसे चमत्कार ही समझिए कि टूटी नहीं और लड़का सही-सलामत दूसरे किनारे पर पहुंच गया। उसके बाद तीसरी कक्षा के दो लड़कों ने भी ऐसे ही तालाब पार करना चाहा, परंतु सौभाग्यवश किनारे के पास ही उनके पैरों तले बर्फ़ टूट गई।

बच्चों को दुर्घटनाओं से बचाया जाए? बेशक, यह बात बहुत ज़रूरी है, लेकिन यही सब कुछ नहीं है। साथ ही ख़तरे का सामना भी करना चाहिए, उस पर विजय पानी चाहिए।

तब हमने "निडर और साहसी" टोली बनाई। सभी लड़के इसमें शामिल हुए और थोड़े दिनों बाद कुछ लड़कियां भी आ मिलीं। मैं बच्चों के लिए ऐसे खेल सोचता था, जिनमें दृढ़संकल्प, साहस और निडरता की आवश्यकता होती थी। तालाब के किनारे हमने एक काफ़ी ऊंचा कगार ढूंढ़ा। मैंने तालाब के तल की जांच-पड़ताल की–सब ठीक था। जुलाई की तपती दुपहरी में बच्चे तालाब में नहाने आए। मैंने बच्चों को दिखाया कि कैसे ऊंचाई से कूदना चाहिए और नीचे गिरते हुए अपने शरीर को संतुलन में रखना चाहिए। मेरे फ़ौरन बाद ही शूरा, सेर्योझा, कोल्या, वीत्या और फ़ेद्या तालाब में कूदे। दूसरे दिन यूरा, कोस्त्या और पेत्रिक ने पहली बार छलांग लगाने की हिम्मत की। तीसरे दिन तोल्या, मीशा, साश्को और वान्या भी कूदे। चार लड़के–पाव्लो, वोलोद्या, दान्को और स्लावा रह गए, जो साहस नहीं जुटा पा रहे थे।

उनके साथी उनका मज़ाक़ उड़ाते थे। तालाब में थोड़ी दूर पर लड़कियां नहा रही थीं, वे भी इन लड़कों को उकसाने लगीं। तीना ऊंचे कगार पर आई। वह भी छलांग लगाना चाहती थी। वह कूदी, उसकी छलांग सुंदर थी। लरीसा और वार्या भी उसके पीछे-पीछे कूदीं। अब लड़के शर्मिंदा हुए। आख़िर पाव्लो, दान्को और स्लावा ने भी अपने डर पर क़ाबू पा लिया।

अकेला वोलोद्या ही हिम्मत नहीं कर पा रहा था। मैं देख रहा था कि वह मन ही मन अपने डर पर दुखी है, परंतु साथ ही उस रेखा को भी पार नहीं कर पाता है, जिसके आगे मनुष्य को साहसपूर्ण कार्य के गर्व

की अनुभूति होती है। वोलोद्या के लिए कम ऊंचा कगार ढूंढ़ना पड़ा। वहां से वह लड़कियों के साथ कूदता था, पर पहलेवाले ऊंचे कगार से कूदने की हिम्मत नहीं कर पाया। बाद में मुझे उसे साहसपूर्ण कार्यों के लिए प्रेरित करने में बहुत जतन करने पड़े। वसंत में ज़ब बच्चे लकड़ी के मैनाघर बनाकर पेड़ों पर टांग रहे थे, तो मैंने वोलोद्या को एक ऊंचे पेड़ पर चढ़ने को राज़ी कर लिया। यह डर पर उसकी पहली विजय थी। बच्चों ने मुझे चुपके से बताया कि वोलोद्या अकेला ही ऊंचे कगार पर गया था, कपड़े उतारकर काफ़ी देर बैठा रहा, कई बार दौड़ता हुआ सिरे तक गया, पर तालाब में कूदने का साहस नहीं कर पाया।

तीन सबसे साहसी लड़कियों के बाद वाल्या भी ऊंचे कगार से कूदी। किसी को इसकी उम्मीद न थी। वाल्या के ऐसा करने पर वोलोद्या झेंपा। आंखें मूंदकर वह पानी में कूद पड़ा। वाल्या के बाद नीना, गाल्या, ल्यूस्या, ज़ीना, कात्या और साशा भी हिम्मत करके कूदीं। फिर सभी लड़कियां कूदने लगीं। मैंने देखा कि लड़कियों में लड़कों की अपेक्षा इच्छा-बल अधिक होता है, वे अधिक साहस के साथ भय और हिचकिचाहट पर विजय पा लेती हैं और कोई निडरतापूर्ण काम कर लेने पर वे लड़कों की तरह ख़ुशी से उछलती नहीं हैं।

तीसरी कक्षा के बाद प्रकृति की गोद में छुट्टियां बिताते हुए हमने ध्रुवयात्रियों का खेल सोचा। खेल की शर्तों के अनुसार एक वीरान, झाड़ियों से भरे टापू—चारों ओर से पानी से घिरे हिमखंड—पर कुछ ध्रुवयात्री थे, जिनका जहाज़ दुर्घटनाग्रस्त हो गया था। हमें उन्हें खाने-पीने का सामान पहुंचाना था। टापू और हमारे बीच छोटी-सी झील थी। खेल की शर्तों के अनुसार रसद "ध्रुवीय" रात के अंधकार में पहुंचाई जानी थी।

"निडर और साहसी" टोली के कुछ वीर इस काम के लिए आगे आए। बच्चों को थोड़ा-थोड़ा डर भी लग रहा था: सुना था कि कभी किसी ने टापू पर भेड़िए का भट देखा था। लेकिन शूरा और सेर्योझा रात को झील पार करने को तैयार हो गए। चीड़ के मोटे फट्टे पर रोटी, आलू, माचिस और चर्बी की गठरी बांधी गई। दो ट्यूबों को फुलाकर पानी में उतारा—खेल के अनुसार यह मोटर बोट थी! सूरज डूब गया, टापू पर कोहरा छा गया, आसमान में तारे निकल आए। लड़कों ने कपड़े उतारकर उन्हें फट्टे से बांधा, धीरे-से वे चल दिए। मिनट भर बाद वे दिखाई देने बंद हो गए, कुछ देर तक पानी की छप-छप सुनाई देती रही, फिर वह

भी बंद हो गई। सारी "निडर और साहसी" टोली किनारे पर बैठी थी, हमारे साथ छोटा-सा कुत्ता त्राव्का भी था। एक घंटा बीत गया, घुप्प अंधेरा हो गया, न टापू दिखाई दे रहा था और न झील ही। अचानक अंधेरे में मंद-मंद रोशनी दिखाई दी : यह हमारे किशोर ध्रुवयात्री थे, जो "दुर्घटनाग्रस्त" यात्रियों के पास पहुंच गए थे और संकेत भेज रहे थे कि अगला दल जा सकता है।

फिर से फट्टे पर आलू, प्याज़, चर्बी, रोटी बांधी, ट्यूबें पानी में उतारीं। वीत्या और यूरा ने कपड़े उतारे। कोई लड़की कहने लगी कि किसी ज़माने में इस झील में बड़ी-बड़ी पाइक मछलियां रहती थीं, शायद अब भी वे हों। कहानी का मक़सद यही था कि वीत्या और यूरा डर जाएंगे। बेशक बच्चों को काले पानी में घुसते हुए डर लग रहा था, लेकिन अब तो वे किसी हालत में भी पीछे हटनेवाले नहीं थे। जिस क्षण वीत्या और यूरा ने पानी में पैर रखा, उसी क्षण आगे कहीं छपाक हुई। यह कोई मछली ही थी, पर बच्चे तेज़ दांतोंवाली पाइक की कहानी नहीं भूले थे। घंटे भर बाद टापू पर दूसरी रोशनी जली और फिर दोनों एकसाथ बुझ गईं—इसका मतलब यह था कि किशोर "ध्रुवयात्रियों" के दोनों दल मिल गए। हम सोने के लिए लेट गए, लेकिन किसी को नींद नहीं आ रही थी।

टापू पर अलाव जला : बच्चे बैठे-बैठे रात काटेंगे, सुबह तक आंखें नहीं मूंदेंगे। पास-पास बैठकर वे अधीरता से पूरब की ओर देखेंगे : कब उजाला होने लगेगा? अगले दिन, जैसे ही पेड़ों के शिखरों पर सूरज की पहली सुनहरी किरणें झिलमिलाएंगी, वे वापस रवाना हो लेंगे। जिन्होंने अभी भय पर विजय पाने का हर्ष अनुभव नहीं किया है, उन्हें उनसे ईर्ष्या होगी, जबकि वे पुरुषोचित ढंग से सहज ही कहेंगे : "अरे नहीं, इसमें डरने की कोई बात ही नहीं है।"

बारी-बारी से सभी बच्चों ने रात को यह रहस्यमयी यात्रा की, वोलोद्या ने भी। जब खेल पूरे ज़ोरों पर था, तो लड़कियां कहने लगीं कि सिर्फ़ लड़के ही क्यों जा सकते हैं, हम क्यों नहीं जा सकतीं? मुझे उनके इस अनुरोध की उम्मीद थी। कोल्या के साथ तीना ने झील पार की और तोल्या के साथ वार्या ने। लड़कों ने झील पर सूखी घास ढूंढ़ ली और बच्चियों के लिए बिस्तर बिछा दिया।

रात, शांति, नीरवता, एकांत—यह सब बच्चों को आकर्षित करता

है, इस सब में वे कठिनाइयों पर विजय पाने का रोमांच देखते हैं। बच्चों ने एक और दिलचस्प खेल सोचा–भूविज्ञानियों का खेल। जंगल के सिरे से कोई ५ किलोमीटर अंदर घने झुरमुट में लड़कियों ने टहनियों-पत्तियों की झोंपड़ी बनाई और दिन में वहां जा बैठीं–यह भूविज्ञानियों का प्रमुख अड्डा था। खेल यह था कि भूविज्ञानियों का एक दल, लड़के, अंधेरी रात में घने जंगल में से होता हुआ अपने अड्डे पर लौटता है। उनकी पीठों पर खनिजों के नमूनों से भरे सफ़री थैले हैं। सूरज डूबने पर बच्चे स्कूल से निकलते हैं, घंटे भर बाद वे जंगल के किनारे पहुंचते हैं। अंधेरे में उन्हें ठीक-ठीक दिशा निर्धारित करनी है, इसके अलावा उन्हें रास्ते में "नदी" और "पहाड़" पार करने हैं। लड़कियों को उन्हें किसी तरह से कोई इशारा करने की मनाही है। जंगल का रास्ता बच्चे लगभग दो घंटे में पार करते हैं। आधी रात के क़रीब वे अपने "अड्डे" पर पहुंचते हैं, थके-मांदे, पर बेहद ख़ुश।

एक बार अगस्त में मूसलधार बारिश के समय फ़ार्म के झुंड में से १४ बछड़े भटक गए। वे दूर की चरागाहों में भाग गए थे। फ़ार्मवाले काफ़ी देर तक उन्हें खोजते रहे, पर बछड़ों का कुछ पता न चला। "चलिए, हम उन्हें ढूंढ़ते हैं," शूरा और वीत्या ने मुझे सुझाया। तब "निडर और साहसी" टोली के ९ जने–६ लड़के और ३ लड़कियां मेरे साथ बछड़ों को खोजने निकले। हमने अपने साथ खाने-पीने का सामान, तंबू, कुतुबनुमा और झील पार करने के लिए दो ट्यूबें लीं। बच्चे काफ़ी उत्तेजित थे। हमने चप्पा-चप्पा करके सारी चरागाहें छानीं; कहीं-कहीं हमको २-३ लोगों की टोलियां बनाकर बढ़ना पड़ता था। चार दिन बाद हमें ११ बछड़े मिले–वे जंगल में छोटे-से मैदान में चर रहे थे। बाक़ी शायद बरसाती धार में बह गए थे। ये खोज के दिन बच्चों को सदा याद रहेंगे। ख़ास तौर पर गाल्या, ल्यूस्या और सान्या को–ये लड़कियां अंधेरे से, मेंढकों और घास के सांपों से डरती थीं। और यहां उनका लोमड़ी से भी सामना हुआ और घुग्घू से भी।

चौथी कक्षा के बाद गर्मियों में हमने पर्वतारोहियों का खेल खेला। ऊंचे कगार से गहरे खड्ड में रस्से की सीढ़ी लटका दी। नीचे हमारा अड्डा था और हम पर्वतारोही थे। हमें सीढ़ी पर सीधी चट्टान पर चढ़ना था, कगार के ऊपर पहुंचकर सीढ़ी से ही वापस नीचे उतरना था। बहुत-से लड़के अब ऊंचाई से नहीं डरते थे, तो भी इतनी ऊपर चढ़ने के लिए

साहस जुटाने की आवश्यकता थी। वीत्या सबसे पहले ऊपर तक चढ़कर लौट आया, फिर शूरा और सेर्योझा गए। यूरा आधे रास्ते से ही लौट आया। तब मैंने ऐसा कगार ढूंढ़ा, जिसकी ढलान इतनी खड़ी नहीं थी। कई दिनों तक हम यह खेल खेलते रहे। लड़कियां लड़कों का मुक़ाबला करती थीं। तीना, लरीसा और वार्या सबसे साहसी और निडर निकलीं। वे वोलोद्या और स्लावा की खिल्ली उड़ाती थीं – इन लड़कों को तीन मीटर की ऊंचाई पर ही चक्कर आने लगते थे। आख़िर सभी लड़के-लड़कियां कगार पर चढ़ने में सफल रहे।

साहस और निडरता दिखा पाने पर बच्चों को हर्ष की गहन अनुभूति होती है। साहस और दृढ़ता – ये नैतिक एवं सांकल्पिक गुण असाधारण परिस्थितियों में ही नहीं, बल्कि दैनंदिन जीवन में, श्रम में भी हर मनुष्य के लिए आवश्यक होते हैं।

प्राथमिक विद्यालय की पढ़ाई पूरी होने में जितना कम समय रहता जा रहा था, उतना ही अधिक मुझे यह विचार व्यथित कर रहा था: बच्चे शीघ्र ही किशोरावस्था में पदार्पण करेंगे। अभी से अपने बारे में विचार उनके मन में उठने लगे थे, लड़के-लड़कियां सोचने लगे थे: "मैं कैसा हूं? मुझमें क्या अच्छाइयां हैं और कैसी बुराइयां? मेरे साथी मेरे बारे में क्या सोचते हैं?"

किशोरावस्था आ रही थी, जो आत्मशिक्षा की उम्र होती है। बच्चों के भविष्य के बारे में सोचते हुए, जबकि उनका अपना संकल्प और आग्रह ही सबसे बड़ी चरित्र-निर्माणकारी शक्ति होंगे, मैं बचपन में ही उनमें आत्मशिक्षा, आत्म-अनुशासन के प्रति रुचि जगाने की कोशिश कर रहा था। हर बच्चे की श्रम और विश्राम की अपनी दिनचर्या थी। बच्चे सुबह छह बजे उठते थे। कसरत करते थे, ठंडे पानी से हाथ-पैर, धड़ धोते थे और नाश्ता करके पढ़ने बैठ जाते थे। स्कूल जाने से पहले वे कम से कम एक घंटा किताब लेकर काम करते थे। मेरी चेष्टा यह थी कि बच्चों के लिए दिनचर्या का पालन करना आत्म-अनुशासन का एक विषय बन जाए। वोलोद्या और स्लावा के लिए सुबह उठना बहुत मुश्किल था। उनके माता-पिता को बच्चों को उठाते हुए उन पर तरस आता था और वे उन्हें जल्दी सोने पर भी मजबूर नहीं कर पाते थे। मैंने लड़कों से ही नहीं, उनके माता-पिता से भी बातचीत की। स्लावा के सम्मुख आत्म-अनुशासन का लक्ष्य रखकर उसे प्रोत्साहित करने में मैं सफल रहा। लेकिन वोलोद्या के

साथ अभी यह नहीं हो पा रहा था। उसका परिवार उसे लाड़-प्यार से बिगाड़ रहा था।

गर्मियों से विदाई

चौथी के बाद मेरे सभी छात्रों – १६ लड़के और १५ लड़कियों ने पांचवीं में दाखिला लिया। १२ छात्रों को सभी विषयों में "पांच"-"पांच" अंक मिले थे, शिक्षक परिषद ने उन्हें प्रशंसा पत्र दिए। १३ छात्रों को कुछ विषयों में "चार" और कुछ में "पांच" अंक मिले थे। ६ बच्चों को "तीन", "चार" और "पांच" मिले थे।

अपने चरित्र-निर्माण कार्य की सबसे बड़ी सफलता मैं यह मानता था कि बच्चों ने मानवीयता की शिक्षा पाई थी, इन्सान को महसूस करना, उसके दुख-सुख में शरीक होना, लोगों के बीच रहना, अपनी मातृभूमि से प्रेम करना और उसके शत्रुओं से घृणा करना सीखा था। वे समझ गए थे कि श्रम में कैसी कायाकल्पकारी शक्ति है, अपनी मातृभाषा का उन्हें अच्छा ज्ञान हो गया था और पांच बड़ी बातें वे सीख गए थे: प्रेक्षण करना, सोचना, पढ़ना, लिखना तथा अपने विचारों को शब्दों में व्यक्त करना। मुझे इस बात का विश्वास हो गया था कि बच्चों को ७ साल की उम्र से पहले ही, अर्थात पहली कक्षा में जाने से पहले पढ़ना और लिखना सिखाया जा सकता है। अगर यह लक्ष्य पा लिया जाता है, तो बच्चे की आत्मिक शक्ति चिंतन और सृजन के लिए मुक्त हो जाती है।

यह बात भी कम महत्वपूर्ण नहीं थी कि बच्चे कठिन आयु – किशोरावस्था – में पदार्पण के लिए नैतिक और आत्मिक दृष्टि से तैयार थे। प्राथमिक कक्षाओं में मैं उस समय के बारे में सोचा करता था, जबकि बच्चे बचपन और किशोरावस्था के बीच की अदृश्य रेखा लांघेंगे। कुछ बच्चे तो इस संक्रमण की अवस्था में पहुंच गए थे। किशोरावस्था की कठिनाइयां चौथी कक्षा में ही सामने आने लगीं।

अगस्त की शांत संध्या को हम गर्मियों से विदाई लेने अपने सौंदर्य विहार में आए।

सूरज की किरणें तरु-शिखरों का अंतिम स्पर्श कर रही हैं, चार साल पहले हमने जो सेब का पेड़ लगाया था, उस पर सेब पक रहे हैं। अंगूर के गुच्छों पर भौंरा उड़ रहा है, खेत से ट्रैक्टर की गड़गड़ाहट आ रही है। लड़कियां गेहूं की पूली ले आती हैं, लाल बेरियों के गुच्छों को बालियों

में गूंथती हैं। हम गर्मियों की शांत संध्या का गीत गाते हैं। गीत के अंतिम स्वर सांझ की नीरवता में खो जाते हैं, बच्चे आकाश को निहारते हैं। प्रकृति का संगीत, गर्मियों की यादें – यह सब बाल-हृदय में प्रतिध्वनित होता है। हमारे चारों ओर का संसार – संध्याकालीन गगन, सूर्यास्त की लाली, पीले-पीले सेब, अंगूरों के गुच्छे, बेल की हरी दीवार, गुलदाउदी के सफ़ेद फूल, भौंरे का गुंजन – सारा संसार मानो एक अद्भुत वाद्य है, बच्चे इसके तारों का स्पर्श करते हैं और एक अनोखा संगीत गुंजायमान हो उठता है – शब्दों का संगीत। यह ख़ुशी और उदासी का संगीत है, मुझे भी ख़ुशी होती है और उदासी भी। बच्चो, तुम अब किशोर हो, तुम्हारा जीवन कैसा होगा? मैं हर दिन तुम्हारे साथ चलूंगा, तुम्हें यौवन की दुनिया में ले जाऊंगा। पांच वर्षों तक मैंने तुम्हारा हाथ पकड़ तुम्हें बचपन की राह पर चलाया, अपना हृदय तुम्हें अर्पित किया। ऐसे क्षण भी आए, जब मैं थक जाता था। जब मेरा हृदय निश्शक्त होने लगता था, मैं जल्दी-जल्दी तुम्हारे पास जाता था। तुम्हारा हर्षमय कलरव मेरे हृदय में नई शक्ति संचारित करता था, तुम्हारी मुस्कानें नया उत्साह जगाती थीं, तुम्हारी कौतूहल भरी दृष्टि मेरे विचारों को आलोड़ित करती थी। मेरे प्यारे बच्चो, अपने सपनों में मैं तुम्हें वयस्क हो गए देखता हूं। तुम सब को मैं साहसी सोवियत देशभक्त, सुस्पष्ट बुद्धि और सच्चे, ईमानदार दिलवाला व्यक्ति बना देखता हूं।

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक की विषयवस्तु, अनुवाद और डिज़ाइन के बारे में आपके विचार जानकर आपका अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। कृपया हमें इस पते पर लिखें:

प्रगति प्रकाशन
१७, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ

वासिली अलेक्जेंड्रोविच सुखोमलिंस्की (1918-1970) ने अपने छोटे जीवन के पैंतीस साल परवरिश के लिए समर्पित किए
और बच्चों की शिक्षा । उनतीस वर्षों के लिए वह यूक्रेनी गांव पावलिश में एक स्कूल के निदेशक थे, बड़े शहरों से दूर । शिक्षा के क्षेत्र में अपने काम के लिए, वह समाजवादी श्रम के हीरो के खिताब से सम्मानित किया गया और के मेरिटेड शिक्षक यूक्रेनी एसएसआर; और यूएसएसआर के शैक्षणिक विज्ञान अकादमी के संबंधित सदस्य चुने गए । एक शिक्षक के रूप में वसीली सुखोमलिंस्की के काम का सार क्या है?

प्रगतिशील शिक्षकों ने लंबे समय से परवरिश और शिक्षा को एक शैक्षिक प्रक्रिया में मिलाने की कोशिश की है । इस
सुखोमलिंस्की के शैक्षिक कार्य में सपना साकार हुआ । हर स्कूल के बच्चे में एक व्यक्ति को देखने के लिए-यह
उनकी शैक्षिक पद्धति का सार था और जो कोई भी उठाने और सिखाने की उम्मीद करता है, उसके लिए एक आवश्यक आवश्यकता थी बच्चे।

वसीली सुखोमलिंस्की ने सिद्धांत और व्यवहार में दिखाया कि कोई भी स्वस्थ बच्चा आधुनिक माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कर सकता है उज्ज्वल और कम उज्ज्वल के समूह में बच्चों के किसी भी अलगाव के बिना एक साधारण पब्लिक स्कूल में । यह नहीं था
नई खोज। लेकिन वह समझदार मतलब है कि सक्षम पाया, शिक्षक रखने में ज्ञान के लिए बच्चे का नेतृत्व करने के लिए
राष्ट्रीय शैक्षिक कार्यक्रम के साथ। सुखोमलिंस्की के लिए मुख्य बात बच्चे की इच्छा को जगाना था
आत्म-शिक्षा और आत्म-अनुशासन के लिए एक स्वाद विकसित करना सीखें । सुखोमलिंस्की ने अपने प्रत्येक शिष्य का अध्ययन किया, अन्य शिक्षकों के साथ और माता-पिता के साथ परामर्श करते हुए, उनकी तुलना की अतीत के महान शिक्षकों के विचारों और लोक ज्ञान के साथ अपने विचार ।

बच्चों को पढ़ाने के लिए, आपको उन्हें पसंद करना चाहिए । तभी कोई बच्चे को काम करने की खुशी का पता लगाने में मदद कर सकता है दोस्ती, और मानवता। शिक्षक को हर बच्चे के दिल में अपना रास्ता खोजना होगा । तभी वह या वह कर सकते हैं बच्चों को अपने परिवार, अपने स्कूल, काम और ज्ञान और अपनी मातृभूमि से प्यार करना सिखाएं । संक्षेप में यह विधि-बच्चे के दिल के लिए एक रास्ता खोजना-वासिली सुखोमलिंस्की ने जो काम किया था, उसकी नींव थी शिक्षा। अपने विद्यार्थियों में सर्वश्रेष्ठ लाने के लिए - अपनी प्राकृतिक क्षमताओं को विकसित करना, अपने नैतिक गुणों को निर्धारित करना, उठाना कम्युनिस्ट आदर्शों के लिए समर्पित ईमानदार लोग-यही वह था जिसे वह एक सोवियत शिक्षक का लक्ष्य मानते थे।सुखोमलिंस्की की शैक्षिक पद्धति अच्छे, सत्य, भावना की दुनिया और विचारों के लिए शिक्षा है; यह एक व्यक्ति और नागरिक का गठन है ।

अपने जीवन के अंतिम बीस वर्षों में, सुखोमलिंस्की ने अपनी टिप्पणियों और प्रतिबिंबों पर नोट्स बनाए, जो उन्होंने तब
उनकी कई पुस्तकों और लेखों के लिए उपयोग किया जाता है, जिनमें से सबसे प्रसिद्ध बच्चों को मैं अपना दिल देता हूं, एक का जन्म नागरिक, पावलिश में माध्यमिक विद्यालय, और सामूहिक की बुद्धिमान शक्ति । वे के संश्लेषण हैं
इस उत्कृष्ट शिक्षक का समृद्ध अनुभव। सुखोमलिंस्की ने खुद अपने कामों को "मकरेंको का